कमलेश्वर

साहित्य अकादमी
द्वारा
पुरस्कृत

कितने पाकिस्तान

कितने पाकिस्तान

पहला संस्करण	:	जनवरी, 2000
दूसरा संस्करण	:	जून, 2000
तीसरा संस्करण	:	नवम्बर, 2000
चौथा संस्करण	:	फरवरी, 2001
पांचवां संस्करण	:	जुलाई, 2001
छठा संस्करण	:	जून, 2002
सातवां संस्करण	:	फरवरी, 2003
आठवां संस्करण	:	अप्रैल, 2004
नौवां संस्करण	:	अप्रैल, 2006
दसवां संस्करण	:	अप्रैल, 2007
ग्यारहवां संस्करण	:	फरवरी, 2008
बारहवां संस्करण	:	अक्तूबर, 2008
तेरहवां संस्करण	:	फरवरी, 2009
चौदहवां संस्करण	:	अप्रैल, 2010
पन्द्रहवां संस्करण	:	जनवरी, 2013
सोलहवां संस्करण	:	जनवरी, 2015

ISBN : 9788170284765

संस्करण : 2015 © कमलेश्वर

KITNE PAKISTAN (Novel) by Kamleshwar

राजपाल एण्ड सन्ज़

1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट-दिल्ली-110006

फोन: 011-23869812, 23865483, फैक्स: 011-23867791

e-mail : sales@rajpalpublishing.com
www.rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpalandson

कितने पाकिस्तान

कमलेश्वर

राजपाल

इन बंद कमरों में मेरी साँस घुटी जाती है
खिड़कियाँ खोलता हूँ तो ज़हरीली हवा आती है

यह उपन्यास

यह उपन्यास मन के भीतर लगातार चलने वाली एक जिरह का नतीजा है। दशकों तक सभी कुछ चलता रहा। मैं कहानियाँ और कॉलम लिखता रहा। नौकरियाँ करता और छोड़ता रहा। टीवी के लिए कश्मीर के आतंकवाद और अयोध्या की बाबरी मस्जिद विवाद पर दसियों फ़िल्में बनाता रहा। सामाजिक हालात ने कचोटा तो शालिनी अग्निकांड पर 'जलता सवाल' और कानपुर की बहनों के आत्महत्याकांड पर 'बन्द फाइल' जैसे कार्यक्रम बनाने में उलझा रहा। इस बीच एकाध फ़िल्में भी लिखीं। चंद्रकांता, युग, बेताल, विराट जैसे लम्बे धारावाहिकों के लेखन में लगा रहा।

इसी बीच भारतीय कृषि के इतिहास पर एक लम्बा श्रृंखलाबद्ध धारावाहिक लिखने का मौका मिला। कई सभ्यताओं के इतिहास और विकास की कथाओं को पढ़ते-पढ़ते चश्मे का नम्बर बदला। एक-एक घंटे की 27 कड़ियों को लिखते-लिखते बार-बार दिमाग़ आदिकाल और आर्यों के आगमन को लेकर सोचता रहा। बुद्धि और मन का सच मोहनजोदड़ो-हड़प्पा सभ्यता और आर्यों के बीच स्थापित किए गए 'संघर्ष-सिद्धान्त' को स्वीकार करने से विद्रोह करता रहा। उस एपीसोड को मैंने कई बार लिखा। एक बार तो मैंने ऊब कर, काम निपटाने की नीयत से, पश्चिमी विद्वानों के 'आर्य-आक्रमण' के सिद्धान्त को स्वीकार करके वह अंश लिख डाला। फिर लोकमान्य तिलक की इस थ्यौरी और उद्भावना से भी उलझता रहा कि आर्य भारत के मूल निवासी थे। मैंने इस उद्भावना को लेकर वह अंश फिर लिखा; लिखने के बाद भी मन निर्भ्रान्त नहीं हुआ। लगा यही कि यह बात भी रचना के सम्भावित सत्य तक नहीं पहुँचाती। सच को यदि पहले से सोच कर मान्य बना लिया जाए तो यह सत्याभास तो दे सकता है, पर आन्तरिक सहमति तक नहीं पहुँचाता। शायद तब, रचना अपने सम्भावित सत्य को खुद तलाशती है। उसी तलाश ने मुझे यह बताया कि आर्यों के आक्रामक होने के कोई कारण नहीं थे। वे आक्रांता नहीं थे। वे आर्य आदिम कृषि से परिचित खानाबदोश कबीले थे, जो सहनशील प्रकृति और सृजनगर्भा धरती की तलाश में निकले थे। सिन्धु घाटी में सहनशीला प्रकृति तो थी ही, सृजनगर्भा धरती की भी कमी नहीं थी। इसलिए आक्रमण या युद्ध की ज़रूरत नहीं थी। आर्य आए और इधर-उधर बस गए होंगे।

वेदों में असुरों से युद्धों की जो अनुगूंज मिलती है, वह निश्चय ही सत्ता, समाज, वैभव और जीवन-पद्धति के स्थिरीकरण के बाद की उपरान्तिक गाथा है। दुनिया की सभ्यताओं के इतिहास में, किसी आक्रांता जाति समुदाय ने वेदों जैसे रचनात्मक ग्रन्थों के लिखे जाने का कोई प्रमाण नहीं दिया है। ऐसे ग्रंथ शांति, धीरज और आस्था के दौर में ही

लिखे जा सकते हैं, युद्धों के दौर में नहीं। रचना के इस संभावित सत्य ने मुझे सांत्वना दी। तब 'कृषि- कथा' का लेखन हो सका।

इन और ऐसी तमाम रचनाओं, विचारों, इतिहास की सैकड़ों सर्जनात्मक दस्तकों और व्यवधानों के बीच रुक-रुक कर 'कितने पाकिस्तान' का लिखा जाना चलता रहा। उन तमाम विधाओं की तकनीकी सर्जनात्मकता का लाभ भी मुझे मिलता रहा। शब्द-स्फीति पर अंकुश लगा रहा।

इसे मैंने मई, सन् 1990 में लिखना शुरू किया था। घने जंगल के बीच देहरादून के झाजरा वन विश्राम गृह में सुभाष पंत ने व्यवस्था करवा दी थी। रसद वगैरह नीचे से लानी पड़ती थी। गायत्री साथ थी ही। साथ में हम अपने 4 बरस के नाती अनंत को भी ले गए थे। एक कुत्ता वहाँ आता था, उससे अनंत ने दोस्ती कर ली थी। उसका नाम मोती रख लिया था। कभी-कभी वहाँ बहुरंगी जंगली मुर्गे भी आते थे। अनंत उन्हें देखने के लिए दूर तक चला जाता था।

जंगल की पगडंडियों से यदा-कदा लकड़हारे आदिवासी गुज़रते रहते थे। एक दिन अनंत मुर्गों का पीछा करते-करते गया तो नज़र से ओझल हो गया। गायत्री बहुत ज्यादा चिंतित हो गई। तलाशा, आवाजें लगाईं, घबरा के इधर-उधर दौड़े-भागे पर अनंत का कहीं कोई पता नहीं चला। तभी एक गुजरते बूढ़े ने बताया कि उसने जंगल में कुछ दूर पर एक छोटे बच्चे को लकड़हारे के साथ जाते देखा था...यह सुनकर गायत्री तो अशुभ आशंका और भय से लगभग मूर्छित ही हो गई। आदिम कबीलों की नरबलि वाली परम्परा की पठित जानकारी ने गायत्री को त्रस्त कर दिया था। आशंकाओं से ग्रस्त मैं भी था। मैं गायत्री को संभाल कर, पानी पिला कर, उसे नौकर के हवाले करके फौरन निकला। बूढ़े ने जिधर बताया था, उधर वाली पगडंडी पर उतर कर तेजी से चला, तो कुछ दूर पर देखा–एक लकड़हारे के कन्धों पर पैर सामने लटकाए उसकी पगड़ी पर बाँहें बाँधे, किलकारी मारता अनंत बैठा था। लकड़हारे के बायें हाथ में कुल्हाड़ी थी, और वह उसे लिए हुए सामने से चला आ रहा था। जान में जान आई। पता चला, वह अनंत को हिरन और भालू दिखाने ले गया था।

इस घटना ने मुझे आदिम कबीलेवालों को जानने, पहचानने और उनके बारे में पठित तथ्यों से अलग अनुभवजन्य एक और ही सोच दी थी। सात-आठ बरस बाद अनुभव के इसी अंश ने मेरा साथ तब दिया जब मैं उपन्यास में माया सभ्यता के प्रकरण से गुज़र रहा था। बहरहाल...

मेरी दो मजबूरियाँ भी इसके लेखन से जुड़ी हैं। एक तो यह कि कोई नायक या महानायक सामने नहीं था, इसलिए मुझे समय को ही नायक-महानायक और खलनायक बनाना पड़ा।

और दूसरी मजबूरी यह कि इसे लिखते समय लगातार यह एहसास बना रहा कि जैसे यह मेरी पहली रचना हो...लगभग उसी अनकही बेचैनी और अपनी असमर्थता के बोध से मैं गुज़रता रहा...आख़िर इस उपन्यास को कहीं तो रुकना था। रुक गया। पर मन की जिरह अभी भी जारी है...

दिल्ली : 29.12.99

कमलेश्वर

दूसरे संस्करण की भूमिका

फरवरी 2000 में इस उपन्यास का पहला संस्करण छपा था। भाई विश्वनाथ जी ने जून में सूचना दी कि दूसरा संस्करण छप गया है, और यह भी कि साढ़े तीन महीनों में ही इसका पूरा संस्करण समाप्त हो गया। यह तब, जब कि किसी सरकारी या थोक खरीद का कोई आर्डर उनके पास नहीं था। सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ। इसका मूल्य भी कम नहीं है, कि औसत पाठक आसानी से खरीद सके।

सबसे ज़्यादा और चमत्कृत करने वाला आश्चर्य तो तब हुआ था जब भाई महेंद्र कुलश्रेष्ठ ने इसके छपने के डेढ़-दो महीने बाद बताया था कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ नगरों में इसके फोटोस्टेट (पाइरेटेड) संस्करण 80-80 या 100-100 रुपये में बिक रहे हैं।

प्रकाशक के लिए वह सूचना सुखद नहीं थी लेकिन मेरे लिए यह मेरे जीवन की एक सुखदतम सूचनाओं में थी।

अपने प्रकाशक के साथ ही मैं अपने समकालीन लेखक बंधुओं, समीक्षकों, रचनाकारों, प्रतिक्रिया स्वरूप पत्र लिखने वाले सैकड़ों पाठकों, हिन्दी के तमाम समाचार पत्रों, पत्रिकाओं का आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी उन्मुक्त-बेलाग प्रतिक्रियाओं से इस रचना को नवाज़ा है।

मैं मन से अभिभूत और विनत हूँ।

5/116, इरोज गार्डन,
सूरजकुण्ड रोड, नई दिल्ली-110044

कमलेश्वर

तीसरे संस्करण की भूमिका

मैं अपने हज़ारों-हज़ार पाठकों का हृदय से आभारी हूँ। सात महीनों में तीसरा संस्करण आना नितांत अकल्पनीय सच्चाई है। और वह भी तब जब कहा जाता है कि पाठकों का अकाल है। यह भी कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने पाठकों को पुस्तक से विरत कर दिया है। ऐसे दुष्काल में पाठकों ने मुझे अपने लेखन की सार्थकता का एहसास दिया है।

पुस्तक मेले के समय फरवरी 2000 में इसका पहला संस्करण आया था। चार महीने बाद जून 2000 में दूसरा संस्करण आया, और अब तीन महीने बाद यह तीसरा संस्करण! तीसरे संस्करण की सूचना से पहले मुझे खबरें मिलीं कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर और जे.एन.यू. दिल्ली में 'कितने पाकिस्तान' की फोटोस्टेट कवर-रहित और कवर-सहित कापियाँ क्रमशः 80-100 और 120 रुपये में बिक रही हैं। कुछ विद्यार्थियों ने चंदा जमा करके इसकी कापी खरीदी और पढ़ी। यही मेरा सबसे बड़ा रचनात्मक प्राप्य है। मैं आने वाले समय को तो नहीं बदल सकता लेकिन जो उसे बदल सकते हैं, उन तक मैं पहुँच सका हूँ।

एक फोटोस्टेट पाइरेटिड प्रति मुझे देखने को मिली। वह मेरे लेखन की अस्मिता का अप्रतिम प्रमाण-पत्र बन गई!

इस उपन्यास पर सब जगहों से प्रतिक्रियाएँ आईं। भारतीय द्विभाषी लेखकों ने उन्मुक्त राय दी। अनुवाद की पेशकश की। अंग्रेज़ी सहित सात भारतीय भाषाओं में अनुवाद की शुरुआत हुई। अप्रत्याशित पत्र-पत्रिकाओं में चर्चा हुई, हो रही है। जाने-अनजाने पाठकों, विद्वानों, मित्रों की बेलाग प्रतिक्रियाओं से मैं अभिभूत और आप्लावित हुआ।

इसी के साथ-साथ कुछ स्वयंसेवी साहित्यकारों के लिए यह उपन्यास, इसकी सार्वभौम चर्चा और स्वीकृति यंत्रणा का कारण बन गई।

मैंने यह उपन्यास उन्हें कष्ट पहुँचाने के लिए नहीं लिखा था।

साहित्य में इधर एक दशक से घटिया बाज़ारवाद पनपा है। यशप्रार्थी और प्रशंसाप्रदाताओं के रचनास्खलित बौद्धिक बूचड़खानों का तेज़ी से विकास हुआ है। इन बूचड़खानों के दादाओं में आपसी लड़ाइयाँ भी होती रहती हैं। फिर उनके समझौते भी हो जाते हैं। कहीं ज़्यादा गहरे स्वार्थ टकरा गए तो उनके बीच चरित्र-हनन की वारदातें भी हो जाती हैं। वैसे फ़िलहाल दादालोग कुछ पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों पर अपने दुर्गंधित अधोवस्त्र धो रहे हैं। वे अनुभव और प्रश्नों की दुनिया से कट गए हैं।

लगता यही है कि आज शब्द का पारदर्शी पसीना सूख गया है। रौशनाई स्याही में बदल गई है।

अपने इस दौर के ऐसे तमाम सिद्धांतवादियों, स्खलित रचनाकारों, खुद को साहित्य का नियंता समझने वाले कुंठित ईर्ष्यावादियों को गले लगाते हुए इतना ही कहना ज़रूरी समझता हूँ कि–

आ जा रक़ीब मेरे तुझ को गले लगा लूं
मेरा इश्क कुछ नहीं था तेरी दुश्मनी से पहले

अंतत: तो साहित्य और रचना का यह इश्क ही तय करेगा कि कौन कितने आँसुओं के पानी में था और है। बहरहाल।

अभी इस उपन्यास की पाँच प्रतियों की मुझे ज़रूरत पड़ी तो बताया गया कि एक या दो प्रतियाँ तो उपलब्ध हो सकती हैं पर पाँच नहीं। वे भूमिका मिलने और तीसरे संस्करण के छपने के बाद ही उपलब्ध हो सकेंगी। मेरा संतोष यही है कि तमाम पाठक और खास तौर से नौजवान पीढ़ी इसे सात्विक उत्साह से पढ़ रही है। यही पवित्र यश है। यही मेरा प्राप्य है।

पचास-पचपन बरस पहले जो अमूर्त-सी शपथ कभी उठाई थी कि रचना में ही मुक्ति है, उस मुक्ति का किंचित एहसास अब हुआ है। ज़िन्दगी जीने, दायित्वों को सहने और रचना की इस बीहड़ यात्रा के दौरान जो कभी सोचा था, सोचता रहा था कि 'वाम चिरंतन है' उसकी गहरी प्रतीति भी मुझे इसके साथ मिली है।

और अंत में इस तीसरे संस्करण के साथ पिछले संस्करणों पर छपी लाइनों कि '*इन बंद कमरों में मेरी साँस घुटी जाती है, खिड़कियाँ खोलता हूँ तो ज़हरीली हवा आती है*', के गुमनाम शायर को अपनी अकीदत पेश करते हुए अब मैं फिराक़ साहब की इन लाइनों पर अपनी बात को थोड़ा सा विराम देता हूँ :

इन कफस की तीलियों से
छन रहा कुछ नूर-सा
कुछ फज़ा कुछ हसरते परवाज़ की बातें करो...

साहित्य इसी 'हसरते परवाज़' का पर्याय है।

5/116, इरोज गार्डन,
सूरजकुण्ड रोड, नई दिल्ली-110044

कमलेश्वर

पाँचवें संस्करण की भूमिका

इतनी जल्दी फिर यह संस्करण! प्रतिक्रियाओं की भरमार और विचारों की उथल-पुथल। विराट वैचारिक फलक पर इस रचना के इतने विस्तार ने इस 'मिथ' को भी तोड़ा है कि हिन्दी में पाठक नहीं हैं, हिन्दी में गम्भीर पाठक नहीं हैं। अगर नहीं हैं तो इस उपन्यास को कौन खरीद रहा है और पढ़ रहा है? प्रकाशन के समय (फरवरी 2000 से जुलाई 2001) से अब तक इन अट्ठारह महीनों में मैं प्रतिक्रियाओं से आप्लावित रहा हूँ। और ये सारी प्रतिक्रियाएँ या तो साधारण पाठकों की हैं या उन पाठकों की, जो हिन्दी के वैचारिक और रचना परिदृश्य से एक साज़िश के तहत अदृश्य रहते या रखे जाते हैं।

अब मैं यह कहने में क़तई संकोच नहीं करूँगा कि इस रचना ने हिन्दी आलोचना के शिविरबद्ध संस्थानों की प्राचीरों के पार जाकर पाठक से वह रिश्ता कायम किया है जो इन व्यक्ति-संस्थानों ने खण्डित कर दिया था। इसने साहित्य के पुरोहितवाद को ख़ारिज किया है।

बहस के कई मुद्दे भी उठे हैं। सन्तोष की बात यह है कि ये मुद्दे पाठकों ने उठाए हैं या रचनाकारों ने पाठकों की तरह उठाए हैं। एक ख़ास मुद्दा इसकी प्रयोगशीलता को लेकर उठा है। अनेक पाठक मित्रों ने देश के कोने-कोने से लिखते हुए इसकी प्रयोगशीलता की पहचान और सराहना की है। अग्रज लेखक विष्णु प्रभाकर जी ने जब यह लिखा कि 'इसने उपन्यास के बने-बनाए ढाँचे को तोड़ दिया है और लेखकीय अभिव्यक्ति के लिए सब कुछ सम्भव बना देने का दुर्लभ द्वार खोलकर एक नया रास्ता दिखाया है...यह एक नया प्रयोग है।' तब मैं सचमुच आश्वस्त हुआ कि यदि इसकी प्रयोगशीलता को इस रूप में लिया जा रहा है तो यह मात्र प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं बल्कि यह इसका प्रयोजन भी है।

फिर स्वयंप्रकाश जैसे गम्भीर और सृजनरत समकालीन का पत्र मिला। उन्होंने लिखा–'कहना चाहिए कि यह नाटक की ब्रेख्तियन पद्धति का उपन्यास में पहली बार निवेश करता है—और बेशक खतरे उठाते हुए और इसकी क़ीमत चुकाते हुए भी अपने मक़सदद में कामयाब रहता है...इसलिए इसे क्या कहें? अनुपन्यास? या प्रतिउपन्यास? लेकिन ऐसा कहने से कलावादी-रूपवादी प्रतिक्रियावाद की बू आती है, लेकिन उन्हें देखना चाहिए कि शिल्प के उनसे बड़े और ज़्यादा जोखिमवाले प्रयोग प्रगतिशील लेखक कर सकते हैं।'

परिभाषावाली बात को फ़िलहाल स्थगित रखते हुए प्रयोगवाले मुद्दे पर कालीकट (केरल) से लिखित कोविद अनन्तमूर्ति अनंगम की चन्द सतरें देना चाहता हूँ। इसमें अतिरेक और अतिरंजना है पर वह स्वत:स्फूर्त भी हैं। वे कहते हैं कि 'इस उपन्यास ने

प्रेमचन्द से बहुत आगे जाकर जिस वैश्विक चिन्ता से हमें जोड़ा है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रयोग के धरातल पर तो (इसने) कमाल किया है। प्रेमचन्द प्रयोगवादी नहीं थे, लेकिन प्रयोगवादी वात्स्यायन को उन्होंने सदियों पीछे छोड़ दिया है। (इनकी) भाषा ने जैनेन्द्र की निजी भाषा से हिन्दी को मुक्त करके उस भाषा और मुहावरे को पकड़ा है जो भविष्य की भाषा है।

यह उद्धरण मैं प्रशस्ति-गायन के लिए नहीं, 'प्रयोग' के मुद्दे को सुलझाने के लिए दे रहा हूँ। मैं कहना चाहता हूँ कि जो भी प्रयोग इस रचना में हुआ या हो गया है, वह मेरे कारण नहीं बल्कि 'कथ्य' के कारण हुआ है। लेखक प्रयोगवादी होने का दम्भ पाल सकता है पर प्रयोग की सारी सम्भावनाएँ केवल कथ्य में निहित होती हैं।

अब परिभाषा का सवाल। यह उपन्यास है या कुछ और, तो मैं यही कह सकता हूँ कि इसे मैंने उपन्यास की तरह ही शुरू किया था और उपन्यास मानकर ही पूरा किया है। इसे उपन्यास की तरह ही पढ़ा गया है। मेरी समझ से यह परिभाषा का कोई संकट खड़ा नहीं करता। यदि थोड़ा-सा संकट खड़ा भी होता है तो इसलिए कि इसमें राष्ट्रीय, सभ्यतागत, समयगत समस्याओं का विस्तार हुआ है। वैश्विक चिन्ताओं के बीच इसमें हर देश में मौजूद 'अपने देश' को पहचानने की कोशिश की गई है।

भाषा को लेकर जो सवाल उठे हैं उनको स्पष्ट करने के लिए अहिन्दी भाषाओं के मात्र दो पाठकों के विचार ही काफ़ी होंगे। मराठी भाषी डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे ने कहा है कि बहुत अच्छा मराठी अनुवाद मौजूद होने के बाद भी वे इसे हिन्दी में पढ़ने के लिए उत्सुक हुए और उन्हें यह लगा कि यह (यानी इसकी) हिन्दी उन सबकी हिन्दी है जो हिन्दीवालों की वैयक्तिक हिन्दी नहीं बल्कि भविष्यमुखी राष्ट्रीय हिन्दी होगी। ओड़ीशा में गौरीभुवन दास ने बताया कि 'यह उपन्यास ओड़िया में सम्भवत: अगस्त में आ रहा है, पर इसके हिन्दी संस्करण के आधार पर कुछ समीक्षाएँ ओड़िया में पहले ही छप रही हैं। उन्हें पढ़कर मैंने बड़ी कठिनाई से हिन्दी संस्करण प्राप्त किया। इसकी हिन्दी हमें सब कुछ सहजता से समझा देती है। यह साम्राज्यवादी हिन्दी नहीं, यह भारतीय हिन्दी है, यह भारत की जनवादी हिन्दी है।'

कुछ जगहों से इसके शीर्षक 'कितने पाकिस्तान' को लेकर उत्कट विरोध के स्वर भी सुनाई दिए। प्रमाणस्वरूप कुछ संस्थागत खतो-किताबत मेरे पास है पर उसे मैं फ़िलहाल विवाद का विषय नहीं बनाना चाहता। हिन्दी के प्रतिष्ठानी 'साहित्यिक स्वयंसेवकों' ने भी कुछ बौद्धिक दंगा-फ़साद करवाना चाहा, पर व्यापक पाठक वर्ग पर उसका कोई असर नहीं हुआ। एक अपुष्ट समाचार मिला कि जोधपुर में इस उपन्यास की एक प्रति को विरोधस्वरूप जलाया गया। एक प्रति के कारण आग दर्शनीय नहीं बनी, तो जो भी किताबें-काग़ज़ हाथ लगे, उन्हें झोंककर आग को प्रचण्ड बनाया गया। बहरहाल...

मेरा प्राप्य यही है कि मेरे रचनाकार के मन में जो बैचेनी पल रही थी...दिमाग़ पर जो दस्तकें लगातार पड़ रही थीं और जिरह जारी थी, उसमें अब देश के हर कोने का पाठक मेरा सहभागी और सहयात्री है।

यही मेरा भरपूर प्राप्य है। इसने मेरी रचनात्मक उम्र को बढ़ाया है। वामधर्मी होने की मेरी आस्था को भारतीयता के सन्दर्भ और परिप्रेक्ष्य में रेखांकित किया है।

इससे अधिक और मैं क्या चाह सकता हूँ! सिवा इसके कि रचना मुझे रचना के प्रति प्रतिश्रुत बनाए रहे...और इसके आगे की दास्तान को लिखने की ताक़त देती रहे...लेखक-पाठक का यह ज़रूरी और कारगर रिश्ता क़ायम रहे!

विनम्र भाव से पाठकों को फिर प्रणाम करते हुए—

5/116, इरोज गार्डन,
सूरजकुण्ड रोड, नई दिल्ली-110044

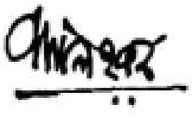

छठे संस्करण की भूमिका

पाँचवें संस्करण वाली टिप्पणी में काफ़ी विस्तार से मैंने प्रयोगशीलता और इसके उपन्यास होने की परिभाषा को लेकर अपनी बात रखी थी। पाठकों ने इसे जिस तरह स्वीकार किया है और इसका पाठकीय फलक जिस तेज़ी से विस्तृत हुआ है, उसकी गवाही यह छठा संस्करण दे रहा है।

इस बीच एक उत्साहित करने वाला प्रसंग भी उद्घाटित हुआ है। 'कितने पाकिस्तान' को केंद्र में रखकर मथुरा, सतना, छिंदवाड़ा, सोलापुर, लातूर, देहरादून, चंडीगढ़ आदि कई अन्य जगहों, शहरों में इस पर गोष्ठियाँ और विचार-विमर्श हुआ है। जहाँ मैं मौजूद रह सका वहाँ सवाल-जवाब का लम्बा सिलसिला चला है, सुखद अनुभव यह था कि पाठकों की उपस्थिति मुझे चौंकाती थी और सबसे ज़्यादा आश्वस्त करने वाली स्थिति यह थी कि मुझे उनमें से कइयों के हाथों में उपन्यास की चिह्नित प्रति दिखाई देती थी। वे पन्ने पलट कर चिह्नित अंश देखते और उपन्यास के विविध प्रसंगों पर विचार व्यक्त करते थे या प्रतीकों, घटनाओं, वृतांतों के बारे में विस्तृत वर्णन चाहते थे।

यानी हर अध्याय में वे अपनी तरफ़ से कुछ जोड़ना चाहते थे, कई और पाठक चाहते थे कि अदीब की अदालत में कुछ और इतिहास-पुरुषों को बुलाया जाता...रचना के साथ पाठक की सहभागिता की यह अनुभूति विस्मयकारी और विलक्षण थी। मेरे पाठक उपन्यास के अध्यायों के बाद स्वयं अपने मानस में रचनारत थे...यह बहुत गहरी प्रतीति थी...कि रचना यदि पाठक के लिए रचना का मानसिक और वैचारिक अवकाश (स्पेस) पैदा करती है तो लेखक के पास से समाप्त होने के बाद उसकी पुनर्रचना पाठक-दर-पाठक करता रहता है।

और इस प्रक्रिया में अधिकांश उनका था जो नौजवान और छात्र थे! सुखद यह भी था कि इस पर चौदह या पंद्रह लघु शोध प्रबंध (एम.फिल.) उन्हीं छात्रों ने लिखे जिन्होंने इसे 'अपने अनुभव' के रूप में ग्रहण किया था।

एक और बात कि इस उपन्यास ने मुझे अलग-अलग जगहों पर गम्भीर समाजशास्त्रियों और इतिहासकारों से मिलवाया। उन्हें इसमें इतिहास और समाजशास्त्र के कुछ वे स्रोत उजागर होते नज़र आए जिनके बारे में मुझे खुद ज़्यादा पता नहीं था, हालांकि कुछ स्रोतों को मैंने खंगाला ज़रूर था और ज़रूरी लायब्रेरियों और ग्रंथों से उनकी पुष्टि की थी।

एक अन्य स्तर पर इस उपन्यास से सोच और विचार की प्रक्रिया भी शुरू हुई। सभ्यता और संस्कृति के इतिहास वाले पक्ष पर पहली नज़र हिन्दी के प्रखर आलोचक डॉ.

पुष्पपाल सिंह ने डाली। उन्होंने विशद रूप से उपन्यास के तमाम प्राण-बिन्दुओं को तलाशा। इसके बाद राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रख्यात इतिहासकार डॉ. देवनारायण आरोपा ने इसे प्राचीन इतिहास और सभ्यताओं के विकासक्रम के फलक पर इसके कथा-वृतांत को फैला कर विवेचित किया और कहा कि ‘यह पुस्तक एक पठनीय सपना भी है और सपना साकार करने की रचना भी।’ इन दोनों जीवन्त बुद्धिजीवियों की राय से मेरा रचना-मन अभी आश्वस्त हुआ ही था कि अमृता प्रीतम जी की प्रतिक्रियाओं की लहर आ गई। अमृता जी ने ‘टाइम्स आफ इंडिया’ में कहा कि सलमान रुश्दी को अगर भारतीय साहित्य जानना है तो वे ‘कितने पाकिस्तान’ पढ़ लें।

ऐसा नहीं है कि इस उपन्यास को लेकर मैं आश्वस्त नहीं था। लिख लेने के बाद और छपने से पहले मैंने अनासक्त भाव से सोचा था पर फिर प्रतिक्रियाओं का जो आप्लावन हुआ उसने मेरे लेखन का दायित्व और उम्र बढ़ा दी। मिली दुआओं के साए तले मैं हाथ जोड़े बैठा हूँ। मैं विनत भाव से माँ की तस्वीर को देखता हूँ। माँ की नज़रें मुझे नहीं, मेरे कलम को देख रही हैं! पिता तो थे नहीं, पहली बार मुझे कलम पकड़ा कर माँ ने ही अक्षर ज्ञान कराया था।

5/116, इरोज गार्डन,
सूरजकुण्ड रोड, नई दिल्ली-110044

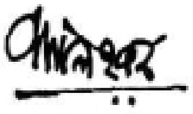

यह आठवाँ संस्करण

चौथे और सातवें संस्करण की भूमिकाएँ नहीं लिखी जा सकीं क्योंकि पुस्तक के इन संस्करणों का तत्काल छपना ज़रूरी था। भूमिकाओं की ज़्यादा ज़रूरत अनुवादक मित्रों और शोध छात्रों को पड़ती है। अभी तक इस उपन्यास का अनुवाद मराठी, उर्दू, उड़िया, गुजराती, पंजाबी और बंगला भाषाओं में हो चुका है।

••

इस आठवें संस्करण की भूमिका स्वरूप मैं सिर्फ़ एक पत्र और मामूली-सी जानकारी देना चाहता हूँ। पहले डॉ. अरुणा उप्रेती का पत्र :

डॉ. अरुणा उप्रेती
पो. बा. नं. 355
काठमाण्डू (नेपाल)

9 फरवरी 2003

प्रिय कमलेश्वर जी,

मैं डॉ. अरुणा उप्रेती नेपाल की रहनेवाली हूं। मैं पेशे से मेडिकल डॉक्टर हूं। मैं हिन्दी पढ़ सकती हूं, बोल सकती हूं पर लिख नहीं सकती, इसलिए यह ख़त अंग्रेज़ी में लिख रही हूं।

यह ख़त मैं आपको अफ़गानिस्तान से लिख रही हूं। एक मित्र से निवेदन किया है कि वह इसे दिल्ली से आपको पोस्ट कर दे। मैं आपकी पुस्तक 'कितने पाकिस्तान' लगभग तीस बार पढ़ चुकी हूं (इसका आशय अलग-अलग अंशों को कई-कई बार पढ़ने से ही होगा–लेखक)। इस पुस्तक को लिखने के लिए मैं आपका आभार व्यक्त करना चाहती हूं, क्योंकि हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तक का लिखा जाना बहुत मुश्किल है। मैं समझती हूं कि आपने बहुत बड़ा काम किया है।

जैसा कि मैंने पहले बताया, मैं पेशे से डॉक्टर हूं और अफ़गानिस्तान के धुर देहात में घायलों और बीमारों की देखभाल के काम में लगी हुई हूँ। यहाँ पूरी नाउम्मीदी (और मौत) के बीच मुझे इस किताब से आशा की किरणें फूटती दिखाई देती हैं और यह संतोष होता है कि मानवीयता अभी ख़त्म नहीं हुई है।

मैं यह भी कहना चाहूंगी कि बिना आपकी अनुमति के आपके विचार और भाषा को मैंने नेपाली में लिखी कविताओं में उतार लिया है। मैंने यह इसलिए भी किया है कि जब कोई लेखक अपनी पुस्तक प्रकाशित करा देता है तो वह सिर्फ़ उसकी सम्पदा नहीं रह जाती, वह आम जन की हो जाती है।

मैं मई महीने में नेपाल वापस पहुँचूंगी, यदि आप आ सकें तो मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। मुझे बहुत खुशी होगी।

आपकी
अरुणा उप्रेती

••

मैंने उत्तर दे दिया था। फिर सितम्बर में मुझे डॉ. अरुणा उप्रेती का पत्र मिला कि वे मेडिकल टीम के साथ अफ़गानिस्तान से इराक चली गई थीं। ज़रूरी चीज़ों की तरह वे इस उपन्यास को भी साथ ले गई थीं। पर इराक में बढ़ते फिदायीन हमलों के कारण उन्हें वापस नेपाल भेज दिया गया है। और वे दिल्ली आकर मुझ से मिलेंगी।

तो इस आठवें संस्करण की भूमिका के लिए फिलहाल इतना ही।

5/116, इरोज गार्डन,
सूरजकुण्ड रोड, नई दिल्ली-110044

कमलेश्वर

और अब नौवाँ संस्करण

मैं अपने पाठकों का बहुत आभारी हूँ। यह नवम संस्करण मैं भारत के उन पाठकों को समर्पित करता हूँ जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है। खासतौर से इसलिए कि अन्य मातृभाषा वाले पाठकों के पत्रों से उनकी यह इच्छा ज़ाहिर हुई कि वे 'कितने पाकिस्तान' पढ़ना चाहते हैं, ज़ाहिर था कि वे हिन्दी में प्रकाशित उपन्यास ही पढ़ना चाहते थे, क्योंकि उन्हें अपनी भाषा में प्रकाशित अनुवाद की जानकारी नहीं थी। वैसे 'कितने पाकिस्तान' का अनुवाद, अब तक उर्दू, मराठी, गुजराती, पंजाबी, ओड़िया और बंगला में हो चुका है और अन्य लगभग सभी भारतीय भाषाओं में हो रहा है। लेखन की सार्थकता और विस्तृत पाठकवर्ग तक इसके पहुँचने का गहरा संतोष मुझे अगला उपन्यास लिखने की प्रेरणा देता है। मैं नये उपन्यास का लेखन शुरू कर चुका हूँ।

'कितने पाकिस्तान' का अंग्रेज़ी अनुवाद जनवरी 2006 में आ गया है और इसे अंतर्राष्ट्रीय पाठकवर्ग के लिए पेंग्विन बुक्स ने प्रकाशित किया है। साथ ही इसका अनुवाद स्पेनिश, फ्रेंच और जर्मन में भी प्रस्तावित है। यह जानकारी मात्र इसलिए कि मैं अपने पाठकों को अपनी इस खुशी और लेखकीय संतोष में शामिल करना चाहता हूँ।

कमलेश्वर

1

एक भूली हुई दास्तान उसे याद आती है।

वह तो एक बंजर जमीन से आया था। खामोश आकर्षणों की दुनिया से, जहाँ कहा कुछ भी नहीं जाता। मन ही मन में कुछ अरमान करवटें लेते हैं। अनबूझी इच्छाएँ आती और चली जाती हैं...और कस्बाई सपने छतों पर फैले कपड़ों की तरह धूप उतरते ही बटोर लिए जाते हैं। कुछ अनकहे धुंधले-से अक्स स्मृतियों में उलझे रह जाते हैं, जो न घटते हैं न बढ़ते हैं। बस, पानी के दाग़ की तरह वजूद के लिबास पर नक्श हो जाते हैं।

उसका पूरा क़स्बा, उसके क़स्बे का अपना मोहल्ला, मोहल्ले की कई खिड़कियाँ भी उसे मौन हसरत से देखती दिखाई दी थीं। कभी-कभी बरसात के दिनों में लौटते हुए पाँवों के निशान दिखाई पड़ जाते थे। ज्यादा बारिश हुई तो निशान पहले तो भरी आँख की तरह डबडबाते थे, फिर देखते-देखते मिट जाते थे। वापस गए पैर फिर नज़र नहीं आते थे। कुछ आँखें थीं, जो कहना तो बहुत कुछ चाहती थीं, पर उन्होंने कभी कुछ कहा नहीं था। कहीं कोई काजल लगी आँख उलझी थी। किसी खिड़की में हल्की-सी कोई परछाईं। किसी में इशारा करती कोई उँगली। कहीं शरमा के लौटते हुए अधूरे अरमान और कहीं किसी मजबूरी की कोई दास्तान...

अजीब दिन थे।

नीम के झरते हुए फूलों के दिन।

कनेर में आती पीली कलियों के दिन।

न बीतनेवाली दोपहरियों के दिन।

और फिर एक के बाद एक, लगातार बीतते हुए दिशाहीन दिन।

उन दिनों भविष्य कहीं था ही नहीं। एक व्यर्थ वर्तमान साथ था जो बस, चलता जाता था। यह आज़ादी से ठीक पहले का दौर था। रेलगाड़ियों में आरक्षण की सुविधा और सिस्टम नहीं था। अब उसे याद नहीं–विद्या शायद साइंस में थी, पर छुट्टियाँ साथ-साथ होती थीं, इसलिए वे इलाहाबाद स्टेशन पर मिल ही जाते थे। विद्या फतेहगढ़ की थी। तीज-त्यौहार और फिर गर्मियों की छुट्टियाँ। अपने-अपने घर जाने के लिए एकाध बार तो उससे ऐसे ही मुलाकात हुई, फिर जब भी कोई छुट्टी आती तो स्टेशन पर एक-दूसरे का इंतज़ार करने लगे। न मालूम यह कैसा लगाव था कि प्लेटफार्म पर, एक तब तक रुका रहता था, जब तक दूसरा आ नहीं जाता था। अनकहे तरीके से यह तय हो गया था कि छुट्टी होने वाले दिन की सुबह, पहली पैसिंजर गाड़ी से ही सफ़र किया जाएगा। उन दिनों भी कुछ तेज़

एक्सप्रेस गाड़ियाँ चलती थीं, पर उन्हें पैसिंजर ही पसंद थी। वह धीरे-धीरे चलती और हर स्टेशन पर रुकती थी।

उन दोनों को साथ-साथ सफ़र करते, छोटे-छोटे स्टेशनों के नाम रट गए थे। अब बमरौली आएगा। अब मनौरी, अब सैयद सरावां और फिर भरवारी और सिराथू । उसके बाद फतेहपुर। और फिर...फिर कानपुर! स्टेशनों के नाम वे साथ-साथ पढ़ते थे और किस स्टेशन पर कितनी जल-क्षमता वाली टंकी विशाल कुकुरमुत्ते की तरह खड़ी है, यह भी उन्हें याद हो गया था। इंजन किस स्टेशन पर पानी लेगा, यह भी उन्हें पता था। कुछ ऐसा भी था जो दोनों को एक साथ व्यापता था। उनके मन की अनकही इच्छाओं के पल एकाएक एक साथ जुड़ जाते थे। अब यही, जैसे भरवारी स्टेशन के समोसे! अभी विद्या कहने को ही होती थी कि वह बोल पड़ता था–खट्टी चटनी...या फिर फतेहपुर की दही की पकौड़ियों पर मीठी चटनी।

कभी-कभी वह भागते पेड़ों में से किसी एक को सहसा एक साथ देखते थे।

फिर कुछ स्टेशनों का साथ और...चाहते तो दोनों नहीं थे, पर कानपुर आ ही जाता था। विद्या वहीं उतर कर फतेहगढ़ वाली गाड़ी बदलती थी। कानपुर से उसे छोटी लाइन पकड़नी होती थी, जिसका प्लेटफार्म आखिरी था। बीच में बड़ी लाइन के कई प्लेटफार्म थे। उन दिनों 'टाटा' और 'बॉय-बॉय' नहीं होता था। फ्लाइंग किस तो था ही नहीं। खामोशी की गहराई ही शायद लगाव का पैमाना था। विद्या चुपचाप उतरती थी। वह उसका झोला या टीन का छोटा बक्सा या किताबों का बस्ता उठाकर थमा देने में मदद कर देता था। उन दिनों लेट होने पर गाड़ियाँ भी एक-दूसरे का इन्तज़ार कर लेती थीं। विद्या 'अच्छा' कहकर पुल पर चढ़कर अपनी गाड़ीवाले प्लेटफार्म पर चली जाती थी। वह उसे छोड़ने या विदा देने नहीं जा पाता था, क्योंकि तब तक उसकी मेन लाइन की गाड़ी छूट सकती थी।

कानपुर से उसका सफ़र शिकोहाबाद जंक्शन तक जारी रहता था, जहाँ से वह ब्रांच लाइन की गाड़ी पकड़कर अपने मैनपुरी पहुँचा करता था। माँ के पास। शिकोहाबाद से मैनपुरी तक के तीन स्टेशनों के नाम तो उसे याद थे, पर कहाँ, किस स्टेशन पर पानी की टंकी थी और छोटे से सफर में कौन से पेड़ साथ दौड़ते थे, वे उसे याद नहीं थे। विद्या भी सफ़र में साथ होती, तो शायद उसे वे पेड़ याद रहते।

□ □

छुट्टियों से लौटने का दिन और इलाहाबाद तक जाने वाली पैसेंजर गाड़ी भी अनकहे तरीके से तय हो गई थी...वह लौटते समय कानपुर तक मेन लाइन की गाड़ी से आता था, लेकिन कानपुर से पैसिंजर ही पकड़ता था। छोटी लाइन से आकर विद्या उसे प्रतीक्षा करती मिलती थी।

मिलना, प्रतीक्षा और साथ-साथ सफ़र करना, यह दो साल चलता रहा। फिर वह वर्ष भी आया। गर्मी की लंबी छुट्टियाँ हुईं। वही इलाहाबाद स्टेशन। वही पैसिंजर गाड़ी। लेकिन इस बार स्टेशनों का नज़ारा कुछ बदला हुआ था। गाड़ी में चढ़ने वाले मुसाफ़िर औसत से ज़्यादा खामोश थे।

सैयद-सराँवा स्टेशन पर सब स्टेशनों से ज़्यादा भीड़ मिली। सफ़र में ज़्यादातर मर्द ही मिलते थे, पर इस बार उनके साथ औरतें और बच्चे भी थे। टीन के बक्सों, बोरों, गठरियों, पोटलियों वाला सामान भी ज़रूरत से ज़्यादा था। गाड़ी छूटी तो प्लेटफार्म पर रुक कर कोई 'खुदा-हाफ़िज़' कहकर बिदा करनेवाला नहीं था।

मुसाफिरों में चलती आपसी बातचीत के दौरान पता चला था कि वे किसान खानदान पहले अलीगढ़ जा रहे थे, वहाँ से पाकिस्तान चले जाएँगे।

आख़िर कानपुर स्टेशन का यार्ड गुज़रने लगा। गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ने लगी। विद्या को तो यहीं उतरना था। प्लेटफार्म आया। विद्या उतरी। हमेशा की तरह उतर कर उसने विद्या को सामान थमाया। तब विद्या ने इतना ही कहा था–

–शायद आगे की पढ़ाई के लिए मैं अगले वर्ष न आ सकूँ।

–क्यों?

–घरवाले यही चाहते हैं।

यह एक सहज सूचना थी, जिससे दोनों ने ही कुछ असहज महसूस किया था। उनके बीच अलिखित और अव्यक्त भावनाओं का रिश्ता तो शायद बहुत गहरा था, परंतु कहीं कुछ ऐसा नहीं था जो उन्हें कोई उत्तर मांगने के लिए विवश करे।

आखिर छोटी लाइन की अपनी गाड़ी पकड़ने के लिए वह पुल पर चढ़ने लगी। विद्या की गाड़ी छूटने का समय हो रहा था और उसकी गाड़ी भी छूटने को थी।

और बस, तब इस दास्तान में इतना ही हुआ था कि पुल पर पहुँच कर, अपने प्लेटफार्म की तरफ़ मुड़ने से पहले विद्या ने अपना रूमाल ऊपर से गिराया था...

उसकी गाड़ी उसी समय आखिरी सीटी देकर खिसकने लगी थी। उसका डिब्बा भी काफी आगे था। उसने रूमाल को गिरते हुए देखा था, उसके लिए वह अटका भी था, पर प्लेटफार्म छोड़ती गाड़ी को वह नहीं छोड़ पाया था। सफ़र तो सफ़र था। और फिर डिब्बे में उसका झोला लावारिस पड़ा था, जिसमें उसकी किताबें, कापियाँ और क़लमें थीं।

विद्या का रूमाल तो वह नहीं उठा पाया, पर अपने सफ़र को भी वह नहीं तोड़ पाया। चलती गाड़ी में वह चढ़ा और अपनी जगह आकर बैठ गया। आगे का सफ़र जारी था। उसका भी और उन मुसाफ़िरों का भी, जो अलीगढ़ होते हुए पाकिस्तान जा रहे थे। विद्या का भी, जो गाड़ी बदल कर फतेहगढ़ की ओर चली जा रही होगी। बैठे-बैठे वह यही सोचता रहा कि अगले साल अब विद्या नहीं आएगी, इसका सीधा मतलब यही है कि उसके

घरवालों ने कहीं उसका रिश्ता तय कर दिया होगा, और इन्हीं गर्मियों में उसकी शादी हो जाएगी...

शिकोहाबाद जंक्शन आया तो वह उतर पड़ा। उसे मैनपुरी वाली गाड़ी पकड़नी थी। पाकिस्तान जाने वाले मुसाफ़िरों का सफ़र अलीगढ़ की तरफ़ जारी था।

उन गर्मियों के बाद फिर विद्या उसे नहीं मिली। पता नहीं वह कहाँ किस सफ़र पर निकल गई।

बस, इतना ज़रूर हुआ कि जिंदगी के इस लंबे सफर में जब भी वह कानपुर स्टेशन से गुज़रा, तो वह रूमाल हमेशा उसे गिरता हुआ दिखाई देता रहा, दिखाई ही नहीं देता रहा...वह रूमाल सचमुच गिरता रहा...वह रूमाल आज भी गिरता है...

फिर कई बरसों के बाद, जब वह कई नौकरियों और कई शहरों को छोड़ता हुआ शहर बंबई में टिक कर काम करने लगा, तो उसे एक अजीब-सा रहस्यभरा ख़त मिला। उसका लिफ़ाफ़ा खुद अपने सफ़र की कहानी बता रहा था। वह उसके पिछले कई पतों से रिडायरेक्ट हो कर उस तक पहुँच ही गया था। उसने कई बार कटे हुए पतों को देखा था। सिर्फ उसका नाम ज्यों का त्यों था।

मेहरबान हाथों ने अलग-अलग लिखावट में उसका नया पता दर्ज किया था। तब उसे लगा था कि ख़त अगर मन से भेजा जाए तो कई जन्मों के बाद भी, पहुँचनेवाले तक पहुँच ही जाता है।

पाँच पतों से लौटे हुए लिफाफे को उसने बहुत एहतियात से खोला था। मज़मून पढ़ा तो रहस्य बहुत गहरा गया था। लिखा था–

अदीबे आलिया!
किसी को देके दिल कोई नवासंजे फ़ुगां क्यों हो
न हो जब दिल ही सीने में, तो फिर मुँह में ज़ुबाँ क्यों हो!

किया ग़मख़्वार ने रुसवा, लगे आग इस मुहब्बत को
न लाए ताब जो ग़म की, वो मेरा राज़दां क्यों हो!

वफ़ा कैसी, कहाँ का इश्क, जब सर फोड़ना ठहरा
तो फिर ऐ संगेदिल! तिरा ही संगे आस्तां क्यों हो!

—ख़ुदा हाफ़िज़...

ख़त में कोई नाम नहीं था। पता भी नहीं था। उसे ख़त के सम्बोधन ने भी चौंकाया था।

एकाएक उसका ध्यान विद्या की ओर गया था। मज़मून में बात की जो अनुगूंज थी...वह उसकी हो सकती थी। और फिर अदीबे आलिया वाला सम्बोधन। शायद वह

उसकी ज़िन्दगी की खोज-ख़बर लेती रही हो। अन्दाज़ से उसने पहला पता लिखा हो...कि शायद ख़त पहुँच जाए...फिर तो पते मेहरबानों ने बदले थे...

लेकिन सबसे ज़्यादा हैरत में डालने वाली बात तो यह थी कि विद्या तो साइंस की विद्यार्थी थी। उसे हिन्दी तो फिर भी आती थी, लेकिन उर्दू का तो एक हर्फ़ भी नहीं आता था। और फिर अन्त में–ख़ुदा हाफ़िज़...

नहीं...नहीं...यह विद्या तो हो ही नहीं सकती थी। यह और कोई भी हो, विद्या नहीं हो सकती।

और तब यह दास्तान और ज़्यादा रहस्यमयी बन गई थी...आश्चर्यजनक और अज़ीबोग़रीब। हुआ यह था कि...

•

2

–हुआ यह था नहीं...सर! पहले यह सुनिए कि हुआ क्या है...

उसने चौंककर आवाज़ की तरफ देखा था। उसका 'एक में तीन'–सहायक, स्टेनो और अर्दली महमूद उसके सामने खड़ा था। उसके हाथ में टेलिप्रिंटर से आई ख़बरों के कुछ खुरदरे काग़ज़ों के टुकड़े थे।

–क्या हुआ है ? उसने पूछा।

महमूद ने ख़बरें उसके सामने रख दीं।

ख़बरों पर नज़र डालते उसने शीशे की दीवार से बाहर देखा। हॉल में लंबे डेस्क के इर्द गिर्द शाम की शिफ्ट के सारे पत्रकार तेज़-तर्रार बातों में उलझे हुए थे। और दोनों समाचार सम्पादक तेज़ी से उसके केबिन की ओर चले आ रहे थे। पहला सिटी एडीशन मशीन पर जानेवाला था। बेसमेंट में मशीनों के चलने की हलकी थरथराहट वह महसूस कर रहा था। तब तक दोनों न्यूज़ एडीटर उसके केबिन में आ गए।

–सर! इस वक़्त तो आपके फ्रंट पेज ऐडीटोरियल की ज़रूरत है...

–अभी आप डिक्टेट कर दें सर तो पहले एडीशन में चला जाएगा! ज़रूरी भी है...

–ठीक है...कम्प्यूटर रूम में बोल दो। तैयार रहें...एक प्याला कॉफी ले आओ। उसने कहा तो महमूद हुक्म बजाने चला गया। उसने बज़र देकर उसे वापस बुलाया।

फिर उसने जल्दी-जल्दी डिस्पैचेज़ पढ़े...वही फिर हुआ था...सन् 1948, 1965 और 1972 की तरह!

कारगिल के इलाके में घुसपैठियों के नाम पर फिर पाकिस्तानी फौजियों ने अघोषित आक्रमण कर दिया है...लद्दाख में कारगिल, बटालिक, द्रास, मश्को, तुर्तक, ज़ोजीला, काकसर, चिल्डियाल, घोघ, होतापाल क्षेत्र की नियंत्रण रेखा को तोड़ कर पाकिस्तानी फ़ौजियों ने कई-कई मील अंदर तक अपने अड्डे और बंकर बना लिए हैं। वैसे पाकिस्तान के फौजी अफसरों का कहना है कि वे घुसपैठिए इस्लामी मुजाहिदीन हैं, लेकिन असलियत यही है कि मुजाहिदीनों के भेष में वे पाकिस्तानी फौजी हैं!

–इतना ही नहीं सर! समाचार सम्पादक ने कहा–पाकिस्तानियों ने सन् 1972 के सन्धिपत्र का उल्लंघन किया है। इसी साल मित्रता, भाइचारे और व्यापार के लिए की गई 'लाहौर घोषणा' की पीठ में छुरा भोंक दिया है। फौजों का मूवमेंट तो प्रधान मन्त्री की लाहौर यात्रा से बहुत पहले शुरू हो चुका है, लेकिन दुश्मन ऊँची पहाड़ियों पर काबिज़ हो चुका है, इसलिए अपनी जान-माल का बहुत नुकसान हुआ है...

–तो नजम सेठी से फोन मिलाओ।

–नजम सेठी?

–हाँ...हाँ...नजम सेठी, एडीटर 'फ़्राइडे टाइम्स', लाहौर पाकिस्तान! मुँह क्या देख रहे हो? क्या तुम्हें इतना भी पता नहीं कि लाहौर पाकिस्तान में है...

–जी, वह तो है, लेकिन...सर...नजम सेठी इसमें क्या करेंगे?

–वो पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ़ से पूछेंगे कि यह क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है?

–सर! पाकिस्तानी प्रधानमंत्री और उनके विदेश मंत्री ने कहा है कि हमारी फ़ौज का घुसपैठियों से कोई लेना-देना नहीं है...यह समस्या भारत की है।

–अगर यह मान भी लिया जाए तो भी वे आए तो पाकिस्तान की धरती से हैं...

–यही तो सर! अगर पाकिस्तान लाहौर घोषणा पत्र में दी गई दोस्ती की शर्त से सहमत है, तब तो उसका फ़र्ज़ बनता है कि वह घुसपैठियों को अपने इलाके में से गुज़र कर भारत की सीमाओं में पहुँचने से रोके!

–सर! अगर यह हमला युद्ध में बदल गया, तब तो बड़ा नुकसान होगा!

–दोनों मुल्कों में नुकसान सिर्फ़ अवाम का होगा...इसीलिए तो मैं फ़ौरन नजम सेठी साहब से बात करना चाहता हूँ...क्योंकि पाकिस्तान में उन जैसे दानिशमंद और अवामपरस्त पत्रकारों की आवाज़ें ही इस खून-ख़राबे को रोकने का माहौल बना सकती है...

तब तक दूसरा न्यूज़ एडीटर कारगिल में मारे गए सैनिकों की लिस्ट ले आया–

–सर! यह है हमारे अब तक के शहीद सिपाहियों और वायु सैनिकों की लिस्ट, जिन्होंने आज की तारीख तक अपनी कुर्बानी दी है...नागालैंड के सिपाही से लेकर कोटा राजस्थान, बिहार, कर्नाटक, कन्याकुमारी, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आंध्र, पंजाब, हरियाणा के जाँबाज़ सैनिकों और हवाबाज़ शहीदों के नाम इसमें दर्ज हैं...

–अर्दली! उसने आवाज़ लगाई।

–यस सर! महमूद ने हाज़िरी दी।

–डिक्टेशन लो...लिखो–

प्रिय प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री जी!

•

3

प्रिय प्रधानमंत्री और रक्षामंत्री जी ! आप दोनों के नाम हम यह खुला ख़त बहुत भारी दिल और अफ़सोस के साथ लिख रहे हैं ! हमने पिछले सप्ताह अपने पाठकों को कारगिल की भयानक युद्ध-स्थिति की वह ख़बरें और जानकारी दी थी, जिससे आप दोनों बेख़बर बने हुए थे।

हमने कहा था कि यह रवैया आत्मघाती है और देश के नागरिकों को सूचना दी थी कि कांग्रेस देशी-विदेशी (सोनिया गांधी को लेकर) के मसले में फँसी हुई है। भाजपा और उसकी मित्र पार्टियाँ अपने निजी कार्यक्रमों में व्यस्त हैं। कामचलाऊ प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जगजीत-गुलज़ार के कैसेट 'मरासिम' का लोकार्पण कर रहे हैं। अख़बार वर्ल्ड-कप की खबरों से भरे हैं...जो सूचनाएँ देश को तत्काल मिलनी चाहिए, उसके सूत्रों को संभालने वाले सूचना-प्रसारण मंत्री प्रमोद महाजन प्रसार भारती को समाप्त करने की मुहिम में मशगूल हैं। विदेश मंत्री जसवन्त सिंह कारगिल सीमा पर चल रही विदेशी गोलाबारी से बेखबर, मध्य एशिया के देशों से मैत्री सम्बन्ध बनाने में व्यस्त हैं। और हमारे रक्षामंत्री, जार्ज फर्नांडिस योगोस्लाविया पर हो रहे नैटो-अमरीकी हमलों पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन कर रहे हैं...कोई भी पार्टी, नेता या राजनेता देश की उत्तरी सीमा पर चल रहे इस विस्फोटक युद्ध पर न तो चिंता व्यक्त कर रहा है, न कोई बयान दे रहा है, जबकि उत्तरी सीमान्त पर कारगिल-द्रास के इलाके में पाकिस्तानी तोपें पिछले पखवाड़े से अपने बारूदी बयान लगातार दर्ज कर रही हैं !...घुसपैठियों को नियंत्रण रेखा के उस पार खदेड़ने का काम तब ही किया जा सकता है, जब देश की सत्ता-सरकार अपना राजनीतिक फ़ैसला घोषित करे...यह लापरवाही हमें भारी पड़ सकती है !

तो प्रधानमंत्री जी, यह चेतावनी छपने के बाद आपके सलाहकार श्री ब्रजेश मिश्र जी का चेहरा स्टार-न्यूज़ में पहली बार दिखाई दिया। और बातों के अलावा उनके बयान में यह भी निहित था कि कारगिल-द्रास-बटालिक क्षेत्र में आतंकी घुसपैठियों की मौजूदगी को लेकर सरकार का खुफ़िया सूचना तंत्र निष्क्रिय था। इतना ही नहीं, मिश्र जी ने सेना के सूचना तंत्र को भी इशारतन दोषी ठहरा दिया।

और उसके बाद फिर देश को विश्वास में लेने के लिए 'ऑफेंसिव आपरेशन्स' के निदेशक एयर कमोडोर सुभाष भोजवानी और 'आर्मी आपरेशन्स' के उपमहानिदेशक ब्रिगेडियर मोहन भंडारी को दिल्ली में आयोजित संवाददाता सम्मेलन में सामने लाया गया और उनसे यह ख़बर दिलवाई गई कि आज सुबह पाकिस्तान समर्थित घुसपैठियों को

भारतीय इलाकों से खदेड़ने के लिए कारगिल क्षेत्र में हवाई हमला किया गया। साथ ही भारत ने चेतावनी दी कि इस कार्रवाई में यदि पाकिस्तान ने हस्तक्षेप किया तो भारतीय सेना 'उचित उत्तर' देगी!

दोनों सैनिक अधिकारियों ने यह भी बताया कि हवाई अभियान के परिणाम स्वरूप घुसपैठियों को चारों तरफ से घेर लिया गया है। उन्हें हासिल होनेवाली (पाकिस्तान से) किसी भी तरह की (यानी राशन, गोला, बारूद, घायलों के लिए दवाओं आदि) आपूर्ति रोक दी गई है। भागने के उनके रास्ते भी बन्द कर दिए गए हैं। यह सब जानकारी सेना के गुप्तचर सूत्रों के हवाले से दी गई। यह भी बताया गया कि 160 पाकिस्तानी घुसपैठिए मार गिराए गए हैं।

तो, प्रधानमंत्री जी, यह तो आपके नैतिक पतन की पराकाष्ठा है कि जब आपकी सरकार गिराई गई थी, तो दूसरे ही दिन आप देश की जनता को सन्देश देने के लिए दूरदर्शन पर मौजूद थे, लेकिन जब उत्तरी सीमान्त पर स्क्वाड्रन लीडर अजय कुमार आहूजा मारा गया, फ़्लाइट लेफ्टिनेंट नचिकेता अपनी जान को खतरे में डालकर क्षतिग्रस्त जहाज से कूदा, जब कारगिल क्षेत्र में ही वायुसेना का हेलिकॉप्टर क्षति-ग्रस्त हुआ और चालक दल के चार सदस्य मारे गए, साथ ही सरकारी आंकड़ों की विश्वसनीयता संदिग्ध होने के बावजूद, यह बताया गया है कि हमारी सेना के 29 जवान मारे गए हैं, 128 घायल हैं तथा 12 लापता हैं, तब इस देश को विश्वास में लेने के लिए और उसके संकट और दु:ख में शामिल होने के लिए आपको दूरदर्शन पर आने की जरूरत महसूस नहीं हुई! यह संवेदनहीनता की इन्तिहा है!

और–आपके यह रक्षामंत्री जार्ज फर्नांडिस तो ऊल-जलूल बयान देने के विशेषज्ञ बन चुके हैं! पोखरन परमाणु विस्फोटों को उचित ठहराते हुए उन्होंने चीन को दुश्मन नम्बर एक घोषित करने में देरी नहीं की थी और अपनी गुप्तचर सूचनाओं का हवाला देते हुए उन्होंने यहाँ तक कह डाला था कि चीन ने भारत के विरुद्ध तिब्बत में परमाणु मिसाइलें तैनात कर रखी हैं। लेकिन इस बार उनकी गुप्तचर एजेंसी उन्हें कारगिल क्षेत्र में घुसकर जम जाने वाले पाकिस्तान समर्थित घुसपैठियों की जानकारी नहीं दे सकी, जो तब से वहाँ पहुँच चुके थे, जब से उत्तरी सीमान्त के पहाड़ों की बर्फ़ पिघली है...

और ऊपर से तुर्रा यह कि रक्षामंत्री ने अपने बेहूदे और दायित्वहीन बयान में यहाँ तक कह डाला कि इस घुसपैठ में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान सेना के गुप्तचर संगठन आईएसआई का हाथ नहीं है। यह घुसपैठ पाकिस्तानी सेना की करतूत है। भारत के रक्षामंत्री को मालूम होना चाहिए कि यह एक हास्यास्पद बयान है, बल्कि लगता तो यह है कि माननीय रक्षामंत्री की औसत चेतना और समझ कुन्द हो चुकी है।

अगर सचमुच ऐसा है कि पाकिस्तान में कार्यपालिका, उसकी अन्य एजेंसियों और सेना के बीच आपसी तालमेल नहीं है, यदि वे अपने फैसले लेने के लिए एक दूसरे से स्वतंत्र

हैं, तब तो यह और भी ख़तरनाक स्थिति है!

आज जबकि दोनों देश परमाणु शक्ति से संपन्न हैं तो क्या हमारे बीमार-दिमाग़ रक्षामंत्री हमें यह संकेत दे रहे हैं कि आज यदि भारत पाक युद्ध हो जाता है (जिसके खिलाफ दोनों देशों की जनता है!) तो उसका फैसला पाकिस्तान की सरकार के हाथों में नहीं, बल्कि पाकिस्तानी फौज के हाथों में होगा! इसी तर्क से यह संकेत भी मिलता है कि परमाणु विकल्प के मामले में भी फैसला पाकिस्तानी फौज के तानाशाहों के हाथों में होगा, जनता द्वारा दो तिहाई जनमत से चुनी गई नवाज़ शरीफ़ की पाकिस्तानी सरकार के हाथों में नहीं!

इतने ऊल-जलूस, तर्करहित, दायित्वहीन बयान और विश्लेषण यदि देश का रक्षामंत्री दे सकता है तो दोनों देशों की अमन पसन्द जनता को उसका भगवान या अल्लाह ही बचा सकता है। रक्षामंत्री के इस बयान से पाकिस्तान के अमन पसन्द लोकतंत्रवादी तत्वों की बेचारगी उद्घाटित होती है और भारत के लोकतंत्रवादी तत्वों को यह बयान दिग्भ्रमित करता है। दोनों तरह से, दोनों देशों के लोकतंत्रवादियों का अहित करता है। शैतानी चतुराई से भरा यह बयान, सम्भव सत्याभास पैदा करके पाकिस्तानी सेना को नक्कू बनाता है और बिना कहे यह कहता है कि इसका सामना और मुकाबला सैन्य शक्ति द्वारा ही किया जा सकता है! क्योंकि पाकिस्तान की मौजूदा सरकार का कोई अंकुश अपनी सेना पर नहीं है। सत्य का आभास देते ऐसे 'मासूम' बयान बातचीत के रास्तों को अघोषित तरीके से व्यर्थ घोषित करते हुए कट्टरपंथी मुठभेड़वादियों के हाथ का हथियार बन जाते हैं! ज़ाहिर है कि ऐसा बयान कोई पागल रक्षामंत्री ही दे सकता है; और यदि वह पागल नहीं है तो निश्चय ही महाधूर्त है!

अब आप इतना तो कीजिए कि सेना का साथ दीजिए और सेना के जो पराक्रमी जवान और वायुसेना के जांबाज़ पायलट अपनी जान दाँव पर लगाकर देश की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं, उन्हें आपकी लापरवाही की कीमत अपनी कुर्बानियों से न चुकानी पड़े।

आप लोगों के पैर में आई मोच तक का इलाज देश के खर्चे पर विदेशों में होता है। जो 128 सैनिक घायल हुए हैं, उन्हें विदेश भेजना तो सम्भव नहीं होगा, पर देश में ही अच्छे से अच्छे अस्पतालों में उनके उपचार की व्यवस्था कीजिए।

भटिंडा में शहीद स्क्वाड्रन लीडर अजय आहूजा की अन्त्येष्टि हो गई। वहाँ तो आप और आपके रक्षामंत्री संवेदना प्रकट करने पहुँच नहीं पाए, क्योंकि आप दोनों ही बहुत व्यस्त हैं और फिर रक्षामंत्री तो इस अंदाज़ में कारगिल का दौरा करने चले गए जैसे कि वे सैन्य-संचालन के विशेषज्ञ हैं! उन्हें वापस बुलाइए और आप दोनों कोटा (राजस्थान) जाकर शहीद अजय आहूजा के शोक सन्तप्त परिवार को सान्त्वना दीजिए। वैसे किसी सन्दिग्ध या अपराधी चरित्र के नेता-राजनेता के यहाँ कोई मौत हो जाती है, तो वहाँ संवेदना

प्रकट करने के लिए आपकी बिरादरी के लोग पहुँच ही जाते हैं। यहाँ तो एक जाँबाज़ सिपाही देश के लिए शहीद हुआ है!

फ्लाइट लेफ्टिनेंट नचिकेता की बहनें, माता-पिता और घरवाले पिछली तमाम रातों से सो नहीं पाए हैं...नचिकेता को पाकिस्तान से वापस लाकर उसे उसके घरवालों के हवाले कीजिए और अपनी राजनीतिक लापरवाही की इस बड़ी गलती के लिए उसके परिवार से माफ़ी मांगिए!

12 लापता जवानों का पता लगाइए और आज सुबह तक जो 29 जवान शहीद हुए हैं, उनके लिए इस देश से क्षमा-याचना कीजिए!

उम्मीद है कि आप अभी पूरी तरह संवेदना शून्य नहीं हुए हैं। सत्ता प्रेम के चलते लापरवाही बरतने का जो जघन्य अपराध आपसे हुआ है, उसके लिए आप इतना तो कर ही सकते हैं!

–देश के शोकग्रस्त समय में शामिल एक अदीब और पत्रकार!

•

4

ख़त भेजने के बाद अदीब बहुत परेशान था।

वह सोच रहा था कि उसके उद्गार और विचार कहीं देश की रक्षा-सुरक्षा के नाम पर दूसरों के लिए मौत तो पैदा नहीं करते ! क्या एक के जीवित रहने के लिए दूसरे की मौत ज़रूरी है ?

मौत !

सारे युद्ध-महायुद्ध यही तो बताते हैं कि मौत के योगफल के आधार पर ही हार जीत तय हो सकती है।

तुम कितनी मौत दे सकते हो ! वह कितनी मौत उठा सकता है ! जब तक दूसरा जीवित रहता है, पहला नहीं जीतता। मौत ही जय-पराजय को तय करती है। सभी युद्धों-महायुद्धों की यही तो हार जीत है...फिर चाहे वह कुरुक्षेत्र में आर्यों का महाभारत संग्राम रहा हो या आर्याना के डेरियस और यूनानी मिल्डियाडिस का मेराथन के मैदान में हुआ युद्ध !

अभी अदीब यह सब सोच ही रहा था कि धरती से प्रलयंकारी झंझावात उठने लगे। काली आँधियाँ चलने लगीं और सारा आकाश अंधेरे में डूबने लगा। न मालूम ऐसे में सूर्य जैसा शाश्वत प्रकाश भी क्यों मलिन पड़ जाता है।

झंझावात। काली आंधियाँ। वन-प्रान्तरों में मचता कोहराम। इधर उधर विक्षिप्त से भागते वन्य जीव। इतना अधिक क्रन्दन और चीख़-पुकार। अदीब ने दोनों कानों पर हथेलियाँ रख के अपने श्रवण स्रोत बन्द कर लिए और चीख़ा–महमूद !

कोई उत्तर नहीं आया। वह फिर चीख़ा, फिर भी उसे कोई जवाब तो नहीं मिला, पर देखा, सामने से गिरता-पड़ता-हाँफता महमूद चला आ रहा है।

–कहाँ थे तुम ?

–हुजूर...मैं पिछली सदियों में चला गया था।

–पिछली सदियों में...क्यों ?

–मैं अपने पूर्वजों से मिलने गया था !

–पूर्वजों से ! अदीब ने आश्चर्य से पूछा।

–हुजूरे आलिया ! आपको इतना ताज्जुब क्यों हो रहा है...हमारा मज़हब सबसे नया है, हमने इसे सबसे बेहतर पाया, तभी तो हम पुराने धर्मों को छोड़कर इस्लाम में आए

हैं...इसका यह मतलब तो नहीं कि हमारे कोई पूर्वज नहीं हैं। वे चाहे जैसे भी रहे हों...पतित या पवित्र, पर हैं तो हमारे पूर्वज ही!

–यह बहस इस समय छोड़ो...सबसे पहले यह मालूम करो कि काली आँधियाँ क्यों चल रही हैं...यह वन्य पशु व्याकुल होकर क्यों भाग रहे हैं? यह हाहाकार क्यों हो रहा है?

–शायद इसकी वजह शंबूक की हत्या होगी!

–शंबूक?

–हाँ हुजूर! मैं ख़ुद अपने पूर्वज राजा रामचंद्र को देखकर आया हूँ...जब-जब इस धरती पर धर्म की हानि होती है, तब-तब यह काली आँधियाँ चलती हैं...मैंने अपनी आँखों से देखा है...सुबह का समय था हुजूर...अयोध्या का राजप्रसाद वेद मंत्रों की पवित्र ध्वनि से गूँज रहा था। अयोध्या के राजा रामचंद्र अश्वमेध यज्ञ की घोषणा करने राजप्रसाद से अभी बाहर आए ही थे कि यज्ञ की घोषणा से पहले उन्होंने एक ब्राह्मण का करुण रोदन-क्रंदन सुना...वे हतप्रभ रह गए। हमारे रामराज्य में यह करुण विलाप कैसा और क्यों?

एक अमात्य ने आगे बढ़कर क्रन्दन करते ब्राह्मण को उनके सामने कर दिया–महाराजाधिराज! यह ब्राह्मण ही विलाप का कारण बता सकता है...

वह ब्राह्मण अपने पुत्र के मृत शरीर को छाती से लगाए राजा रामचंद्र को धिक्कारने लगा–अयोध्यापति राम! पिता के सामने पुत्र की मृत्यु! यह कैसा रामराज्य है तुम्हारा? तुम हत्यारे हो मेरे पुत्र के! तुम!

–तभी हुजूरे आलिया! लोगों में कानाफूसी होने लगी...यह तो घोर पाप है...ब्राह्मण का बेटा मर जाए और क्षत्रिय राजा कुछ न कर सके, यह तो अनिष्ट का लक्षण है!

–सतयुग में ऐसा नहीं हो सकता! इसका कोई कारण होना चाहिए...

–कारण मैं बताता हूँ! तभी नारदजी ने हमेशा की तरह हाज़िर होकर राजा रामचंद्र को बताया–महाराजाधिराज राम! धर्मशास्त्रों के अध्ययन, तप और साधना से मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकार केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों को है, लेकिन भगवन्! आपके रामराज्य में एक महापातकी घटना घटी! उसका कारण है शूद्रवंशी शंबूक! जो अपने दास धर्म को त्याग कर मोक्ष के लिए साधना कर रहा है...इस महापाप के कारण ही ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु हुई है महाराज! नारदजी ने सूचना दी। बस फिर क्या था अदीबे आलिया! राजा रामचंद्र जी ने क्षत्रिय धर्म का पालन किया और ब्राह्मण धर्म की रक्षा के लिए शूद्र शंबूक जैसे ऋषि और तपस्वी की गर्दन काट कर धड़ से अलग कर दी...यह झंझावात और काली आँधियाँ रामराज्य के इसी जघन्य अपराध और पाप के कारण चल रही हैं!

–तुम किस दौर की बात कर रहे हो महमूद?

–हुज़ूर ! यह सतयुग की बात है...मैं उसी दौर के बीच से अभी लौटा हूँ। लौटते वक्त वैदिक युग भी रास्ते में मिल गया...वह अपना माथा पीट रहा था।

–क्यों, ऐसी क्या बात थी ?

–हुज़ूर ! हर दौर अपने कुकर्मों पर पछताता है यही कुछ वहाँ हो रहा था ताकि अगली सदियाँ खुद को पाप से बचा सकें...

–हाँ महमूद...शायद पछताने की ताकत रखनेवाली संस्कृतियाँ ही जीवित रहती हैं...और वे जीवित संस्कृतियाँ ही सभ्यताओं के रूप में स्थापित हो पाती हैं। कर्म और कुकर्म के मानदंड स्थापित कर लेना मामूली बात नहीं है...अदीब ने दार्शनिक अंदाज़ में कहा। फिर पूछा–तो तुम जब लौट रहे थे तब वैदिक युग अपना माथा क्यों पीट रहा था ?

–हुज़ूर ! वह आसक्ति और व्यभिचार-बलात्कार की दास्तान है...ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्या अपूर्व सुन्दरी है। अप्सराएँ भी उसके सामने कुछ नहीं है। वैदिक देवता इंद्र उस पर आसक्त हो गया। उसने ऋषि गौतम का भेष धारण किया, चौकसी के लिए उसने चंद्रमा को साथ लिया। उसे आश्रम के द्वार पर नियुक्त किया और...और ऋषि पत्नी अहिल्या के साथ तब इन्द्र ने संभोग किया...

अदीब ने कुछ पल कुछ सोचा...फिर वह आक्रोश से भर गया।

–कहाँ है वह बलात्कारी इंद्र ! उसे मेरे सामने हाज़िर करो ! अदीब चीखा।

–हुज़ूर ! आप कोई अदालत तो नहीं कि आप इंद्र पर बलात्कार का मुकद्दमा चला सकें !

–मत भूलो महमूद ! किसी भी दौर के अत्याचारों अनाचारों के खिलाफ खड़ा होने वाला कोई-न-कोई अदीब हमेशा एक नैतिक अदालत बन कर मौजूद रहता है !

–लेकिन हुज़ूर...ऋषि गौतम तीनों को सज़ाएँ सुना चुके हैं...इंद्र को उन्होंने शाप दिया है–ओ दुराचारी इंद्र...तेरा पराभव होगा ! जिस आसक्ति के कारण तूने मेरी पत्नी अहिल्या के साथ दुराचार किया है, ऐसे सहस्रों पाप तेरे शरीर में प्रगट होकर तुझे जीवन भर लज्जित करते रहेंगे...

–और चंद्रमा को क्या सज़ा मिली ?

–ऋषि गौतम ने उसे शाप दिया है कि तेरे शरीर पर मृगचर्म के दाग़ हमेशा बने रहेंगे...तुझे क्षय रोग लगेगा। महीने में केवल एक दिन तुझे पूर्णता मिलेगी, बाकी दिनों में तू रुग्ण रूप में घटता-बढ़ता म्लान बना रहेगा ! फिर ऋषि गौतम ने अपनी पत्नी अहिल्या को देखा और शाप दिया...

–लेकिन अहिल्या को क्यों ? अदीब ने टोका

–वह इसलिए हुज़ूर कि विलासी आर्यों ने औरत को हमेशा पुरुष की सम्पत्ति माना है...अपनी पत्नी अहिल्या को देखते ही वे भड़क उठे–तू कैसी पतिव्रता पत्नी है...तुझे किसी के कपट का पता नहीं चला...तू पर-पुरुष और अपने पति का भेद......नहीं जान पाई !

रूपगर्विता हृदयहीना ! जा...पत्थर की शिला बन जा ! अहिल्या ने निर्दोष होने की बात कह कर कई बार क्षमा माँगी, तब ऋषि गौतम ने कृपा कर इतना ही कहा कि ठीक है...एक कल्प के बाद त्रेता युग में जब विष्णुरूपी राम का अवतार होगा और उनके चरण तेरी शिला-शरीर पर पड़ेंगे, तभी तेरा उद्धार होगा !

–यह तो न्याय नहीं है...इन ब्राह्मणों ने अपने श्रमजीवियों को शूद्र तो बनाया ही, इन्होंने स्त्री को भी दंड देकर शूद्रा की श्रेणी में डाल दिया !

–इसीलिए तो मैं कहता हूँ हुजूर कि जब-जब अन्याय, अत्याचार और अनाचार होता है, तब-तब मनुष्य की चेतना और आत्मा को यह प्रलयंकारी झंझावात झकझोरते हैं और काली आंधियाँ चलती हैं...

–लेकिन आज तो वह दौर नहीं है...फिर भी यह प्रलयंकारी झंझावात ! यह काली आंधियाँ...अरण्यों में विक्षिप्त-से भागते वन्य जीव...यह कोहराम...शोर...

–हुजूर ! यह महाविनाशी महाभारत के संग्राम का शोर है। हस्तिनापुर से कौरव सैनाएँ कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि के लिए प्रस्थान कर चुकी हैं। यमुना को पार करके उत्तर पश्चिम में कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ अपनी व्यूह रचना कर रही हैं...और उधर–दक्षिण पूर्व से मत्स्य प्रदेश, अलवर, विराट और जींद के क्षेत्रों से आगे बढ़कर पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना शिविरबद्ध हो चुकी है...

–महमूद ! मुझे इस विनाशकारी महासंग्राम का पूरा विवरण चाहिए !

ठीक अट्ठारह दिन बाद महमूद लौटा। उसने रपट पेश की–हुजूर ! कौरव हार गए हैं...उनमें से कोई जीवित नहीं बचा है...कौरवों के प्रथम सेनापति भीष्म पितामह थे। पहले दिन कौरवों की विजय हुई। पांडवों का शक्तिशाली योद्धा विराट पुत्र उत्तमकुमार मारा गया। तीसरे दिन अर्जुन ने कौरवों के महारथियों–भीष्म, द्रोण, अम्बष्ठपति, चित्रसेन, श्रुतायु, जयद्रथ, कृप, भूरिश्रवा, शल और शल्य पर सफलता प्राप्त की...कौरव हताश हो गए। तीसरे दिन...

अदीब ने टोका–मुझे हर दिन की तफसील नहीं चाहिए...सिर्फ यह बताओ कि कुल कितने योद्धा और सैनिक मारे गए हैं !

–इसका हिसाब तो मैंने नहीं रखा हुजूर...लेकिन शायद यमराज बता सकें या महाराज चित्रगुप्त जो हर पल मरने वालों का हिसाब रखते हैं !

–यमराज से तो मैं नहीं मिलना चाहूँगा...पर महाराज चित्रगुप्त से कहो...वे अपना रजिस्टर लेकर फौरन हाज़िर हों !

चित्रगुप्त जी को आने में देर नहीं लगी। बेहद वजनी होने के कारण वे रजिस्टर और फाइलें तो नहीं ला सके थे, पर उनके पास एक विलक्षण लघु यंत्र था...उसमें सब कुछ

दर्ज था और वे पलक झपकते ही बड़ी से बड़ी संख्या का योग या गुणन योग बता सकते थे।

–महाभारत युद्ध में मरनेवालों की संख्या कितनी थी? अदीब ने पूछा।

–असंख्य और उनमें से पाँच पाण्डवों और श्रीकृष्ण के अलावा कोई जीवित नहीं बचा है। चित्रगुप्त बोले–उन मृतकों की संख्या इतनी अधिक है कि उसे उच्चरित करने में बहुत समय नष्ट होगा...बस इतना जान लीजिए कि दोनों ओर से कुल अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाएँ युद्ध में उतरी थीं और एक अक्षौहिणी सेना में एक लाख नौ हजार पचास पैदल सैनिक, इकत्तीस हज़ार हाथी और पैंसठ हज़ार छह सौ दस घोड़े होते हैं...यानी इतने ही योद्धा और! इनका गुणा अट्ठारह से कर दीजिए तो...चित्रगुप्त ने अपने यंत्र की ओर देखा।

–रहने दीजिए...रहने दीजिए! अदीब बोला–इतने अधिक मृतकों की संख्या की बात सोच कर ही मेरे होश उड़े जा रहे हैं...मुझे चक्कर आ रहे हैं...कहते हुए अदीब माथा पकड़ कर बैठ गया। आँखें हथेलियों से ढक लीं। दोनों हथेलियाँ गीली हो गईं महाराज चित्रगुप्त के पास समय नहीं था। वे अंतर्ध्यान हो गए...

झंझावात, काली आंधियाँ फिर चलने लगीं। वन-प्रान्तरों में कोहराम मचने लगा। तभी एक कृशकाय वृद्ध अदीब के सामने आकर खड़ा हो गया। अदीब ने आँसू भरी आँखें उठाकर उसे देखा। प्राणरहित कृशकाय वृद्ध ने उसे देखा।

–आप! आप कौन हैं? अदीब ने पूछा।

–मैं तुम्हारी ही तरह एक आम आदमी हूँ...तुम लिखते हो, मैं लिखता नहीं पर मैं भी उसी तरह का काम करता हूँ...उस वृद्ध ने शांत स्वर में कहा।

–कैसा काम...?

–मेरी एक प्रयोगशाला है। मैं हर अभावग्रस्त, शोषणग्रस्त, यातनाग्रस्त और मृत्युग्रस्त मनुष्य के आँसू एकत्रित करता हूँ...

–तो आप मुझसे क्या चाहते हैं?

–तुम्हारे आँसू! वृद्ध बोला।

–मेरे आँसू!

–हाँ...मनुष्य के आँसुओं से पवित्र कुछ भी इस दुनिया में नहीं है अदीब! मैं उन्हीं पवित्र आँसुओं को अपनी अँजुरी में भरकर ले जाता हूँ...मैं उन आँसुओं का अध्ययन करता हूँ...उनके संताप, दुख, यातना और पीड़ा के ताप की पहचान करता हूँ...

–आप तो बड़ा आश्चर्यजनक प्रयोग कर रहे हैं बाबा...इनसे कोई निष्कर्ष भी निकाले हैं आपने?

–हाँ...लेकिन मेरे निष्कर्षों पर कोई ध्यान नहीं देता...न दुख समाप्त होता है, न दुखों और विषमता के कारण...मेरी बात कोई सुनता ही नहीं...बस...मैं आँसुओं को जमा करता जाता हूँ...

–कहाँ ?

–अश्रु सागर में...

अदीब कुछ चौंका।

–सदियों से मैं यही कर रहा हूँ और देख रहा हूँ...सदियों मनुष्य प्रकृति का शोषण करता रहा। प्रकृति बाँझ हो गई तो मनुष्य ही मनुष्य का शोषण करने लगा...इसलिए अब आँसुओं की बाढ़ आ गई है...क्योंकि मनुष्य ने मनुष्य के खिलाफ अब यन्त्र का आविष्कार कर लिया है...

अदीब ने उसे आश्चर्य से देखा।

–देखो अदीब ! ब्रह्मांड की अमूर्त पराशक्ति ने अशक्त हो गए शरीर से आत्मा की स्वाभाविक मुक्ति के लिए मृत्यु का एक सामान्य विधान बनाया था, लेकिन जब से मनुष्य ने मृत्यु का आविष्कार किया है, तबसे युद्धों में अप्राकृतिक मृत्युएँ होने लगी हैं...नर संहार होने लगे हैं...मैं कुछ नहीं कर पाता...बेबस हूँ...इसलिए अदीब ! हर अप्राकृतिक मृत्यु के साथ मैं मरता हूँ...मैं एक ही समय में सहस्रों मृत्युएँ स्वीकार करता हूँ...मैं कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में लाखों-करोड़ों बार मरा हूँ...मैं मेराथन के संग्राम में भी बार-बार मरा हूँ...और आबेला के युद्ध में भी...उसके बाद झेलम, कैने, सोमनाथ, तराइन, क्रेसी, पानीपत जैसे सैकड़ों संग्रामों में मैं ही मरता रहा हूँ मैं करोड़ों, पद्म और नील की संख्याओं में बार-बार और हर बार मरता रहा हूँ...क्योंकि मनुष्यहंता मनुष्य ने एक अप्राकृतिक मौत का अन्वेषण कर लिया है...

–तो इस गैरज़रूरी मौत का प्रतिकार कैसे होगा बाबा ?

–हमें मृत्यु के बदले जीवन को तलाशना होगा अदीब ! और इसी तलाश के लिए मुझे तुम्हारे आँसुओं की ज़रूरत है। आँसू ही जीवन को जीवित रख सकते हैं... कहते हुए उस कृशकाय वृद्ध ने अदीब की आँखों के आँसू निचोड़ लिए और बोला–इन आँसुओं का मैं अध्ययन करूँगा...निष्कर्ष निकालूँगा और उन्हें अपने पास रख लूँगा...जानता हूँ मेरी बात कोई सुनेगा नहीं बस, कोई रोएगा तो उसके आँसू लेने चला जाऊँगा, नहीं तो मैं आँसुओं के उसी समुद्र के किनारे बैठा रहूँगा और सुनता रहूँग कि कौन रोया है...उसी से मुझे पता चलता रहेगा कि कौन अप्राकृतिक मौत से मारा गया है...

...तब तो इस बेसूद और ग़ैरज़रूरी मौत से निजात पाने के लिए जिन्दगी की सार्थक तलाश में किसी को निकलना ही पड़ेगा !

–उस तलाश के लिए हित्ती सभ्यता का गिलगमेश निकल चुका है...उसने घोषणा की है–मैं पीड़ा से लड़ूँगा, यातना सहूँगा कुछ भी हो मैं मृत्यु को पराजित करूँगा !

•

5

और तभी युरुक के सम्राट गिलगमेश की गूँजती आवाज़ आयी–

–मैं पीड़ा से लड़ूँगा...यातना सहूँगा...कुछ भी हो मैं मृत्यु को पराजित करूँगा...मैं मृत्यु से मुक्ति की औषधि खोज कर लाऊँगा!

सम्राट गिलगमेशा की यह धीर-गंभीर आवाज़ ब्रह्मांड में गूँजने लगी। बेबेलोनियाँ, मेसोपोटामिया, सुमेरी-अक्कादी और सिंधु घाटी सभ्यता के देवता काँपने लगे। युरुक की वह विशाल दीवार थरथराने लगी, जिसे ख़ुद पृथ्वी-सम्राट गिलगमेश ने देवताओं के लिए बनवाया था। वे मंदिर भी काँपने लगे, जिनमें उसने देवी ईना के साथ-साथ सर्वोच्च ईश्वर अनु और सर्वोच्च देवी ईश्तर की प्रतिमाएँ स्थापित की थीं।

सम्राट गिलगमेश ने दुबारा घोषित किया–

–मैं पीड़ा से लड़ूँगा...यातना सहूँगा...कुछ भी हो मैं मृत्यु को पराजित करूँगा...मैं मृत्यु से मुक्ति की औषधि खोज कर लाऊँगा।

सम्राट गिलगमेश की घोषणा सुन कर प्रत्येक सभ्यता के देवताओं की दुनिया में कोलाहल मच गया। सुमेरी सभ्यता का परम विलासी देवता यवनिक चीख़ने लगा–

–सुनी आप सबने सम्राट गिलगमेश की घोषणा! वह मृत्यु से मुक्ति की औषधि खोजना चाहता है!

–ग़लती हमारी है! सुमेरी सभ्यता के दूसरे देवता वपुन ने ऊँची आवाज़ में कहा–जब पराशक्ति ने जीव को जन्म देकर जीवन की लालसा, सुख का अबाध अधिकार और विवेक की शक्ति दी थी, तब हमने इसका विरोध नहीं किया था! यही मौलिक ग़लती हमने की थी!

–तो पराशक्ति से हमें पूछना चाहिए कि मनुष्य यदि हम देवताओं की तरह अमरत्व प्राप्त कर लेगा तो सृष्टि का क्या होगा? तब तो यह नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी। मनुष्य पाप और सुख-विलास की वासना में लिप्त होकर निरंकुश हो चुका है। मनुष्य की सृष्टि में सब कुछ अवैध है...यदि वह मृत्यु को जीत कर हमारी सृष्टि में आ बसा तो हमारा यह स्वर्गिक-संसार प्रदूषित हो जाएगा...बेबेलोनिया का डरा हुआ देवता बेबोलोनिस अन्य सभ्यताओं के देवताओं को आगाह करने लगा और कहने लगा–

–पराशक्ति से हम देवताओं को इसका उत्तर माँगना चाहिए! और सुनो–सिन्धु सभ्यता के सर्वशक्तिमान आर्य देवता इंद्र का तत्काल पता करो और उनसे कहो कि वह पराशक्ति से उत्तर लेकर आएँ!

तभी देवताओं की इस संगत में तीन संदेशी आकर उपस्थित हुए। एक संदेशी ने अपनी रपट और खुफ़िया जानकारियाँ पेश कीं–

–श्रीमन ! युरुक का सम्राट गिलगमेश नितान्त चरित्रभ्रष्ट मनुष्य है...वह महाविलासी है। वह विश्व-विजय के लिए निकला तो कोई शक्तिवान उससे लोहा नहीं ले पाया। अपनी विजय यात्रा में उसने सहस्रों कुँआरी कन्याओं का शील भंग किया। पराजित योद्धाओं की पत्नियों और स्त्रियों को उसने अंकशायिनी बनाया...वह उद्दाम वासना से ग्रस्त परमविलासी सम्राट है, जो अब एकाएक पुण्यात्मा बन कर मृत्यु से मुक्ति की औषधि प्राप्त करने का नाटक कर रहा है...

तीनों सभ्यताओं के देवताओं ने यह बयान सुनकर दूसरे संदेशी की ओर देखा।

तो बेबोलोनिस ने कहा–

–लेकिन गिलगमेश कुछ भी कर सकता है...इसीलिए मैं कहता हूँ उन आर्य कबीलों का पता करो, जो अपने देवताओं के साथ न जाने किन दिशाओं की ओर चले गए हैं...क्योंकि गिलगमेश को आर्य देवता इंद्र ही परास्त कर सकता है !

–श्रीमन ! आर्यों के वे कबीले जो सहस्रों-सदियों पहले क्रोशिया के विंदिजा इलाके से चले थे, उनमें से कुछ थक कर रूस के दक्षिणवर्त्ती घास के मैदानों में रुक गए थे। जिन कबीलों का साथ कुदरत ने नहीं दिया, वे मिस्र की तरफ निकल गए, लेकिन आर्यों के बड़े-बड़े कबीलों को पूरब का सूरज ज़्यादा आकर्षित कर रहा था। उन्होंने प्रकाश की दिशा–पूरब की ओर बढ़ना ही पसन्द किया। अन्धकार के बाद उदित होकर पूरब का सूरज उन्हें पुकारता था...इसलिए वे आर्य कबीले उफरातु और तिग्रा नदियों से होते हुए, उस पार जाकर तबरेज और तेहरान के रास्ते सिन्धु घाटी की ओर बढ़ गए !

–इसका मतलब है कि आर्य कई कबीलों में बँट गए हैं...

–हाँ, श्रीमन ! आर्य कबीलों का दूसरा कारवाँ मशद के इलाके को छोड़ता हुआ हेरात और बलख़ के रास्ते बोलन दर्रे से सिंधु-प्रदेश में दाखिल हुआ था। आर्यों का तीसरा कारवाँ, जो खैबर दर्रे को पार करके सिंधु घाटी में दाखिल हुआ, वह मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा के इलाके में बस गया है...शायद इन्हीं आर्यों का राजा है इंद्र ! वह भी सम्राट गिलगमेश की तरह महाविलासी है...

–हमें उसकी विलासिता से लेना देना नहीं है। हमें तो पराशक्ति से सवाल करना होगा कि उसने मनुष्य जाति को विवेक की शक्ति क्यों दी है ?

और तब इस प्रश्न के उत्तर में सप्त-सिंधु की आर्य सभ्यता से इंद्र का उत्तर गूंजता हुआ आया था–

–सुनो ! पराशक्ति मौन है...वह विखंडित होते परमाणु का आधारभूत रूप है। वही ब्रह्मांड की मूल मौन शक्ति है। ब्रह्मांड इसी की ऊर्जा से बनता, इसी में टिका रहता है और इसी में विलीन हो जाता है। वह आदि-अंत से परे है। अपरिमित और अपरिमेय है, अज्ञात

और अज्ञेय है, अद्वितीय है। परा-अपरा है। नित्य है। शाश्वत और सनातन है। तेज-पुंज है। ब्रह्मांड के सहस्रों सूर्यों से अधिक तेजस्वी ! पदार्थ इसी में जन्मता और इसी में विलीन होता है। जो कुछ भूलोक, द्युलोक और अंतरिक्ष लोक में अवस्थित है, वह सब वही है। इससे परे कुछ भी नहीं है। यही है चेतना, ऊर्जा या आदि परमाणु की पराशक्ति ! हमने, हमारी सभ्यता ने इसे ब्रह्म पुकारा है। ब्रह्म है, यह निश्चित है, परंतु वह क्या है, यह अनिश्चित है...वह रूपाकार से परे है। वह व्याख्याहीन, अद्वितीय, अज्ञेय और अद्वैत है ! वह प्रश्नों से उपराम है...

सिन्धु सभ्यता का यह सन्देश पाकर देवताओं की मंडलियों में खामोशी और निराशा छा गई। वे जानते थे कि ब्रह्म शक्ति अथवा आदि परमाणु शक्ति को लेकर जितने आत्मिक और दैविक अनुसंधान सिंधु सभ्यता ने किए हैं, उतने किसी अन्य सभ्यता ने नहीं, उनकी पराशक्ति सम्बन्धी इस दार्शनिक व्याख्या को नकारना कठिन था। देवताओं की गोष्ठी में चिन्ता छा गई।

सबके सामने एक ही प्रश्न था–सुमेरी सभ्यता के पृथ्वी-सम्राट गिलगमेश को आख़िर कौन रोकेगा ? कौन ?

तभी सुमेर के पर्वतों से निकलकर सर्वशक्तिमान अनु उपस्थित हुआ। चिन्ताग्रस्त देवताओं को उसने ढांढ़स बंधाया–

–आंतकित होने की आवश्यकता नहीं है...यद्यपि सम्राट गिलगमेश ने युरुक में ईना का मंदिर बनवा कर उसमें मेरी और युद्ध की देवी ईश्तर की विशाल प्रतिमाएँ स्थापित की हैं, लेकिन जब उसने अपने पाप, अनाचार और अत्याचार से त्राहि-त्राहि मचा दी, लोगों का जब करुण क्रंदन मुझे सुनाई दिया तो मैंने उस असाधारण तथा प्रचंड सम्राट गिलगमेश को समाप्त कर देने या क्षुद्र बना देने की योजना बनाई। मैंने आकाश-पुत्र एंकिदू को मनुष्य का जन्म देकर पृथ्वी पर भेजा...

एंकिदू एकदम आदिम, जंगली, पशुतुल्य और बर्बर था। उसके शरीर पर वन्य पशुओं की तरह बाल थे। वह जंगली जानवरों के साथ रहने लगा। वह उन्हीं की तरह कच्चा मांस खाता था और ज़रूरत पड़ने पर घास भी खा लेता था।

एक दिन एक शिकारी जंगल में शिकार के लिए पहुँचा। वहाँ एकाएक उसने एंकिदू को देखा तो भयभीत हो उठा। जो कुछ भी शिकार उसके हाथ लगा था, उसे उठाकर वह घर की ओर भागा। उसके मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे। काँपते हकलाते उसने अपने पिता को बताया–

–जंगल में मैंने एक भयानक विलक्षण मनुष्य को देखा है। वह जंगली जानवरों के साथ रहता है। उन्हीं के समान घास-पात खाता है, लेकिन उसे देखने से ऐसा लगता है कि वह अवतारी पुरुष है !

–मेरे बेटे! पिता ने कहा–तुम फौरन युरुक जाओ और सम्राट गिलगमेश को सूचित करो। उसे निश्चय ही देवताओं ने पृथ्वी पर भेजा होगा क्योंकि देवता लोग हमारे सम्राट गिलगमेश से भयभीत हैं...सम्राट गिलगमेश की जितनी प्रशंसा की जाए कम है। हमारे सम्राट बहुत चतुर, बुद्धिमान और शक्तिवान है...। उन्हें संसार के अनेकानेक रहस्यों का पता है...सम्राट जानते हैं कि यह देवता लोग आलसी और अकर्मण्य हैं। ये उपजीवी हैं, जो मनुष्य और परमसत्ता के बीच में स्थापित हो गए हैं...वे हमारे सम्राट को नष्ट करना चाहते हैं...तुम तत्काल उस विलक्षण अवतारी वन्य पुरुष की सूचना सम्राट को दो और सुनो, उस वन्य अवतारी पुरुष को वश में करने के लिए तुम ईना के प्रेम मन्दिर की सबसे सुन्दर देवदासी को लेकर जंगल में जाओ। देर मत करो...जाओ...

वह शिकारी युरुक के लिए रवाना हो गया। वहाँ पहुँचते ही उसने सारी सूचना सम्राट गिलगमेश को दी, तो सम्राट ने कहा–

–यह निश्चय ही मेरे विरुद्ध देवताओं का षड्यंत्र है...तुम्हारे पिता ने ठीक कहा है। तुम ईना के प्रेम मन्दिर की सबसे सौंदर्यशाली देवदासी रूना को लेकर जंगल में जाओ। मैंने इन देवताओं की जीवन शैली को देखा है। यह लोग स्त्री के प्रति तत्काल आसक्त हो जाते हैं। इनकी वासना जाग पड़ती है और ये अपनी साधना और लक्ष्य को भूल जाते हैं। निश्चय ही मेरा वह शत्रु भी नारी सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हो जाएगा। तब वन्य पशु उसे अपने समाज में रखने से इंकार कर देंगे! सप्त सिन्धु की आर्य सभ्यता भी अपने देवताओं को वश में रखने के लिए अप्सराओं का उपयोग करती है। तुम तुरन्त परम सौंदर्यशाली देवदासी रूना को लेकर जंगल में जाओ और उस अवतारी वन्य पुरुष को उस स्त्री का दास बना दो...

आदेश पाकर वह शिकारी उसी अत्यन्त सौन्दर्यशील देवदासी रूना को लेकर जंगल में पहुँचा और एक झील के किनारे एंकिदू की प्रतीक्षा करने लगा। तीन दिन बाद वन्य पशुओं का एक झुंड उस झील के किनारे आया। इस झुंड में एंकिदू भी था। शिकारी उसे देखकर भयभीत भी हुआ और उत्साहित भी। उसने देवदासी को बताया–

–यही है वह! अब तुम अपने उरोजों का आवरण हटा दो...शरमाओ नहीं। देरी मत करो। तुम्हें नग्न देख कर वह तुम्हारी ओर खिंचा चला आएगा और तब तुम उसे अपने वश में कर लेना...

देवदासी रूना ने अपने को नग्न किया और अन्तत: उसने एंकिदू को आकर्षित कर लिया। देवता अनु ने कहानी रोक कर बताया–आश्चर्य की बात तो यह थी कि संभोग सुख के बाद भी एंकिदू उस देवदासी से अलग नहीं हुआ...वह उसे अपनी बलिष्ठ बाँहों में लेकर तरह-तरह से देखता रहा था। न मालूम वे एक दूसरे की आँखों में क्या तलाशते रहे...मुझे तो लगता है कि यह प्रेम नाम की भावना थी जो मनुष्य ने स्त्री में तलाश ली है...मेरा माथा तभी ठनका था। एंकिदू प्रेम की उस आसक्ति में यह भी भूल गया कि वह मनुष्य के रूप में

आकाश देवता का पुत्र है मैं उसे यह कैसे याद दिलाता। मैं कुछ कर नहीं सकता था। एंकिदू और देवदासी छह दिन और सात रातों तक साथ-साथ रहे, तब एक दिन देवदासी ने कहा–

–तुम कितने चतुर और बद्धिमान हो एंकिदू...तुम अवतारी पुरुष हो, पर मैं तुम्हें साधारण मनुष्य के रूप में ज्यादा पसंद करूँगी। इन वन्य पशुओं का साथ छोड़ो और चलो मेरे साथ। मैं तुम्हें युरुक की भव्य दीवार और महान मन्दिर दिखाऊँगी। वहाँ अनु और ईश्तर निवास करते हैं। वहाँ सम्राट गिलगमेश हैं...वे महाशक्तिशाली हैं...वे हम जैसे मनुष्यों की सृष्टि की रचना कर रहे हैं। आखिर देवदासी रूना ने एंकिदू को साधारण मनुष्य की तरह बना लिया। उसके वन्य-बालों को साफ़ किया। अपने कपड़ों का एक भाग उसे दिया। दूध पीना और कंद मूल खाना सिखाया और उसे लेकर युरुक के लिए रवाना हो गई। जब देवदासी रूना एंकिदू को लेकर नगर में दाख़िल हुई तो उसे देखने के लिए अपार जन-समूह उमड़ पड़ा। भव्य दीवार के द्वार पर एंकिदू का आमना-सामना गिलगमेश से हुआ।

दोनों ने एक दूसरे को जलती आँखों से देखा। एंकिदू के नथुनों से जोरों की घरघराहट निकलने लगी। गिलगमेश भी योद्धा की तरह हुंकारा और दोनों एक दूसरे से पथरीले साँड़ों की तरह भिड़ गए! धरती धसकने लगी...मन्दिर के द्वार ध्वस्त हो गये...

अनु ने आगे बताया–

–मैं उन दोनों का द्वन्द्व युद्ध देख रहा था। मुझे विश्वास था कि एंकिदू विजयी होगा, लेकिन आश्चर्य की बात कि गिलगमेश ने एंकिदू को ऐसा दबोचा कि वह छटपटाने लगा। उसने एंकिदू के घुटनों को मरोड़ा और उसे उठाकर वायुमंडल में फेंक दिया...काफी देर एंकिदू वायु में सूखे पत्ते की तरह चकराता रहा, फिर जब वह धरती पर गिरने लगा तो गिलगमेश ने उसे अपनी बाँहों में सँभाला और सामने खड़ा कर लिया, और पूछा–बता मेरे विनाश के लिए तुझे किसने भेजा है?

अभी एंकिदू मनुष्य की छल-चतुराई से दूर था। उसने मेरा नाम ले दिया। गिलगमेश भड़क उठा। उसने कुछ कठोर अपशब्द मेरे लिए कहे। वह चीखने लगा–तो देवता अनु ने तुम्हें मेरे विनाश के लिए भेजा है! वही देवता अनु, जिसके लिए मैंने भव्य दीवार और मंदिर बनवाया था! जिसे मैंने श्रद्धा से देवता का पद दिया था! जिसके लिए मैंने अपनी समस्त प्रजा से कहा था कि इसकी पूजा करो! मुझे मालूम नहीं था कि वह देवता अनु इतना कृतघ्न निकलेगा!...वह यह भूल गया कि समस्त देवताओं का अस्तित्व मात्र मुझ जैसे मनुष्य के कारण है!

यह सुनकर सारे देवता क्रोधित हो उठे। वपुन तो भड़क ही उठा–तो सम्राट गिलगमेश इतना अहंकारी हो गया है! इसके इस अहंकार को तोड़ना ही होगा!

–यह अब असंभव है, क्योंकि भव्य दीवार के पास हुई उस मुठभेड़ में एंकिदू को परास्त करने के बाद, न मालूम क्यों सम्राट गिलगमेश ने एंकिदू से मित्रता कर ली। वे दोनों परम मित्र हो गए हैं।

–यह तो ख़तरनाक ख़बर है! अक्कादी सभ्यता का देवता सुरु घबरा कर बोला।

–यही तो...यही तो...परम देवता अनु ने कहा–भयानक बात यह है कि पृथ्वी सम्राट गिलगमेश ने मित्रता नामक तत्व को भी तलाश लिया...

यह सुनकर सारे देवता बेहद चिन्तित और हताश हो गए। तब मेसोपोटामिया के देवता अलवोनियस ने संकटग्रस्त स्वर में कहा–देवताओं के देव अनु! हमारी कमज़ोरी यही है कि हमने प्रेम और मित्रता जैसे तत्वों को नहीं तलाशा..सारी देवियां केवल हमारी वासनाओं का तृप्ति-कुण्ड हैं और हम देवताओं में कोई भी किसी का मित्र नहीं है...इसलिए मनुष्य द्वारा प्रेम और मित्रता जैसे तत्वों की खोज बहुत ही विकराल साबित हो सकती है। यह हम देवताओं के अस्तित्व के लिए भयानक खतरा बन सकती है। यह स्थिति विस्फोटक है...

वहाँ मौजूद तमाम देवताओं ने अलवोनियस की चिंता का एक स्वर में अनुमोदन किया। और देवी तानिया ने तब उन्हें आगाह करने वाला विदग्ध भाषण दिया–

–दज़ला, फ़रात और डैन्यूब की परा-धरती के समस्त देवताओं! तुम सब आज चिन्तित हो क्योंकि मनुष्य ने प्रेम तथा मित्रता जैसे नए तत्वों को खोज लिया है, लेकिन तुम्हें किसने रोका था? तुम सब घोर अहंकारी हो! तुम यह भूल गए कि मनुष्य ने ही तुम्हें सिरजा है। मनुष्य के बिना तुम्हारी और हम जैसी देवियों की कोई औक़ात या अस्तित्व नहीं है। तुम समस्त देवता लोग प्रेमविहीन और एकांगी व्यक्ति हो। तुम सब स्त्री पर आसक्त होकर उसका शीलभंग कर सकते हो...अवैध सन्तानें पैदा कर सकते हो, क्योंकि तुम अहंमन्य हो। तुम नितान्त व्यक्तिवादी हो। तुम्हारे पास मित्रता का मूल्य नहीं है। तुम एक दूसरे के पूरक नहीं हो। तुम हमेशा एक दूसरे से स्पर्धा करते हो। तुम्हारे सारे आचरण अवैध हैं इसीलिए तुम किसी वैध सभ्यता या संस्कृति का निर्माण नहीं कर सके हो। तुम सब भूल रहे हो...धरती के मनुष्य ने प्रेम और मित्रता के अलावा प्रजनन की वैध परम्परा का आविष्कार भी कर लिया है, इसीलिए उन्हें संस्कार जैसी महाशक्ति भी प्राप्त हो गई है...तुम्हारे पास केवल वासना है, प्रेम नहीं है। केवल वैयक्तिक श्रेष्ठता का द्वेष है इसलिए मित्रता नहीं! तुमने स्त्री को मात्र भोग्या मान कर अवैध संतानों का देवलोक स्थापित कर लिया है, पर इस देवलोक के पास कोई संस्कार या परम्परा नहीं है...

–देवी तानिया! तुम अपने ही वंशजों का अपमान कर रही हो! तमाम देवता और कुछ देवियाँ एक साथ चीख़ उठे।

–मैं अपमान नहीं, सिर्फ़ तुम्हें आगाह कर रही हूँ...मनुष्य ने जिन जीवन-तत्वों को तलाशा है और आगे तलाशेगा वह हमारी मृत्यु की घोषणा होगी....देवी तानिया ने कहा और वह अन्तर्ध्यान हो गई।

सारे देवता अवाक् और हत्प्रभ रह गए। और तब अपने अस्तित्व की रक्षा को लिए परमदेवता अनु ने सुझाव दिया–

–अस्तित्व के संकट की इस घड़ी में हमें सप्तसिंधु के आर्य देवताओं से सम्पर्क करना चाहिए...हमारे पास केवल तीन नदियाँ हैं–दज़ला, फ़रात और डैन्यूब! हमें केवल इन तीन नदियों की सम्पदा मिली है। उनके पास सप्तसिंधु की सात मुख्य नदियाँ हैं–सिंधु, वितस्ता, असिकी, परुष्षणी, विपाश्, शुत्रद्री और सरस्वती!

–इतना ही नहीं देवाधिदेव! संदेशी ने आदर से सर झुका कर कहा। वह आगे कुछ कहता, इससे पहले एक देवता ने टोका–तुम कौन?

–श्रीमन्! हम तो घुमंतू पशुपालक हैं, पर आपके संदेशी का कार्य भी करते हैं। हम तो सप्त सिंधु से लेकर आपके प्रदेश तक और यहाँ से लेकर बालेशिया, पाषाण क्षेत्र से लेकर बास-फोरस और दर्रे दानियाल तक हमेशा घूमते ही रहते हैं...यहीं से होकर तो आर्य कबीले सिंधु घाटी तक गए हैं...उन्हीं में से कुछ कबीले आर्याना में बस गए हैं। जो आगे बढ़ते गए वे सिंधु, सरस्वती और दृषाद्वंती नदियों को पार करके यमुना के मध्यदेश तक पहुँच चुके हैं...उसे वे ब्रह्मावर्त के नाम से पुकारते हैं। पूरब की ओर उनका सीमान्त जो नदी बनाती है, उस नदी का नाम है–गंगा! आर्य देवताओं ने साम्राज्य स्थापित कर लिया है। उनके साम्राज्य में उत्तर पश्चिम की और चार नदियों की संपदा भी मौजूद है।

–क्या आर्यों ने उन नदियों का नामकरण कर लिया है?

–हाँ श्रीमन्! उन्होंने उनका नामकरण करके अपनी सम्पदा बना लिया है। आर्याना के आर्य इसी लिए पिछड़ते गए, क्योंकि उन्होंने नामकरण की पद्धति नहीं अपनाई। आर्यों ने उत्तर पश्चिम की नदियों को नाम दिए हैं–काबुल-कुमा, क्रूमु-कुर्रम, गोमती-गोमल और स्वात-सुवास्तु!

–इतने दीर्घ नाम?

–हाँ श्रीमन्! नदियों के नामकरण के साथ-साथ उन्होंने भू-भागों को भी अंकित कर लिया है। हम तो घुमंतु हैं, जब भी आर्य प्रदेशों तक जाते हैं तो गांधारी जनपद से पशुकेश ले आते हैं। मूजवंत में पहुँचते हैं तो श्रेष्ठ सुरापान का आनन्द उठाते हैं... फिर हम उनके द्रुह्य और तुर्वश प्रदेशों में रुकते हैं, तो यव और धान्य भी प्राप्त कर लेते हैं। इन प्रदेशों का अन्न अद्वितीय है। श्रीमन्! आर्यों के पास जल सम्पदा के अलावा सौन्दर्यशाली प्रात:कालीन ऊषा है। पर्वत, पर्जन्य, विद्युत, मेघ और घनघोर वर्षा है...उन्होंने अपने क्षेत्र को वैदिक गणों और जनों में विभक्त कर रखा है...उनके पास अश्व हैं, गो हैं और अन्य पशु भी हैं। वे कृषि कर्म करने लगे हैं!

–यह श्रम क्या आर्य देवता स्वयं करते हैं? देवता अनु ने पूछा।

–नहीं श्रीमन्! आर्य देवता आप सब देवताओं की तरह ही कर्म-विहीन हैं। उन्हें श्रम की ज़रूरत ही नहीं है...श्रम तो उन देवताओं की मनुष्य जाति ही करती है

–परमेदव अनु! तभी एक देवता ने हस्तक्षेप किया–हमें सन्देशी के वृत्तान्तों में नहीं उलझना चाहिए। हमारी समस्या तो सम्राट गिलगमेश है जो मृत्यु की औषधि तलाशने की

घोषणा कर चुका है!

–महामान्य! सन्देशी ने उन्हें शान्त किया–मैं आपकी इस महती समस्या के लिए ही सारे वृत्तान्त दे रहा हूँ, ताकि आप इस समस्या को पूरे परिप्रेक्ष्य में समझ सकें...देखिए, यहाँ आकर एंकिदू भूल गया कि वह आकाश-पुत्र है। मनुष्य बनते ही उसने प्रेम नामक संवेग को तलाशा और स्थापित कर लिया। सम्राट गिलगमेश ने मित्रता जैसी वृत्ति को खोज लिया। और उधर आर्य मनुष्य ने पृथ्वी के महातत्व श्रम को खोजा और आतंककारी प्रकृति को वशीभूत करने के लिए उसने शांति जैसी महाशक्ति का आविष्कार कर लिया है...शांति के बाद अब यदि मनुष्य को अन्तिम रूप से कुछ तलाशना है, तो वह है–मृत्यु की औषधि! श्रीमन्! आप देवताओं का पराभव निश्चित है!

संदेशी की यह बात सुनते ही देव मंडलियों के प्रत्येक देवता की भृकुटियाँ तन गईं। उनकी आँखों से क्रोध बरसने लगा।

–क्रोधित मत होइए महामान्य! सत्य को स्वीकारिए...मनुष्य ने जिन महाशक्तियों का अन्वेषण किया है, वे आपके पास नहीं हैं। उसने आविष्कृत कर लिया है–जीवन, कर्म, श्रम, प्रेम, मित्रता और शांति जैसे जीवन के महातत्वों को... इसलिए अब उसकी अमरत्व की कामना अनुचित नहीं है!

–नहीं! नहीं! उसकी यह कामना हमें स्वीकार नहीं है! तमाम देवता समवेत चीख़ने लगे....फिर अलग-अलग घोषणाएँ करने लगे–

–हम कर्म को कर्महीन बना देंगे।

–हम श्रम को श्रमसाध्य बना देंगे।

–हम प्रेम के विरुद्ध घृणा का सृजन करेंगे।

–हम मित्रता को शत्रुता में बदल देंगे!

–हम शांति को अशान्ति से ध्वस्त कर देंगे।

–हम जीवन को मृत्यु से उन्मुक्त नहीं होने देंगे!

तभी तीन देवियों–ईना, सुसोति और कल्पा ने वहाँ प्रवेश किया। उन्हें देवताओं ने आश्चर्य से देखा। देवता अनु ने उनसे प्रश्न किया–तुम तीनों इस समय यहाँ क्यों आई हो? कोई विशेष कारण?

–हम तीनों देवलोक दोड़कर मृत्युलोक जा रही हैं। हम स्त्रियाँ तुम्हारे पापाचार से पीड़ित हैं। तुमने हमें मात्र भोग्या बना रखा है...प्रेम की वह मर्यादा जो मनुष्य ने विकसित कर ली है, उसका लेश मात्र अंश तुम में नहीं है। तुम सब व्यभिचारी हो। क्लीव हो। और तुम्हीं नहीं, सिन्धु सभ्यता के देवता भी तुम्हारी ही तरह हैं। अप्सराओं को देखते ही उनका तप भंग हो जाता है। वे वीर्यपात करने लगते हैं। तुम्हारे सखा जीयस इस समय भी पाषाण प्रदेश के मन्दिर में देवदासी इष्टा के साथ रतिमग्न हैं...देवता सुवोग डैन्यूब नदी के किनारे देवी परंती के साथ संभोग में लिप्त हैं...सिन्धु सभ्यता का ब्रह्मा अपनी पुत्री शतरूपा

सरस्वती पर आसक्त होकर पिछले सौ दिव्य वर्षों से उसके साथ संभोग में लिप्त है। तुम सब भी सूर्य को पूजते हो, आर्य भी पूजते हैं। उसी सूर्य ने अपने भाई विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा को अपनी पत्नी बना रखा है। चन्द्रमा को भी तुम दोनों की सभ्यताएँ पूजती हैं। आर्य सभ्यता में वह ब्राह्मणों, औषधियों और तारागणों का सम्राट है। जानते हो, उसने त्रिभुवन को जीत कर राजसूय यज्ञ किया था। उस महायज्ञ में त्रिभुवन सुन्दरी, देवताओं की गुरु-पत्नी तारा भी आई थी। चंद्र गुरु-पत्नी पर इतना मोहित हो गया कि वह बलपूर्वक तारा का अपहरण कर लाया। देवगुरु बृहस्पति ने अपनी पत्नी लौटा देने के लिए चंद्र को कई बार प्रार्थनापूर्वक समझाया, परंतु चंद्र तो कामान्ध था। वह गुरु पत्नी तारा के साथ बलात्कार और व्यभिचार करता रहा। आखिर भीषण युद्ध के बाद गर्भवती तारा को चन्द्रमा से जीत कर लाया गया...कहाँ तक गिनाया जाए ! तुम देवताओं की समस्त सभ्यताएँ निर्लज्ज हैं। पातकी हैं। गुरु-पत्नी से सम्भोग करने के बाद भी तुमने उसे पतित भी नहीं ठहराया...

परमदेवता अनु के साथ ही सारे देवता अवाक् थे...उनमें साहस नहीं था कि वे तीनों देवियों ईना, सुसोति और कल्पा से कोई तर्क-वितर्क कर सकें या प्रश्न पूछ सकें। कुछ पलों की निस्तब्धता के बाद परमदेवता अनु ने इतना ही पूछा–तुम तीनों तो देव योनि की हो...आयुष्मती हो, मृत्यु से मुक्त हो...तुम मर्त्यलोक में सीमित आयुवाले नश्वर मनुष्यों के साथ कैसे और कब तक रह सकोगी ? कितने पुरुषों के साथ जीवन व्यतीत करोगी ?

–उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी...तुम्हें नहीं मालूम...तुम सबकी चहेती देवी, तुम्हारे स्वर्ग की रानी ईश्तर स्वयं सम्राट गिलगमेश जैसे मनुष्य के पास प्रणय निवेदन लेकर गई थी ! जानते हो तब उस नश्वर गिलगमेश ने क्या कहा था ? यही कि यह असम्भव...है...मैं तुमसे प्रेम नहीं करता, इसलिए मैं तुम्हारे शील की रक्षा नहीं कर पाऊँगा...कहते-कहते ईना की साँसें तेज हो गई थीं, उसने उन्हें धिक्कारते हुए पूछा–कहीं है तुम देवताओं के पास इतना स्फटिक साहस और इतनी विराट नैतिकता ?

देवता सहमे हुए एक दूसरे को देख रहे थे। तभी सुसोति बोल पड़ी–परमदेवता अनु में भी इतना साहस नहीं कि ये ईश्तर के साथ घटित इस घटना का सत्य बता सकें...लेकिन वह सत्य मैं बताती हूँ–सम्राट गिलगमेश द्वारा किए गए इनकार को ईश्तर बर्दाश्त नहीं कर पाई थी। अपमानित ईश्तर तब इन्हीं के पास पहुँची थी और उसने गिलगमेश पर लांछन लगाया था–परमदेव अनु ! नश्वर मनुष्य सम्राट गिलगमेश ने मेरा अपमान किया है...देवलोक की देवियों को उसने पतिता कहा है। उसने आरोप लगाया है कि हम देवियाँ नहीं, व्यभिचारिणी वेश्याएँ हैं। किसी को नहीं मालूम कि एक देवी कितने देवताओं की अंकशायिनी रह चुकी है ! कहते कहते सुसोति ने आवाज़ ऊँची कर के परमदेव अनु से पूछा–बोलिए ! यह वृत्तान्त सत्य है या नहीं ?

सभी उपस्थित देवता लोग परमदेव अनु को शंका भरी दृष्टि से देख ही रहे थे कि देवी कल्पा ने बात और आक्षेप का सूत्र पकड़ लिया–एंकिदू के हृदय परिवर्तन के बाद तब

इन्हीं परमदेव अनु ने सम्राट गिलगमेश को नष्ट करने के लिए एक भयंकर और विकराल साँड़ को जन्म देकर पृथ्वी पर भेजा था...यहीं पर मित्रता नामक मूल्य की परीक्षा पहली बार हुई थी। उस पागल विकराल वृषभ ने जैसे ही गिलगमेश पर आक्रमण किया, तो मित्रता का धर्म निबाहते हुए एंकिदू ने उस साँड़ को सींगों से पकड़ लिया। उनमें घमासान मुठभेड़ें हुईं। साँड़ ने एंकिदू के चेहरे पर ज्वलनशील आग उगलते हुए कहा–एंकिदू! क्या तू भूल गया कि हम दोनों को एक ही परमदेवता अनु ने जन्म देकर धरती पर भेजा है...क्या तू भूल गया कि हम दोनों का लक्ष्य गिलगमेश की हत्या है!

तब एंकिदू ने उसके विशाल सिर को सींगों से पकड़ कर झकझोरते हुए कहा–ऐ वृषभ, तू विवेकहीन पशु है...तुझे तो क्या, देवराज अनु को भी नहीं मालूमा कि मित्रता किस चिड़िया का नाम है! मेरे जीवित रहते मेरे मित्र गिलगमेश को कोई नहीं मार सकता!

यह सुनते ही वृषभ ने उन्मत्त होकर भयंकर आक्रमण किया तो सम्राट गिलगमेश ने वृषभ की गर्दन और पृष्ठ भाग पर तेज़ प्रहार किए...अन्ततः वह साँड़ मारा गया। लेकिन एंकिदू बुरी तरह घायल हो गया था, उसकी स्थिति मृतक-सी हो गई थी। गिलगमेश ने यूनान के बड़े से बड़े वैद्यराजों और हकीमों को बुलाकर उपचार करवाया। देवदासी रूना ने, जिसने एंकिदू से प्रेम किया था, बहुत सेवा की। गिलगमेश अपने मरणासन्न मित्र को धीरज बँधाता रहा–मित्र एंकिदू! तुम जीवित रहोगे...ऊर और कीश के कब्रिस्तानों में अब कोई मनुष्य दफ़्न नहीं होगा...मनुष्य जीवित रहेगा...! फिर उसने एंकिदू को देखा तो उसका दिल दहल उठा। वह उसे छू-छू कर विलाप करने लगा–मित्र एंकिदू! कैसे हो तुम? कैसी नींद है यह? इस नींद ने तुम्हें क्यों जकड़ लिया है? एंकिदू मेरे मित्र! तू काला क्यों पड़ गया है? तू मेरी आवाज़ क्यों नहीं सुनता?

गिलगमेश के विलाप के बावजूद एंकिदू ने आँखें नहीं खोलीं। गिलगमेश ने उसके हृदय पर हाथ रखा, उसकी गति बन्द थी...वह फूट-फूट कर रोने लगा–मित्र एंकिदू...तूने मेरे लिए पीड़ा सही है। मेरी यातना तूने अपने ऊपर ली है...तूने मित्रता के नाते मृत्यु का वरण किया है। और तब अपने आँसू पोंछ कर सम्राट गिलगमेश ने घोषणा की–

–सुनो! देवताओ सुनो! पृथ्वी सम्राट गिलगमेश की आवाज़! यह दूसरी आवाज़ है! यह भोग-विलास और पशुवत् दैहिक ऐश्वर्य की आवाज़ नहीं, यह मनुष्य की पीड़ा, दु:ख, यातना, श्रम और मृत्यु से उसे मुक्त करने की आवाज़ है!

ईना चीखी–आगे सुनो...सुनो...और गिलगमेश की आवाज़ फिर गूँजने लगी।

–मैं पीड़ा से लड़ूँगा...यातना सहूँगा...कुछ भी हो मैं अपने मित्र और मनुष्य मात्र के लिए मृत्यु को पराजित करूँगा! मैं मृत्यु से मुक्ति की औषधि खोज कर लाऊँगा!

सम्राट गिलगमेश की घोषणा से एक बार फिर देवलोक काँपने लगा...देव सभ्यताएँ अवसन्न रह गईं।

तभी ईना ने घोषित किया–प्रलय के समय आर्य सभ्यता की एक मत्स्य कन्या ने गिलगमेश को अमरता प्राप्त करने का रहस्य बताया था...मत्स्य कन्या के कहे मुताबिक गिलगमेश ने मृत्यु के विरुद्ध जीने की शक्ति रखने वाले सभी जीवकणों-अणुओं को अपनी नाभि में छुपा लिया था। इसीलिए वह जल प्रलय में जीवित रह सका। उस मत्स्य कन्या ने ही उसे शुरुप्पक नगर के जिउसुद्दु की जानकारी दी थी, जिसके पास मृत्यु से मुक्ति की औषधि सुरक्षित थी। किसी को मालूम नहीं था कि जल प्रलय के बाद शुरुप्पक का वह जिउसुद्दु उस औषधि को लेकर कहाँ छुप गया था। तो सुनो सुमेर सभ्यता के देवताओं! सम्राट गिलगमेश निश्चय ही शुरुप्पक के उस जिउसुद्दु का पता लगाकर रहेगा...उस औषधि को प्राप्त करके रहेगा, जो मनुष्य को अमरता देगी...इसलिए हम तीनों तुम्हारा देवलोक छोड़कर मर्त्यलोक में जा रही हैं! क्योंकि सम्राट गिलगमेश उस सागर तक पहुँच गया है, जहाँ से वह जल मार्ग जाता है जहाँ अतल जलराशि के नीचे के प्रदेश में शुरुष्पक का जिउसुद्दु मृत्यु से मुक्ति की औषधि लिए छुपा बैठा है...

यह सूचना सुनते ही देवताओं की मंडली में फिर भूकंप आ गया। अब क्या होगा? क्या दूसरी प्रलय होगी? कोलाहल और जबरदस्त शोर के बीच परमदेवता अनु ने ऐलान किया–इससे पहले कि गिलगमेश सागर की अतल गहराइयों में उतर सके, उसे बन्दी बनाया जाए!

–अब तुम उसकी परछाईं को भी बन्दी नहीं बना सकते! ईना ने कहा।

–रोको! रोको! परमदेवता ने अपनी सृष्टि के विषैले जीव-जन्तुओं को पुकारा–विषधर भुजंगो, विषैले वृश्चिको! गिलगमेश को अपने नागपाश में ले लो। अपने विषैले दंश से उसके शरीर को निष्प्राण कर दो...

और तब तीनों देवियों ने देखा–समुद्र में छलाँग लगाने के लिए उद्यत गिलगमेश के शरीर पर सैकड़ों विषैले सर्प लिपट गए थे। उन्होंने उसे जकड़ लिया था। सैकड़ों बिच्छू उसके शरीर पर डंक मार रहे थे...

यह दृश्य देखकर देवियाँ विचलित हो उठीं। लेकिन तभी गिलगमेश ने उन विषैले विषधरों और वृश्चिकों की परवाह न करते हुए अपनी बलिष्ठ भुजाओं को पसारा...और...और...उसने उस सागर में छलाँग लगा दी...

सागर ने अपनी उत्ताल तरंगों में उसका स्वागत किया और कहा–धरती पुत्र! जब तक तेरा एक अंग भी सक्रिय रहेगा, तब तक इन विषधरों और वृश्चिकों का विष प्रभावहीन होता जाएगा...मेरा जल पृथ्वी के हर विष को शमित करता है...तू पाताल लोक की अपनी यात्रा पूरी कर!

और गिलगमेश अथाह पानी के उस तलहीन संसार में नीचे उतरता गया...उतरता चला गया।

सदियाँ बीत गईं। और अब तक गिलगमेश की यात्रा जारी है...औषधि की तलाश में वह अब भी सागरतल की गहराइयों में उतरता जा रहा है...उतरता जा रहा है...

•

6

सदियाँ बीत गईं। मृत्यु से मुक्ति की औषधि लेकर मनुष्य सम्राट गिलगमेश अभी लौटा नहीं है।

लेकिन देवदासी रूना और वन्य पुरुष एंकिदू ने प्रेम नामक जिस संवेग का अन्वेषण सहज ही कर लिया था, उसे मृत्यु का भय नहीं था। मनुष्य जाति में वह जीवित, जाग्रत और सदा-सदा के लिए स्थिर हो गया था। उसे मृत्यु मार नहीं सकती थी। अग्नि जला नहीं सकती थी। वायु उड़ा नहीं सकती थी। शस्त्र उसे काट नहीं सकता था। सागर उसे डुबो नहीं सकता था...मृत्यु की तरह यह अकाट्य सत्य उस दिन स्थापित हो गया था, जिस दिन मिस्र के एक मन्दिर की पथरीली दीवार पर किसी धातु के नुकीले कलम से यह वाक्य उत्कीर्ण मिला था–'मुझे तुम्हारी प्रतीक्षा है।'

यह दुनिया की प्रथम प्रेम कहानी थी ! इस प्रथम प्रेम कहानी के बाद मिस्र के पिरामिड बने थे।

पिरामिडों के इतिहास से ज़्यादा बड़ा और पुराना है मनुष्य के प्रेम का इतिहास। देवदासी रूना और वन्य पुरुष एंकिदू के वे एकान्त क्षण, जब वासना के बाद उन्होंने एक दूसरे की आँखों में अपने अस्तित्व की तलाश की थी और उसे प्राप्त किया था। प्रेम की यही शाश्वत कहानी तब से साँस ले रही है !

•

7

उसी कहानी में शामिल है बूटा सिंह और रेतपरी की यह कहानी।

राजस्थान का तपता रेगिस्तान...

कोई चीख़ा–बन गया साला पाकिस्तान...

आसमान की आँखें सूखी हुई थीं। उनमें एक बूंद भी पानी नहीं था। मौसम विभाग के वैज्ञानिकों ने सूचना दी थी कि इस बार धरती वर्षा के पानी से नहीं, मानव रक्त की बरसात से सींची जाएगी...

इन्हीं घोषणाओं के बीच पचास-पचपन साल का सिख किसान बूटा सिंह अपने बंजर खेतों की ओर से लौट रहा था। उसके तीन भाई थे, लेकिन खेतों की जायदाद का बँटवारा न होने पाए, इसलिए उन्होंने बूटिसंह की शादी नहीं होने दी थी। वह अभी तक कुँवारा था। उस रेगिस्तानी धरती की तरह, जिस पर वर्षा की एक बूँद तक नहीं गिरी थी। वह बूटा सिंह अपने बांझ खेतों की ओर से घर को वापस जा रहा था...

आवाज़ें गूंज रही थी–

–बन गया साला पाकिस्तान...

–जो बोले सो निहाल...सत् सिरी अकाल...

–नारए तकबीर...अल्लाहो-अकबर

–हर हर महादेव...

बूटा सिंह को पता नहीं था कि मौसम विभाग के वैज्ञानिकों ने क्या सूचना दी थी। वह इस बात से बेख़बर था कि आज़ादी के इस साल पानी की जगह खून की बरसात होने वाली थी। बूटासिंह रेत पर रास्ता बनाता चला जा रहा था। यह रास्ता वह रोज़ बनाता था जो रोज़ मिट जाता था...घर पहुँचने की भी उसे कोई जल्दी नहीं थी। किसी की आँखें उसके लौट कर आने का रास्ता नहीं देखती थीं।

तभी पीठ पीछे उसे एक डरी हुई कमसिन आवाज़ सुनाई दी–बचाओ...बचाओ...

बूटा सिंह ने पलट कर देखा। एक सोलह-सत्रह साल की लड़की अपनी अस्मत की रक्षा के लिए उसकी ओर दौड़ती चली आ रही थी। उसके कपड़े तार-तार थे। बाल बिखरे हुए और वह बुरी तरह हाँफ रही थी। एक हिंसक-सा नौजवान उसका पीछा कर रहा था। वह अधनंगी लड़की बूटासिंह के पैरों पर आ गिरी–मुझे बचाओ...मुझे बचाओ...यह दरिन्दा मेरी इज्ज़त लूटना चाहता है...कहती हुई वह उठी और बूटासिंह से चिपक कर हाँफने लगी।

–तू बच के कहाँ जाएगी ! उस हिंसक नौजवान ने लड़की से कहा, फिर वह बूटासिंह से बोला–इसे मेरे हवाले कर दो !

–नहीं...इस मैं तुम्हारे हवाले नहीं करूँगा !

–तुम्हें करना होगा...यह मेरे हिस्से में आई है !

–हिस्से में...बूटासिंह ने आँखें तरेर कर पूछा–तेरे हिस्से में ?

–हाँ ! हिन्दू-मुसलमान का बँटवारा हो चुका है। पाकिस्तान बन चुका है।

–कहाँ बन चुका है पाकिस्तान ?

–तीसरी ढाँणी के उस पार...पाकिस्तान बनने की लकीर खिंच चुकी है। उसी लकीर के बाद यह मुसलमान लड़की मेरे हिस्से में आई है...मैं इसे काफ़िले वालों से छीन कर लाया हूँ...इसे मेरे हवाले कर दो !

–नहीं ! बूटासिंह ने उस अधनंगी लड़की को पीठ के पीछे छिपाते हुए कहा–हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की लकीर खिंच गई तो खिंच जाए...लेकिन हिन्दू-मुसलमान के नाम पर औरत की इज्जत का बँटवारा तो नहीं हो सकता !

उस हिंसक नौजवान ने तेज़ नज़रों से बूटासिंह को देखा और बोला–तुम चाहो तो इसकी इज्ज़त खरीद लो !

–खरीद लूँ ! बूटासिंह ने अचकचाते हुए कहा–तुम बेचने को तैयार हो ?

–हाँ !

–कितने में ?

–नक़द पन्द्रह सौ ! उस हिंसक नौजवान ने बूटासिंह की औक़ात देखकर चढ़ते दाम बताए।

–ठीक है। इतने पैसे तो कर लूँगा...आओ मेरे साथ। घर तक चलना पड़ेगा।

तीनों लोग घर की ओर चल दिए। हिंसक नौजवान बूटासिंह के साथ आगे-आगे चल रहा था और लड़की सर झुकाए उनके पीछे-पीछे।

घर पहुँच कर बूटासिंह ने एक कोने में जाकर पुराने घड़ों और हांडियों में हाथ डाल-डाल कर पैसे तलाशे पर कुछ हाथ नहीं आया। वह हिंसक नौजवान इंतजार में खड़ा था। अधनंगी लड़की अपना बदन चुराए, दोनों बाँहें लपेटे, गठरी बनी दूसरे कोने में बैठी थी। आख़िर आड़ करके बूटा सिंह ने रेती हटा-हटा कर उसमें गड़ी एक हंडिया निकाली। मैले से कपड़े के टुकड़े में बंधी उसने धरोहर वाली अपनी पोटली निकालकर खोली और मुड़े-तुड़े मैले-कुचैले नोट गिनने लगा। कुछ सिक्के भी थे। आख़िर पैसे पूरे पड़ गए।

हिंसक नौजवान ने पैसे गिने, अपनी पगड़ी में रखे और लड़की पर नज़र डालकर बोला–बुड्ढा है...आराम से रहेगी...

लड़की वैसी ही गठरी बनी बैठी रही। वह चला गया तो वह इतना ही बोली–मेरी ख़ातिर क्यों तुमने इतनी बड़ी रकम उस ज़ालिम को क्यों दे दी ?

बूटासिंह कुछ नहीं बोला।

दिन डूब रहा था। रात उतरी तब मुश्किल सामने आई। लड़की जरूरत से ज्यादा नंगी थी। दिन में तो ठीक, पर रात में ऐसे कैसे रहेगी। बूटासिंह ने मुश्किल हल की–कोई कपड़ा तो है नहीं, तुम मेरा फेंटा लपेट लो...

–तब तुम नंगे हो जाओगे! लड़की ने लाचारी से कहा। बूटासिंह को तब एकाएक ख़ुद पर शरम आई।

–तुम ठीक कहती हो...एक जुगत ध्यान में आई है...कहते हुए बूटासिंह ने दोनों हाथों से रेत हटा-हटा कर गड्ढा बनाना शुरू कर दिया।

लड़की उसकी जुगत समझ गई। वह चुपचाप उसे गड्ढा बनाते देखती रही।

–पैर मोड़ोगी या खड़ी रहोगी? बूटासिंह ने पूछा।

–खड़ी रही तो नींद कैसे आएगी...

–तब इतना बहुत है...बूटासिंह ने गड्ढे की गहराई देखकर कहा–आ जाओ...

लड़की उसी तरह गठरी बनी तलवों के सहारे धीरे-धीरे गड्ढे तक खिसक आई और खुद ही उसमें कमर के बल अधलेटी हो गई। बूटासिंह ने उसके शरीर को रेत उड़ेल-उड़ेल कर गले तक तोप दिया और उसे देखते हुए बोला–अब ठीक है!

लड़की ने उसे एक बार भरपूर नज़रों से देखा। बूटासिंह ने भी कंधे से दाढ़ी खुजलाने का बहाना करते हुए, उसे उसी तरह भरपूर नज़रों से देखा। आखिर लड़की के ओठों पर हल्की सी मुस्कान आई और उसने आँखें नीची कर लीं। गर्दन तक रेत में दबी वह रेतपरी-सी लग रही थी।

–अरे, अभी तक हमने पूछा ही नहीं...नाम क्या है तुम्हारा? बूटासिंह ने जानना चाहा।

–जेनिब!

–गाँव?

–मणियार ढाणी!

–जात?

–हिन्दू राजपूत।

–धरम

–मुसलमानी!

–तुम उसके हाथ कैसे पड़ गईं?

–हम घर छोड़ कर पाकिस्तान जा रहे थे...वैसे तो हमारे घर में सब कुछ था। हमारे अब्बा बटाई पर खेती करके आराम से रहते थे। घर में गाय, भैंस, बैल थे। हम गाय का गोश्त नहीं खाते...भैंस या बैल का भी नहीं...सब आराम से चल रहा था। फिर पाकिस्तान की लकीर खिंची तो ढाणी में रहना मुश्किल हो गया। गाँव-ढाणी के सब मुसलमानी

मुसलमान कारवाँ बनाकर उस लकीर के पार पहुँचने के लिए चल पड़े। फिर भी समझ में नहीं आ रहा था कि हम अपनी ढाणी क्यों छोड़ रहे थे...ऐसे झगड़े, कहा-सुनी और मुँहचावर तो पहले भी होते रहते थे मैं कारवाँ से पीछे छूट गई। तब उसने मुझे पकड़ लिया। अधनंगा-तिनंगा कर दिया। जैसे-तैसे मैं उससे बच कर दौड़ी, तभी तुम मुझे दिखाई दिए...कहते-कहते रेतपरी जेनिब ने बूटा को एहसान भरी नज़र से देखा।

बूटासिंह ने उसे तब खामोशी से देखा।

सुबह हुई तो बूटा सिंह के भाइयों को पता चला कि उस के घर में कोई लड़की आ गई है। तो गाँव के बड़े-बूढ़ों ने सलाह दी—बूटासिंहा! अब यह लड़की तुम्हारे घर आ ही गई है, तो तुम इससे शादी कर लो!

उस समय बूटासिंह चार कोस दूर के बाज़ार से जेनिब के लिए कपड़े लेने जा रहा था। उसने चलते-चलते बड़े-बूढ़ों से कहा—पहले उसके लिए कपड़े तो ले आऊँ...

•

8

बूटा सिंह जब जेनिब के लिए कपड़े लेने निकला तब तक पाकिस्तान नाम की लकीर तो खिंच चुकी थी। मौसम विशेषज्ञों की भविष्यवाणी सही साबित हुई। रक्त की वर्षा हो रही थी।

रेतपरी जेनिब अभी भी गर्दन तक रेत में दबी हुई है।

बूटासिंह उसके लिए चार कोस दूर बाज़ार से कपड़े लेने गया हुआ है।

सम्राट गिलगमेश अभी भी सागर की अतल गहराइयों में उतरता चला जा रहा है।

और प्रमथ्यु के कंधे पर बैठा गिद्ध अभी भी उसका माँस नोच-नोच कर खा रहा है।

सम्राट गिलगमेश के लौटने तक, मृत्यु के हाथों मरते हुए भी मनुष्य ने जीवन की शृंखला बना ली है। वह अपनी इच्छाएँ, वचन और सपने अपनी सन्तति को सौंप कर चला जाता है। तब से यह परम्परा अनवरत चली आ रही है,क्योंकि गिलगमेश को लौटना है। अभी तो वह सदियों का समय लाँघता, योजनों की गहराइयों में बसे पाताल लोक के तल की ओर लगातार जल को चीरता, गहराइयों को नापता बढ़ता चला जा रहा है। कभी-कभी वह पुकारता और बताता है–मनुष्यों धीरज मत खोना विषधर सर्प और वृश्चिक अभी भी मुझसे लिपटे हैं। इनके दंशों ने मुझे नीलवर्ण बना दिया है। लेकिन सागर एक मित्र की तरह मेरा साथ दे रहा है...एंकिदू के बलिदान से मित्रता की जो परम्परा शुरू हुई है, उसे सागर निभा रहा है...इसीलिए उन भ्रष्ट देवताओं ने शाप देकर इसे खारा बना दिया है, ताकि इसका जल मनुष्य जाति के काम न आ सके...लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं....मैं शुरुप्पक के जिउसुद्दु तक पहुँचने के लिए सागर के तल में सदियों तक उतरता ही चला जाऊँगा। पता नहीं अभी और कितने जलवर्ष लगेंगे...तब तक तुम लोग मृत्यु का विरोध करते रहो। धरती से अपना तारतम्य बनाए रहो...मर-मर कर अपनी सन्ततियों में जीवित होते रहो...मैं औषधि लेकर ही लौटूँगा मेरी प्रतीक्षा करो...

–प्रतीक्षा करो...प्रतीक्षा...

वही आवाज़ ब्रह्मांड में गूँजने लगी।

–मैं औषधि लेकर ही लौटूँगा...मेरी प्रतीक्षा करो...

देवताओं की दुनिया फिर व्याकुल हो गई। बेबेलोनिया का दूसरा देवता ज़िबानितू घबरा उठा। मेसोपोटामिया का देवता क्रोनोस और सुमेर का अनु उद्वेलित हो उठा। देवी अफ्रोडाइट का पुत्र इरोस अपने महल से बाहर आकर आवाज़ की दिशा का अंदाज़ लेने लगा। देवता जीयस भी निकल आया। दोनों जुड़वाँ देवता भाई केस्टर और पोलुक्स भी

बाहर आ गए। अनश्वर देवी यूरोपा और लीडा के साथ-साथ देवी हीरा भी भयातुर होकर निकल पड़ी। देवी एस्त्रिया और फिलीरा भी चैन से नहीं बैठ सकीं। मिस्र का देवता हापी व्यग्र हो उठा।

सारी सभ्यताओं के देवता और देवियाँ सम्राट गिलगमेश की आवाज़ को तलाशने लगे। अपने-अपने फरिश्तों और देवदूतों को देवताओं ने आदेश दिया–जाओ और उस आवाज़ को पकड़ो!

उन्होंने चारों दिशाएँ छान डालीं लेकिन उन्हें गिलगमेश की आवाज़...कहीं नहीं मिली।

वे निराश और नाकाम लौट आए। तब जीयस ने कहा–फिर तलाशो...ज़हाँ भी है गिलगमेश की आवाज़.. उस आवाज़ को समाप्त करना बेहद ज़रूरी है। अगर इस विद्रोही आवाज़ को पकड़ा न गया तो हमारी सृष्टि नष्ट हो जाएगी...इस आवाज़ को बन्दी बनाना ज़रूरी है ।

–विवेक से काम लो ! विवेक से ! यह कराहती आवाज़ प्रमथ्यु की थी। जिसने मनुष्य के लिए जीयस के महल से अग्नि चुराने का 'अपराध' किया था। वह अग्नि, जिस पर देवताओं ने एकाधिकार कर रखा था। वही प्रमथ्यु कराहता हुआ बोल रहा था–गिलगमेश जैसे मनुष्य की आवाज़ को बन्दी मत बनाओ!

जीयस के साथ-साथ सारे देवताओं ने देखा। अग्नि चुराने के अपराध में सदियों से बन्दी प्रमथ्यु जंजीरों में जकड़ा खड़ा था। उसके कन्धे पर जीयस का गिद्ध अब भी बैठा उसके माँस को नोंच-नोंच कर खा रहा था। माँस के तमाम लोथड़े कारागार के फ़र्श पर पड़े तड़प रहे थे...

भयग्रस्त और त्रस्त देवताओं ने प्रमथ्यु को हिकारत से देखा और वे एक स्वर में बोले–तू तो धिक्कार योग्य है...चोर है...अपराधी है...

–अहंकारी और ऐय्याश देवताओं ! अपराध तो तुम्हारे तय होंगे...प्रमथ्यु ने रिसते घावों से रक्त पोंछते हुए कहा–तुम आततायी हो...तुमने प्रकृति की अबाध और अजस्र पराशक्ति को ईश्वर का जामा पहना कर खुद को उसका पुरोहित और वंशज बना रखा है। वह अबाध और अजस्र पराशक्ति अपनी सक्रियता से निरन्तर मनुष्य के लिए अपने रहस्य उद्घाटित कर रही है...वह तुम्हारे अधीन नहीं है...

–मौत! मृत्यु! इसे मृत्यु दो! देवता चीख उठे!

–चीखो मत! प्रमथ्यु ने कहा–चाहे मुझे मौत दे दो, लेकिन तुम कुछ भी करो, तुम गिलगमेश की आवाज़ को बंदी नहीं बना सकते...आवाज़ फ़रार हो चुकी है ! प्रमथ्यु ने घोषणा की–देवदासी रूना प्रेम, मित्रता, शान्ति और क्रान्ति के साथ-साथ गिलगमेश की आवाज़ को लेकर फ़रार हो चुकी है...अब तुम उसे नहीं पकड़ सकते! इन मूल्यों की तुम्हें

ज़रूरत नहीं थी, इसलिए देवदासी रूना इन्हें लेकर मर्त्यलोक की ओर प्रस्थान कर चुकी है...वह देखो! मर्त्य लोक में उसका अवतरण!

•

9

आतंकित देवताओं ने धरती की ओर देखा। वे सकते में आ गए। देवलोक के समस्त सफ़ेद पंखों वाले पंछी देवदासी रूना को लेकर मर्त्यलोक पर उतर रहे थे।

अवतरण के समय उसके साथ सभी तरह के पंछी-पखेरू शामिल होते गए थे। उनमें अंजन और चंद्रवाक तो थे ही, कंक पक्षियों के सातों वंश शामिल थे। मयूर थे, शकुंत पक्षी, सारस, नीलकंठ, दवाक, पंचवर्णी हंस, महाबक, पांडु, जलकाग, सुपर्ण, धनेश, क्रुंच परिवार के सभी सदस्य और कोयल अपनी समस्त सन्तति के साथ शामिल थी...उनके गीतों और गाते स्वरों से प्रकृति झूम उठी थी। देवदासी रूना पंछियों के पंखों से उतरकर तत्काल आदिम अदीब के घर की ओर चल दी...वह उस के दरवाज़े तक पहुँच गई। उसने देखा, उसके दस्तक देने से पहले तमाम दस्तकें वहाँ मौजूद थीं...और बेहद परेशान अदीब अपना माथा पकड़े बैठा हुआ था। एक अर्दली उसकी दाहिनी ओर अदब से खड़ा दस्तकों को पुकार-पुकार कर उन्हें अदीब के सामने पेश होने की इजाज़त दे रहा था। लेकिन तभी अदीब ने सिर उठाकर देवदासी रूना को देखा और पूछा–तुम कहाँ की दस्तक हो?

–अदीबे आलिया! मैं भ्रष्ट हो गए देवताओं के लोक की दस्तक हूँ। मैं इन्सान के लिए प्यार दोस्ती, शान्ति और क्रान्ति के मूल्य और सम्राट गिलगमेश की आवाज़ लेकर आई हूँ...मैंने उस समय इस आवाज़ को अपनी नाभि में छुपा लिया था, जब समस्त सभ्यताओं के देवता इसे बन्दी बनाना चाहते थे...मनुष्य की यह सबसे बड़ी धरोहर है...यह बेलौस, बेखौफ आवाज़! यही मैं आपको सौंपने आई हूँ। इसे स्वीकार कीजिए...क्योंकि कोई अदीब जैसा सरल सहज, सीधा और सत्यनिष्ठ व्यक्ति ही इसे जीवित रख सकता है और सदियों के बाद सदियों तलक इसकी रक्षा कर सकता है...

अदीब ने देवदासी रूना से आवाज़ की सौगात लेकर उसे अपनी धमनियों के रक्त में पैबस्त कर लिया...और देवदासी रूना से बैठने का निवेदन किया।

देवदासी रूना के बैठते ही दस्तकों का शोर बढ़ गया–दस्तकें...दस्तकें और दस्तकें...आख़िर एक दस्तक की ओर देखते हुए अदीब ने पूछा...तुम कहाँ की दस्तक हो?

–अदीबे आलिया, मैं डैन्यूब नदी की घाटी में बसे, उस सर्बिया के कोसोवो प्रदेश की दस्तक हूँ, जहाँ से आप सदियों पहले चलकर सिन्धु के तट पर आ बसे थे डैन्यूब नदी आज भी आप सबको याद करती है...वहाँ के मुर्दे आज बड़ी पीड़ा और तकलीफ से आपको याद कर रहे हैं...

–ऐसा क्या हादसा हुआ है कि कोसोवो के हमारे वंशज तकलीफ से हमें याद करें ? अदीब ने सर्बिया की दस्तक से पूछा।

–सभ्यता की इस प्राचीनतम घाटी में भयानक युद्ध चल रहा है। यह युद्ध इकतरफा है।

–इकतरफा युद्ध !

–जी हाँ अदीबे आलिया ! हमारे भूखंड पर नाटो नाम के एक दशानन ने जन्म लिया है...सागर पार का एक और राक्षस उनका सरगना है। उन्होंने मिलकर सर्बिया और युगोस्लाविया पर हमला करके मुझे श्मशान बना दिया है...सर्बिया प्रभुसत्ता सम्पन्न मेरे ही युगोस्लाविया का हिस्सा है और कोसोवो उसी आज़ाद भूखंड सर्बिया का इलाक़ा है...लेकिन नाटो के राक्षसों और उसके सरगना ने अपने हितों के लिए हमें बरबाद कर दिया है। वे राक्षस अग्नि-ताण्डव कर रहे हैं, वे मेरे स्वायत्तता संपन्न देश को विभाजित करके, कोसोवो को अपने नियंत्रण में रखना चाहते हैं !

–लेकिन क्यों ? आख़िर यह नियंत्रण की राजनीति क्या है ? अदीब ने दस्तक से पूछा।

–अदीबे आलिया ! नियंत्रण द्वारा आत्माओं को तोड़ा जाता है...फिर उन्हें विभाजित किया जाता है...उनमें सांस्कृतिक प्रतिरोध की शक्ति विखंडित की जाती है और तब बाज़ारवादी जोंकें उस विभाजित कौम का सारा रक्त चूस लेती हैं। खंडित संस्कृति के श्मशानों में तब उत्सव के बाज़ार स्थापित होते हैं...धर्म और इतिहास शोषकों के हाथों में खिलौना बन कर नाचते-गाते, जश्न मनाते अपने ही विभाजित अंग के शत्रु और अपने विनाश का कारण बन जाते हैं...बड़ी सभ्यताओं को तोड़कर उन्हें बंदी बनाने के लिए विभाजन का यही रास्ता उन असभ्य अपसंस्कृतियों ने चुना है...जिनके खेतों में सिर्फ बारूद और बन्दूकें उगती हैं...इसी के चलते कोसोवो अपनी लाखों सन्तानों की मृत्यु देख चुका है और लाखों-लाख लोगों के विस्थापन के कारण वीरान हो चुका है। लाखों शरणार्थी इधर-उधर भटक रहे हैं...नाटों राक्षसों के इकतरफा मिसाइली हमले जारी हैं। तेल भंडार और रासायनिक कारखाने धू-धू करते जल रहे हैं...वायुमंडल और आपकी प्राचीन नदी डैन्यूब का पानी विषाक्त हो गया है...मृत्यु पागलों की तरह जिन्दगी का पीछा कर रही है। सर्बिया में इस वक्त लाखों मासूस बिना मौत मर रहे हैं...

–इन बर्बर राक्षसों को किसी ने रोका क्यों नहीं ? अदीब ने सवाल किया, फिर खुद ही नाराज़ी से पूछा–कहाँ है संयुक्त राष्ट्र संघ का वह महासचिव कोफ़ी अन्नान ? उसे अदालत में पेश किया जाए !

अर्दली आदेश लेकर चल पड़ा।

–हुज़ूर ! दज़ला-फ़रात की घाटी में भी यही हुआ है...मौका पाकर एक और दस्तक ने अर्ज़ किया।

–इसका जवाब भी कोफ़ी अन्नान देगा! अदीब ने कहा–उसके आने का इन्तज़ार करो...

इसी बीच अन्य दस्तकें अकुलाने और शोर मचाने लगीं तो अदीब ने उन्हें शान्त किया और देवदासी रूना की ओर मुखातिब हुआ–गिलगमेश की यह आवाज़ तुमने मुझे सौंप दी, इसके लिए बहुत-बहुत शुक्रिया...मैंने इसे अपने रक्त में मिलाकर सुरक्षित कर लिया है। जब तक मनुष्य जाति है, उसकी धमनियों में दौड़ता हुआ रक्त है, तब तक यह आवाज़ जीवित रहेगी।

–सावधान रहना अदीब! इसीलिए अब मनुष्य विरोधी शक्तियाँ रक्तपान और रक्पात की परम्परा शुरू करेंगी...देवदासी रूना ने कहा–हालाँकि देवताओं की संस्कृति रुग्ण, पतित और व्यभिचारी हो गई है, फिर भी वे कायर लोग आवाज़ को छीनने के लिए कुछ भी कर सकते हैं, इसलिए अदीब! सावधान रहना...

तभी अर्दली हाज़िर हुआ। कोफ़ी अन्नान उसके साथ नहीं थे। उसे अकेला देखकर अदीब का पारा चढ़ गया–तुम कोफ़ी अन्नान साहब को नहीं लाए!

–हुज़ूर! यह पता लगते ही कि आपने उन्हें तलब किया है, कोफ़ी अन्नान साहब की छाती में तेज़ दर्द उठा, उन्होंने शिकायत की कि उन्हें साँस लेने में भी तकलीफ़ हो रही है...इसलिए फ़िलहाल वो अस्पताल में दाखिल हो गए हैं...ऐसी हालत में उन्हें लाना मुनासिब भी नहीं था और मुमकिन भी नहीं...

–तो अस्पताल में जाकर कोफ़ी अन्नान से कहो कि दुनिया की छाती में जो तेज़ दर्द बार-बार उठता है...और उसे साँस लेने में जो तक़लीफ लगातार हो रही है, उसके इलाज के लिए उन्हें इस दुनिया का कामकाज सौंपा गया था, लगता तो यहाँ तक है कि एक ध्रुवीय शक्ति के पक्ष में उन्होंने अपने वह नैतिक हथियार भी डाल दिए हैं, जो बड़ी उम्मीद से उन्हें सौंपे गए थे...इसी का नतीजा है विभाजन और दुर्दान्त दमन का यह दौर...अगर कोफ़ी अन्नान भूल गए हैं तो उन्हें याद दिलाओ कि आर्थिक संस्कृतियों के संघर्ष के नाम पर जो युद्ध चले और चल रहे हैं...वे हर देश और संस्कृति के आम आदमी के विनाश का कारण बन रहे हैं वे अंधेरे इतिहास और धर्मांध विश्वास को जन्म देकर जन और जातिसंहार के वाहक बन गए हैं। जब तक ये युद्ध चलते रहेंगे, तब तक विकलांग जातियाँ जन्म लेती रहेंगी जीने...के लिए अवैध और अनैतिक संसाधनों की दुनिया कायम होती चली जाएगी डैन्यूब जैसी नदियों की मछलियाँ बार-बार मरती रहेंगी। मानव रक्त से सिंचित खेतों में अन्न नहीं, विषैले धतूरों की काँटेदार फसलें उगेंगी। उन जातियों की स्त्रियाँ व्यभिचार और बलात्कार के लिए अभिशप्त होंगी...सन्तानें मनोरोग और व्याधियों से ग्रस्त होंगी। धर्म के नाम पर अधर्म की आंधियाँ चलेंगी और सत्ता के एकीकृत सिंहासन पर नरमुंडों की माला

पहने कोई निरंकुश एकाधिकारी शासक विद्यमान हो जाएगा! कोफ़ी अन्नान से जाकर पूछो, क्या इसी भविष्य के लिए उन्हें राष्ट्रों का संयुक्त लोकतंत्र सौंपा गया था?

–हुजूरे आलिया! मैं आपके इस बड़े और पुरजोश भाषण को ले तो जाऊँगा लेकिन शायद कोफ़ी अन्नान साहब को इसकी बारीकियाँ समझा नहीं पाऊँगा। बेहतर यही होगा कि जब वे अदालत में हाज़िर हों, तब आप उन्हें इस तकरीर का मतलब समझा दीजिएगा!

–मैं जानता हूँ वे कभी भी यहाँ हाज़िर नहीं होंगे...क्योंकि यह मनुष्य के मन की शाश्वत अदालत है...क़ानून के नाम पर क़ानून और धर्म के नाम पर धर्म का व्यापार करनेवालों के पास इतना साहस नहीं कि वे इस अदालत में हाज़िर हो सकें!

देवदासी रूना ने तब चलने की इज़ाज़त माँगी।

उसे विदा देते हुए अदीब ने इतना ही कहा–

–देवदासी रूना! अपना ख़्याल रखना...क्योंकि देवलोक के देवता अब तुम्हें माफ़ नहीं करेंगे...प्रमथ्यु तो अब तक मनुष्य के लिए आग चुराने के जुर्म में सदियों से सज़ा भुग रहा है...अब मनुष्य के हित में गिलगमेश की आवाज़ चुराने के जुर्म में वे तुम्हें क्या सज़ा देंगे, यह सोचकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं...मैं तुम्हारे शुभ की कामना करता हूँ...

शुभकामनाएँ लेकर देवदासी रूना अन्तर्ध्यान हो गई।

उसी के साथ दस्तकों का शोर बढ़ने लगा।

अदीब के कान के पर्दे फटने लगे। उसने दोनों हथेलियों से कानों को दबा लिया। फिर अर्दली से बोला–

–कहीं और चलो...मुझे यहाँ से कहीं ओर ले चलो...कहीं भी।

–कहाँ ले चलू अदीबे आलिया ? बाहर तो शोर और भी ज़्यादा है...हाहाकार,चीत्कार, आगज़नी, सामूहिक हत्यायें, बलात्कार, चीख़ पुकार, अपहरण, अजन्मे बच्चों के लोथड़े, कीड़े पड़ी बिजबिजाती फूली हुई लाशें, अर्धजीवित और मृत देहों का मांस खा-खाकर थके हुए लकड़बग्घे, कुत्ते, गिद्ध...और रक्त-प्लावन का दृश्य! यह तो सहस्रों साल पहले हुए जल-प्लावन से भी भयंकर दृश्य है।

–कुछ भी हो...मुझे यहाँ से ले चलो! अदीब ने कहा तो अर्दली को आज्ञा पालन करना ही था। वह अदीब को एक नाव में बैठाकर रक्त का महासागर पार करने लगा। लेकिन उसका कहीं अन्त ही नहीं था...रक्त बहुत गाढ़ा था इसलिए उसे नाव खेने में बहुत दिक्क़त हो रही थी। बहुत दूर निकल जाने पर अर्दली को एकाएक लाशों का एक पहाड़ नज़र आया। वह भी रक्त के महासागर में पतवार चलाता-चलाता बेहद थक गया था। शवों की एक चट्टान से उसने नाव बाँध दी। अदीब उस चट्टान की छाया में बैठ गया। उसके कानों में कुछ गूँजने लगा...उसने इशारे से अर्दली को पास बुलाया और पूछा–तुम्हें शब्दों की कोई अनुगूंज सुनाई पड़ रही है?

–नहीं हुजूर...

–लेकिन मेरे कानों में जयशंकर प्रसाद के शब्द गूँज रहे हैं : हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह...एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह ! मुझे सुमेरी सभ्यता की देवी इनन्ना का आर्त्तनाद भी सुनाई पड़ रहा है। वह चीख रही है–क्या मेरी सन्तति मरने के लिए है ? इस तरह की अप्राकृतिक मौत से मरने के लिए है ?

अर्दली ने उसे ग़ौर से देखा।

–मुझे लातीनी-यूनानी गाथाओं के देवताओं के स्वर भी सुनाई दे रहे हैं। वे जल प्रलय से बचने के लिए ओलंपस पर्वत पर एकत्रित हो गए हैं। ईसाइयों के परमपिता कह रहे हैं–नूह ! धरती पर मनुष्य की दुष्टता बेहद बढ़ गई है। मैंने जिस मानव को सिरजा है, उसे ही नहीं, मैं सभी जीवधारियों को मिटा दूँगा, क्योंकि धरती हिंसा से भर उठी है। जीवों के आचार विचार भ्रष्ट हो चुके हैं...मैं पृथ्वी पर जल प्रलय करके सारे जीवधारियों का नाश कर दूँगा...मुझे प्रसन्नता है नूह कि मेरी इस सृष्टि में तू अकेला आचारवान बचा है। मैं तेरी रक्षा करूँगा, इसलिए तू तीन महले वाली काठ की एक नाव बना ले और उसमें घुस जा...इस जल-प्रलय में मात्र तू जीवित रहेगा !

अर्दली ने अदीब को चिंता से देखा।

–याद है तुम्हें ? अदीब ने अर्दली से कहा–पृथ्वी के विनाश के लिए देवता जीयस ने बादलों का आकाश मार्ग खोल दिया था। तब चीन में यू ने प्रलय की जलधाराओं के लिए मार्ग बनाकर उन्हें समुद्र में प्रवाहित किया था और ची नदी की मिट्टी को अपनी बाँहों में समेट लिया था, ताकि प्रलय के बाद बीज डालकर मनुष्य के लिए अन्न उपजाया जा सके...याद है तुम्हें ?

–नहीं हुजूर...मुझे तो ऐसा कुछ भी याद नहीं। अर्दली ने बेरुखी से कहा।

–न भी याद हो, तो भी क्या कोई चीन के यू की तरह हमारे दौर में पैदा नहीं हो सकता जो इस रक्त-प्रलय को रोक सके ?

–हुजूर...गाँधीजी ने कोशिश तो बहुत की थी, लेकिन वो अकेले पड़ गए...

–हाँ...अदीब ने कहा...इस रक्त प्रलय के बाद जब कभी अग्नि-प्रलय आएगी, जो दूर नहीं है, तब हमें गाँधी जी की अहिंसा और आइंस्टीन के पश्चाताप की बहुत ज़रूरत पड़ेगी।

–आइंस्टीन कौन ?

–वही, जिन्होंने प्रकृति के रहस्य को भेद कर ऊर्जा के शृंखलाबद्ध विस्फोटों का रिश्ता खोज निकाला था...महमूद अली !...समझ में नहीं आता, हर महापुरुष का जीवन एक शोक गीत की तरह ही क्यों समाप्त होता है...क्यों हर बड़े विचार और आविष्कार के बाद दानवों का उदय होता है ?...जब जल प्रलय हुआ था, तब दैत्य हयग्रीव वेदों को चुरा ले गया था। तब शृंगी मछली ने सिर्फ़ जलाहार करने वाले राजा सत्यव्रत को जीवित रहने का

मंत्र दिया था और उसी शृंगी मछली ने राक्षस हयग्रीव का वध करके वेदों के ज्ञान का उद्धार किया था...शब्द की रक्षा की थी तभी प्रलय के बाद सत्यव्रत को श्रद्धा मिली थी और मनुष्य सृष्टि की शुरुआत हुई थी। सारी सभ्यताएँ जल प्रलय की साक्षी हैं, लेकिन इस रक्त प्रलय के साक्षी केवल हम हैं...वल यह धरती रक्त के इस पारावार को सोख-सोख कर समतल बना रही है। रक्त की सतह धरती में समाती जा रही है...यह रक्त-जल घट रहा है, लेकिन न मालूम इस रक्त प्रलय के बाद सृष्टि का निर्माण होगा या नहीं? होगा भी तो कैसा होगा?

–आप चिन्ता क्यों कर रहे हैं अदीबे आलिया...आदि मनु सत्यव्रत और श्रद्धा की तरह बूटा सिंह और जेनिब ने यह दायित्व सँभाल लिया है...

•

10

बूटासिंह ने कपड़ों की जोड़ी लाकर जेनिब के पास रख दी और पूछा–निकालूँ!

–तुम बाहर जाओ, मैं निकल आऊँगी...

धीरे-धीरे जेनिब रेत के गड्ढे से निकल आई। उसने तार-तार हुई कुर्ती को उतारा और वहीं संभाल कर रख दिया। न जाने कब ज़रूरत पड़ जाए। घाघरा तो उसने चींथ डाला था। उसमें नाड़े के नेफे के सिवा कुछ बचा ही नहीं था। उसे खोल कर उसने एक तरफ फेंक दिया। फिर उसने बूटा सिंह वाले बाजार से लाए घाघरे को देखा और उसे पहन कर नाड़ा कसने लगी।

तभी उसकी पीठ पर बूटा सिंह की आवाज़ आई–सजने-सँवरने में क्या इतनी देर लगती है ?

जेनिब ने वहीं से कहा–अभी बाहर रहना...और काँचली को पहले पेट पर ठीक किया, फिर बाहर झाँकती छातियों को अन्दर दबा दिया। कुर्ती पहन कर ऊपर से ओढ़ना डाल लिया। तब उसने आवाज़ लगाई–आ जाओ !

बूटासिंह अन्दर आकर बैठ गया। आदत के मुताबिक वह बुदबुदाया–ओंकार...ओंकार...सतनाम...उसके ओठों से आवाज़ तो नहीं फूटी थी, पर जेनिब ने अंदाज लगाकर कहा–वाहे गुरु को सिमरन कर रहे हो ?

–कर तो रहा हूँ, लेकिन तुमने कैसे जाना ?

–कभी-कभी हमारे यहाँ सिन्ध सूबे के नानकी आके ठहरा करते थे...उन्हीं से सुनती थी वाहेगुरू का नाम...हमारे घर के ओसारे में संगत भी हो जाती थी।

–तब तो ठीक है...बूटासिंह ने निश्चिन्तता से कहा–अगर हुकुम हो तो एक बात कहूँ !

–कपड़े पहना दिए हैं तो कुछ भी कह सकते हो...जेनिब ने कहा, पर उसकी बात में कोई पेंच नहीं था।

–नहीं...औरत के कपड़े तो कोई भी मर्द उतार देगा, पर ढाणी के दो एक बुजरुग कह रहे हैं कि तुम आ ही गई हो तो तुमसे ब्याह कर लूँ...साथ रहके दूर-दूर रहना ठीक नहीं होगा।

–जैसी तुम्हारी और ढाणी के बुजुर्गों की मर्जी ! जेनिब ने कहा।

–लेकिन एक बात है ?

–क्या ?

–मेरे सगे भाई नहीं चाहते कि मैं शादी करूँ!

–तुम शादीशुदा हो क्या?

–नहीं, शादी तो मेरी आज तक नहीं हुई...जो भी रिश्ता आया, उसे मेरे भाई उटकाते रहे। असल में उन्हें मेरी शादी मंजूर ही नहीं थी।

–क्यों?

–वैसे भी खेतों में पैदावार नहीं है। जो कुछ होती है उससे उन्हीं के बाल बच्चों का पेट भर जाए, यही काफ़ी है। मेरी शादी होती, बाल बच्चे होते तो गरीबी और बढ़ जाती...खेतों का बँटवारा होता। जिन्दा रहने की मारामारी में कुछ भी हो सकता था...इसीलिए वे लोग हमारी शादी के खिलाफ़ हैं...कहकर बूटा सिंह रेती को हथेलियों में उठा-उठा कर छानने लगा।

–तुम परेशानी में मत पड़ो! जेनिब ने कहा–मैं बिना शादी के भी तुम्हारे साथ अपने मन की भरी-पूरी जिन्दगी गुज़ार लूँगी। औलाद तो बाद की बात है। तुम अपने भाइयों की वजह से शादी नहीं भी करोगे, तो भी मुझे तुम्हारे साथ रहना मंजूर है!

–नहीं जेनिब...मैं तुमसे शादी करूँगा! नहीं तो मैं जिन्दगी भर हर रात तुम्हें रेत के गड्ढे में गाड़ कर तुम्हारा साथ दूँगा...

–आमीन! जेनिब ने अपनी हथेलियाँ आँखों से लगाते हुए कहा!

और तब गाँव के बड़े दुशाली सिंह ने यह ज़रूरी समझा कि बूटासिंह और जेनिब का आनन्द-कारज हो जाना चाहिए। बूटासिंह के भाई भाभियों ने यह सुना तो उनके कान खड़े हुए। वे दुशाली सिंह के पास समझाने बुझाने और शादी का विरोध करने पहुँचे। बुजुर्गों ने नहीं माना बल्कि ऊपर से उन्हें फटकार दिया...कैसे भाई भौजाई हो तुम लोग...अपने स्वारथ के कारण उसे अनब्याहा रखा। अब एक औरत उसके घर आ ही गई है तो शादी ब्याह करके उसका साथ-साथ रहना सही होगा। आख़िर औरत की भी कोई मरजादा होती है...

बुजुर्गों ने जेनिब की मरजादा रखी। भाइयों के विरोध पर कान न देकर, उन्होंने पास के गाँव के गुरुद्वारे में दोनों को ले जाकर गुरु ग्रंथ साहब को साक्षी बनाया और बूटा सिंह का जेनिब के साथ आनन्द-कारज हो गया।

वाहे गुरु की कृपा हुई। समय आने पर जेनिब ने बूटा सिंह को एक नन्हीं-मुन्नी बेटी का बाप भी बना दिया। दोनों ने मिलकर बिटिया का नाम तनवीर कौर रखा।

जिस साल बिटिया तनवीर पैदा हुई, उन सर्दियों ने एक बहुत ही खूबसूरत नज़ारा देखा। उत्तर के देशों से उड़कर हजारों-लाखों पंछी उनके देस में आए थे...

•

11

उस वक्त जब जेनिब अपनी जिन्दगी का फैसला रेगिस्तान की उस ढाणी में ले रही था, उससे पहले हिन्दुस्तान का आख़िरी वायसराय लार्ड माउंटबेटन दिल्ली में वायसरॉय हाऊस के निजी शयनकक्ष में अपनी पत्नी एडविना माउंटबेटन से घुटी-घुटी आवाज़ में गुस्से से कह रहा था–तुम विभाजन के सताये, बरबाद हुए, मारे गए लोगों की हिमायत मत करो...म्राज्यों के इतिहास में यह मामूली घटनाएँ हैं...और सुनो ऐडविना माऊंटबेटन! तुम अब एडविना एशले नहीं हो...तुम इंडिया के वायसराय और गवर्नर जनरल की ब्याहता बीवी हो इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य की परम्पराओं का पालन करो...शरणार्थियों की तकलीफ़ और हमारे फैसले के तहत बनाए गए पाकिस्तान...की सरहद पर जो नरसंहार हो रहा है, उस पर आँसू बहाना बन्द करो...ब्रिटिश साम्राज्य आँसुओं के हस्तक्षेप को मंजूर नहीं करता।

–ब्रिटिश साम्राज्य के पास आँसू नहीं है...यह मुझे मालूम है...लेकिन लुईस ! विभाजन की जो त्रासदी, अमानवीय त्रासदी तुमने पैदा की है, उसे देख कर एल्प्स और प्रेरेनीज़ की पहाड़ी चट्टानें भी रो पड़तीं...एडविना ने कहा–लुईस ! क्या तुम्हारी ईसाई करुणा बिल्कुल मर गई है ?

–करुणा-वरुणा की बात छोड़ो एडविना ! और सुनो...इन हिन्दुस्तानी विस्थापितों और मुर्दों के लिए तुम्हारी आँखों में जो आँसू आते हैं वे ब्रिटिश राजघराने और ब्रिटिश जाति के लिए लांछन हैं। उन्हें सुखाने और राहत पाने के लिए तुम भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के कंधे पर सर रख कर, उनके सीने से चिपक कर ब्रिटिश साम्राज्य के पश्चाताप का इज़हार करो, यह मुझे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं...

–डिकी ! तुम कहना क्या चाहते हो ? एडविना ने लार्ड लुई माउंटबेटन को उस घरेलू नाम से पुकारा, जो बचपन में उनकी दादी, ग्रेट ब्रिटेन की साम्राज्ञी ने उन्हें दिया था।

वायसराय लार्ड लुई ने अपने को सँभाला।

–इतनी बड़ी, भयंकर और दिल दहला देने वाली रक्तरंजित त्रासदियों में शाही शिष्टाचार के रूमाल नहीं, मित्रों और अजनबियों तक के कन्धे काम आते हैं...समझे डिकी ! एडविना ने तुर्शी से कहा।

उन्हें लगा कि वे जो कुछ कह गए थे, शायद वह उचित नहीं था, इसका एहसास उन्हें हुआ। उन्होंने एडविना को शर्मसार नज़रों से देखा। एडविना ने उन्हें। तब वे बोले–एडविना...च तो यह है कि इतना नरसंहार देख कर मैं भी विचलित हूँ...दूसरे विश्व युद्ध में

बर्मा के फ्रंट पर भी इतना खून-ख़राबा नहीं हुआ था, जितना इस विभाजन में हुआ और होने जा रहा है...मैं इंडिया को अखंड रखना चाहता था महात्मा गांधी, नेहरू, पटेल, गफ़्फ़ार खाँ और यहाँ तक कि जिन्ना भी विभाजन के मसविदे को लेकर उदास थे...

–जिन्ना भी! एडविना ने आश्चर्य से कहा–यह तुम क्या कह रहे हो?

–हाँ एडविना हाँ...!

–लेकिन 2 जून वाली तुम्हारी मीटिंग में तो जिन्ना ने केबिनेट मिशन प्लान को नामंज़ूर करते हुए हिन्दुस्तान की एकता के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था...उन्हें विभाजन चाहिए था और विभाजन के सिवा कुछ नहीं!

–यही तो विद्रूप और विडम्बना है...पहले विश्व युद्ध के बाद मजबूरी में ही सही, साम्राज्यवाद को अधिक उदार और उत्तरदायी बनना पड़ा है...और गाँधी के साथ दुनिया में पहली बार जो जनांदोलन शुरू हुए हैं, उन्होंने सत्ता के केंद्र को बदल दिया है। गाँधी ने पहली बार सत्ता को धारण करने के औचित्य की अवधारणा को राजवंशों से छीन कर जनता को सौंप दिया है! यहीं से इस दुनिया का रूप बदलना शुरू हुआ है...

एडविना ने प्रश्नवाचक नज़र से लार्ड लुई माउंटबेटन को देखा।

–यहीं से विडम्बनाएँ पैदा हुईं...कोई सम्राट अपने फैसलों को कई बहानों और तरीकों से बदल सकता है। वह प्रधानमंत्री, सिनेट या सलाहकारों का सहारा लेकर अपनी इज्ज़त बचा सकता है...लेकिन जनता के लीडरों की जो नई जमात आई है, वह अपने सार्वजनिक उद्रेक में जो कुछ कह जाती है, उन स्थापनाओं से पीछे नहीं हट सकती...यही मोहम्मद अली जिन्ना की विडम्बना और त्रासदी है! उन्होंने एक बार सार्वजनिक तौर पर इंडिया का विभाजन माँग लिया तो फिर उनका मन चाहे जितना पछताता रहे, पर वे उस माँग से पीछे नहीं हट सकते हटेंगे तो वे अपना नेतृत्व खो देंगे!...किसी नेता को यह गवारा नहीं होता। जनता की भावनाओं को भड़का कर पैदा किए गए आंदोलनों की यही ताक़त और कमज़ोरी है...एक बार जो कह दिया गया, वह बाद में चाहे अनुचित और ग़लत लगने लगे, पर उसे बदला नहीं जा सकता...अगर बदला गया तो रूढ़ और घटिया ताकतें परिवर्तित विचार की दुश्मन बन कर सामने आ जाती हैं...एडविना! मैं गवाह हूँ...यही जिन्ना के साथ हुआ है! उन्होंने बड़ी शिद्दत से पाकिस्तान माँगा और जब तमाम विकल्पों को तलाशने और ख़ारिज करने की मुश्किल प्रक्रिया से गुज़रने के बाद मैंने उनके सामने पाकिस्तान और विभाजन का प्रस्ताव रखा तो वे ख़ामोश और उदास थे...उन्होंने न हाँ किया, न ना किया!

–तब?

–तब मैंने उनसे कहा था कि आख़िर मैंने उन्हें वही दिया है, जो उन्होंने माँगा है...और मैंने विभाजन की ज़रूरत को पं. नेहरू, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी से मंज़ूर करवा लिया है। इतना ही नहीं, विभाजन से जिन सिखों को सबसे ज़्यादा तकलीफ और

नुकसान उठाना पड़ेगा, उनके नेता सरदार बलदेव सिंह को भी मैंने अन्ततः सहमत कर लिया है, तो अब उन्हें पाकिस्तान के निर्माण के ऐतिहासिक अवसर से पीछे नहीं हटना चाहिए...विभाजन को मंजूर करना चाहिए!

—तब...तब उन्होंने क्या कहा?

—तब, कुछ पलों तक वे ख़ामोश रहे, फिर उन्होंने पूछा—क्या गांधी विभाजन को मंजूर करते हैं? तो मैंने कहा था, मुझे तो नहीं लगता कि वे मंजूर करेंगे...विभाजन के फ़ैसले को लेकर गांधी ही सबसे बड़ी समस्या हैं...अगर आप, लियाकत अली खान, अब्दुल-रब-निश्तर अब विभाजन मंजूर कर लें तो इंडिया की आज़ादी का मसला अभी और यहीं हल हो सकता है!

—इस पर उनकी क्या प्रतिक्रिया थी?

—उन्होंने कहा कि अपनी पार्टी मुस्लिम लीग से सलाह-मशवरा करने से पहले वे कुछ नहीं कह सकते। तब मुझे नाराज़गी से कहना पड़ा था कि मुस्लिम लीग तो ख़ुद आप ही हैं। आपके बिना मुस्लिम लीग कहाँ है? इस तर्क के बाद भी जिन्ना ख़ामोश रहे...

□ □

इतिहास रुका हुआ था। उसे कोई पछतावा नहीं था। पछताता तो इन्सान है, इतिहास नहीं।

गली कासिमजान में अपने नसीब को ठोंकता सत्तार बैठा हुआ बहस कर रहा था—पाकिस्तान तो बन गया...अब जिन्ना साहब खामोश रहें या बोलें...क्या फ़र्क़ पड़ता है। जिस दिन रामदयाल मेरे सलाम का जवाब दिए बिना, कतरा के निकल गया, मैं जान गया था—पाकिस्तान बनने की शुरुआत हो गई है...

—वो तो ठीक है...लेकिन इन अंग्रेज़ के बच्चों को सोचना चाहिए...सदियों पहले सौदागर की तरह सलाम करते आए थे, वैसे ही सलाम करो और अपने मुल्क लौट जाओ...जो कमा लिया, वो तुम्हारी किस्मत...ले जाओ...पर जो हमारा है वो तो ख़ुशी-ख़ुशी छोड़ जाओ...

—और क्या...रियासतों-नवाबों के झगड़े तो तब भी थे, जब तुम आए थे। अब चौधरी बनके तुम्हें झगड़े सुलझाने का क्या हक़? अरे भई, तुम हमें खुदा के हवाले छोड़ो, दुआ-सलाम करो और जाओ!

—कभी-कभी कांग्रेस के महात्मा गाँधी जी खरी बात कह देते हैं...वो भी बिल्कुल यही कह रहे हैं...नजमुल ने कहा।

—सुना है कि वोट पड़ेगा तब ही पाकिस्तान बनेगा...महात्मा जी की बात तो हिन्दू भी सुनता है औ' थोड़ा-बहुत मुसलमान भी...मज़ा आ जाए अगर महात्मा जी हिन्दुअन का सारा वोट पाकिस्तान की ख़ातिर डलवाय दें, तब जिन्ना साहब का करेंगे?

–जब जिन्ना साहब नेतागीरी छोड़कर अपनी बैरिस्टरी करै की खातिर बम्बई लौट जइहैं...और का...

–तो हम भी सोच रहे हैं, अपने गंगोली लौट जाएँ...हालात बिगड़ते जा रहे हैं। यहाँ जौन बक्सा लाए हैं, उसे तो कोई भी लूट सकता है...पर गंगोली की हमारी ज़मीन तो कोई नहीं लूट सकता। न मालूम जिन्ना साहब क्या करवा के रहेंगे!

और दूसरे ही दिन सत्तार ने ग़ाज़ीपुर वाली गाड़ी पकड़ ली।

□ □

वक्त फिर परेशान और चिन्ताग्रस्त अवाम के बीच से उठकर वायसराय हाउस की शानदार स्टडी में पहुँच गया। वहाँ वायसराय माउंटबेटन और मोहम्मद अली जिन्ना मौजूद थे। उनकी तरफ देखते हुए माउंटबेटन ने कहा–आप कल तक अपनी मुस्लिम लीग से मशवरा कर लीजिए...

–मुस्लिम लीग से मशवरा करने में मुझे कम से कम एक हफ्ता लगेगा। जिन्ना ने कहा।

–देखिए मि. जिन्ना...फैसला लेने में इतना वक्त बरबाद नहीं किया जा सकता...

–लगता है आप हमसे ज़्यादा जल्दी में हैं!

–आप जो भी कहें, देखिए आज सन् 1947 के जून महीने की 2 तारीख हैं और मैं कल 3 जून को भारत के विभाजन की घोषणा कर देना चाहता हूँ...आप पाकिस्तान माँग रहे थे। हम आपको पाकिस्तान दे रहे हैं। दुनिया जानती और मानती है कि पाकिस्तान कभी नहीं बन सकता...लेकिन ब्रिटिश क्राउन तश्तरी में पाकिस्तान रखकर आपको पेश कर रहा है...अब आप हिचक क्यों रहे हैं?

जिन्ना साहब ख़ामोश रहे। वे कुछ नहीं बोले।

–कल की मीटिंग में कांग्रेस की तरफ से पंडित नेहरू, सरदार पटेल, और आचार्य कृपलानी मौजूद रहेंगे। सिखों के नुमाइंदे बलदेव सिंह मौजूद होंगे। आपके साथ लियाकत अली खान और अब्दुल-रब-निश्तर मुस्लिम लीग की नुमाइन्दगी कर रहे होंगे...आपके सामने उनकी बोलने की हिम्मत नहीं पड़ेगी। मैं इंडिया के विभाजन की योजना पेश करूँगा, तब तक भी आप अगर अपने एकाएक जाग उठे ज़मीर की आवाज़ की वजह से खुले शब्दों में पार्टीशन मंजूर न कर सकें, हाँ न कह सकें, तो आप किसी भी अंदाज़ में अपने सिर को थोड़ी-सी जुम्बिश दे दें...उस जुम्बिश के मानी क्या हैं, यह मैं तय कर दूँगा!

जिन्ना साहब ने माउंटबेटन की तरफ देखा और महसूस किया कि शतरंज की अपनी बाज़ी में वह अंग्रेजी साम्राज्य की सत्ता के मोहरे बन गए हैं। उन्हें उन्हीं का शब्द सौंपा जा रहा था...पाकिस्तान!

वक्त गवाह है–जिन्ना की नसों में बहता ख़ालिस हिन्दुस्तानी ख़ून जम गया था और उन्होंने एकाएक महसूस किया था कि आपसी ज़िदों, छोटे-छोटे अपमानों और प्रतिस्पर्धात्मक अहंकार से जन्मी ख़लिश कैसे एक चुनौती बन जाती है और वह क़ौम के सपने को तोड़ कर ज़ाती मुकाबले को छुपाते हुए, अपने तरफदारों को कैसे एक विकलांग और धर्मांध सपना सौंप देती है!

वक्त ने ऐलान किया–उस वक्त जिन्ना साहब की रूह उनके जिस्म से निकल कर अपनी बीवी रति की क़ब्र पर चुपचाप खड़ी थी। रूह कुछ बोली तो नहीं, लेकिन उसका वहाँ होना ही बोलना था...उसी क़ब्रिस्तान में उनकी रूह की मुलाक़ात गोपालकृष्ण गोखले की रूह से हुई थी। दोनों रूहें एक-दूसरे को सिर्फ़ ताकती रही थीं...फिर यह तो इतिहास का तकाज़ा था कि सन् 1947 की तारीख 3 जून को जिन्ना की रूह को लौटना पड़ा और जब माउंटबेटन ने इंडिया के विभाजन का प्रस्ताव अलग-अलग पार्टियों के सामने पेश किया तो जिन्ना साहब ने न ना किया और न हाँ। उन्होंने अपने चेहरे की ठोड़ी को जुम्बिश देकर सिर्फ़ आधा इंच नीचे किया और उसी मुद्रा में बैठे रहे...

□ □

उसी वक्त अदीब ने देखा–गंगौली से घबराया हुआ राही मासूम रज़ा उसकी ओर तूफ़ान की तरह भागता चला आ रहा है...अदीब ने उसे बाँहों में लेकर सँभाला और पूछा कि क्या हुआ ? राही की हाँफती साँसों ने थोड़ी-सी राहत लेते हुए बताया–

–सुनो...सुनो...वह आठ दस साल का बच्चा दुल्लन क्या नारा लगाके घर में दाख़िल हुआ है...

–ले के रहेंगे पाकिस्तान!

–केसे लेबे पाकिस्तान? फुन्नन मियाँ ने आँखें तरेर कर सवाल किया।

–अलीगढ़ बालन से! दुल्लन ने कहा।

तो कुलसुम ने टीप लगाई–अरे ओई जौनऊ अलीगढ़ से आए रहे...काली शेरवानी वाले। वो उंगलियों में सिगरेट दबाए हाथ घुमा-घुमा कर मियाँ लोग को बता रहे थे कि क़ुर्आन-शरीफ़ में कहाँ-कहाँ अल्लाह मियाँ ने मुस्लिम लीग को वोट देने का हुक्म दिया है...

–और उधर आम के बाग़ में कथा चल रही थी...तीन बरस पहले बेवा होने के बाद मुसलमान हुई नज्जो बुआ बोली–तिलकधारी पंडित ने बताया कि तब भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा–हे अर्जुन! हूँ तो मैं हूँ मेरे सिवाय कोई और नहीं है...और आज गीता का वही मुरली मनोहर भारत के हर हिन्दू को पुकार रहा है कि उठो और गंगा-जमुना के पवित्र तट से इन म्लेच्छ मुसलमानों को हटा दो...

–हियाँ से हट के हमनी कहाँ जाए के पड़ी? पंडितजी का ऐलान सुनने के बाद एक अधेड़ मुसलमान बफाती ने अपने हिन्दू लंगोटिया-यार से पूछा। दोनों बचपन के गहरे दोस्त

थे, साथ खेले हुए थे। तब उसके बचपन के हिन्दू दोस्त कन्हैया ने कहा–अब जहाँ आराम मिले, चले जाओ। और फिर किशन भगवान का हुकुम है कि तुमको गंगा-जमुना के किनारे से हटाय दिया जाए, तो हटाना तो पड़ेगा औ' जिन्ना साहब का पाकिस्तान तो बन ही रहा है...आराम की ज़िन्दगी काटे की ख़ातिर उधर ही चला जा...

–तुम तो कह दिया–चला जा...लेकिन पाकिस्तान जाए का किराया-भाड़ा भी जुट गया, तो भी ई हमार खेतवा कइसे जाई पाकिस्तान?

–ई तो बहुत भारी मसला है...पाकिस्तान बन ही गया तो बफाती का खेतवा कइसे जाई पाकिस्तान?

–हाँ, अब देखो न...बफाती बोला–जिन्दगी त हिआँ गुजारल, अब मरे किनारे अइलीत पाकिस्तान जाईं? अब चाहे कुरआन शरीफ का आयत बोले या तुम्हरे गीता के किसन भगवान...हम त ना जाइब पाकिस्तान...

□ □

इसी समय दूसरी आलमी जंग के बाद तन्नू मेजर हसन बनकर गंगौली लौट रहा था। सुना तो उसने भी था कि अगर बँटवारा हुआ तो फ़ौज का बँटवारा भी होगा। असल में जंग खत्म होते-होते इटली के मोर्चे पर दुश्मनों ने उसे युद्धबन्दी बना लिया था, इसलिए उसके छूटने और लौट कर आने में बहुत देर हो गई थी।

...नील के पुराने गोदाम को देखकर उसकी आँखें भर आईं। फिर उससे इक्के पर न बैठा गया। वह इक्के से कूद पड़ा। इक्केवान ने लगाम खींच ली। घोड़ा उस बूढ़े रास्ते पर रुक गया।

–तुम चलो...मैं आता हूँ! तन्नू ने कहा।

गन्ने के खेतों से हवा सरसरा रही थी। वह आगे बढ़ गया।

सामने ही फुस्सू मियाँ की खम्बिया थी। बन्द दरवाज़ों की दराज़ों से ज़नाने इमामबाड़े में जलने वाले पेट्रोमेक्स की रोशनी झाँक रही थी। दालान में दो पलंग थे और उनसे मिली हुई कपड़े की कुछ आराम कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। उस दालान को देखने के बाद तन्नू के लिए धीरे-धीरे चलना असम्भव हो गया।

–फुस्सू-चा आदाब! उसने दूर से ही नारा मारा।

–जीते रहो! कहते हुए उन्होंने उसे लिपटा लिया।

और तब एक साथ सबने सबको याद किया। तन्नू के अब्बा मरहूम को याद किया गया...आज भाई साहब होते त कइसे खुश होते! सल्लो का ज़िक्र भी हुआ। दादा जवाद मियाँ अपनी दाढ़ी फटकारते हुए आए। छोटी दा रब्बन बी तो थी हीं–भीतर गया तो उन्होंने

उसे लिपटा लिया। सल्लो की माँ सकीना ने चटाचट उसकी बलाएँ लीं। फिर सलमा, कुबरा, सय्यदा, उम्मे लैला, कनोज़, रबाब और महजबीन ने उसे सलाम किया। और अन्त में छोटी दद्दा ने उसे देखते हुए पूछा–अच्छा, अब तनी ई बतावा कि लड़ैइया बिलकुल ख़त्म हो गई कि कउनो कोर-कसर बाकी है अभईं ?

–जी लड़ाई बिलकुल खत्म हो गई ! तन्नू ने छोटी दद्दा को पूरा दिलासा दिया।

□ □

...सुबह उठा। नाश्ता किया और हाथ धो के बाहर चल दिया। वह आगे बढ़ा तो दाहिनी तरफ बँसबाड़ी के पास लड़कों का एक गोल 'मुस्लिम लीग ज़िन्दाबाद !' का सबक याद कर रहा था...गला फाड़-फाड़कर। तन्नू इन बच्चों को देख कर मुस्करा दिया। लड़कों के उस जुलूस में कई हिन्दू लड़के भी थे और वह भी गला फाड़-फाड़ कर मुस्लिम लीग को जीने की दुआ दे रहे थे।

–ई कऊन किसिम का पाकिस्तान बन रहा है भाई ? तन्नू ने मुस्कराते हुए पूछा तो लड़के नारे लगाते बंसबाड़ी की उत्तर तरफ भाग गए। आवाज़ें आती रहीं–

–नारये तकबीर !

–अल्लाहो अकबर !

–काइदे आज़म !

–जिन्दाबाद !

–मुस्लिम लीग !

–जिन्दाबाद !

और एकाएक तन्नू ने पाया कि वह हकीम साहब के बड़े फाटक में हैं। उसने जल्दी से हकीम साहब को आदाब किया। वहाँ उत्तर पट्टी के तमाम लोग मौजूद थे। साथ में मौजूद थे, अलीगढ़ से आए काली शेरवानी वाले दो लोग। बातचीत चल ही रही थी। काली शेरवानी बोल रही थी–

–और सबसे बड़ी बात तो यह है कि दुनिया के नक्शे पर एक और इस्लामी हुकूमत का रंग चढ़ जाएगा...और यह भी नामुमकिन नहीं कि दिल्ली के लाल क़िले पर एक बार फिर सब्ज़ इस्लामी परचम लहराता नज़र आए...

तन्नू को पाकिस्तान के बनने न बनने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह एक चारपाई की पाँयती पर टिक गया।

–सुन रहें कि जिन्ना साहब शिया हैं ! न मालूम किसने कहा।

–मुसलमान हैं ! काली शेरवानी बोली।

तभी दूसरी शेरवानी ने कहा–सुनिए क़िब्ला ! अल्लाह की रस्सी को मजबूती से पकड़िए। आज उस रस्सी का नाम मुहम्मद अली जिन्ना है। आप अल्लाह की ताकत

हैं...उठिए और कहिए कि आप पाकिस्तान बनाना चाहते हैं।

...तन्नू खिलखिला कर हँस पड़ा।

काली शेरवानियों ने उसे उलझन से देखा।

–देखिए...मैं कोई सियासी आदमी नहीं हूँ...यह सरकारी मुसलमानों का मोहल्ला है, लीग के अलावा और किसे वोट दे सकता है...तन्नू ने शेरवानियों से कहा–ये सब तो सरकार परस्ती की वजह से लीग को वोट देंगे, लेकिन आप अनपढ़ मुसलमान कुलसुम का वोट नहीं ले सकते! वह अपने बेटे का सही नाम नहीं ले सकती। वह मुमताज को मुंताज कहती है। वह बहुत शरीफ़ लड़का था। आप उसे क्या जानें? वह स्वामी सहजानंद और राहुल सांकृत्यायन के किसान आन्दोलन में शामिल था। वह कासिमाबाद के थाने पर गोली खाकर मर गया। मैं तो किसान आन्दोलन की लड़ाई के वक्त यहाँ पर था नहीं। मैं तो बत्र्तानियां की फौज में था। सुना है कि आंदोलन के दौरान मुमताज बड़ी बहादुरी से मरा। यानी जब उसे यकीन हो गया कि लगी हुई गोली खाकर वह बचेगा नहीं, तो मौत से डर कर वह रोया या अस्पताल ले जाने के लिए गिड़गिड़ाया नहीं। उसने फायरिंग के दौरान भागते हुए एक आदमी का दामन पकड़ लिया और कहा–ए भइया! गंगौली जइयो तो कह दीहो हमरी अम्मा से, कि हम मर गए किसान की इस बेसूद शहादत को आप नहीं समझ सकते...'कह दीहो हमरी अम्मा से कि हम मर गए...' इस सन्देशे में छुपे धरती के दर्द को आप नहीं समझ सकते...आपके जिन्ना साहेब मलाबार हिल की जो इमारत छोड़ कर पाकिस्तान जाएँगे, तो बेहतर इमारत बनवा लेंगे...अगर वह चाहेंगे तो अपनी बीवी रति की कब्र उखाड़ कर पाकिस्तान ले जाएँगे, क्योंकि उनका कोई रिश्ता ज़मीन से नहीं है, लेकिन कुलसुम तो इस ज़मीन में सदियों से दफ्न पुरुखों और कासिमाबाद थाने पर मरे अपने बेटे मुंताज की कब्र उठाकर पाकिस्तान नहीं ले जा पाएगी! अगर सारी कब्रें ले गए तो हिन्दुस्तान का पूरा आँगन उखड़ जाएगा...तब मुसलमान को कटा-फटा मुल्क तो मिल जाएगा, लेकिन वह घर-आँगन से महरूम रह जाएगा! क्या यही चाहते है आप लोग! बोलिए...क्या यही चाहते हैं आप लोग?

काली शेरवानियों के पास कोई उतर नहीं था।

तन्नू और भड़क उठा–आप जान का डर पैदा कर रहे हैं...डर की यह फस्ल हमीं को काटनी पड़ेगी...इसीलिए मैं बहुत डरता हूँ...

–डरने की क्या ज़रूरत है...आखिर आप मुहम्मद-बिन-कासिम के वारिस हैं...काली शेरवानी ने जुमलेबाज़ी का दाँव चला।

–मैं वोटर नहीं हूँ! तन्नू ने काली शेरवानी की बात काटी–मैं मुसलमान हूँ, लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है...क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ। मैं नील के इस गोदाम, इस तालाब और इन कच्चे रास्तों से प्यार करता हूँ...

मौजूद लोगों ने तन्नू की ओर देखकर जैसे हामी भरी।

–मैदाने जंग में मैंने मौत का तांडव देखा है...जब मौत बहुत करीब आ जाती थी, तो मुझे अल्लाह ज़रूर याद आता था, लेकिन मक्कए-मुअज़्ज़मा या कर्बलाए-मुअल्ला की जगह मुझे गंगौली याद आती थी...और मैं यह सोचकर झल्ला जाता और रोने लगा करता था कि अब शायद मैं नील के गोदाम पर बैठ कर गन्ना नहीं खा सकूँगा। और अब शायद मुझे आठवीं की मजलिस का हलवा नहीं मिलेगा। अल्लाह तो हर जगह है, फिर गंगौली और मक्का और नील के गोदाम और काबे, हमारे पोखरे और आबे-ज़मज़म में क्या फ़र्क है ?

–आप ही जैसे लोग हिन्दुस्तानी मुसलमानों को हिन्दुओं के हाथ बेच डालेंगे ! काली शेरवानी बिगड़ गई–आपको शर्म नहीं आती ! आप मक्का शरीफ़ से इस ज़टियल गाँव का मुकाबला कर रहे हैं !

–जी हाँ, कर रहा हूँ ! तन्नू ने कहा–और मुझे शर्म भी नहीं आती...और शर्म आए क्यों ? गंगौली मेरा गाँव है। मक्का मेरा शहर नहीं है। यह मेरा घर है और काबा अल्लाह मियाँ का। खुदा को अगर अपने घर से प्यार है तो क्या वह मआज़-अल्लाह यह नहीं समझ सकता कि हमें भी अपने घर से उतना ही प्यार हो सकता है !

–ए बेटा, तूँ त कुफुर बोले लग्यो ! हकीम साहब ने बिगड़ कर कहा–ई का कर रहा है बे हरामज़ादे ! काबा फिरो काबा है बेटा !

–मैं कब कहता हूँ कि वह काबा नहीं है, लेकिन लाहौर तो काबा नहीं है ना ? उसने सवाल किया–देखिए चा, जो कुछ मैंने बाहर देखा है वह आपने नहीं देखा है। इसीलिए जो कुछ मैं देख सकता हूँ, आप नहीं देख सकते...नफ़रत और खौफ़ की बुनियाद पर बनने वाली कोई चीज़ मुबारक नहीं हो सकती...

•

12

–मुबारक हो ! अब्दुल–रब–निश्तर ने वायसराय के कमरे की कांफ्रेंस-मेज पर पड़ी शकरदानी में से कुछ दाने उठाकर लियाकत अली खान के मुँह में, बतौर मिठाई रख दिए–मुबारक हो !

जिन्ना साहब ने खामोशी से जेड-सिगरेट होल्डर निकाला और केरेवेन-ए सिगरेट उसमें लगा कर चुपचाप पीने लगे।

□ □

भंगी कॉलनी। शाम हो रही थी। प्रार्थना सभा से पहले गाँधी जी टहल कर लौटे थे। एक स्वयं सेविका झमे से उनके भीगे और थके पैरों की धूल साफ़ कर रही थी। तभी एक अधेड़ खद्दरधारी ने आकर सूचना दी–बापू! विभाजन हो गया है...

गाँधीजी ने गहरी साँस ली। अपना थका पैर खींच लिया। फिर सूखे गले में एक घूँट-सा लेकर वे धीमे से बोले–अच्छा होता...वे मेरे शरीर को बाँट लेते...ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि दे ! कहकर उन्होंने आकाश की तरफ देखा।

जैसे बापू कह रहे हों–ग़लत फ़ैसलों से हिंसा उपजती है और हिंसा से अपसंस्कृतियाँ और रक्तपात...

•

13

उसकी अदालत के दरवाज़े पर तभी रक्त-सनी दस्तकें पड़ने लगीं।

वह दस्तकों से परेशान था। परेशान नहीं पागल। और फिर दस्तकों पर दस्तकें। पश्चिमी सीमांत से एके-47 चीनी राइफिल ने दस्तक दी। हथियार बनेंगे तो चलेंगे भी। उत्तर पश्चिमी सीमांत से भागकर आए परिवारों ने दस्तक दी। उनकी आहों और कराहों ने दस्तक दी।

अदालत ने पूछा–तुम कौन हो ?

उन्होंने उत्तर दिया–हम कश्मीर में हिन्दू हैं पर हिन्दुस्तान में कश्मीरी कहलाते हैं।

तभी उत्तर पूर्व से तड़तड़ाती एक गोली आई। उल्फा उग्रवादियों ने दस्तक दी। चाय बगान से यह दस्तक आई थी। तब तक सन् 1984 की विधवाएँ दस्तक देने लगीं। दक्षिण से नक्सलपंथियों ने दस्तक दी। साथ ही मेहम चुनाव के बीस मुर्दे दस्तकें देने लगे। बटाला-बस कांड की लाशें चीखनें लगीं...फिर लोकसभा ने दस्तक दी–पिछले एक साल में जो दस हजार लोग साम्प्रदायिक दंगों में मरे थे, वे खड़े होकर शोर मचाने लगे...लोकतन्त्र बहाली के समर्थक नेपाली शहीद दरवाजे और दीवारें पीटने लगे। लंका के लिट्टियों ने पीछे से दस्तक दी। कराँची के दंगों में मारे गए लोग अभी खड़े ही थे कि उनकी कतार में ताज़ा मुर्दे शामिल हो गए...अदालत उनकी बात सुनती, उससे पहले सिमरनजीत सिंह मान तलवार लेकर आ गए...उसने तलवार से टहोका दिया। जामा मस्जिद से अब्दुल्ला बुखारी ने दस्तक दी–अगर बाबरी मस्जिद ढहाई जाएगी तो खून की नदियाँ बहा दी जाएँगी ! इस शाही इमाम का यह ऐलान है !

तब रिक्शेवाले ने अदालत के कुर्ते का कोना खींचते हुए कहा–शाह तो चले गए, शहंशाही खत्म हो गई पर ये अब तक शाही इमाम बने कैसे बैठे हैं ?

दस्तकें देते हाथ हंस पड़े। अदालत ने ताक़ीद की–खामोश ! हँसी तो खामोश हो गई लेकिन दस्तकें तो खामोश नहीं होतीं।

और अदालत के एक कोने में पड़े शहाबुद्दीन ने अपनी खाँसी से दस्तक दी...जो 'इंडियन मुस्लिम' नहीं, 'मुस्लिम इंडिया' पत्रिका निकालते हैं और अपनी 'इंसाफ पार्टी' का शव सीने से लगाए हुए थे।

अदालत ने शहाबुद्दीन से पूछा–तुम यहाँ कैसे ?

–इन दिनों मेरी हालत मुर्दों से बदतर है ! मुझे कुछ कहना है ! इतना कहकर शहाबुद्दीन फिर खाँसने लगे !

अदालत खाँसी का उत्तर नहीं देती...लेकिन इस खाँसी में बीमारी के जरासीम थे, इसलिए वह खाँसी भी दस्तक बन गई थी।

तभी दहाड़ दहाड़ कर विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल के नेता दस्तक देने लगे...राम जन्म भूमि मन्दिर बनके रहेगा...बल्कि हम कृष्ण जन्मभूमि और काशी विश्वनाथ के मन्दिर को भी मुक्त करके दम लेंगे!

लेखक की अदालत ने हुक्म दिया–अदालत की खिड़कियों और रोशनदानों को भी खोल दिया जाए ताकि किसी दस्तक को आने में दिक़्कत न हो!

यह एलान होते ही हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, श्रीनगर के महाप्रबन्धक एच. एल. खेड़ा का शव हाज़िर हुआ। वह शव छह गोलियों से छलनी था और खून से तरबतर। आते ही वह चीखने लगा–मुझे दोपहर डेढ़ बजे मारा गया है। मुझे बटमालू इलाके में लाया गया, कार से उतार कर मुझे छलनी कर दिया गया। रूबिया सईद का बाप तो गृहमंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद था...क्या इस मुल्क में मेरा कोई बाप नहीं है?

अदालत ने कहा–यह खेड़ा पागल हो गया है! इसे मालूम होना चाहिए कि जो लोग मुल्क को प्यार करते हैं, उनका कोई बाप इस मुल्क में नहीं रहता...

–आदाब! एक और दस्तक पड़ी।

अदालत ने मुड़ के कहा–आदाब!

और आगे पूछा–आप कौन सी दस्तक हैं?

–जी मुझे प्रो. मुशीर-उल-हक़ कहते हैं। मैं कश्मीर यूनिवर्सिटी का वाइस-चांसलर था...इससे पहले जामिया मीलिया दिल्ली में था। मैं इस्लामिक स्टडीज़ का प्रोफ़ेसर हूँ...मुझे आज शाम श्रीनगर के पादशिया बाग़ इलाके में मार दिया गया!

–ये आपके कन्धे पर क्या लदा है? अदालत ने जानना चाहा।

–हुजूर...ये मेरे सेक्रेटरी अब्दुल ग़नी की लाश है! ये भी मेरे साथ ही मारा गया।

तब तक पिछली तरफ बड़ी तेज़ दस्तकें पड़ने लगीं। अर्दली ने अदालत को आकर बताया कि बड़ौदा-गुजरात में हुए दंगों के मुर्दे दस्तक दे रहे हैं...उनमें एक अधमरा घायल भी है जो कभी भी मर सकता है!

–तो पहले उसे मरने दो। मेरे पास जिन्दा या अधमरों के लिए वक्त नहीं है! मुझे मुर्दों से निपटना है...अदालत ने अर्दली को झाड़ दिया।

अर्दली तमतमा उठा–अगर आप जिन्दा या अधमरों की बात नहीं सुनेंगे तो मरनेवालों की तादाद बढ़ती जाएगी...खून बटोरने से काम नहीं चलेगा...खून का खुला हुआ नल बंद कीजिए! यह लगातार बह रहा है!

–चोप्प! अदालत चीखी।

–मैं चुप नहीं रहूँगा।अर्दली को सियासत चुप करा सकती है या पुलिस...लेकिन आप लेखक होकर चुप करा रहे हैं मुझे?...लानत हैं आप पर...अर्दली भभक उठा।

अदालत ने अपनी ग़लती फौरन मंजूर की–मैं माफी चाहता हूँ महमूद! लेकिन ये रोने की आवाज़ कैसी आ रही है? ये दस्तक तो मुझे परेशान करती है...

–ये बेगम मुशीर के रोने की आवाज़ है...

–लेकिन मुशीर साहब तो यहाँ खड़े हैं! कंधे पर अब्दुल ग़नी की लाश लादे हुए...ये तुम्हें नज़र नहीं आते! अदालत ने पूछा।

–जी...वो बात यह है कि इनकी रूह तो यहाँ चली आई लेकिन श्रीनगर से मैय्यत को दिल्ली पहुँचने में देर लगी। बेगम मुशीर जिस प्लेन में सफर कर रही थीं, उसी में पर्दे के पीछे इनकी लाश रखी थी...उन्हें कुछ पता नहीं था। फिर उनके दामाद अब्दुल सलाम ने धीरे-धीरे उन्हें बताना और समझाना शुरू किया। आख़िर लाश जामिया नगर पहुँच गई। पर बेगम मौत को मंजूर नहीं कर सकीं। बोलीं–डाक्टर को बुलाओ...ये जिन्दा हैं!...बस तभी से बेगम रो रही हैं...

–तो उन्हें बताओ कि मौत को मंजूर करें! जो कुछ भी मुर्दा हो जाता है उसे जल्दी से जल्दी मंजूर करने से ही दुनिया बदलती है। अदालत ने कहा।

तभी ख़ून के दो बम अदालत में फट पड़े। सब सराबोर हो गए। आखिर खून से तरबतर अपना मुँह पोंछ कर अदालत ने पूछा–

–ये ख़ून के बम कब से बनने लगे?

–जब से आजादी मिली!

–आज़ादी कब मिली? अदालत ने पूछा।

अर्दली ठठाकर हँस पड़ा–

–शर्म कीजिए अदीबे आलिया...अदालत खोल के बैठे हो, पर अदालत के पास जो मामूली जानकारियाँ होनी चाहिए, वे भी आपके पास नहीं हैं...और अगर हैं तो...तो...आप हमें बुध्दू बनाना चाहते हो। या फिर आप सन् 1947 के उसी दौर में रह रहे हो, जिस दौर में आज़ादी को आप जैसे बुद्धिजीवियों ने झूठा कहा था।

इस बार अदालत ठठा के हँसी।

–लेकिन इस दौर में भी तो जामा मस्जिद का शाही इमाम आज़ादी को झूठा कहता है। ये अब तक नहीं बदला और न वक्त को बदलने देता है।

–यह नहीं बदलने देगा, क्योंकि यह जाहिल हिन्दुस्तानियों का सरगना है...दूसरी तरफ जाहिलों के दूसरे नेता खड़े हैं–अशोक सिंघल, जो हिन्दू नहीं जैनी हैं और वो महंत अवैद्यनाथ जो गोरखपंथी है...अर्दली अदालत को बता रहा था–इनके अलावा भी बहुत से हैं हुजूर जाहिलों की कमी नहीं है इस मुल्क में!

–इन जाहिलों की फसल कब बोई गई! अदालत ने पूछा।

तो एक मुर्दा कराहता हुआ उठ खड़ा हुआ–

–सरकार! ये फ़सल सन सैंतालीस में बोई...गई इस फसल को ख़ून से सींचा गया! भागलपुर का एक मुर्दा बोला। मेरठ, अहमदाबाद, बड़ौदा, कानपुर, और न जाने कितनी जगहों के मुर्दों ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई।

–तुम किस फसल के दाने हो? अदालत ने दरयाफ़्त किया।

–हम भी उसी फसल के दाने हैं!

–नहीं ! एक नौजवान मुर्दा चीखा–ये होंगे...मैं नहीं हूँ...मेरी नस्ल खालिस हिन्दुस्तानी है। मैं सन् सैंतालीस के बाद पैदा हुआ हूँ और अब भागलपुर में मारा गया हूँ!

–और तुम? अदालत ने दूसरे नौजवान से पूछा।

–तमीज़ से बात कीजिए...मैं मुर्दा नहीं शहीद हूँ! मुझे पुलिस ने मांड इलाके में मारा है!

–तुम वहाँ क्या कर रहे थे?

–मैं ख़ालिस्तान बना रहा था!

तभी कराँची का एक मुहाजिर खड़ा हो गया–मैं भी मारा गया हूँ!

–क्यों?

–क्योंकि मैं पाकिस्तान में पाकिस्तान बना रहा था!

–तो क्या सन् सैंतालीस में पाकिस्तान नहीं बना?

–बना, लेकिन वह तो जुगराफिए की बात है...हमारे दिमाग़ों और दिलों में पाकिस्तान का जो नक्शा बनाया गया था, वह अभी पूरा नहीं हुआ है...

–वह कभी पूरा भी नहीं होगा ! त्रिशूल पकड़े एक मुर्दे ने तेज़-तल्ख़ गुर्राती आवाज़ में कहा–अब भारत अखंड होगा...और उसने नारा लगाया–राम, कृष्ण और विश्वनाथ! तीनों लेंगे एक साथ!

तभी खून के कई बम एक साथ अदालत में फटे और सारे लोग एक बार फिर खून से नहा गए। इस बार खून में इतना तेज़ाब था कि कई मुर्दों के बदन पर फफोले पड़ गए।

अपने फफोलों को चाटता हुआ एक सिख मुर्दा दहाड़ पड़ा–मुझे तो शोपियाँ में मारा गया...

–मतलब?

–मैं खालिस्तानी नहीं हूँ...मैं तो कश्मीरी हूँ...लेकिन मुझे फिर भी मारा गया। मुझसे कहा गया कि अपनी घड़ी का वक्त बदलो...इसे पीछे करो और सुइयों को पाकिस्तानी वक्त पर लाओ!

–क्या वक्त को पीछे करने से पाकिस्तान बन जाता है? अदालत ने पूछा।

–मुझे नहीं मालूम। पर मुझसे कहा गया कि सिर्फ़ हरी पगड़ी पहनो और झटके की दूकान बंद करो...कश्मीरी पंडितों से कहा गया–पंडित यहाँ से भाग जाओ, पंडिताइन को छोड़ जाओ! उनमें से कई एक भागते हुए आपकी अदालत में आ रहे हैं।

–कुछ तो आ चुके हैं! अर्दली ने जोड़ा।

–तो मुशीर साहब, आप कश्मीरी पंडित हैं? अदालत ने जानना चाहा।

–जी नहीं। मैं मुसलमान हूँ...पाँच वक्त की नमाज़ पढ़ता हूँ। नमाज़ पढ़ने ही जा रहा था, जब मुझे किडनैप किया गया और दूसरे दिन मारा गया! मुशीर साहब बोले–हुज़ूर आपने ठीक फर्माया था कि वक्त को पीछे ले जाने से पाकिस्तान बन जाता है!

–तो वक्त को घसीट कर कोई कितने पीछे ले जाएगा?

–बाबर तक! त्रिशूल धारी चीखा–क्योंकि हमारी ग़ुलामी का इतिहास बाबर से शुरू होता है!

–नहीं हमारी ग़ुलामी का इतिहास अंग्रेजों के आने से शुरू होता है! भागलपुर का एक बुड्ढा चिल्लाया–अंग्रेजों ने हमारी सल्तनत बहादुरशाह जफ़र से छीनी थी...वो जब गए तो उन्हें हमारी सल्तनत, हमें देकर जाना चाहिए था...बाबर तो गाज़ी था!

–बाबर बर्बर था! दरिंदा था...उसने आते ही अयोध्या में हमारा रामजन्म भूमि मन्दिर तोड़ा था और वहाँ बाबरी मस्जिद बनवाई थी। पाकिस्तान बनना तो उसी दिन से शुरू हो गया था! त्रिशूलधारी भभक पड़ा।

–यह ग़लत है! मेरठ का एक अधेड़ चीखा।

–यह सही है! त्रिशूलधारी और भड़का।

अदालत में अजीब-सा हंगामा बरपा हो गया। मुर्दों की आँखें दहशत से भर गईं। वे बदन पर जमे ख़ून के थक्के उचेड़ने लगे...उचेड़ने के साथ-साथ ताज़ा खून भी रिसने लगा।

–यह ताज़ा खून कहाँ से आया? तुम्हारा तो खून हो चुका है!

–यह बाबर की रगों से आया है! त्रिशूल बहुत जोश में था। उसके जोश से औरों के चेहरे काले पड़ते जा रहे थे।

–सरकार! जब तक बाबर का नाम लिया जाएगा, सदियों का खून रिसता रहेगा! अर्दली ने अदब से कहा।

अदीब सोचता रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। वह न्यायाधीश के सिंहासन पर तो बैठा था...लेकिन यह सिंहासन विक्रमादित्य का तो था नहीं कि कोई पुतली निकलकर उसे कोई रास्ता बता सकती। रास्ते की तलाश तो उसे खुद करनी थी और अपने समय में करनी थी। समय को वह फैला सकता था। समय को वह सिकोड़ सकता था। आख़िर अपने दिमाग़ पर जोर डाल कर उसने हुक्म दिया–

–बाबर को अदालत में हाज़िर किया जाए!

अर्दली हुक्म की तामील के लिए चल पड़ा।

मुर्दों के चेहरे पीले पड़ने लगे।

•

14

अदालत में जब बाबर हाज़िर हुआ तो बहुत थका हुआ और नाराज़ था। कब्र से निकल कर आने में उसे बहुत तकलीफ़ हुई थी। उसे अच्छा नहीं लगा था कि मर जाने के बाद भी उसके चैन में ख़लल डाला गया था। वह काबुल से चलकर आया था।

जैसे ही वह अदालत में हाज़िर हुआ, अदालत ने मुर्दों से पूछा–

–इसे पहचानते हो?

–नहीं...नहीं...हम नहीं पहचानते! सारे मुर्दे बोल पड़े थे।

–ये बाबर है! अदालत ने बताया।

एक भयानक सन्नाटा वहाँ भर गया।

अदालत ने अर्दली से कहा–इन्हें एक कुर्सी दो!

–बैठने के लिए मुझे अपना शाही तख़्त चाहिए...आख़िर मैं शहंशाह हूँ...हिन्दुस्तान का बादशाह! बाबर गरजा।

–ताज़ो-तख़्त ख़त्म हो गए हैं। अब राजा और बादशाह भी नहीं हैं। अब नेता लोग अपनी जनता के कंधों या गर्दनों पर बैठते हैं। तुम इनकी गर्दनों पर बैठना चाहोगे? अदालत ने सवाल किया।

–मैं तो आराम से लेटा हुआ था। अब बुलाया है तो कहीं भी बैठा दीजिए! बाबर बोला।

–ठीक है, जहाँ मर्ज़ी हो बैठ जाओ और मेरे सवालों के उत्तर दो! अदालत ने कहा।

–जी!

–तुमने हिन्दुस्तान पर हमला क्यों किया था?

–हमला! तो एक बादशाह और क्या करता? जब फरगना और बुखारा की मेरी सल्तनत छिन गई तो मुझे दूसरी सल्तनत तो बनानी ही थी...मैंने हिन्दुस्तान पर कई हमले किए, लेकिन जीत नहीं पाया। आखिरी बार जब मैं जीता तो सच्चाई यह है कि हिन्द पर हमला करने और इसे जीतने के लिए मुझे सुल्तान इब्राहीम लोदी के चचा, पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ और रणथंभौर के हिन्दू राजपूत राणा सांगा ने बुलाया था! बाबर बोला।

–यह झूठ बोलता है! राणा सांगा कभी भी देश के विरुद्ध गद्दारी नहीं कर सकते थे! त्रिशूलधारी बोला।

–चौप्प! अदालत ने उसे झिड़का।

अर्दली ने आगे बढ़ कर उसके हाथ से त्रिशूल छीन लिया–यहाँ मुर्दे की तरह अदब से बैठो! समझा! नहीं तो अभी नीचे भेज दिया जाएगा...वहाँ फिर मारे जाओगे!

त्रिशूलवाले का चेहरा भयग्रस्त हो गया। वह हाथ जोड़कर गिडगिड़ाने लगा–नहीं, मैं फिर वही मौत नहीं मरना चाहता!

–क्यों ? मरने से पहले तो तुम कहा करते थे कि दस बार नहीं, हज़ार बार मरना पड़े तो भी तुम रामजन्म-भूमि के लिए मरोगे...अब क्यों डर रहे हो ? अर्दली ने उसे दुत्कारा।

–इसलिए कि अब मैं इंसान हूँ...मुझे अब मौत से बहुत डर लगता है!

–तो जब मरे थे, उस वक्त तुम क्या थे ?

–तब मैं हिन्दू था!

–हिन्दू क्या इन्सान नहीं होते ?

–होते हैं लेकिन जब नफ़रत का ज़हर मेरी नसों में दौड़ता है तब मैं इंसान का चोला उतार कर हिन्दू बन जाता हूँ!

–ये नफ़रत का ज़हर कहाँ से आया!

–उसी सन सैंतालीस वाली फ़सल से यह ज़हर जन्मा है हुजूर! जो हिन्दू को ज्यादा बड़ा हिन्दू और मुसलमान को ज्यादा बड़ा मुसलमान बनाता है! अर्दली बोला।

–मेरा वक्त बरबाद न कीजिए...अपने झगड़े आप निपटाइए। बाबर ने आज़िजी से कहा।

–लेकिन सारे झगड़ों की जड़ तो तुम हो। न तुम राम मन्दिर मिसमार करते, न ये झगड़े खड़े होते! त्रिशूल वाला इस बार शालीनता से बोला।

–मेरा अल्लाह और तारीख गवाह है...मैंने कोई मन्दिर मिसमार नहीं किया और न हिन्दुस्तान में कोई मस्जिद अपने नाम से कभी बनवाई। इस्लाम तो हिन्दुस्तान में मेरे पहुँचने से पहले मौजूद था...क्या इब्राहीम लोदी खुद मुसलमान नहीं था जो आगरा की गद्दी पर बैठा हुआ था! मैंने उस मुलसमान इब्राहीम लोदी को 20 अप्रैल 1526 के दिन पानीपत में हरा कर उसकी सल्तनत जीती थी। उसका सिर काट कर मेरे सामने पेश किया गया था। मैंने हुमायूं को तब दिल्ली भेजा था और मैं ख़ून आराम करने के लिए आगरा चला गया था। आगरा ही इब्राहीम लोदी की राजधानी थी!

–बाबर! सीधे-सीधे बात का जवाब दो...इधर-उधर की बातें करके अदालत को गुमराह मत करो!

–मैं हिन्दुस्तान को खुद के लिए फतह करने आया था। इस्लाम के लिए नहीं। खुदा की सल्तनत में मुझे अपने लिए सल्तनत की ज़रूरत थी और वही मैंने किया। मैंने तो कभी तुलसीदास का नाम तक नहीं सुना, जिसने हिन्दुओं के राम को भगवान बनाया। मेरे दौर में राम भगवान थे ही नहीं, तो मैं उनका मन्दिर क्यों तोड़ता ? तुलसीदास का नाम तो मैंने इन दिनों कब्र में लेटे-लेटे सुना। मैं जब दिल्ली के तख्त पर बैठा और मेरे नाम का खुतबा सात

दिन बाद पढ़ा गया...तब तक तुलसीदास को कोई जानता भी नहीं था...उस वक्त वह बच्चा रहा होगा और किसी गली-कूचे में नंगा घूमता होगा...

–वो कौन सी तारीख थी?

–इब्राहीम लोदी से मैंने पानीपत की लड़ाई 20 अप्रैल 1526 को जीती थी और रजब 15 जुमे के दिन यानी 27 अप्रैल 1526 को मेरे नाम का ख़ुतबा पढ़ा गया था। यह ख़ुतबा मौलाना महमूद और शेख़ ज़ैन ने पढ़ा था। मैं और मेरा लश्कर उस वक्त जमना के किनारे पड़ा हुआ था। ऐ अदालते अदीब! मुझे हिन्दुस्तान के पानी से बहुत प्यार था...मैं उस वक्त वे-वतन था और अपने लिए एक वतन तलाशता हुआ आया था, क्योंकि उन दिनों वतन भी बिना तलवार के नहीं मिलता था।

–तुम फिर बहक रहे हो।

–जी नहीं...

–तो फिर सीधे-सीधे अपनी बाबरी मस्जिद का किस्सा बताओ!

–मैंने कहा न! आगरा मेरी राजधानी थी। अब सोचिए, उस वक्त हिन्दुओं के कृष्ण को भगवान और अवतार मंजूर किया जा चुका था। उनका जन्मस्थान मथुरा में था। मेरी राजधानी आगरा से सिर्फ़ पचास मील दूर...अगर मुझे तोड़ना ही होता तो मैं कृष्ण का जन्म स्थान न तोड़ता? भागा-भागा अयोध्या तक जाके राम का जन्म स्थान क्यों तोड़ता? क्योंकि राम तो भगवान हुए तुलसीदास के बाद और मेरे सामने तुलसीदास बच्चा था। उसने रामायण मेरे मरने के बाद लिखी।

–तुम्हारी मौत कब हुई?

–दिसंबर 1530 में...तारीख मुझे याद नहीं है! मौत की तारीख कौन याद रखना चाहेगा!

–लेकिन दुनिया तो कहती है कि अयोध्या के राम मन्दिर को तुमने 1528 में गिरवाया और अपने सूबेदार मीर बाक़ी को तुमने आदेश दिया कि उस जगह मस्जिद बनवा दी जाए!

–यह सरासर ग़लत है! मेरा उस मस्जिद से कोई लेना देना नहीं। असली बात आप जानना चाहते हैं?

–बिल्कुल! बिल्कुल! अदालत ख़ुशी से उछल पड़ी।

–तो जनाब ए. फ्यूहरर को बुलवाया जाए!

–फ्यूहरर! अदालत का पसीना छूट गया–नाज़ी फ्यूहरर हिटलर को!

–नहीं ए. फ्यूहरर को!

–ये कौन है?

–मेरी सल्तनत जब मिट गई तब ये हिन्दुस्तान पहुँचा था। ये सल्तनते बर्तानियां के आर्कियालॉजीकल सर्वे आफ इंडिया का डायरेक्टर जनरल रहा है...उसे बुला के पूछिए!

अदालत पशोपेश में पड़ गई। ये बाबर तो खुद की मौत के करीब साढ़े तीन सौ साल आगे की बात कर रहा है। अपना माथा खुजलाते हुए अदालत ने बाबर से पूछा–

–लेकिन उसे बुलाकर क्या होगा। उसके और तुम्हारे दौर के बीच करीब साढ़े तीन सौ साल का अंतर है!

–आप उसे बुलाइए तो!

–लेकिन वह तुम्हारी क्या मदद कर सकेगा?

–उसने सन् 1889 में वह शिलालेख पढ़ा था, जो मेरे नाम पर थोपी जा रही मस्जिद में लगा हुआ था...आज वह शिलालेख पढ़ा नहीं जा सकता क्योंकि जाहिलों ने उसे पढ़ने लायक नहीं छोड़ा...लेकिन ए. फ्यूहरर के ज़माने तक वह पढ़ा जा सकता था। उसे बुलाकर तसदीक कर लीजिए।

अदालत में बैठे मुर्दे सकते में आ गए। आख़िर बाबर साबित क्या करना चाहता था। बातें तो वह कायदे की कर रहा था। बदन पर पड़े फफोले अब उतने जल नहीं रहे थे। घाव भी कुछ कम टीस रहे थे। अदालत में बाबर के आने से पहले जो कोहराम मचा हुआ था, वह काफ़ी हद तक थम गया था।

अदालत ने ए. फ्यूहरर को हाज़िर करने का आदेश दिया। अर्दली भागता हुआ गया और उन्हें ले आया। फ्यूहरर का दिमाग़ सातवें आसमान पर था। उसे यह अपमानजनक लग रहा था कि एक गुलाम मुल्क के आज़ाद बाशिंदे ने उसे इस तरह बुलाया था। लकिन बाबर को देखते ही वह अपनी औक़ात में आ गया। अदालत की तौहीन करना उसके खून में नहीं था। वह अदब से खड़ा हो गया।

–तुम बाबर से कब मिले?

–मैं करीब सन् 1910 के आस पास मिला।

–कहाँ?

–काबुल में इनकी कब्र में।

–तुमने बाबरी मस्जिद का वह शिलालेख पढ़ा था, जो अब पढ़ा नहीं जा सकता!

–जी हाँ।

–क्या लिखा है उसमें?

–यही कि हिजरी 930 यानी करीब 17 सितंबर सन् 1523 में इब्राहीम लोदी ने उस मस्जिद की नींव रखवाई थी, और जो 10 सितंबर 1524 में बन कर तैयार हुई, जिसे अब बाबरी मस्जिद कहा जाता है। यही बताने मैं बाबर के पास गया था! ए. फ्यूहरर ने कहा–इस खुतबे को वक्त ने नहीं, उन लोगों ने बरबाद किया है जो इस बाबरी मस्जिद और राम जन्मभूमि मन्दिर के झगड़े को ज़िंदा रखना चाहते हैं।

–लेकिन आज तक किसी ने इब्राहीम लोदी पर इस मस्जिद की नींव रखने की तोहमत क्यों नहीं लगाई? अदालत ने जानना चाहा।

–इब्राहीम लोदी पर किसी ने रामजन्मभूमि मन्दिर तोड़ने का इल्जाम नहीं लगाया, क्योंकि पहली बात–वहाँ मन्दिर था ही नहीं और दूसरी बात कि...इब्राहीम लोदी की दादी हिन्दू थी...हिन्दू दादी का खून उसकी रगों में बहता था, इसलिए भी उस पर इल्जाम नहीं लगाया गया...

–इसलिए कि वो वतनी था और उस की दादी हिन्दू थी! बाबर चीखा–मैं तब विदेशी था! मेरी रगों में हिन्दू खून नहीं था...

–लेकिन तुम अफगानों का पीछा करते हुए घाघरा नदी तक तो गए थे। वही घाघरा नदी जिसे सरयू भी कहा जाता है...और अयोध्या तो सरयू के किनारे है। मीरबाक़ी तुम्हारा सूबेदार था वहाँ...

–तभी तो उसने उस मस्जिद को मेरे नाम पर चस्पां कर दिया होगा! आप तो जानते हैं कि ये सूबेदार-मनसबदार वगैरह कितने चापलूस होते हैं...आज खुद इसी मुल्क में कितने गांधी नगर, नेहरू नगर, किदवई नगर और संजय गांधी नगर बसे हुए हैं। क्या वो सब उन लोगों ने तामीर करवाए हैं? बाबर बोला।

–तो फिर तुम्हारी डायरी–बाबरनामा के साढ़े पाँच महीनों–यानी 3 अप्रैल 1528 से 17 सितंबर 1528 तक के दिनों के पन्ने क्यों गायब हैं?

–उसके बारे में मैं क्या कह सकता हूँ!

–तुम्हें बताना पड़ेगा, क्योंकि 2 अप्रैल को तुम अवध में, अयोध्या के ऊपरी जंगलों में शिकार खेल रहे थे, उसके बाद के पन्ने गायब हैं। फिर तुम बाबरनामा के मुताबिक 18 सितम्बर 1528 को आगरा में दरबार लगाए बैठे हो! इस बीच तुम कहाँ थे? क्योंकि अंग्रेज गजेटियर लेखक एच. आर. नेविल ने यह साफ़-साफ़ लिखा है कि सन् 1528 की गर्मियों, यानी अप्रैल और अगस्त के बीच तुम अयोध्या पहुँचे, वहाँ तुम एक हफ्ते रुके और तुमने प्राचीन राममन्दिर को तोड़ने का आदेश दिया और वहाँ मस्जिद तामीर करवाई, जिसे बाबरी मस्जिद का नाम दिया गया!

–यह सरासर ग़लत है! बाबर बोला–मैं कब्र में लेटा-लेटा इन सदियों को गुज़रते देखता रहा हूँ। सन् 1849 तक या कहिए कि 1850 तक तो सब ठीक ठाक चला। लेकिन 1857 के बाद सल्तनते बर्त्तानियाँ की नीति बदलनी शुरू हुई...

–बाबर ठीक कह रहे हैं। ए. फ्यूहरर ने बीच में टोका–हमारी पालिसीज़ बदलीं और तब यह तय किया गया कि हिन्दू और मुसलमान, जो 1857 में एक हुए थे, इन्हें अलग-अलग रखा जा...नहीं तो अंग्रेजी हुकूमत चलने नहीं पाएगी। इसीलिए मैंने बाबरी मस्जिद पर लगा इब्राहिम लोदी का जो शिलालेख पढ़ा था, उसे जानबूझ कर मिटाया गया...लेकिन मैंने उसका जो अनुवाद किया था, वह आर्कियालॉजीकल सर्वे आफ इंडिया की फाइलों में पड़ा रह गया। उसे नष्ट करने का का खयाल किसी को नहीं आया। इसी के साथ 'बाबरनामा' के वो पन्ने ग़ायब किए गए जो इस बात का सबूत देते हैं कि यह बाबर अवध

में गया तो ज़रूर, पर कभी अयोध्या नहीं गया...और उसके बाद हमारी अंग्रेज़ क़ौम ने, और खास तौर से एच.आर. नेविल ने जो फैज़ाबाद गजेटियर तैयार किया, उसमें शैतानी से यह दर्ज किया कि बाबर अयोध्या में एक हफ्ते ठहरा और इसी ने प्राचीन राम मन्दिर को मिसमार किया ! बोलते-बोलते फ्यूहरर हाँफने लगा। वह बहुत थक गया था। उसे प्यास लगी थी। पानी तो कहीं था नहीं इसलिए उसे ख़ून का एक गिलास दिया गया।

अदालत ने अगला सवाल किया–बाबर ! अगर तुम्हारे बाबरनामा के कुछ पन्ने फाड़ दिए गए हैं तो भी तुम तो बता सकते हो कि अगर तुम अयोध्या नहीं गए, तो 3 अप्रैल 1528 से लेकर 17 सितम्बर 1528 तक कहाँ रहे ? तुम अवध-अयोध्या के जंगलों में शिकार खेलते हुए साढ़े पाँच महीनों के लिए कहाँ गायब हो गए थे ? यह अहम सवाल है और यही सारे झगड़े की जड़ है।

–जी, यह सही है कि मैं अवध के जंगलों में 2 अप्रैल 1528 तक शिकार खेल रहा था...और फिर अयोध्या कोई इतना मशहूर शहर भी नहीं था कि मैं वहाँ जाता। वहाँ मेरा कोई दुश्मन भी नहीं था। बाबर बोला।

–लेकिन तुम बात छुपाते क्यों हो ? सही बात इस अदालत को बता तो सकते हो !

–असल बात यह है अदीबे आलिया कि 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजों की नीति बदली थी और उन्होंने मेरे वतन को मज़हब के नाम पर तक्सीम करना शुरू कर दिया था। मेरा वतन और मुल्क तो हिन्दुस्तान ही था...मैं तो वहीं आगरा की जमीं में जमींदोज़ हो गया था, पर तास्सुबी लोग मेरी कब्र खोद कर मुझे काबुल उठा लाए...तो ख़ैर...बात यह है अदीबे आलिया कि ए.एच. नेविल ने जानबूझ कर, 1857 के बाद बेईमानी की। मेरे लिखे बाबरनामा में जिस औध का जिक्र है, नेविल ने उस 'औध' को बेईमानी से 'अयोध्या' कहा है, जबकि औध का मतलब है अवध ! जिसे आप आज भी उसी नाम से पुकारते हैं। फ्यूहरर ने भी मुझे जानकारी दी थी कि अंग्रेजों के अपने चहेते अफसर कनिंघम, जिसे हिन्दुस्तान की तवारीख और पुरानी इमारतों की देखभाल करने का काम सुपुर्द किया गया था, उसने बड़ी चालाकी से लखनऊ गजेटियर में यह दर्ज किया था कि बाबरी मस्जिद की तामीर के दौरान हिन्दुओं ने तामीर होती मस्जिद पर हमला किया था और उस जंग में मुसलमानों ने एक लाख चौहत्तर हज़ार हिन्दुओं को हलाक किया था...उन्हीं हिन्दुओं के ख़ून से मस्जिद के लिए गारा बनाया गया था...

–यह तो भयानक है !

–लेकिन यह सच नहीं है ! बाबर बोला।

–कैसे ? कोई सबूत ?

–पहली बात तो यह कि जो गजेटियर कनिंघम का लिखा बताया जाता है, वो मेरे बाबरनामा के गुमशुदा पन्नों की तरह ही गुम हो चुका है !

–हैं !

–जी...और मैं इस अदालते खास में यह सच्चाई भी सामने रखना चाहूँगा कि खुद अंग्रेज अफसर नेविल ने फैजाबाद गजेटियर में लिखा है कि सन् 1869 में फैजाबाद-अयोध्या की कुल आबादी 9, 949 थी और सन् 1881 में उसी की आबादी 11,643 थी, यानी 12 बरसों में करीब 2000 आबादी की बढ़त हुई थी...अदीबे आलिया! अब आप खुद ही सोचिए कि मेरे वक्त यानी सन् 1528 में उस इलाके की आबादी क्या रही होगी? तब 1, 74000 हिन्दू कैसे मारे जा सकते थे?...इसलिए यह बात साफ होनी चाहिए कि अंग्रेजों ने हमारे मुल्क हिन्दुस्तान के साथ क्या खेल खेला है!

अदीब ने गौर से बाबर को देखा।

–मैं तो बता ही सकता हूँ! बाबर ने बताया–लेकिन मेरी बेटी गुलबदन बेगम ने हुमायूँनामा में खुद लिखा है। ताजिक जबान में तुज़ुके-बाबरी मौजूद है...उससे आपको असलियत का पता चल सकता है! उसे पढ़ लीजिए!

–मैं लेखक हूँ...इस दौर में मेरे पास लिखने-पढ़ने का वक्त नहीं बचा है...वो ज़माने लद गए जब तुम लड़ाइयाँ भी लड़ते थे और आराम से बैठकर अपनी डायरियाँ लिखवाया करते थे..अदालत ने जुमला कसा।

–आपके यह फरमाने से मुझे याद आया...बाबर आगे बोला–देखिए!...बात यह है कि...

–यह...वह मत करो बाबर! सीधे सीधे बताओ कि 2 अप्रैल 1528 को औध–अवध के जंगलों में शिकार खेलने के बाद तुम अयोध्या गए थे या नहीं और वहाँ एक हफ्ते ठहरे थे या नहीं?

–कतई नहीं! आप ही सोचिए हुजूर...बरसों बाद मेरी बेगम–मेहम बेगम और मेरी बिटिया गुलबदन काबुल से आगरा आ रही थीं, पहली बार...ये दोनों 8 अप्रैल 1528 को आगरा पहुँचनेवाली थीं, इसलिए मैं औध से उन्हें लेने लौट पड़ा...था...आप चाहें तो गुलबदन के हुमायूँनामा से यह तफसील पढ़ सकते हैं!

–फिर तुमने पढ़ने की बात की! तुम एक अदीब की तौहीन कर रहे हो! अदालत ने बाबर को डाँटा।

–मैं माफ़ी चाहता हूँ! बाबर बोला–तो गुलबदन से पूछ लीजिए...

अर्दली ने अदालत के कान में कुछ कहा तो अदालत ने सिर हिलाया और आदेश दिया–गुलबदन बेगम को हाज़िर किया जाए! फिर बाबर की तरफ मुखातिब होकर कहा–तुम्हारी बेटी गुलबदन बेगम से ही जानना बेहतर होगा।

कुछ ही देर में अर्दली ने गुलबदन बेगम को हाज़िर किया। उसने घुसते ही अपने अब्बा हुजूर को आदाब किया और सिसकने लगी!

–मुझे क्या मालूम था कि मेरा हिन्दुस्तान इस तरह ग़ारत हो जाएगा और आपको इस तरह कलंकित किया जाएगा...गुलबदन बोल ही रही थी कि अदालत ने प्रशंसा में

कहा–

–गुलबदन ! तुम तो काफी खूबसूरत हिन्दी बोलती हो ? लेकिन फिलहाल यह बताओ कि तुम्हारे अब्बा हुजूर 3 अप्रैल 1528 से 17 सितम्बर 1528 तक कहाँ थे।

–जी, मैं बताती हूँ ! अब्बा हुजूर ने हमें हिन्दुस्तान बुलवाया था। मेरा बड़ा भाई हुमायूँ तो दो साल पहले ही अब्बा हुजूर के साथ चला आया था। मैं अपनी माँ, मेहम बेगम के साथ, अपने दूसरे भाई बहनों और बड़ी छोटी अम्मियों से पहले हिन्दुस्तान पहुँची थी। अब्बा हुजूर फौरन अवध के जंगलों में शिकार छोड़कर, हमें लेने के लिए 7 अप्रैल 1528 से पहले आगरा पहुँच चुके थे। हम अलीगढ़ के रास्ते आए थे। उन दिनों अलीगढ़ को कुल-जलाली पुकारा जाता था। मैं अपनी माँ मेहम बेगम के साथ 9 अप्रैल 1528 को अलीगढ़ पहुँची थी। अब्बा हुजूर हमें लेने के लिए आगरा से अलीगढ़ के लिए पैदल ही चल पड़े थे और आगरा से चार मील दूर महम- नानाचा के घर के पास मिले थे...वहाँ से भी वो घोड़े पर सवार नहीं हुए थे...पैदल ही हमारे काफ़िले के साथ आगरा में दाख़िल हुए थे। यह तारीख 10 अप्रैल 1528 थी ! अब्बा हूजूर मेरी अम्मी के साथ वक्त गुज़ारना चाहते थे...

–इसका तारीख या इतिहास से क्या लेना-देना ! अदालत ने कहा।

–ताज्जुब है...आप अदीब हैं, अदालत लगा के बैठे हैं, और इंसान के जज्बात से कतरा रहे हैं...एक शख़्स, चाहे वह शहंशाह ही क्यों न हो, क्या वह इन्सान नहीं होता ? क्या उसके दिल में प्यार और मुहब्बत के झरने नहीं फूटते ? आप इतना भी नहीं समझते !...तीन महीने, जी हाँ तीन महीने—अप्रैल 10 से लेकर 10 जुलाई 1528 तक अब्बा हुजूर ने आगरा में मेरी माँ और मेरे साथ बिताए। इसके बाद अब्बा हुजूर हमें लेकर धौलपुर के लिए रवाना हुए। वहाँ से हमारे साथ सीकरी आए। वहाँ उन्होंने पानी के बीच पत्थर का एक तख़्त बनवाया था, जिस पर बैठकर ये अपना इतिहास खुद लिखते या लिखवाते थे !

–तो क्या बाबर...तुम्हारे अब्बा हुजूर अवध, अयोध्या से आगे शेख बायाजिद का पीछा करते हुए जौनपुर, बक्सर, चौसा और सारन तक बिहार में नहीं गए थे ?

–वो कैसे जा सकते थे ? ये तो हमें लेने आगरा लौट चुके थे। अब्बा हुजूर की जो फौजें शेख बायाजिद का पीछा करती हुईं जौनपुर, बक्सर और चौसा तक गई थीं–उनके सेनापति मुहम्मद अली जंग-जंग थे। अब्बा हुजूर तो हमें लेने लौट आए थे–घाघरा और सिरदा नदी के संगम से, ये अयोध्या गए ही नहीं। जून महीने ये हमारे साथ आगरा में रहे, फिर धौलपुर-ग्वालियर के लिए रवाना हुए...यह तारीख 10 जुलाई 1528 थी। और फिर ये धौलपुर से सीकरी लौटे अगस्त 1528 के पहले हफ्ते में, और वहाँ से अब्बा हुजूर आगरा वापस आए थे सितंबर 15 सन् 1528 के आस पास। तो अब जो बाबरनामा के फटे हुए पन्ने हैं, उनकी जगह आप मेरे हुमायूँनामा के पन्नों को रख सकते हैं और जान सकते हैं कि अब्बा हुजूर कहाँ थे ! मैं जोर देके कहना चाहती हूँ कि अब्बा हुजूर के लिए न तो अयोध्या कोई खास शहर था और न ये वहाँ गए थे। जिन तीन महीनों–अप्रैल, मई और जून 1528 ये

हमारे साथ थे, उस दौरान ये पंजाब में सिरहिन्द तक गए थे, क्योंकि लाहौर के इमाम ने अब्बा हुजूर के खिलाफ़ बग़ावत की थी। अब्बा हुजूर ने सिरहिन्द में बैठकर कम्बर-ए-अली अरगुन को हुक्म दिया था कि वह लाहौर के इमाम शेख़ शराफ़ और उनके साथियों को पकड़ कर आगरा दरबार में हाज़िर करे!...इस वक्त तक तो मुसलमान ही मुलसमान से लड़ रहा था...हर मुसलमान चाहे वह शहंशाह हो, सिपहसालार या सूबेदार–इस मुल्क के हिन्दुओं के वग़ैर अपनी सल्तनत कायम नहीं रख सकता था। और फिर अफगानी मुसलमानों को शिकस्त देने के दौर में अब्बा हुजूर के पास वक्त कहाँ था कि ये अयोध्या जाते और किसी मन्दिर को तोड़ कर मस्जिद बनवाते! जब अब्बा हुजूर ने हिन्दुस्तान पर आखिरी हमला किया तो मज़हब या धर्म का सवाल ही नहीं था। वो तो सल्तनत की लड़ाई थी और मुसलमान ख़ुद मुसलमान से लड़ा था। यहाँ हिन्दू मुसलमान का सवाल ही नहीं था।

–सुनिए! सुनिए! बल्कि बाबर के दौर में हमें अयोध्या के दंत धावन कुंड मन्दिर के लिए माफीनामा मिला था। एक आवाज़ आई।

–तुम कौन हो? अदालत ने पूछा।

–मैं दंतधावन कुंड का पहला महंत छत्रदास हूँ। मुझे पता चला कि बाबर आपकी अदालत में हाजिर हुए हैं। इसलिए मैं समाधि से निकलकर अपने बादशाह का दर्शन करने आया हूँ!

–यह दंत धावन कुंड क्या बला है? और कौन-सी जगह है?

–यह बला नहीं, यह जगह वहीं अयोध्या में है जहाँ रामचंद्र जी दातौन करते थे। यहीं भगवान गौतम बुद्ध ने सोलह चतुर्मास बिताए थे। और यहीं चीनी यात्री ह्वेनसांग आया था। अपने यात्रा विवरण में उसने खुद इस कुंड का उल्लेख किया है। आज भी अयोध्या में यह कुंड वर्तमान है और मेरा शिष्य वहाँ मौजूद है। पादशाह बाबर ने हमें माफ़ीनामे का ताम्रपत्र दिया था जिसे अंग्रेजों ने बाद में सनद में बदल दिया...वह सनद कपड़े पर आज भी मौजदू है! महंत छत्रदास धाराप्रवाह बोलता जा रहा था।

–इसका मतलब है, बाबर अयोध्या आया था?

–ज़हीरुद्दीन मोहम्मद बाबर बादशाह थे। तब बादशाह खुद नहीं उनकी मेहरबानियाँ आया करती थीं। तब के बादशाह आज के नेताओं की तरह नहीं थे कि दस-दस रुपए बाँटने पहुँच जाएँ! आज भी हम दंतधान कुंड के इलाक़े का लगान वसूल करते हैं और मालगुज़ारी नहीं देते...बाबर के ताम्रपत्र और अंग्रेजों की सनद के तहत हमें आज भी यह माफ़ीनामा मिला हुआ है।

–तुम्हारे ऊपर बाबर ने क्या उपकार किया, इससे हमें लेना-देना नहीं है। तुम यह बताओ कि बाबरी मस्जिद बाबर ने बनवाई थी या नहीं, क्योंकि लगता है कि तुम बाबर के समकालीन हो!

–जी हाँ, हूँ! लेकिन मस्जिद तो खाली जगह पर इब्राहीम लोदी ने बनवायी थी, हो सकता है, उसमें कुछ फेर-बदल मीर बाक़ी ताशकंदी ने करवाई हो! महंत छत्रदास बोला–मीर बाक़ी के गाँव सनेहुआ में उसके वंशज आज भी मौजूद हैं आप उनसे मालूम कर सकते हैं!

–अच्छा! तो अदालत कुछ देर के लिए स्थगित की जाती है।

मुर्दों में हड़कम्प मच गया। दस्तकें फिर पड़ने लगीं। फिर वही हाहाकार मचने लगा। कुछ नए मुर्दे आ गए थे। पता चला वे उत्तर पूर्व के हैं और उल्फा विद्रोहियों ने उन्हें मारा है। अदालत समझ नहीं पाई कि यह बोडोलैंड आख़िर बला क्या है तो अर्दली ने उसे सारी जानकारी दी कि हुजूर–ये असम के मुल्की यानी धरती-पुत्रों का आंदोलन है। इस तरह का पहला आंदोलन आंध्र प्रांत में शुरू हुआ था, फिर धरती पुत्रों या मुल्कियों की तर्ज पर यही आंदोलन लेकर महाराष्ट्र में शिवसेना खड़ी हो गई...

लेखक ने अर्दली को धन्यवाद दिया। उसे अपनी जेब में रखा और वह फैजाबाद-अयोध्या की ओर चल दिया–मीरबाक़ी के गाँव सनेहुआ का पता करने के लिए।

मुर्दों ने उसका घेराव कर लिया। वे चीखने लगे–आप इस तरह अदालत मुल्तवी करके नहीं जा सकते...आखिर अब एक ही तो अदालत रह गई है...नहीं तो मुल्क की ज़्यादातर अदालतें बेकार हो चुकी हैं। कच्चे कानूनों की वजह से लाचार हैं।

अदीब ने उन्हें जैसे-तैसे समझाया, तब किसी तरह घेराव खत्म हुआ। उसने अदालत बर्खास्त नहीं, सिर्फ स्थगित की थी।

•

15

अदीब फैजाबाद स्टेशन पर उतरा ही था कि एक ज़न्नाटेदार झापड़ उसके पड़ा। यह झापड़ एक नारे ने मारा था। स्टेशन की दीवार पर लिखा हुआ नारा सामने खड़ा था। बोला–फैजाबाद-अयोध्या आए हो तो पहले इसे पढ़ो!

लिखा था–अपने धर्म स्थानों का अपमान,नहीं सहेगा हिन्दुस्तान!–बजरंगदल!

–तुम कहाँ से आए हो? उसने नारे से पूछा।

–मैं दिल्ली से आया हूँ!

–तुम कहाँ के रहने वाले हो?

–मैं रहने वाला तो दिल्ली का हूँ लेकिन मेरा जन्म गोरख आश्रम, गोरखपुर में हुआ है! नारे ने उत्तर दिया।

–तुम फैजाबाद-अयोध्या में कहाँ रहते हो?

–मैं यहीं स्टेशन पर रहता हूँ।

–शहर नहीं जाते?

–कभी-कभी जाता हूँ...जब हमारे जत्थे आते हैं...

–और वैसे...

–यहीं रहता हूँ। शहर के लोग मुझे पनाह नहीं देते।

–इसीलिए स्टेशन पर रहते हो!

–जी हाँ, ज़्यादातर...

–मैं मीरबाक़ी ताशकंदी के घर जा रहा हूँ! अभी तो आज्ञा दो। लौटकर मैं तुमसे भी बात करूँगा ।

नारा खुद ही चीखने लगा–अपने धर्मस्थानों का अपमान, नहीं सहेगा हिन्दुस्तान! नहीं सहेगा हिन्दुस्तान!

अदीब जब स्टेशन के बाहर आया तो रिक्शा और अॉटोवालों की भीड़ ने उसे घेर लिया। तभी उसने एक करिश्मा देखा। वह नारा आसमान में बादलों की तरह घुमड़ने लगा और कुछ ही देर में अंधड़ चलने लगा और रेज़गारी और नोटों की बारिश होने लगी। अंधड़ इतना तेज़ था कि रेज़गारी और नोट अयोध्या की ओर उड़ते चले जा रहे थे। कुछ गिर पड़ते तो ग़रीबों के हाथ आ जाते थे...बाकी उड़ते हुए सरयू की दिशा में बढ़ते जाते थे।

मीरबाक़ी के गाँव सनेहुआ पहुँचने से पहले जब वह फैज़ाबाद की सड़कों से गुज़रा, तो उसे सब सामान्य-सा ही लगा। वही बाज़ार, वही गहमागहमी और वही सामान्य जीवन। बच्चे रिक्शों में लदे स्कूल जा रहे थे। मुसलमान औरतें बुरका पहने बाज़ारों में ख़रीद-फ़रोख़्त कर रही थीं या चूड़ियाँ पहन रही थीं। हिन्दू मनिहार उनकी नाज़ुक कलाइयों में चूड़ियाँ पहना रहे थे और वे बुर्के का पल्ला उठाए, खुले मुँह उनके सामने बैठी थीं। वे मनिहार उनके भाई, चाचा या मामा थे।

बाजार खाने-पीने की चीजों और रेडीमेड पोशाकों से भरे हुए थे। वहाँ न हिन्दू दुकानें थीं न मुसलमान दूकानें...वहाँ सिर्फ़ दूकाने थीं। गंदगी और भीड़ उतनी ही जितनी कि पूरे हिन्दुस्तान में है। पोशाकें सब वही जो सब पहनते हैं।

किसी दीवार ने नारा नहीं लगाया।

खून से नहाई या गोलियों की बौछार से छिदी कोई दीवार कराहते हुए अपनी कहानी सुनाने नहीं आई। और उसे इस बात से राहत मिली कि फैजाबाद की दीवारें अपने बच्चों की देखभाल कर रही थीं–वे जनम घुट्टी बेच रही थीं, लाल तैल और दूध की बोतलें बेच रही थीं। नौजवान उन दीवारों से मोटर साइकिलें या टीवी खरीद रहे थे। सुंदर औरतें होंठों की लाली और ब्रेसरी खरीद रही थीं और नपुंसक लोग उन दीवारों में बैठे गुप्त रोगों के हकीमों और वैद्यों से दनदनाते जोश और मर्दानगी की दवाओं की ख़रीद-फ़रोख़्त कर रहे थे।

सब बच्चों के खिलौने एक से थे। काठ और प्लास्टिक के खिलौने। रबर की छोटी-छोटी चप्पलें–वही नीली, हरी या बादामी। किसी ने उनकी चप्पलें या खिलौने या दूध की बोतलें, उनकी निप्पलें या उन्हें साफ करने के ब्रुश अलग-अलग नहीं बनाये थे। उनकी ज़िदों के ढंग भी एक से थे। वे वैसे ही अपनी माँ के चूड़ियों भरे हाथ खींच रहे थे और अपनी पसंद की दूकानों की ओर ले जाना चाहते थे...सब उसी तरह पत्ते पर चाट खा रहे थे और पान खाके बुर्केवाली सुंदरियों के ओंठ उसी तरह हल्के गुलाबी-से रचे हुए थे जैसे गुड़हल के फूलों के!

उसे विश्वास नहीं हो रहा था, क्योंकि वह तो कुछ और ही देखने आया था...यह सब देख कर उसकी आँखें फटी रह गई थीं। भागा-भागा वह 'जनमोर्चा' अखबार के दफ्तर में घुस गया था। यह पूछने कि यह सब जो उसने देखा है–सच है, या किसी चमत्कारी ताकत ने अपना मायाजाल फैला रखा है ? क्या यही फैजाबाद है या वह किसी दूसरे शहर में आ गया है ! क्योंकि यह तो फैजाबाद नहीं, कोई तिलिस्मावाद लगता है। सम्पादक शीतला सिंह उसे हैरत से देखते रह गए। वहाँ रुकना अजीब लग रहा था। अतः वह निकल पड़ा।

वह एक खूबसूरत मकबरे के पास से गुज़र ही रहा था कि एक निहायत सूखे से पिंजर-हाथ ने उसका कंधा थाम लिया। वह घबरा गया। मुड़ के देखा तो देखता ही रह

गया। उसकी परदादी की तरह बूढ़ी और निहायत खूबसूरत एक औरत उसके सामने खड़ी थी। उसके बाल चाँदी के थे। चेहरे पर सरयू की लहरों जैसी झुर्रियाँ थीं। उस बूढ़ी ने पूछा–

–नहीं पहचाना ?...मैं फैजाबाद की बहू बेगम हूँ! मैं तो नहीं गई अपना फैजाबाद छोड़ के...वो चला गया। अपनी राजधानी भी लखनऊ उठा ले गया। मैंने कहा–जा...तू ही मेरा अकेला बेटा नहीं है, मेरे हजारों लाखों बेटे हैं...मैं तो फैजाबाद नहीं छोड़ूँगी!

–दादी आप रहती कहाँ हैं ?

–अरे तुझे इतना भी नहीं मालूम...मैं इसी मकबरे में रहती हूँ...यहीं दफ़्न हूँ। मैंने देखा कि तू यहाँ से गुज़र रहा है तो सोचा कि तुझसे मिल लूँ। सदियों बाद यह मन किया कि तुझे देख लूँ...तू अमीर खुसरो के खानदान से है न ? अदीब है न ?

–हाँ, अम्मीजान! अदीब हूँ। अमीर खुसरो एटा के थे, मैं मैनपुरी का हूँ...तीस मील का फासला है!

–तीस मील क्या होता है ? अदीब तो सदियों का फासला तय करता है...मेरे बेटे, बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, कबीर, मीरा भी तो उसी खानदान के बुजुर्ग हैं...जिसका तू वारिस है...

और इससे पहले कि वह कुछ भी बोले, वो खुद ही बोलती गईं–मैंने तुझे देखते ही पहचान लिया...तुलसीदास भी उसी ख़ानदान का था। खुसरो तो एटा में रहता था, पर तुलसीदास यहीं रहता था अयोध्या में!...तू भी यहीं रह...क्यों भटकता है गाँव-गाँव, सूबा-सूबा! तू बैठ के लिख। तेरा लिखा सदियों के पार जाएगा...सब के पास जाएगा...इस उम्र में तेरे माथे पर यह लकीरें...आँखों में धुआँ और साँस में इतना ग़ुबार...कहाँ से भाग के आया है तू ? बता, मेरे बेटे, बता!

–दादी, वक्त कुछ ऐसा आन पड़ा है कि मैं कहीं चैन से बैठ नहीं पाता। सोच नहीं पाता। लिख नहीं पाता...आजकल मैं खून से नहाता हूँ और बंदूकों की गोलियाँ खा के ज़िंदा रहता हूँ!

–अरे बेटे, हाँ! एक गोली मुझे भी लगी थी...अरे पूछो, इन कश्मीरी मुजाहिदों का मैंने क्या बिगाड़ा था ?...पर बेटा, तू अपना खयाल रख...कोई राजा-महाराजा, बादशाह-शहंशाह, नेता-प्रधानमंत्री अपने वक्त का जवाब नहीं देगा। सब अच्छा या बुरा करके मर जाएँगे...जवाब सिर्फ़ तुझे देना पड़ेगा या कौम को देना पड़ेगा। इसलिए तू अपना ख्याल रख...मेरे बेटे, तू अपना ख्याल रख...इतना कहकर अपने आँसू पोंछते हुए बहू-बेगम अदृश्य हो गईं।

जेब में से अर्दली ने दस्तक दी–आप अपना काम पूरा कीजिए...

–क्या ?

–बहुत खूब! यह भी भूल गए। आप अदालत मुल्तवी करके किसलिए आए थे ? याद कीजिए और मीरबाक़ी के गाँव का पता पूछिए!

–ओह ! उसने कहा और पास से गुज़रते आदमी से पूछा–आपको मीरबाक़ी के गाँव का पता है ?

–कौन मीरबाक़ी ?

और यह आवाज़ गूंजती चली गई–कौन मीरबाक़ी ? कौन मीरबाक़ी ?

उसने जिससे भी पूछा, उसने यही जवाब दिया।

उसका पता जब नहीं मिला तो वह एक छापाखाने में घुस गया–वहाँ सिर्फ़ दो ही चीजें छप रही थीं–अयोध्या का रक्त-रंजित इंतिहास और चंदे की रसीद बुकें ! रसीद बुकों के गट्ठर लद-लद कर अयोध्या के मन्दिरों में जा रहे थे।

डाकखानों पर भीड़ लगी थी। राम मन्दिर समितियों, भजन-मंडलियों और न जाने किन-किन दलों और परिषदों के एजेंट अपनी-अपनी संस्था की रबर मोहरें लिए, मनीआर्डरों से आए चंदे को डाकखाने से वसूल रहे थे।

आखिर अर्दली जेब से निकला और उसने 'अयोध्या का रक्त रंजित इतिहास' पुस्तक में से मीरबाक़ी का पता खोज कर वह पन्ना उसके आगे बढ़ा दिया–

सनेहुआ गाँव...मीरबाक़ी का गाँव। विवरण सामने था। फैजाबाद से चार मील दूर।

...गर्मी। कच्चा रास्ता। तेज़ धूप। उड़ती हुई गर्म धूल। किसी तरह वह गाँव के बीचोंबीच पहुँचा। गेहूँ अभी कटा था। खेत खाली पड़े थे। खलिहान भरे हुए थे। कच्चे पक्के घरों का गाँव। दस-बारह बच्चे खेल रहे थे। कोई बड़ा और बुजुर्ग नज़र नहीं आया था उसे।

तब तक एक बच्ची ने आकर पूछा–अब्बा से मिलना है !

–कहाँ हैं तुम्हारे अब्बा ?

–उधर खटिया पे पड़े सो रहे हैं !

अर्दली ने उन्हें जाकर जगाया। वह भी पास पहुँच गया।

–यहाँ कोई जाननेवाला है ?

–क्या ?

–कि इस गाँव में मीरबाक़ी ताशकंदी के वंशज कहाँ रहते हैं ?

–कउन मीरबाक़ी तासकंदी ? ई सनेहुआ गाँव है...पूछना होय तो तासकंद गाँव में जाके पूछो। इहाँ का पूछते हो ! उन बुजुर्ग गाँववाले ने कहा और छप्पर से उठकर भीतर चले गए। फिर वे नहीं निकले।

अजीब मुसीबत में फँस गया था वह। धूप से झुलसते गाँव को उसने देखा...पीछे एक छोटी-सी मस्जिद थी और एक मज़ार...उस मज़ार के सिरहाने एक लैंप लगा था।

उसने अपने क्र्यू को आवाज़ लगाई। फौरन कैमरा और साउंडवाले आ गए। प्रोडक्शन यूनिट भी सक्रिय हो गया।

–इस गाँव में और कोई मस्जिद और मज़ार तो दिखाई नहीं पड़ता, यही होगी मीरबाक़ी की बनवाई मस्जिद और यही होगी उसकी मज़ार ! उसने कहा तो उसके क्र्यू के

लोग जूते उतार कर मज़ार के ऊँचे आँगन में चढ़ गए। अभी वे फ़िल्मिंग शुरू ही करनेवाले थे कि पिछली गली से एक भीड़ दौड़ती हुई आ पहुँची और चीखने-चिल्लाने लगी–

–आप लोग हमारे भारत में आग लगाने आए हैं! यह एक मौलवीनुमा अधेड़ की आवाज़ थी।

–आप बिना पूछे ऊपर चढ़े कैसे?

–इजाज़त किससे ली?

–हैं कौन आप!

–नीचे उतरिए!

–आख़िर आपका मकसद क्या है?

–ये गाँव आपका है कि मुँह उठाया और घुस आए...चीखती चिल्लाती भीड़ किसी क्षण भी बेकाबू हो सकती थी। कोई यूँ ही एक ईंट भी उठाकर फेंक देता तो पथराव शुरू हो जाता। अदीब बहुत नरमी से उस भीड़ को शांत करने की कोशिश कर रहा था, पर कोई कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था। तब तक गाँव के नौजवानों का एक गोल भी तहमद सँभालता, कुर्ते पहनता भीड़ में शामिल हो चुका था। तनाव काफ़ी बढ़ गया था।

तभी दो फरिश्ते बीच में आकर खड़े हो गए।

उन दोनों देवदूतों में से एक ने पहचाना–अरे भाई, ई त अपने सीतलासिंह बाबू हैं! जनमोर्चा वाले! ई कौनउ गलत काम नाहीं करिहें...शांत! खामोश!

और उस चिलचिलाती धूप में यह चमत्कार हुआ कि सारे लोग तैश और गुस्से को थूक कर आस-पास जमा हो गए। वे जानना चाहते थे कि वो सब लोग किस काम से आए हैं?

शीतला सिंह ने उन्हें सारा मकसद बताया तो वही मौलवीनुमा अधेड़ सामने आए, बताने लगे–अब बात ई है साहब कि हम यहाँ चैन से रहते हैं...पूरा गाँव मुसलमानन का है...इसमें शिया भी हैं और सुन्नी भी...औ' मैं...

–आप क्या हैं?

–मेरी परचूनी की दूकान है...औ' मैं इसही मस्जिद का पेश-इमाम भी हूँ! इहाँ कोई मीरबाक़ी नाहीं रहा...न उसका खानदानी कोई है इहाँ...

–तो ये मज़ार किसका है? बोस ने पूछ लिया।

–ई तो हमारे सामनेवालों के, उनके बुजरुग रहे...औ हम सब गाँव वाले भी उनको बुजरुग मानते हैं। उन ही का मजार है ई! अब आप ही सोचें...का मीरबाक़ी का मजार औ ओकी मस्जिद इतनी मामूली होय सकती है? ई तो आग लगाय दी है ग़लत तारीख लिखनेवालों औ' दिल्ली के अखबारों ने...इहाँ आय के तसवीरें उतारीं औ' जाके लिख दिया–ई मीरबाक़ी की कबर है औ' ई ओकी बनवाई मस्जिद!

–सालन की टाँग तोड़ देनी चाहिए!

–बस आग लगाते घूम रहे हैं सब...ई नाहीं सोचते कि भारत का का होगा! पहले हिंया हिन्दू-मुसलमान कौ लड़वाना चाहा, नाहीं लड़वाय पाए तो अब शिया-सुन्नी को लड़वाना चाहते हैं...

अब तक पानी, शर्बत, बिस्कुट और मूंग की दालमोठ आ गई थी। खातिर शुरू हो गई।

–हम जानत हैं, आप तो आग बुझाये में लगे हौ...आप जौनउ तसवीर चाहे, उतार लेंय...

यह सुनते ही विनोद कैमरा लेकर फिर मज़ार के आँगन में चढ़ गया। और बातचीत का सिलसिला फिर जारी हो गया। वहीं पेड़ के नीचे एक बड़ा सा दीप-स्तंभ बना था। उसे दिखाते हुए वो अधेड़ बताने लगे–

–इस पर पचासों चिराग जलाते हैं हम...जब ताज़िया उठाते हैं...ई दीपघर है...हम जब हिन्दू रहे तब हमारे पुरखन ने बनवाया रहा...अब हम ताज़िया उठाते बखत इस पै चिराग़ जलाते हैं।

–मस्जिद में नमाज़ कौन पढ़ाता है?

–मैं ही पढ़ाता हूँ! परचूनी के वही दूकानवाले अधेड़ बोले।

–गाँव में यही एक मस्जिद है?

–हाँ...इसी में दोनों नमाज़ पढ़ लेते हैं! शिया भी, सुन्नी...भी। पहले हम पढ़ लेते हैं फिर सुन्नी कोई झगड़ा नाहीं है पर लोग करवाना चाहते हैं, इही बात पै...

–वैसे शिया और सुन्नी में फरक क्या है? अदीब ने पूछा।

–कौनउ नाहीं बाबू साहेब! एक बुजुर्ग ने कहा–जौन अली को शिद्दत से मानते हैं, तौन शिया, जौन सुस्ती से मानते हैं तौन सुन्नी!

तभी चीखती-चिल्लाती, छाती पीटती एक अधेड़ औरत आ गई—सिया सुन्नी गए भाड़ चूल्हे में...ऐ इमाम साब! मोर बिलकीस को तो तुमने मरवाय दिया...ई का जिम्मेदार है वो अमीरात का बिलाल...

यह क्या वारदात है–अदीब के कान खड़े हुए। अर्दली तब तक इधर-उधर मुयाअना करके उसके पास आ चुका था।

अदालत की ज़रूरत को समझ कर वह फौरन बिलाल को बुलाने गया, पर खाली हाथ लौट आया–

–हुजूर बिलाल का कहीं पता नहीं है...न वह इस दुनिया में है, न उस दुनिया में!

–यह कैसे हो सकता है! अदालत बोली–सारे धर्मों और सभ्यताओं ने सिर्फ़ दो दुनिया का उसूल आयद किया है...तीसरी दुनिया कैसे हो सकती है, जिसमें जाके बिलाल छुप जाए?

–पता नहीं हुजूर...पर वो मुझे मिला नहीं! इतना ज़रूर मालूम हुआ कि वह मिस्र की तरफ भाग गया है!

–मिस्र की तरफ! तब तो वह जरूर पकड़ में आ जाएगा! आखिर मिस्रवाले मुझे कैसे भूल सकते हैं...हम उस जमाने की बात कर रहे हैं जब इंसान और इंसान का खून एक था, हमारी सभ्यता एक थी, हम सब दरिया नील की गोद में पले थे...हमने ही मिस्री सभ्यता को जन्म दिया था। मिस्र की सभ्यता मेरी ही तो देन है! मिस्रवालों से जाके कहो कि जिसने तुम्हें तुम्हारी सभ्यता दी है, उसे बिलाल की ज़रूरत है। क्या दरिया नील के देशवासी भूल गए कि सीन से लेकर भूमध्यसागर तक का 500 मील का वह ज़रख़ेज़ हिस्सा मैंने ही सींचा था। ईसा से 6000 साल पहले...और फिर फारोह चियोप्स का पिरामिड मैंने और मेरे साथियों ने बनाया था...जिसे हेरेडोटस देखने आया था...अरे वही यूनानी इतिहासकार हेरेडोटस! सम्राट मेनीस ने क्या किया, इसकी तफसील में जाने की जरूरत नहीं है पर पुरातन मिस्र को आत्माओं के आगमन और पुनर्आगमन की परिकल्पना मैंने ही दी थी!...

–सर!

–चुप रहो! हाँ...आज से 6000 साल पहले मैंने ही यह कल्पना की थी कि मनुष्य में दो आत्माओं का निवास होता है...एक वह जो लौकिक है, दूसरी वह जो पारलौकिक है...मृत्यु के बाद भी आत्मा अपने पुराने घर को खोजती आती है, इसीलिए मैंने सोचा था कि पिरामिड जरूरी हैं, जिनमें उस आत्मा के शरीर को सुरक्षित रखा जा सके, ताकि आत्मा जब चाहे तब अपने लौकिक शरीर में आ-जा सके! और जानते हो तुम...

–सर!

–जानते हो तुम! मुझमें सिर्फ सदियाँ ही नहीं, सभ्यताएँ बोलती हैं...उन पिरामिडों में आत्मा के आवागमन के लिए ही मैंने रास्ते बनाए थे ताकि आत्माओं को भटकना न पड़े...हमारी तरह, जैसे आज हम भटक रहे हैं!

–अदीबे आलिया! बाबर ने जैसे परेशान होकर टोका...

–सुनते जाओ बाबर! अगर इंसान की इंसानी जड़ों को नहीं पहचानोगे तो तुम आज की दुनिया के दुःख दर्द को नहीं समझोगे!

–मुझे आज की दुनिया से लेना-देना क्या है, अदालते आलिया! बाबर ने कहा।

–लेना देना है, क्योंकि हम जो दुनिया बनाते हैं उससे आनेवाली नस्लें बाबस्ता होती हैं...अगर तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं होता, तो तुम आज यहाँ इस अदालत में मौजूद न होते...कोई जिन्दगी स्वतन्त्र नहीं है, वह आगे और पीछे जुड़ी हुई है!

–जी।

–तो सुनो । तुम या कोई भी, सभी तो मिस्र की सभ्यता से जुड़े हुए हो! अपनी मिस्र की सभ्यता में मैंने ही पुनर्जन्म की परिकल्पना पैदा की थी...मैंने मृत्यु को अंतिम सत्य नहीं माना था...मृत्यु के बाद फिर जीवन...यही सबसे बड़ा सत्य था...

–और शायद आपने ही प्रेतपूजा की परिपाटी तोड़कर अद्वैतवाद की स्थापना की थी!...अद्वैतवाद यानी एकेश्वरवाद...फ्यूहरर बहुत अदब से बोला।

–तुमने इसमें 'शायद' क्यों लगा दिया? शायद नहीं, बिलाशक!...और सूर्य को ही हमने परमेश्वर माना था...उसे श्रद्धा से 'रा' पुकारा था...रा ही हमें शक्ति देता था, ऊर्जा देता था...वही मौसमों का कत्र्ता था, सृजन और सुख का दाता था! एकेश्वरवाद को पुख्ता करने के लिए तब फारोह अमेनहोतप ने अमोन-रा को स्वीकार किया था ताकि थीब्स और कर्नाक की दक्षिणवर्ती संस्कृति को उत्तरवर्ती मेम्फिस की संस्कृति से एकीकृत किया जा सके...उसी ने सूर्य और सूर्य के चक्र की परिकल्पना की थी और तब हमारी सभ्यता में यह विश्वास दृढ़ हुआ था कि सूर्य जब अस्त होता है तो मृतकों के संसार में चला जाता है और प्रातः उदित होकर जीवितों के संसार में लौट आता है...

अदीब सभ्यता कि इस कहानी को लगातार बताता जा रहा था, पर इसे ध्यान से कोई नहीं सुन रहा था। बाबर ने अर्दली की ओर देखा तो उसने फुसफुसा कर कहा–

–हमारे साहब कभी-कभी बहक जाते हैं और राजनेताओं की तरह ऊट-पटांग भाषण देने लगते हैं...पर क्या करें, आख़िर इंसान की इस रक्त-रंजित नियति के बारे में फैसला तो इन्हें ही देना है! इस अदालत को कौन रोक सकता है!

तभी दस्तकें फिर पड़ने लगीं...फिर वही हाहाकार और कोहराम मचने लगा...

अदीब ने पहले तो कानों पर हाथ रखे, पर जब उस भयानक शोर को नहीं सह पाया तो कड़कती बिजली-सी आवाज़ में चीखा–

—खामोश! दुनिया से तो तुम परास्त होकर यहाँ चले आए...अगर मैंने तुम्हें यहाँ से निकाल दिया तो कहाँ जाओगे? बोलो, कहाँ जाओगे?...

कोलाहल कुछ-कुछ थमने लगा तो अदीब फिर भाषण पर उतर आया–

–देखो...हर सभ्यता, हर धर्म में ब्राह्मणवाद पैदा हुआ। भारत में तो वह बहुत देर से आया, पर मिस्र की सभ्यता में भी पुरोहितवाद और ब्राह्मणवाद पैदा हुआ। यह जड़ता का प्रतीक था...मेरे मिस्र में भी देवताओं के नाम पर जो प्रसाद चढ़ाया जाता था, वह वहाँ के मन्दिरों के पुजारियों के पेट में जाता था। वे पुजारी उन मन्दिरों में वैभव से रहते थे। वे श्रम, फौजी सेवा और करों से मुक्त थे! ये पुरोहित-पुजारी और ब्राह्मण ही मिस्र की सभ्यता के पतन का कारण बने! यही सुमेरियन सभ्यता में हुआ, जो सूर्य के नहीं, चन्द्र के पूजक थे, जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को बहुत महत्व देते थे...

–हुज़ूर...अदीबे आलिया! बाबर चीखा।

–सुनने दो! उससे ज़्यादा ज़ोर से फ्यूहरर चीख पड़ा।

–तो सुनो ! सुमेरियन संस्कृति के ब्राह्मणों ने मृतकों और आत्माओं के लिए पिरामिड नहीं बनाए, बल्कि देवताओं के नाम पर अपने लिए मन्दिरों का निर्माण किया...जब सुमेरियन सभ्यता के ब्राह्मण स्वार्थी हो गए तो उस सभ्यता का भी विनाश हो गया और तब उस विनष्ट सभ्यता पर जन्मी बेबीलोनियन सभ्यता ! बेबीलोनियन सभ्यता ने पहली बार मिली जुली संस्कृति को मंजूर किया था। दज़ला और फ़रात की घाटी इस मिली जुली संस्कृति से मालामाल हो उठी थी। लेकिन बेबीलोनिया की सभ्यता में भी कुलीनता का दम्भ पैदा हुआ...उसमें भी अलिखित वर्ण बनते गए...यही असीरियन, हित्ती, आर्मीनियम, हिब्रू, एरोयेन और ग्रीक देशों के साथ हुआ...

पर ये सभ्यताएँ जी नहीं सकीं, क्योंकि इनमें भी कुलीनता के नाम पर उन लोगों का उदय हुआ जो मन्दिर, पुराण और पवित्रता के नाम पर स्वयं को पुरोहित पुकारते थे। ये पुरोहित ही असल ब्राह्मण थे...जो जातीय नहीं–स्वार्थ केंद्रित कुलीनता और ब्राह्मणवाद के प्रतीक थे ! यानी जो जड़ता को प्रश्रय देते थे और वक्त को बदलने नहीं देते थे...

अभी अदीब पागलों की तरह घूम-धूम कर और कभी-कभी बाल नोचते हुए अपना भाषण दे ही रहा था कि फिर भयानक दस्तकें पड़ने लगीं। मुर्दों की दुनिया में हाहाकार मचने लगा...आत्र्तनाद और विलाप के स्वर तेज से तेजतर होने लगे। तो घबरा कर अदीब ने अर्दली से बहुत चिंतित होकर पूछा–

–यह भयानक शोर कैसा है ?

–सर ! जब आप भाषण देने लगते हैं तो संसार के किसी हिस्से में कहीं न कहीं रक्तपात हो जाता है...कोई हिंस्र आदमी जाग पड़ता है और नस्ल या मज़हब के नाम पर लोगों को भड़का देता है ! और वह मज़हब या नस्ल अपना बदला चुकाने लगती है...

–पर ये कौन लोग हैं जो सभ्यता की कहानी को रोक कर बर्बरता की दास्तानें बताना चाहते हैं ?

–सर ! ये 39 लोग दक्षिण अफ्रीका के बोईपोतोंग इलाके से अभी-अभी मर कर आपकी आदलत में हाज़िर हुए हैं ! ये काले अफ्रीकी हैं जिन्हें गोरी चमड़ीवाली साउथ अफ्रीकी सरकार ने ही मरवाया है !

–लेकिन वहाँ तो नेल्सन मंडेला की अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस और डी क्लार्क की गोरी सरकार में समझौता हो चुका है कि वे मिलजुलकर नया संविधान बनाएँगे और कालों का उनके नैसर्गिक अधिकार देंगे ! फिर यह हत्याकांड क्यों ?

–सर ! अंग्रेज गोरों ने अफ्रीकनों की एक पार्टी 'इनखदा फ्रीडम पार्टी' को तोड़ लिया है और यह हत्याकांड उन्हीं से करवाया है...

–हूँ ! तो ये 39 मुर्दे क्या चाहते हैं ?

–ये इंसाफ चाहते हैं !

—पर ये दूसरे कौन लोग दस्तकें दे रहे हैं ? जब तक दस्तकों का सिलसिला बंद नहीं होगा, इंसाफ कैसे होगा ?

—क्या किया जाए हुजूर ! आप इंसाफ करते चलिए...दस्तकें अपनी रफ्तार से पड़ती रहेंगी !

लेकिन दस्तकों की रफ्तार बहुत तेज़ है !

—तब सर, आपको अपने इंसाफ की रफ्तार तेज करनी होगी...जब इन्साफ तेज़ रफ्तार से चलेगा तो कोई न कोई हल निकलता जाएगा !

तभी उबासी लेते हुए बाबर और फ्यूहरर ने कहा—

—अदीबे आलिया ! अब हमें जाने की इजाज़त दी जाए...हमारी कब्रों पर फातिहा पढ़नेवाले लोग आने वाले हैं, अगर हम उन्हें वहाँ नहीं मिलेंगे, तो आपके लिए बबाल खड़ा हो जाएगा और दस-बीस लाख बेगुनाह लोग मार डाले जाएँगे !

—ठीक है ! अदीब ने कहा—तुम दोनों जाओ, पर सिवा अपनी कब्र के तुम्हें और कहीं जाने की इजाज़त नहीं है, ताकि जब ज़रूरत हो, तुम्हें बुलाया जा सके !

बाबर और फ्यूहरर रुख़सत हुए तो और तेजी से दस्तकें पड़ने लगीं और लोग चीख़ने लगे—

—हम कराँची से आए हैं...हम सिंधी हैं, हमें पाकिस्तानी फौज ने मुहाजिरों के कहने पर मारा है !

—हम लेबनानी हैं, हमें क्रिश्चियनों ने मारा है !

—हम मोलदोवा से मर कर आए हैं, हमें रूसियों ने मारा है !

—हुजूर हम बोसनिया से आए हैं, हमें सर्बों ने मारा है !

—ठीक है, ठीक है। अब मर गए हो तो चैन से बैठो...जिन्दा रहने के लिए बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं, मर कर आदमी चैन की जिन्दगी बसर करता है—यही मिस्री सभ्यता ने हमें बताया था और मिस्री तथा आर्य सभ्यता ने इसीलिए पुनर्जन्म को माना था...फर्क सिर्फ इतना था कि सिंधु सभ्यता ने पुनर्जन्म के सत्य को अलग-अलग योनियों में बँटा हुआ माना था, पर मिस्री सभ्यता ने मनुष्य का पुनर्जन्म मनुष्य के रूप में ही मंजूर किया था...इसीलिए मैं मिस्री सभ्यता का समर्थक हूँ...क्योंकि हम मनुष्य योनि को प्राप्त कर लगातार सभ्य होते आए हैं...

—सरकार ! क्या कह रहे हैं आप ? अगर हम लगातार सभ्य होते आए हैं तो आपकी अदालत में इन दस्तकों की जरूरत क्यों हैं ?

—हाँ ! यह तो सही सवाल है ! कहते हुए अदालत कुछ सोचने लगी, फिर बहुत परेशान होकर उसने हुक्म दिया—जिन्दगी को बुलाओ ! उसे फौरन से पेश्तर हाज़िर करो !

–जिन्दगी! अर्दली ने भौंहें चढ़ाकर पूछा।

–हाँ जिन्दगी!

–यानी कहानी!

–जो भी समझो, कहानी और जिन्दगी में आज दूरी कहाँ है?...अदालत ने कहा।

अर्दली जिन्दगी और उसकी कहानी को लाने के लिए चलने लगा।

पर वह एकाएक रुककर बोला–

–पर सरकार! आपने तो बिलाल को मिस्र से पकड़ लाने का हुक्म दिया था! उसे लाऊँ या नहीं?...क्योंकि सरकार...ये अपनी हिन्दुस्तानी लड़की बिलकीस बहुत रो रही है और अपना इंसाफ माँग रही है!

–ओह...मैं भूल ही गया...जाओ और कहीं से भी लाकर बिलाल को हाजिर करो!

अर्दली एकाएक गायब हुआ और फौरन अरब अमीरात की सामाजिक समस्याओं के ओहदेदार मुहम्मद बिलाल को कान से पकड़ कर ले आया और उसे पेश कर दिया–हुजूर बिलाल! इसे पकड़ लाया...यह हाजिर-अदालत है!

पर बिलाल समझ ही नहीं पाया कि यह कैसी अदालत थी। और उसे क्यों पकड़ कर लाया गया है? पर जब उसे उसके इल्जाम के बारे में बताया गया और पूछा गया कि वह बेचारी हिन्दुस्तानी लड़की बिलकीस किन हालात में मारी गई, तो उसने अदालत को हिकारत से देखा।

बिलाल बिफर उठा–ओह! बिलकीस! लेकिन एक हिन्दुस्तानी औरत की जिन्दगी इतनी कीमती नहीं कि उसके बारे में मुझसे जवाब माँगा जाए। खुद तुम्हारे मुल्क के दंगों में कितनी बिलकीस रोज़ मरती हैं...उनके साथ ज़िना किया जाता है...तब तुम ख़ामोश रहते हो...तब अपने लोगों से तुम जवाब नहीं माँगते!

तभी मुर्दा बिलकीस की सिसकियों की तेज आवाज आने लगी और मुश्किल यह थी कि बिलकीस की सिसकियों के साथ ही कोरिया की एक सत्तर साला औरत किम-हकसुन भी थी। वह भी लगातार रोए जा रही थी।

अदालत सकते में आ गई। उसने परेशानी से कहा–मुर्दा लोगों को जिन्दा लोगों से अलग किया जाए! नहीं तो सब गड्डमड्ड हो जाएगा...मेरे कान में अभी एक जापानी ने कानूनी नज़ाकत का मुद्दा उठाया है और कहा है कि किम-हकसुन अभी जिन्दा है और उसे मेरी अदालत में हाजिर होने का कोई हक़ नहीं है!

कहते हुए अदालत ने अपने माथे पर दस्तक दी–यह एक संवैधानिक सवाल है...मैं सिर्फ मुर्दों की शिकायतें सुनने का हक़दार हूँ...पर...

–हुज़ूर ! इन कानूनी बारीकियों में मत जाइए। अन्याय अन्याय है ! अन्यायग्रस्त औरत की ज़िन्दगी तो मौत से बदतर होती है !

–तुम ठीक कह रहे हो महमूद अली ! अदालत चीखी, तो पूरी सृष्टि काँप उठी–नहीं ! मैं मुर्दों के अलावा उन जिन्दा लोगों की फरियाद सुनने का हक़ भी लेता हूँ जो जीते-जी मुर्दा मान लिए गए हैं !...पलटकर अदालत ने किम-हकसुन की ओर देखा–हाँ ! तुम अपनी कहानी बताओ !

किम-हकसुन ने कहा–सर ! मैं कोरियन हूँ ! तब मैं 17 साल की थी। वैसे मैं पैदा तो सन् 1924 में , जिलिन में हुई थी। लेकिन 1941 में मुझे पेइचिंग से जापानी फौजियों ने उठाया था और दूसरे महायुद्ध के दौरान मुझसे जापानी सोल्जरों ने लगातार 15 बार प्रतिदिन बलात्कार किया। मुझे 'तीसहिनताई' कोर में भर्ती किया गया जो सैक्स-कोर थी, जिसे 'कम्फर्ट कोर' के नाम से पुकारा जाता था। इस कोर में करीब चालीस हज़ार औरतें-लड़कियाँ जबरदस्ती भर्ती की गई थीं और हम प्रतिदिन कम से कम पन्द्रह जापानी फौजियों की पाशविक वासना को सहती और तृप्त करती थीं...

तभी बिलकीस की तेज रुलाई फूट पड़ी–

–किम-हकसुन ! यह तो तुम्हारे साथ तब हुआ जब जंग जारी थी...पर मेरे साथ तो यह तब हुआ जब जंग नहीं थी !...मुझे तो सिर्फ तस्वीर और डाक के ज़रिए, ब्याहता के नाम पर, इस गंदे पेश में डाला गया...अदालते आलिया !...बिलकीस फूट-फूट कर रो पड़ी–हुजूर ! न तो मुझे उनकी जुबान आती थी, न उनकी तहज़ीब...पर वो अरब था, जो मुझे ब्याह का नाटक करके ले गया था, वो मुझसे 28 बरस बड़ा था और जैसे ये किम-हकसुन पन्द्रह जापानियों की हवस की शिकार होती थी, उसी तरह मैं हर दिन बीसियों बार अपने उस खाविंद की कुदरती और ग़ैर-कुदरती हरकतों का शिकार होती थी ! फिर जो बच्चा हम जैसों से पैदा होता था उसे 'तेली बच्चा' कहा जाता था और अरब समाज से उसे दूर रखा जाता था...

अदालत के माथे पर सलवटें पड़ीं–फिर वह चीख़ी–ओ अरब अमीरात के अफसर बिलाल ! किम-हकसुन की अस्मत का जवाब तो जापानी देंगे, पर तुम इस अदालत को बिलकीस के उस 'तेली बच्चे' की तफसील दो...जो जबरदस्ती पैदा किया गया, पैदा हो गया !

और साथ ही अदालत ने अर्दली को देखते हुए कहा–तुम अभी तक यहीं खड़े हो ! मैंने तुम्हें हुक्म दिया था कि जिन्दगी को हाज़िर करो...उन वहशी जापानियों और इस बिलाल का बयान मैं दर्ज कर लूँगा, पर तुम फौरन जाओ और पाकिस्तान-कराँची के हवाई अड्डे से उस ज़िंदगी को लाओ जो जिन्दा होते हुए भी अपनी जिन्दगी नहीं जी पाई...

हुक्म तामील करने के लिए अर्दली जैसे ही तेज़ी से चला कि अदालत पर हमला हुआ...तरह...तरह के नारों का शोर बरपा हो गया और तड़ातड़ गोलियाँ चलने लगीं।

कोहराम मच गया और अजीब बात यह हुई कि मुर्दे फिर मरने लगे, वे जिन्दा लोगों की तरह ही चीखने, कराहने और चिल्लाने लगे, पर यह मालूम ही नहीं चल सका कि कौन किसको मार रहा था, क्योंकि दुनिया के सारे पाकिस्तानों के बाशिंदे अपनी ही कौम के बाशिंदों के खून के प्यासे हो गए थे।

अदीब घबरा गया...वह चीखा–यह क्या बदतमीजी है ! हम इंसान की तकदीर के फैसले के साथ-साथ जिन्दा आदमी की जिन्दगी का फैसला करने के लिए भी यहाँ मौजूद हैं ! यह मुर्दों के अधिकारों का ही नहीं, जिन्दा इंसानों के अधिकारों का सवाल भी है।

–दोहरी बात मत करो ! अगर जिन्दा लोगों की जिन्दगी का फैसला करने के लिए तुमने अदालत लगाई है तो फिर तुमने मुर्दों की यह मजलिस क्यों जमा रखी है ? एक हमलावर ने सवाल किया।

–क्योंकि ये मुर्दे अपनी जिन्दगी से पहले मारे गए हैं। इनकी जिन्दगी अभी बाकी है और मैं उन्हीं मुर्दों से मिल रहा हूँ जो अपनी कुदरती मौत से पहले मर गए हैं। जिन्दगी और ग़लत मौत के बीच झूलती इनकी उम्र का हिसाब कौन देगा ? अदीब चीखा–कयामत के दिन तक ये कहाँ इंतजार करेंगे ? इनके कर्म का ब्यौरा किसने दर्ज किया है जिससे इनकी अगली जिन्दगी का रूप तय होगा...ये अशांत और अधूरी आत्माएँ अकाल मृत्यु की शिकार आत्माएँ हैं...इनकी ग़लत मौत का लेनदार और देनदार कौन है ?

अदीब चीखता ही रह गया...हमले जारी थे और कहर बरपा था। धुआँ, धमाके, तड़तड़, हल्ला, हंगामा और बदअमनी...चीखें, चिल्लाहटें और आग। यह बदअमनी देख कर अर्दली तेज़ी से लौटा। जैसे-तैसे उसने अपने अदीब की जान बचाई और उसे लेकर भागा।

•

16

भागते-भागते वे लस्त हो गए। वह एक बड़ा रेगिस्तान था। उसकी बालू पर भागना आसान नहीं था। रेगिस्तानी तूफ़ान के मारे और भी मुश्किल थी। उसकी आँखों, कानों, नथुनों, बालों और कपड़ों में रेत भर गई थी...चारों तरफ बियाबान रेगिस्तान...उड़ती गर्म रेत के बगूले और बालू की लहरों से बनते और बिगड़ते टीले...

हाँफते हुए अदीब गिर पड़ा। अर्दली बुरी तरह हाँफते हुए उसके पास ही बैठ गया। थोड़ा दम में दम आया। साँसें ठीक हुईं तो उसने अर्दली से पूछा–हम कहाँ हैं ?

–हुजूर ! हम एक बियाबान रेगिस्तान में हैं !

–दोस्त ! मैं अब बुरी तरह लस्त हो गया हूँ। मैं अपने दोस्तों और समकालीनों को आवाज़ देना चाहता हूँ कि मेरा साथ दो...राकेश, रेणु, दुष्यंत, राही, परसाई, रघुवीर, श्रीकांत के अलावा मैं अपने तमाम उन जीवन्त दोस्तों को आवाज़ लगाना चाहता हूँ जिन्होंने अपनी रचनात्मक शक्ति को अपने लिए नहीं, दुनिया के लिए समर्पित कर दिया है और वे लगातार अपनी व्यक्तिगत रचना शक्ति और अपने कलम की सच्चाई से इस दुनिया को बेहतर बनाना चाहते हैं...उनसे कहो–मेरा साथ दें...मैं बहुत अकेला पड़ गया हूँ ! उनसे हाथ जोड़कर कहो कि दुनिया को उनकी जरूरत है...पर पहले मुझे बताओ कि यह कौन-सा रेगिस्तान है ? इसका नाम क्या है ? अदीब ने परेशानी से पूछा।

–पता नहीं, यह कौन सा रेगिस्तान है...लेकिन रेत के सिवा यहाँ कुछ और नहीं है हुजूर ! अर्दली ने अपनी रेत झाड़ते हुए कहा।

अपनी रेत साफ़ करके अब तक अदीब भी कुछ सुबिस्ते से बैठ गया था। उसने आसमान की तरफ देखा तो चकित रह गया–अर्दली ! देखो, देखो...इन सफ़ेद हंसों को देखो...ये कैसे उड़ रहे हैं !

–हुजूर ! ये हंस नहीं, इसी सफेद रेत के परिन्दे हैं ! ये गर्म बगूलों के साथ उठते हैं, कुछ देर रेत के ये परिन्दे अपने पंख फड़फड़ाते हैं, फिर इसी रेत में मिल जाते हैं ! अर्दली ने अदब से बताया।

अदीब उन परिन्दों को देखता रहा। कुछ देर बाद उठ कर खड़ा हुआ और चलने लगा।

–हम किधर जा रहे हैं हुजूर ? अर्दली ने पूछा।

–यहाँ दिशाएँ तो हैं नहीं, जिधर पैर उठ गए उसी तरफ चल पड़ा हूँ !...थोड़ी मदद रेत के इन उड़ते हुए परिन्दों से मिल रही है...अदीब ने कहा और चलता रहा।

रेत ही रेत। चारों तरफ। कहीं कोई रास्ता नहीं था। कोई पड़ाव या मंजिल नहीं थी। सिर्फ रेत ही रेत। पता नहीं वे दोनों कब तक और कहाँ तक चलते रहे। कितनी रातें गुजरीं, कितने दिन बीते, कुछ पता नहीं। जहाँ भी वे पहुँचते, यही लगता कि यहीं से तो चले थे। सारा रेगिस्तान एक-सा था। देखते-देखते कदमों के अक्स भी मिट जाते थे। पता ही नहीं चलता था कि वे चले भी थे या नहीं।

–सर ! हम हर दिन इतना चलते हैं लेकिन कहीं पहुँच नहीं रहे हैं ! आख़िर एक दिन अर्दली बोल ही पड़ा।

–चलना अपनी जगह है और पहुँचना अपनी जगह...इन दोनों को मिलाते क्यों हो ? अदीब बोला–इसका सबूत हैं यह ठहरी हुई सदियाँ, जो लाखों करोड़ों बरस पहले चली थीं, पर वहीं पहुँची, जहाँ से वे चली थीं...बीच-बीच में उन्हें मज़हब के पड़ाव मिले और उन पड़ावों ने फिर उन्हें उसी बियाबान रेगिस्तान में पहुँचा दिया...

अर्दली उसकी बात नहीं समझ पाया तो अदीब ने कहा–देखो ! हर चीज़ अपना काम करती है। अंधेरा आता है, पर वह खुद से यह पूछ कर नहीं आता कि वह कितना चल कर आया है। रोशनी आती है। वह भी अपने फासलों का हिसाब किताब रख कर नहीं चलती। यह रेत उड़ती है, उड़-उड़ कर चलती है, पर इसने भी नहीं बताया कि इसने कितना फासला तय किया है।

अर्दली को चुप रहना ही ठीक लगा। उसे लगा कि साहब फिर बहक रहे हैं। आखिर कहीं दूर पर एक छाया-सी नज़र आई। ताज्जुब की बात यह थी कि वह छाया देखते-देखते पिघल जाती थी। फिर उभर आती थी। अदीब ने कई बार आँखों को दूरबीन बनाकर उस छाया को देखा। उस छाया ने भी उसे देखा और वह भागती हुई आई–और पास पहुँचते ही वह छाया-पुरुष उससे लिपटते हुए बोला–अरे, अदीब ! तुम यहाँ ? हिंदुस्तान से कब आए ?

–अरे कॉमरेड इमाम नाज़िश तुम ! तुम पाकिस्तान से कब आए ? बन्ने भाई...अरे अपने सज्जाद ज़हीर कहाँ हैं ? तुम कैसे हो इमाम नाज़िश ?

–मैं अच्छा नहीं हूँ ! जिंदा भी हूँ मुर्दा भी ! मैं तो पाकिस्तान गया था जम्हूरियत के लिए...गरीबों की लड़ाई लड़ने के लिए...मैं पाकिस्तान गया था, अपनी बीवी, अपना घर, अमरोहा में छोड़कर...

–हाँ नाज़िश, मुझे याद है, तब तुमने भी पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे लगाए थे...और सिंध असेम्बली में जी.एम. सैयद ने भी पाकिस्तान का स्वागत किया था। बन्ने भाई भी तब यह भूल गए थे कि पाकिस्तान मेहनतकशों का मुल्क नहीं, वह बड़े सरमाएदारों का मुल्क है...जिसकी बुनियाद मज़हब की नफ़रत से भरी गई थी...और तुम मार्क्सवादी उस मज़हबी नफ़रत को तब एक धार्मिक-साम्प्रदायिक ज़रूरत मानकर मुल्क के बँटवारे का समर्थन कर रहे थे। तुम धर्म को अवाम की अफ़ीम मानते हुए भी धार्मिक और भाषावादी

नस्लवाद को तरजीह दे रहे थे...अदीब ने एक के बाद एक ताने कसे तो इमाम नाज़िश बौखला गए और तैश में बोले–

–तब तुम भी हमसे कहाँ अलग थे!...तब अदीब तुम...अमृता प्रीतम, कर्त्तारसिंह दुग्गल, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, देवेंद्र सत्यार्थी और यहाँ तक कि तुम्हारे यशपाल, अश्क और अज्ञेय तक खामोश रहे। तुम लोगों ने पार्टीशन के बाद के हौलनाक मंजर को पेश ज़रूर किया...लेकिन ईमानदार तमाशाइयों की तरह! वह सिर्फ मंटों था, जिसने टोबाटेक सिंह की लाश सरहद की ग़ैर-कुरदती लकीर पर फेंकी थी। हमने ग़लती की, पर तुमने भी तो उस ग़लती में हाथ बँटाया था! इमाम नाज़िश ने तैश में कहा–जब सज्जाद ज़हीर पाकिस्तान कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी बने, तो मैं ईस्ट पाकिस्तान छोड़कर वैस्ट-पाकिस्तान चला गया और वहीं हमें मजहबी बुनियाद पर बने मुल्क पाकिस्तान की असलियत का पता चला...मैंने बंगाल जाकर महसूस किया था कि मज़हब के नाम पर क़ौम को तय करना ग़लत था!

–लेकिन अब तो सब मुल्कों में नफरत का एक पाकिस्तान बनाने की कोशिशें जारी हैं...क्या हुआ बोस्निया में, क्या हुआ है साइप्रस में, क्या हुआ है तब के टूटे सोवियत यूनियन और अब के बने रशियन फेडरेशन में। क्या हो रहा है आज के अफगानिस्तान में? हर व्यक्ति नफ़रत के सहारे अपने ही लोगों के खिलाफ एक दूसरा पाकिस्तान ईजाद करना चाहता है!

तभी रेत के वीरान जंगल से एक आवाज़ आई–नफ़रत ही अब आदमी को पहचान देती है...नफ़रत से ही आदमी और उसके जातीय समुदाय पहचाने जाने लगे हैं। नफ़रती एकता के लिए अतीत काम आता है। अतीत का दंश, गौरव और वे स्मृतियाँ जो कसकती, दुःखती और रिसती हैं...इतिहास अपने अतीत को ठीक करने की दृष्टि दे सकता है, पर इतिहास को भी अतीत के अग्निकुंड में झोंक दिया जाता है। इतिहास का विश्लेषण, उसकी सामाजिक व्याख्या मनुष्य की घृणा को तर्क से शमित करती है, पर अतीत तर्क की पद्धति को स्वीकार नहीं करता, वह केवल आंशिक सत्यों को स्मृति की कहानियों में बदल देता है और उसे सदियों जीवित रखता है। नफ़रत एक ऐसा स्कूल है जिसमें पहले खुद को प्रताड़ित, अपमानित और दंशित किया जाता है...उसे घृणा की खाद से सींचा जाता है और तब उसकी स्मृति को एकात्म करके प्रतिशोध के नुकीले हल से जोत कर हमवार किया जाता है। इसीलिए घृणावादियों के तर्क इकहरे और एक से होते हैं...उनके पास अधिक बातें नहीं होतीं। वे हजारों-लाखों मुखों से एक ही स्वर में बोलते हैं, एक से प्रश्न उठाते हैं, एक सी दलीलें देते हैं...यही उनकी एकता की पहचान बन जाती है!

–अर्दली! यह भाषण कौन दे रहा है? अदीब ने पूछा।

–सर! यह यहूदी लेखक अमोस ओज़ है!

–एक लेखक इस रेगिस्तान में क्या कर रहा है?

–मैंने पता किया है, यह यहीं रहता है, नेगेव रेगिस्तान के अरद शहर में!

–यहाँ शहर कहाँ है?

–एक बस्ती है हुजूर!

–बस्ती!

–जी हाँ हुजूर...इस रेगिस्तानी बस्ती में दुनिया के तमाम शरणार्थी लेखक आकर बस गए हैं...

–चलो मैं तुम्हें ले चलता हूँ! आओ...अमोस ओज़ की छाया ने कहा और वह आगे-आगे चलने लगी।

फिर पता नहीं, वे कब तक चलते रहे। रास्ते में इमाम नाज़िश अपनी दर्द भरी कहानी सुनाते रहे–देखो अदीब, अब मेरे पास पछतावे के सिवा कुछ नहीं है...नफ़रत के जिस सैलाब का हमने समर्थन किया था, उसने किसी को कहीं नहीं पहुँचाया...शादी को तीन महीने हुए थे, मैं अपने भरे पूरे घर और बीवी को अमरोहा में छोड़कर उस अंधे सैलाब में बहता हुआ पाकिस्तान पहुँच गया था...अपनी सरज़मीं से उखड़ कर...पाकिस्तान में लगातार मुझे भूमिगत रहना पड़ा...मुझे लगता था कि अब शायद मैं कभी अमरोहा लौट नहीं पाऊँगा...मेरी बीवी टीचर हो गई और अमरोहा में ही उसने अपनी पूरी जिंदगी बच्चों को पढ़ाने में लगा दी...उसने हिंदुस्तान में एक नई नस्ल पैदा कर दी पर मैंने एक नस्ल बरबाद कर दी...और उसी के साथ-साथ मैं खुद भी बरबाद हो गया!...मैं बरसों बाद धुप्पल में अमरोहा पहुँच ही गया। पाया कि घर के वे बच्चे, भतीजे, भतीजियाँ, जिन्हें मैं तीन-तीन, चार-चार साल का छोड़कर जलावतन हो गया था, वे खुद बाल-बच्चेदार हो गए हैं। मेरी बीवी रिटायर होने की कगार पर खड़ी थी, जब अमरोहा में मेरी उससे मुलाकात हुई! ऐसी रेगिस्तानी पर बेहद खूबसूरत जिंदगी एक हिंदुस्तानी औरत ही गुज़ार सकती है! मैं नफ़रत के सैलाब का हिस्सा बना, पर मेरी बीवी एक नई तामीर के सैलाब का हिस्सा बनी!...

–जिन्दगी की राहें ज्यादातर पछतावे से ही खुलती हैं...अदीब ने कहा तो अमोस ओज़ ने टिप्पणी की–लेकिन मुश्किल यह है कि अँधेरे के सैलाब एक साथ नहीं आते, और पछतावे का एहसास भी एक साथ पैदा नहीं होता...उनमें समय का अन्तराल रहता है, इसीलिए सदियाँ और नस्लें लहूलुहान होती रहती हैं!

–हाँ, जब तक एक पछतावा उभरता है तब तक कहीं कोई दूसरा अँधेरा सैलाब बनके आ जाता है, और जब बहुत बाद उसके पछतावे का दौर शुरू होता है, तब तक कोई तीसरा-चौथा-पाँचवाँ अँधेरा उठ खड़ा होता है! अभी अदीब अपनी बात कह ही रहा था कि अमोस ओज़ ने सामने इशारा किया–

–वह सामने! वह रहा दुनिया के लेखकों का शरणार्थी कैम्प!

छोटे-छोटे सफ़ेद तम्बुओं की एक बस्ती सामने मौजूद थी। उस बस्ती पर बालू के वही सफ़ेद परिन्दे उड़ रहे थे। अदीब दौड़ता-दौड़ता वहाँ पहुँचा तो सकते में आ

गया...अपने-अपने तम्बुओं में सभी तो मौजूद थे–

कबीर, तालस्तॉय, टैगोर, एग़नॉन, कजांतीज़ाकिस, राहुल सांकृत्यायन, दिनकर, चेखव, कामू, प्रेमचंद, लूसुन, मिलान कुंदेरा, ब्रेख्त, निराला, सार्त्र , हजारीप्रसाद द्विवेदी, मीर, सौदा, गालिब, फैज़, फैज़ी निजामी, मंटो, कृशन चंदर, राजेंद्र सिंह बेदी, दुष्यंत कुमार, रेणु, राकेश, रघुवीर सहाय, परसाई, श्रीकांत, मुक्तिबोध। वह तो सबको पहचानता था। शरणार्थियों के रूप में लेखक अपने अपने तंबुओं में मौजूद थे। यह बस्ती रेत की एक नदी के किनारे थी...समय रेत की धारा की तरह बह रहा था।

समय को इस तरह बहते देखना उसके लिए अजीब-सा अनुभव था...कई-कई सदियाँ साथ बहती चली जा रही थीं। रेत के छींटे उस पर पड़े तो उसे बड़ी राहत मिलीं।

तभी अर्दली ने पेशकश की–हुजूर! कहिए तो वक्त को पकड़ लूँ?

–ज़रूरत क्या है! इन लेखकों ने ख़ुद समय को क़ैद किया है। हर लेखक का वक्त उसकी किताब में क़ैद है। इनका हर शब्द वक्त की ताकत से ज़्यादा मजबूत साबित हुआ है। अदीब ने कहा और वह अमोस ओज़ के साथ आगे बढ़ गया।

बस्ती में शांति थी। रेत के जुगनू चारों तरफ भरे हुए थे...रेतीले ख़रगोश दौड़ते हुए आते, ठिठकते और फिर कहीं दौड़ जाते। कभी रेत की चादर उड़ती हुई आती, फिर फट जाती और उसके टुकड़े तितलियों में बदल जाते। वे तितलियाँ बस्ती के दूसरे छोर की ओर चली जातीं।

लेखकों की पूरी जमात एक जगह बैठी थी। वहाँ मनुष्य-गाथा पर बात चल रही थी। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी उस समय कुछ कह रहे थे–मिथक तो एक अलौकिक कथा है, वह अलौकिक कथा, जिसका प्रथम अनुभव मनुष्य ने प्रकृति के साथ किया और अपनी संकल्प शक्ति से उसने अपने उस लौकिक अनुभव को अलौकिक और अपराजेय बना दिया ये...पुराकथाएँ मौखिक रूप में चलती रहीं...ये मनुष्य गाथाएँ, ये मिथक, ये पुरा कथाएँ पौराणिक इतिहास में बदल गईं...इन्हीं से धर्मकथाएँ निकलीं, धारणाएँ स्थापित हुई और इन्हीं से संकीर्ण धर्मों ने जन्म लिया!...

–हाँ! नहीं तो ईश्वर कहाँ था? अपने-अपने ईश्वर को तो इन्हीं संकीर्ण धर्मों ने पैदा किया...निनेवेह में असीरियन सम्राट अशुर बानीपाल के संग्रहालय-पुस्तकालय में मिट्टी के फलकों पर मौजूद पुराकथाएँ बताती हैं कि ईश्वर अजन्मा, नित्य और अमर नहीं था उसे ईराकी बेबीलोनियन सभ्यता ने पैदा किया था...मारदुक–जो उस सभ्यता का परम पुरुष और ईश्वर बना, वह नश्वर अंश था...उसके राज्याभिषेक के लिए देवता बुलाए गए थे, उसका सिंहासन देवताओं ने खुद बनाया था और उन्होंने ही मारदुक को परमदेव–ईश्वर घोषित किया था, उसे सृष्टि, संहार और संभार–ब्रह्मा, विष्णु, महेश की शक्तियाँ दी थीं, उसे अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए थे...

और मारदुक ने ही तब सृष्टि की रचना की थी। उसने अपने दादा अनु को आकाश का सम्राट बनाया था। अपने पिता इया को धरती का। और तब मारदुक ने एक महामन्दिर बनाया ताकि आकाश के देवता और ईश्वर–जो उसकी प्रजा थे, धरती पर आएँ तो आराम से ठहर सकें...और इसी महामन्दिर को बेबीलोन पुकारा गया...उसी मारदुक ने अपनी पूर्वजा तियामत के शरीर को फाड़कर अन्य भौतिक सत्ताओं की उत्पत्ति की...खंडित शरीर की पीड़ा से जब तियामत की आँखें आँसुओं के सैलाब से भर गईं तो वहीं से दज़ला और फ़रात नदियाँ निकलीं और सृष्टि कथा का शुभारम्भ हुआ! तियामत की हड्डियों और रक्त से ही तब बर्बर मनुष्य का जन्म हुआ!

–हाँ! वह सही अर्थों में काकेशस की आर्य सभ्यता थी! मैं उसी मूल आर्य सभ्यता का वारिस हूँ!...एक दहाड़ती आवाज ने शांत रेगिस्तान की खामोशी को तोड़ दिया।

–यह बदतमीज कौन है? अदीब ने पूछा तो अर्दली ने अदब से बताया–

–हुजूर यह शख़्स हिटलर है! जर्मनी का नाज़ी हिटलर!

–वो दरिन्दा! जिसने पूरी दुनिया को तबाह करने की ठान ली थी! इसे सामने देख कर मेरा माथा फटता है! खून खौलता है! इसे हिरासत में रखो...मैं तारीख तय करूँगा, तब इसे मेरी अदालत में पेश किया जाये...! मैं बहुत थक गया हूँ...अब कुछ आराम करना चाहता हूँ!

–तो हुजूर आराम फरमाइए न...अर्दली ने कहा कि तभी बोईपतांग में चली हुई गोलियों और उनतालीस लाशों ने फिर दस्तक दी।

अर्दली ने उन्हें रोका और बोला–साहब आराम कर रहे हैं, और फिर इंसानी तहज़ीब का कानून भी कुछ होता है...आप हर वक्त दस्तक नहीं दे सकते...

तब तक चीख पुकार, आहों-कराहों और दस्तकों से अदीब के कानों के पर्दे फटने लगे थे। वह चिल्लाया–

–अर्दली ! आने दो...बर्बरता,तकलीफ,यातना,अमानवीय घटनाओं के शिकार लोगों को आने दो...यह इंसानी अदालत है, कानून की नपुंसक और अपाहिज अदालत नहीं...हमारी अदालत हर मानवीय अत्याचार के खिलाफ खुली हुई है...इसलिए जो भी दस्तक दे, उसे आने दो।

और इतना सुनते ही उनतालीस लाशें चीखने लगीं–हमें जुलू आतंकवादियों ने मारा है...

–कहाँ से आए हो तुम लोग?

–साउथ अफ्रीका से ! वहाँ के प्राइम मिनिस्टर डी' क्लार्क की साजिश से हमें बोईपतांग की बस्ती में मारा गया है। हमें बताइए कि हमारा कसूर क्या है?

–कसूर! सिर्फ़ इतना कि तुम एक शोषित जाति के गरीब इंसान हो...

–लेकिन जुलू भी तो हमारी ही तरह शोषित और गरीब हैं...हम एक ही नस्ल के हैं, पर यह गोरे हमें हमारी नस्लवालों से ही मरवा रहे हैं।

–गरीबी और भूख की कोई नस्ल नहीं होती!

–पर हम उन गोरों से बदला लेंगे...बदला...

–बंद करो यह बदले की बात। आख़िर कितनी सदियाँ कितनी सदियों से बदला लेंगी...पागल हो गए हो तुम लोग...

–सर...आप थके हुए हैं, आराम करें, तब तक हम अपने घावों को धो डालते हैं। कहते हुए बोईपतांग के सारे शव एक ओर चले गए...

अदीब ने राहत की साँस ली...खिसका कर एक तकिया सिरहाने लगाया कि तकिए के नीचे दबे हुए तमाम कागज़ कबूतरों के पंखों की तरह निकल-निकल कर उड़ने लगे...

अदीब चौंका–अरे जिंदगी! तुम तकिए के नीचे दबी हो!

जिन्दगी ने कोई उत्तर नहीं दिया...खामोशी...सन्नाटा...

–जिन्दगी! तुम कहाँ हो? अदीब चीखा, फिर भी कोई उत्तर नहीं आया।

–हुजूर! आप किसी उलझन में गिरफ्त दिखाई देते हैं...मैं कुछ मदद करूँ आपकी? बड़े अदब से अर्दली ने कहा।

–हाँ दोस्त! कहीं से जाकर जिन्दगी को बुला लाओ...मैं कुछ देर जीना चाहता हूँ! किसी तरह तुम मेरी अधूरी लिखी जिन्दगी को वापस ले आओ...कहीं से भी ले आओ...प्लीज़ लेकर आओ...अदीब ने कहा।

–मैं अभी लेकर आता हूँ हुजूर। कहकर अर्दली तेजी से बाहर चला गया।

•

17

अर्दली जब लौट कर आया तो अदालत अपने कानों में रुई ठूँसे और आँखें बन्द किए बैठी थी। कुछ देर अर्दली परेशानी में टहलता रहा, उसने जेब से सिगरेट निकाल कर पी, पर अदालत को टोकने की हिम्मत नहीं हुई।

आखिर, बड़ी खामोशी से उसने याद नाम की एक परछाईं को अदालत के सामनेवाली कुर्सी पर बैठा दिया।

कुछ देर बाद अदीब ने गहरी साँस लेकर आँखें खोलीं, तो सामने बैठी यादों की परछाईं को न पहचानते हुए पूछा–

–आप ?

–जी, मैं ! आपने शायद मुझे तलब किया है...आपका अर्दली मुझे लाया है...

–कहाँ, पाकिस्तान से ?

–जी नहीं, आपने फिर मुझे ग़लत समझा...यही ग़लती आपने लाहौर एयरपोर्ट पर भी की थी...तब भी आपने मुझे पाकिस्तानी समझा था...और मैंने आपको बताया था कि मैं पाकिस्तानी नहीं हिन्दुस्तानी हूँ !

–इन्सान और इन्सान की कुदरती पहचान के बीच यह हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, सीरिया और लेबनान कहाँ से आ जाते हैं ?

–मुझे क्या मालूम...यह तो सुकरात से लेकर आज तक चला आ रहा है...परछाईं ने कहा।

–ख़ैर सुकरात से मैं बात करूँगा लेकिन आप यहाँ क्यों हाज़िर हुई हैं ?

–मुर्दों के बीच रहते-रहते क्या आप जिन्दगी को पहचानना भी भूल गए ? परछाईं ने कहा–आपने मुझे अपने अर्दली से तलब किया है...याद कीजिए, तब आप लाहौर से कराँची जा रहे थे। आपको चीन जाना था और वह सीधी उड़ान कराँची से मिलती थी...मुझे भी कराँची जाना था, और उस उड़ान का इन्तजार करते-करते हम आप बातें करने लगे थे...

–ओह सलमा !...अदीब एकाएक चीख-सा पड़ा। अर्दली भी सकते में आ गया–अदीब उसे देखता रहा, फिर बोला–हाँ, मुझे अब सब याद आ गया...मैंने ही तुमसे तब पूछा था–कराँची में आपके रिश्तेदार होंगे...

–जी नहीं, रिश्तेदार तो ज़्यादातर पटना में हैं...और शायद आपको पता हो कि पटना मेरे मुल्क हिन्दुस्तान का एक शहर है...कराँची में मेरे ज्यादा रिश्तेदार नहीं हैं और

फिर मुझे आगे जाना है क्वेटा ! मैं दो एक दिनों के लिए कराँची के किसी होटल में ठहरूँगी...

–किस होटल में ?

–शायद हॉलिडे-इन में !

–तब तो शायद कल नाश्ते पर मुलाकात हो सके ! मैं भी उसी होटल में ठहर रहा हूँ ! शायद एयर लाइन वाले वहीं ठहरा रहे हैं !

–इंशाअल्लाह...

तब लाहौर एयरपोर्ट पर कराँचीवाली फ्लाइट का एनाउंसमेंट होने वाला था।

–मैं एक मज़ा दिखाऊँ ? सलमा बोली थी।

–क्या ?

–यही कि मैं साड़ी पहने हुए हूँ, और देखिए कि लाहौर एयरपोर्ट के ये लोग हिन्दुस्तानी औरतों से किस तरह पेश आते हैं ! ये लोग अमूमन औरतों को बहुत परेशान करते हैं, हिन्दुस्तानी औरतों को तो खास तौर से...

कहते हुए सलमा काउंटर की और बढ़ गई...पाकिस्तान एयर लाइन्स वाले ने पहले तो उसे घूर कर देखा और टिकिट देखने से पहले सवाल किया–

–कितनी साड़ियाँ, ब्लाउज़ और ब्रेज़ियर्स आप लाई हैं ?

–कस्टमवालों की जिम्मेदारी आप क्यों पूरी कर रहे हैं ?...उन्हें जो ज़रूरत होगी, पूछ लेंगे....सलमा ने कहा था।

–कितने पेटीकोट और पैंटीज़ आपके सामान में हैं, और कितने दिन रुकेंगी आप पाकिस्तान में ?

–यह सवाल भी कस्मटवाले पूछेंगे या मेरा पासपोर्ट जाँच कर मालूमात हासिल कर लेंगे...आप टिकिट देखिए और मुझे सीट दीजिए ! सलमा जरा तल्ख़ी से बोली थी। इस बीच वह कनखियों से अदीब को देखती भी रही थी। काउंटर वाले ने उसकी इस हरकत को देख लिया था, पूछने लगा–वो साहब आपके साथ हैं ?

–इससे आपको क्या लेना देना ? सलमा बोली थी।

–जी ! उसने सलमा का टिकट ड्रायर में डाला और उठ कर पीछे की तरफ चला गया। सलमा को भी ताज्जुब हुआ कि आखिर यह आदमी चाहता क्या है और सोचने लगी कि ख्वामख़ाह उसने मज़ाक-मज़ाक में अपने लिए शायद मुश्किल पैदा कर ली है।

तभी वो काउंटरवाला एक पुलिस इंस्पेक्टर को लेकर लौटा जो शायद सलमा से सवाल जवाब करने के लिए खासतौर से लाया गया था। सलमा सहम-सी गई कि तभी उस पुलिस इन्स्पेक्टर ने उसे करीब-करीब पहचानते हुए कहा–

–माफ़ कीजिएगा...आप...आप...

–जी, शायद आप मुझे ठीक ही पहचान रहे हैं ! सलमा की जान में जान आई–मैं सीएसपी के जनाब आफताब अहमद की हूँ और हिन्दुस्तान में रहती हूँ ! वो मेरे नाना हैं ! सलमा ने कहा।

तब पुलिसवाला कुछ नाराज-सा होकर काउंटर वाले से बोला–पहले मुसाफ़िर को ठीक से देख लिया करो...समझे...इतना कहकर वह चला गया।

हालाँकि काउंटरवाला आश्वस्त नहीं हुआ था, पर उसने शायद यही सोचा कि जब पुलिस ही अपना काम नहीं करना चाहती, तो मैं उसका काम क्यों करूँ ? और उसने बोर्डिंग कार्ड सलमा के आगे बढ़ा दिया।

उसके बाद सलमा उसे जहाज़ में मिली और उसके क्वेटा जाने तथा उसके बीजिंग उड़ जाने से पहले की उनकी मुलाकात कराँची के होलिडे-इन के रेस्तोरां में सुबह नाश्ते पर हुई।

नाश्ते के वक्त कुछ अनहोनी घटनाएँ हुईं। वह जब रेस्तोरां में पहुँचा, तो सलमा वहाँ कुछ पहले से मौजूद थी। उसने सलमा को देखा तो एकाएक देखता ही रह गया। शायद किसी ऐसी ही, हू-ब-हू ऐसी ही औरत को देखने की उसकी तमन्ना न जाने कितने बरसों से अधूरी पड़ी थी, और आज जाके पूरी हुई थी। मन में छुपी हुई कोई बात जब एकाएक पूरी होती है तो आदमी का मन बहुत सकुचाने लगता है...सपना इस तरह सामने आ जाए तो यही होता है। और फिर रात जो सपना उसने देखा था, वह भी उसकी याद में उलझा हुआ था...उस सपने में उसने सलमा को पंजाबी लिबास में देखा था और सलमा हू-ब-हू उसी लिबास में सामने थी–वह जैसे कुछ बोल ही नहीं पाया था। पर सलमा ने सारी स्थिति को बहुत सहज बना दिया था–

–आइए, तश्रीफ लाइए। मुझे उम्मीद थी कि आपके चीन जाने से पहले हमारी एक और मुलाकात ज़रूर होगी !

वह सकुचा गया था। यही सब तो वह भी चाह रहा था...तब तक बेयरा आ गया और उसने नाश्ते का आर्डर दिया–मेरे लिए तो कार्नफ्लेक्स, ब्रेड स्लाइस पर फ्राइड एग्ज़...और चिली सॉस, भई माफ करना, मुझे चिली सॉस बहुत पसन्द है...उसने सलमा की ओर देख कर पूछा–और आप ? तो सलमा ने बताया कि वह अपना आर्डर पहले ही दे चुकी है।

दोनों का नाश्ता साथ ही आया और पहली अनहोनी सामने आई।

दोनों का नाश्ता एक ही था। वही कॉर्नफ्लेक्स, वही फ्राइड एग्ज़, स्लाइसों पर, नहीं तो टोस्ट मक्खन आता है और वह चिली सॉस, जो नाश्ते पर होता ही नहीं।

–लगता है, यहाँ एक ही नाश्ता मिलता है ! आपका नाश्ता भी वही आया है जो मेरा...उसने कहा था।

–जी नहीं, यह इत्तफाक की बात है कि मैंने भी बिल्कुल वही आर्डर दिया था, जो आपने दिया! सलमा बोली।

–चिली सॉस भी!...यह तो मैंने खास तौर से बोला था।

–जी हाँ, मैंने भी बोला था, मुझे भी न जाने क्यों फ्राइड एग्ज़ के साथ चिली सॉस का हलका-सा टच बहुत पसन्द है! सलमा ने कहा–और शायद आपको...भी...हैरत की बात है।

और उनके बीच तब एक अजीब-सा सन्नाटा छा गया था। कहीं कुछ एक होने का सन्नाटा। या इस इत्तफाक का सन्नाटा। काफी देर खामोशी रही, फिर सलमा ही बोली थी–

–अजीब है कि आज रात मैंने एक अजीब-सा सपना देखा! वैसे मैं अक्सर सपने नहीं देखती...शायद याद नहीं रह जाते होंगे, पर यह सपना याद भी रह गया।

–क्या सपना देखा आपने? पूछते हुए वह कुछ सहमा-सा था कि कहीं इस नाश्ते की पसन्द की तरह...कहीं सपना भी..सपना भी एक सा...कहीं...क्योंकि उसने सपने में देखा था कि लाहौर से कराँची आने वाला उसका जहाज़ किसी हादसे की वजह से एक रेगिस्तान में उतर पड़ा था और रेत की लहरों से टकराता हुआ, एक जगह आकर ऐसे रुक गया था, जैसे जहाज़ ने लैंड किया हो और सारे पैसिंजर्स सेफ थे!

–जी देखा यह कि...सलमा ने बताया–कि लाहौर से कराँची आने वाला हमारा जहाज़ किसी हादसे की वजह से एक रेगिस्तान में उतर पड़ा है...

उसकी साँस रुकने-सी लगी थी कि सलमा यह कौन-सा सपना सुना रही है, पर वह आगे बता रही थी–

–जी, और हुआ यह कि जहाज़ रेत की लहरों से टकराता हुआ, एक जगह जाकर ऐसे रुक गया जैसे उसने लैंड किया हो...और ताज्जुब की बात यह कि सारे पैसिंजर्स सेफ थे! अजीब सपना था...सलमा इतना बता के कॉफी पीने लगी।

उसकी साँस तो अब लगभग रुक ही गई थी। उसने भी कॉफी का एक घूंट लिया फिर बड़ी मुश्किल से बोला था–

–सलमा जी!...अब मैं कैसे बताऊँ कि यही, बिलकुल यही...हू-ब-हू यही सपना मैंने भी...आगे वह कुछ कह नहीं पाया था।

दोनों अपनी-अपनी कॉफी पीते बैठे रहे थे...और सोचते रहे थे कि क्या यह कभी सचमुच मुमकिन हो सकता है कि दो अलग-अलग लोग बिल्कुल एक सा सपना, एक ही रात में देखें! यह तो अनहोनी बात थी। एक ऐसी बात जो कभी नहीं होती, जो शायद कभी हो नहीं सकती।

कुछ देर सलमा ने उसे देखा था जैसे कि कहीं एक-सा सपना देखने की बात वह किसी ख़ास मसलहत से तो नहीं कह रहा है पर वह सोचने लगी थी कि जो दो लोग घंटे दो घंटे बाद अलग रास्तों पर जाने वाले हों, जो दो लोग पहली बार यूँ ही अकस्मात् मिल गए

हों और जो दो लोग अगली जिन्दगी में शायद कभी न मिलनेवाले हों, वे एक दूसरे से झूठ बोल कर क्या पाएँगे या क्या खोएँगे...उनके बीच सिवा सच बोलने के अलावा था भी क्या ? झूठ की वहाँ कोई जगह थी न ज़रूरत...

काफी देर तक वह दोनों खामोश ही बैठे रहे–वे एक-से सपने लेकर कुछ ऐसे अटक गऐ थे कि मामूली बातों का सिलसिला ही खत्म हो गया था।

फिर भी महज़ कुछ बात करने की खातिर उसने सलमा से पूछा था–

–क्या आप शुरू से हिन्दुस्तानी हैं ?

–मतलब ?

–यही कि...आप हिन्दुस्तान में पैदा हुई थीं ?

–हाँ...यही सच है। पर सच यह भी है कि मैंने कोख में जनम लिया पाकिस्तान में, पर मैं पैदा हुई हिन्दुस्तान में...सन् सैंतालीस में !...असल में हम बिहार के रहने वाले हैं...वहाँ की एक छोटी-सी रियासत के...मेरी नानी वहीं हैं और जिन्दा हैं...पर मेरे नाना काफी पहले यहाँ सिन्ध चले आए थे। तब हिन्दुस्तान एक था...मेरे वालिद और माँ भी उन्हीं के साथ यहाँ आ गये थे, पाकिस्तान बनते ही...वैसे मेरे नाना, एक तरह से कहें, तो मुहाजिर बन गए...और अब भी उन्हें बिहार याद आता है तो कहते हैं कि हमारा मुल्क पाकिस्तान हो गया, लेकिन वतन तो हिन्दुस्तान ही है...हमारी यादें तक हिन्दुस्तानी हैं...नाना यहीं हैं क्वेटा में। मैं उन्हीं से मिलने जा रही हूँ...वे बिहार को याद करते हैं, हम सब उन्हें याद करते हैं...

–लेकिन यह तो पहेली है कि आपने अपनी माँ की कोख में जन्म लिया पाकिस्तान में और आप पैदा हुईं हिन्दुस्तान में !

–पहेली कैसी ! जब पार्टीशन हुआ, तब मैं अपनी अम्मी की कोख में थी। उस वक्त बिहार में भयानक दंगे चल रहे थे। मुसलमानों का क़त्लेआम हो रहा था...पर अब्बा और अम्मी नहीं रुके...नाना ने उन्हें बहुत रोका, पर वे यही बोले कि नानी बिहार में अकेली हैं...और फिर यह भी कि कुछ भी हो, हम अपना घर और वतन नहीं छोड़ सकते !

अदीब ने उसे आश्चर्य से देखा, फिर धीरे से अटक-अटक कर कहा–यह तो अजीब बात है कि जब लाखों मुसलमान हिन्दुस्तान छोड़कर पाकिस्तान आ रहे थे, तब आपके अब्बा और अम्मी ने...मुसलमान होते हुए भी...हिन्दुस्तान जाने का फैसला लिया...दो मुसलमान...

–नहीं...नहीं...तीसरी मैं ! अम्मी की कोख में मैं भी तो थी...अदीब ! तुम मुसलमान की इस रूहानी तकलीफ को नहीं समझ सकते। अगर तुम हिन्दू हिन्दुस्तान के क़दीमी बाशिंदे हो, तो हम भी यहीं की क़दीमी औलादें हैं...हम मुसलमान हो गए तो क्या हुआ...मज़हब बदलने से मिट्टी तो नहीं बदल जाती !

अदीब ने सलमा को गहरी नजरों से देखा।

–क्यों ? आप इस तरह मुझे क्यों देख रहे हैं ? मैंने अपने ख़ानदान में बहुत सी मौतें देखी हैं। जब मौत आती है तब किसी को काबा या कर्बला याद नहीं आता, अपना घर याद आता है ! मैं तो यह कह ही रही हूँ, यकीन न हो तो पूछिए जाके किसी भी मुल्क के मुसलमान से ! यहाँ तक कि रियाद और तेहरान में रहनेवाले मुसलमान से...ख़ुदा का घर सबके लिए है लेकिन अपनी मौत के वक्त सिर्फ़ अपने घर-गाँव का घर अपना होता है !...यही आख़िरी सच है ! स्पेन, तुर्की, मिस्र, इंडोनेशिया या कहीं का भी मुसलमान अपने वतन की धरती पर मरना चाहता है, मक्का या मदीना में नहीं...

–लेकिन

–लेकिन क्या ? तुम आर्यों ने खुद अपने मज़हब को सीलबंद करके तोड़ा है।

–यह तुम कैसे कह सकती हो सलमा ?

–तुम्हारे ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर !...तुमने अपना वर्णाश्रम धर्म बना लिया था– हर बच्चा माँ के पेट से पैदा होता है पर तुम्हारे ब्राह्मणों और उनके ग्रंथों ने माँ की कोख का अपमान करते हुए मनुष्य को ब्रह्मा के अलग-अलग अंगों से पैदा करने का सिद्धान्त पैदा किया...आज के शब्दों में कहूँ तो तुम्हारे ब्राह्मणों ने अपना पाकिस्तान बना लिया...

अदीब सकते में आ गया। उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

–और तब ! सलमा बोली तो अदीब ने उसे ग़ौर से देखा।

–और तब, तुम्हारे उपनिषदों ने इन्सानी मूल्यों और सम्पदा को बचाने का प्रयास किया...

अदीब ने अकुलाते हुए फिर उसे परेशानी से देखा।

–तुम्हारे उपनिषद और कुछ नहीं वे ब्राह्मणवादी अत्याचारों, वर्णवादी अनाचारों और ईश्वरवादी आस्था को स्थापित करने वाले पश्चाताप के ग्रंथ हैं...उन्होंने तुम कुलीन आर्यों को ज़रूर सँभाला, पर वे विश्व के बदले हुए मानसिक मानचित्र को नहीं सँभाल सके दुनिया की सच्चाइयाँ बदल गई थीं, पर तुम आर्य इन बदली हुई सच्चाइयों को आत्मसात नहीं कर पाए ! यही तुम्हारे पराभव का कारण है ! धर्म के आधार पर संस्कृतियाँ बनती हैं...पर कालांतर में वे धर्म से मुक्त होकर मानव-संस्कृतियों में तब्दील हो जाती हैं...पर तुम और तुम्हारे लोग बार-बार संस्कृति को धर्म की ओर खींचते रहे...

–इसका मतलब यह तो नहीं कि बाद में इक़बाल और सर सैय्यद अहमद खाँ ने जो रंग अख़्तियार किया, वह ठीक था ?

–कौन कहता है कि वह ठीक था !...लेकिन यह बदलाव तब आया था जब लोकमान्य तिलक ने आज़ादी के आंदोलन को गणपति उत्सव से जोड़ कर इसे आज़ादी का हिन्दू आन्दोलन बना दिया था...

–लेकिन गाँधी जी ने आकर इस ग़लती को सुधारा भी तो था !

–तब तक बहुत देर हो चुकी थी। दिल तक्सीम हो चुके थे !

वे दोनों खामोशी से एक दूसरे को देखने लगे।

तब सलमा ने फिर खामोशी को तोड़ा था।

–उसके बाद के इतिहास को देखो अदीब!...हुआ क्या? यह ठीक है कि गाँधी जी ने सब सँभाला, पर तब तक अंग्रेज इस सच्चाई का फायदा उठा चुका था...और देखो न, बाद में क्या हुआ ? लोकमान्य तिलक ने अन्ततः सारे हिन्दूवादियों को जन्म दिया...सावरकर जैसे क्रांतिकारी हिन्दूवादी हो गए। उनकी नस्ल ने नाथूराम गोडसे पैदा किया...आखिर उसी ने गाँधी जी की हत्या की तो गाँधी, नेहरू, पटेल, मौलाना आज़ाद के रहते हुए भी मुसलमानों के लिए उम्मीद बची ही कहाँ थी...दिलों में शक बैठ गया था कि सत्ता मिलते ही धीरे-धीरे नेहरू का सेक्यूलरिज़्म मूर्छित होता जाएगा और मूर्छित हिन्दुत्व होश में आता जाएगा!

–तो क्या इसीलिए सन्देहग्रस्त मुस्लिम दिमाग़ ने बाबर तैमूर और चंगेज़ खाँ जैसों से अपना रिश्ता जोड़ा था?

–तो सन्देहग्रस्त मुस्लिम दिमाग़ और क्या करता? अंग्रेजों के हाथों में तो दुधारी तलवार आ ही गई थी...वे भला क्यों चूकते...और यह मत भूलिए अदीब कि मध्यकाल के सारे आक्रान्ता साम्राज्यवादी थे, वे धर्म के प्रचारक और प्रवर्त्तक नहीं थे...मंगोल चंगेज़ खाँ तो मुसलमान भी नहीं था। तब इस्लाम ही नहीं था। वह तो बौद्धों से भी पहले के शायानी धर्म का मूर्तिपूजक था!

–आपको हिस्ट्री की बहुत जानकारी है! उसने नाश्ता खत्म करते हुए कहा।

–आख़िर मैं हिस्ट्री की स्टूडेंट रही हूँ...उसी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में, जहाँ से आप अदीब बन के निकले हैं...और एक ख़ास बात कहूँ?

–कहिए!

–जिन्ना साहब ने इतिहास नहीं बनाया था, इतिहास ने जिन्ना साहब को बनाया था! अपने इतिहास से सबक लीजिए। उसकी देग़ को मज़हब के चूल्हे पर मत चढ़ाइए...नहीं तो फिर वही हाल होगा जो तक्सीम के साथ हिन्दुस्तान का हुआ और आज पाकिस्तान का हो रहा है!

उसे आश्चर्य हुआ कि सलमा इतना खुल कर कैसे बोल पा रही थी और वह भी कराँची-पाकिस्तान में बैठ कर। गनीमत यही थी कि उस वक्त उनकी नाश्ते की मेज़ के आस-पास उसके अलावा और कोई सुनने वाला नहीं था।

तभी...

तभी क़हर-सा बरपा हुआ...दस्तकों की आवाज से उसका वजूद थरथराने लगा...सलमा भी सामने नहीं थी। अदीब एकाएक चीखा–अर्दली! मैं कहाँ हूँ?

–हुजूर आप अपनी अदालत में हैं!

–अदालत में! क्या कह रहे हो तुम...मैं तो कराँची के हॉलिडे इन होटल के रेस्तोरेंट में बैठा हुआ था और सलमा से बातें कर रहा था...

–हुजूर...आपकी यादों की परछाईं का नाम क्या है, यह तो मुझे नहीं मालूम, पर आपके हुक्म की तामील करते हुए उस परछाईं को मैंने ही आपके सामने पेश किया था...अर्दली बेहद अदब से बोला...

तब तक दस्तकें और चीखना-चिल्लाना फिर तेज हो गया था। अदालत ने हुक्म दिया–फरियादी को पेश किया जाए!

अपनी छाती पीटती शाहीन सामने हाज़िर हुई!

–तुम कौन हो?

–शाहीन!

–कहाँ से आई हो?

–बम्बई! हिन्दुस्तान के कब्रिस्तान से...

–क्या हुआ है तुम्हें?

–बाबरी मस्जिद ढहाने के बाद पूरा हिन्दुस्तान जल उठा...बम्बई में तो हैवानियत का ज़लज़ला आ गया...मैं कब्र में पड़ी सो रही थी, मुझे भी नहीं बख़्शा गया...मुझे मेरी क़ब्र से बेदख़ल कर दिया गया...क़यामत के दिन मेरा फ़ैसला होना है, पर अब मेरे पास उस दिन का इंतजार करने के लिए कोई जगह नहीं है, इसलिए आपके पास हाज़िर हुई हूँ!

–लेकिन यह अदालत है, कब्रिस्तान नहीं!

–हिन्दुस्तान में सारी अदालतें कब्रिस्तान में तबदील हो चुकी हैं, उनमें अब सिर छुपाने की जगह भी बाकी नहीं है, इसीलिए मैं पनाह लेने यहाँ आई हूँ!

–पर तुम तो इतनी कमसिन हो...क्या हक़ था मौत को कि वह तुम्हें खींच कर क़ब्र तक ले गई...? अदालत ने भौंहें टेढ़ी करके जानना चाहा।

–मौत ने मेरे साथ कोई ज़्यादती नहीं की, मैंने ख़ुद मौत को बेहतर समझा था! शाहीन ने कहा।

–लेकिन क्यों?

–इसलिए कि पाकिस्तान बन चुका था...लेकिन मैं पाकिस्तान नहीं जाना चाहती थी!

–तो तुम्हें हिन्दू दरिंदों ने दंगों के दौरान मार डाला?

–नहीं...मेरी मौत की कहानी बिलकुल अलग है आला हुजूर...जब मुल्क तकसीम हुआ...

अभी अदालत ने यह जुमला सुना ही था कि बरसों बरस लौट कर आने लगे और लहूलुहान सन् सैंतालीस सामने आकर खड़ा हो गया...

और उसी के साथ ऊपर आसमान से गिद्धों के झुंड उतरने लगे, जिससे अँधियारा छा गया।...पंजाब से लेकर आसाम तक की नदियों का पानी खून से लाल हो गया...और करोड़ों लाशें जश्न मनाते हुए पैशाची नृत्य करने लगीं...अधमरे और घायल लोग वहशत, दहशत और हैवानियत के शिकार होकर चीखने लगे। लाशों और घायलों के सीनों पर चढ़कर उधर जिन्ना आज़ाद पाकिस्तान का और इधर नेहरू आज़ाद हिन्दुस्तान का झंडा फहराने लगे...

तभी कुछ आवाजें आने लगीं, कौन क्या कह रहा था, इसका कुछ पता नहीं चल रहा था, पर उन आवाजों में पस्ती और खौफ बोल रहा था...ये आवाजें बिजलियों की तरह कड़क रही थीं और अदीब के दिमाग़ पर कोड़ों की तरह बरस रही थीं–

–हिन्दुस्तान की कौमी तकदीर एक है...तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। और आजादी का लालकिला मोहब्बत की बुनियाद पर खड़ा होगा...नफरत की बुनियाद पर नहीं!

–पाकिस्तान एक नफरत का नाम है।

–नफरत के उसूलों पर पाकिस्तान बना है।

–जिन्ना ने इतिहास नहीं बनाया...साम्राज्यवादी ताकतों के इतिहास ने जिन्ना को बनाया है!

–मुझे यह मंजूर नहीं!

–मैं अब भी कहता हूँ...मज़हब से कौम नहीं बनती...एक खून और एक तवारीख से कौम बनती है!

–अगर मज़हब से कौम की शिनाख़्त पैदा करोगे तो यह सारी दुनिया टुकड़ों में बँट जाएगी...

–अरे कायदे आज़म मुहम्मद अली जिन्ना ! सुना तुमने, तुम खुद पश्तूनों, पंजाबियों, बलूचियों, सिंधियों, बंगालियों और मुहाजिरों को नहीं सँभाल पाओगे...ये आपस में लड़ मरेंगे...

–मज़हब काम नहीं आएगा...तब तहजीब, तवारीख और इन नसों में बहता ख़ून ही काम आएगा, जो क़ौम की असलियत को तय करेगा!

आवाजें लगातार ऊँची और कर्कश होती जा रही थीं...अदीब कुछ समझ ही नहीं पाया, तो उसने अर्दली को आवाज़ दी–इन आवाजों का पता करो...यह मेरे काम में ख़लल डाल रही हैं!

अर्दली भागा-भागा गया और फौरन ही मालूम करके वापस आया–हुजूर...ये आवाजें तीन-चार पागलों की हैं!

–कौन हैं ये पागल?

–हुजूर...कैसे बताऊँ...

–मुझे ऐसे पागलों से दुनिया को बचाना है!

–हुज़ूर! ये दुनिया को पागलपन से बचाते हुए खुद पागल हो गए हैं।

–अजीब लोग हैं।

–जी हाँ हुजूर...अब ऐसे पागल लोग इस दुनिया में नहीं मिलते...अगर मिलते होते तो सोवियत यूनियन नहीं टूटता, युगोस्लाविया में बोस्निया के मुसलमानों का क़त्लेआम न होता, सोमालिया में लोग और बच्चे बरसों-बरस अकाल से न मरते! और चार सौ फिलिस्तीनी इसराइल की सरहद पर भूख, ठंड और मौत का इन्तजार न कर रहे होते...उन्हें इसराइली इस तरह मौत के मुँह में न खदेड़ देते! अर्दली कुछ अजीब-से तैश में बोला।

अदीब हँसा–तो तुम इस अदालत की अर्दलीगीरी करते-करते बहुत समझदार हो गए हो...लेकिन ये पागल लोग आखिर हैं कौन?

–हुजूरे आला ये चार पागल हैं...इनके नाम जो मैं पता करके लाया हूँ, वो हैं...कहते हुए अर्दली ने अपनी याद की पट्टी पर दस्तक दी–जी हाँ...इनमें सबसे बड़ा...पागल है–महात्मा गाँधी, दूसरा पागल है–नेता जी सुभाषचंद्र बोस, तीसरा है–खान अब्दुल गफ्फार खाँ और चौथा है एक अदीब!

–इन्हें खामोश करो!

–हुजूर! ये बड़े खामोश लोग हैं, पर जब भी इतिहास उधेड़ा जाता है तो इन पागलों की आत्माएँ चीखने लगती हैं! और ये अपनी क़ब्रों और समाधियों से निकल कर इसी तरह की बातें करने लगते हैं!

–तो फिलहाल इन्हें रोको!

–रोक दिया हुजूर! इन्हें मैंने इनकी मजारों और समाधियों के पागलखाने में क़ैद कर दिया है। अब यह सब आपको परेशान करने नहीं आएँगे!

तब तक, शायद ऊब कर वह परछाईयों वाली याद उसके सामने फिर आ बैठी थी। उसके बदन में झील की तरह पड़ते खमों और सलवटों को महसूस करते हुए तब अदीब बेसाख्ता बोल पड़ा था–

–सलमा! तुम बहुत खूबसूरत हो!

सलमा इस जुमले पर चौंकी नहीं। वह सिर्फ़ इतना बोली–

–तकसीम न होता तो पूरी कायनात बहुत खूबसूरत होती! सलमा ने कहा और घड़ी देखी।

–अब उठना चाहिए...आपकी फ्लाइट कितने बजे है?

–ग्यारह बजे। ठीक है, देखिए फिर कभी मुलाकात होती है या नहीं!

–मैं तो समझी थी, आप कोई खूबसूरत-सा जुमला बोल कर अलविदा कहेंगे...

–यानी? कैसा जुमला...मैं समझा नहीं...

–कुछ ऐसा कि जैसे यह शे'र है–क़हर हो या कि बला हो...काश तुम मेरे लिए होते ! कहकर सलमा हँस पड़ी–अच्छा...ख़ुद हाफिज़...

–खुदा हाफिज़ ! भारत पहुँचो तो...कहते-कहते उसने पेपर नेपकिन पर अपना पता लिख कर उसे थमाते हुए कहा–हालाँकि इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी, लेकिन फिर भी...

और शुक्रिया कह के वह चली गई। उसके जाते ही सदियों के सन्नाटे ने उसे घेर लिया। उसे एकाएक एहसास हुआ, वह सचमुच अब दूसरे देश में है, नहीं तो कल लाहौर से लेकर आज कराँची की सुबह तक वह भूल ही गया था कि वह कहीं और है। सलमा तो क्वेटा के लिए चली गई, पर वह अपनी बहुत गहरी महक उसके पास छोड़ गई थी।

एक और कॉफ़ी का आर्डर देकर वह उसी महक के साथ कुछ देर और बैठना चाहता था। कॉफ़ी आ गई और वह हैरत भरे अंदाज़ में सोच रहा था कि कैसे होंगे सलमा के नाना–जो पाकिस्तानी भी हैं और अपनी यादों को लेकर मुहाज़िर भी। और कैसे होंगे सलमा के अब्बा-अम्मी...जब हिन्दू-सिख खून के समुंदर पार करते हुए भारत की ओर भाग रहे थे और भारत के मुसलमान पाकिस्तान की ओर, तब एक मुसलमान जोड़ा पाकिस्तान छोड़ कर अपनी अगली सदियों की ख़ैरियत के लिए किसी देश की ओर नहीं, अपनी मिट्टी की ओर भाग रहा था।

•

18

तब अदीब चीन से लौट आया था। सलमा भी अपने नाना से मिलकर क्वेटा से लौट आई थी। उसे उम्मीद नहीं थी कि इतने महीनों बाद भी सलमा उस पेपर नैपकिन पर लिखे पते और फोन नम्बर को संभाल कर रखेगी...पर उसने रखा था, न रखा होता तो फोन कैसे करती। और यह भी कितनी खुशनुमा-सी बात थी कि अदीब को मकान बदलना था, तभी फोन आया था। नहीं तो पता बेपता हो जाता और फोन नम्बर बेकार।

करााँची होलीडे इन में वह नाश्ता, वह एक सपना जो दोनों के सपनों में एक-सा आया था...और अब वह इस मकान और फोन नम्बर का लगभग आखिरी दिन।

–कहाँ से बोल रही हैं आप?

–पटना से...क्यों...मेरे फोन की तो उम्मीद भी नहीं होगी आपको...

–एक हल्की-सी उम्मीद तो हर दिन थी, पर वह उम्मीद ही क्या, जो पूरी हो जाए!

–मतलब?

–यही कि उम्मीद जड़ों की तरह फैलती है...फोन न आता तो फोन आने की उम्मीद रहती, फोन आ गया है तो दूसरी उम्मीदें साँस ले रही हैं!

–मैं दिल्ली आ रही हूँ...अब बता ही दूँ। मैं दिल्ली से ही फोन कर रही हूँ। कहीं मिलेंगे आप?

–जहाँ आपको अच्छा लगता हो!

–इंडिया गेट, मानसिंह रोड जहाँ क्रास करती है, वहीं नहर के पास एक मस्जिद का पिछवाड़ा है...

–पिछवाड़े क्यों?

–अल्लाह का घर मस्जिद के पिछवाड़े ही होता है...शाम...

–इसके आगे वक्त न बताएँ तो बेहतर होगा...

–क्यों?

–इसलिए कि जगह आपने बता दी है, मैं ता-जिन्दगी उसी जगह आपका इंतजार करूँगा...

–देखते हैं, कौन किसका इन्तज़ार करता है...

और जब अदीब करीब छह बजे मस्जिद के पिछवाड़े पहुँचा तो देखा–सलमा घास के हरे कालीन पर बैठी थी। दूब के तिनके तोड़ते हुए...उसने गाड़ी पार्क की तो देखकर पहचानते ही वह उठकर खड़ी हो गई। उसकी पलकें रुकी हुई लहर की तरह थमी हुई

थीं...अदीब पास पहुँचा तो न वे हाथों में हाथ पकड़ पाए...न किसी के हाथों ने कोशिश की। पलकों की लहरें अपनी जगह उठने-गिरने लगीं।

–मुझे पता था...या कहूँ कि मुझे लगा था...सलमा बोली थी।

–क्या ?

–कि आप कुरता-पैजामा पहन कर आएँगे...और वही सच हुआ।

–कुछ ऐसा ही हालीडे इन कराँची में मेरे साथ भी हुआ था। याद है वह प्लेन क्रैश वाला सपना...उसमें मैंने आपको जिस सलवार कुर्ते में देखा था, हू-ब-हू वही सलवार-कुर्ता पहने आप मुझे नाश्ते पर मिली थीं। आखिर ऐसा कैसे होता है...ऐसा कैसे हो सकता है...ऐसा क्यों हो रहा है कि जो सोचो, वही सामने आ जाता है ! अदीब ने कहा था।

–क्या पता ! अल्लाह को बेहतर मालूम होगा...आप हमें एक चॉकलेट आइसक्रीम नहीं खिलाएँगे ?

और अदीब आइसक्रीम लेने गया, तो सलमा वहीं खड़ी रही। वह साथ नहीं आई। आइसक्रीम लेकर दोनों फिर घास पर बैठ गए थे। अंधेरा उतर आया था। आइसक्रीम वाले ठेलों के पास रौनक बढ़ गई थी।

और तब उसने सलमा से एक बहुत गहरा सवाल किया था–सलमा ! यह अजीब नहीं है कि मुल्क का पार्टीशन हुआ, पाकिस्तान बना, तो तुम्हारे घरवाले पाकिस्तान छोड़ कर हिन्दुस्तान भागे ?....सॉरी, आपके घरवाले...

–नहीं, यह तुम्हारे और तुम ही ठीक है...सलमा ने टोका।

–यानी अजीब ख़ानदान है तुम्हारा ! नाना पाकिस्तान में...यादों को लेकर हिन्दुस्तान में और जब पाकिस्तान बना तो मुसलमान उधर भागे, पर तुम्हारे वालिद पाकिस्तान छोड़ कर हिन्दुस्तान भागे ! यह अजीब नहीं है क्या ? उसने पूछा।

–इसमें अजीब क्या है ?...यह तो मेरे अब्बू ने बताया है...कि इस्लाम की नज़र से पाकिस्तान का बनना ही गुनाह है...क्योंकि इस्लाम नफरत नहीं सिखाता, पर पाकिस्तान की बुनियाद नफ़रत पर रखी गई है...इस्लाम जैसा मज़हब किसी मुल्क की सरहदों में क़ैद कैसे किया जा सकता है ! कोई मज़हब कैद नहीं किया जा सकता...इस्लाम तो ख़ासतौर से नहीं...सलमा अभी यह बोल ही रही थी कि सर के ऊपर खड़े एक साहब ने तेज़ी से टोका–

–ऐ लड़की ! क्या बक रही है तू ? पाकिस्तान इसलिए बना कि आज़ादी से पहले हिन्दू-मुसलमानों के दिलों में एक दूसरे के लिए शक और नफरत थी,मुसलमानों के हक़ों की गारन्टी नहीं थी...समझी...इसलिए पाकिस्तान बना ! वे साहब चीख उठे थे !

–आप कौन हैं ? अदीब ने पूछा।

–मैं इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग का प्रेसीडेंट गुलाम महमूद बनातवाला हूँ !

–ओ बनातवाला ! तब तुम पाकिस्तान क्यों नहीं चले जाते !

–तुम कौन ?

–मैं ! मैं चन्द्रकान्त भारद्वाज...आर.एस.एस. अलीगढ़ का चीफ़ !...तुम तास्सुबी मुसलमानों की देशद्रोह की परम्परा पुरानी है...तुम कभी राष्ट्रवादी हो ही नहीं सकते !

–हाँ नहीं हो सकते...इस्लाम राष्ट्रों की,मुल्कों की सरहदें मंजूर नहीं करता...हम राष्ट्रीयता को नहीं मानते, हम तो दारुल इस्लाम में यकीन करते हैं, दारुल हरब में नहीं !...एक और आवाज़ आई–

–तुम कौन ?

–मैं मौदूदी हूँ ! मौलाना एस.ए. मौदूदी...

–ऐ मौदूदी ! तुम्हारी मानसिकता मैं समझता हूँ। तुम तो हिन्दुस्तान को दारुल इस्लाम बनाना चाहते थे...पर समझ लो कि दुनिया के नक्शे पर सिर्फ़ अखंड हिन्दुस्तान रहेगा ! तुम जैसे देशद्रोहियों के कारण हिन्दुस्तान में भी पाकिस्तानी सिक्का चले, यह हम नहीं होने देंगे ! नहीं होने देंगे ! समझे ! एक और आवाज़ दहाड़ी थी।

सलमा सहमी हुई थी, तो अदीब ने पूछा–

–आप कौन ?

–मैं विनायक दामोदर सावरकर !

–पर आप तो राष्ट्रवादी थे, हिन्दूवादी नहीं !

–वह पाकिस्तान का इक़बाल भी तो राष्ट्रवादी था जिसने लिखा था–'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा...' पर देखते-देखते वह इंसान शैतान में बदल गया...और तब उसने अपने तराने को बदला–'चीनो-अरब हमारा, हिन्दोस्तां हमारा, मुस्लिम हैं हम वतन हैं, सारा जहाँ हमारा।' तब मैं क्यों नहीं बदल सकता ? इस पवित्र हिन्दू देश में अब शास्त्र सम्मत विधान ही चलेगा ! अभी सावरकर बोल ही रहे थे कि मुर्शिदाबाद का नवाब दीवान चीखने लगा–

–हिन्दुस्तान एक मुस्लिम मुल्क है...यहाँ शरीयत के कानून ही चलेंगे, शास्त्रों के नहीं !

–चुप रहो ! ऐ मुर्शिदाबाद के नवाब दीवान ! तुम्हारे पूर्वज भी हिन्दू थे। अल्लामा इकबाल, जिन्ना, शेख मोहम्मद अब्दुल्ला तक के पूर्वज हिन्दू थे ! कौन अपने हिन्दू रक्त से इनकार करेगा ! लेकिन तुम लोगों ने रक्त सम्बन्धों को स्वीकार नहीं किया...तुमने नस्ल को भी मंजूर नहीं किया। धर्म बदलने से रक्त और नस्ल नहीं बदलती...लेकिन तुम बदल गए...अंग्रेजों से मार खाने के बाद भी तुम्हारा यह दर्प नहीं गया कि तुम शासक और विजेता वर्ग के लोग हो...पर तुम तो विशुद्ध हिन्दुस्तानी थे...सिर्फ तुम्हारा धर्म वह था जो मध्य युग के शासकों का था...तुम्हारी पूजा पद्धति बदली थी...इतिहास और संस्कृति नहीं...समझे ! सावरकर करीब-करीब भाषण देने लगे थे और हंगामा-सा बरपा होने लगा, तो इंडिया गेट पर गश्त लगाते हुए पुलिसवाले फौरन दौड़े !

पुलिस को देखते ही बनातवाला, मौलाना मौदूदी और नवाब दीवान साहब मानसिंह रोड वाली मस्जिद में छुप गए और सावरकर भागकर बम्बई के दादर वाली अपनी मूर्ति में समाहित हो गए...

अदीब और सलमा सकते में थे। वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि यह हुआ क्या था और उनके बीच यह सारे लोग कहाँ से और क्यों आ गए थे?

–सुनो अदीब...सलमा ने तब पूछा था–क्या कोई जगह ऐसी नहीं, जहाँ हम इन मुर्दों और पत्थरों से दूर कहीं बैठ सकें?

–चलो, कार में बैठते हैं! अदीब ने कहा।

पर कोई कार में कब तक बैठा रहता। आखिर अदीब ने कार स्टार्ट की और यूँ ही सड़कों को नापने लगा। आखिर यह तय हुआ कि वह सलमा को बड़ौदा हाउस के पास कहीं उतार दे, ताकि वह कर्ज़न रोड अपार्टमेंट में अपने घर चली जाए। रात के करीब साढ़े नौ बज रहे थे और सलमा को घर भी लौटना था। और अभी अदीब ने कार को कर्ज़न रोड़ की तरफ मोड़ा ही था कि सलमा ने घबराते हुए उसकी जाँघ पर हलके से हाथ रख कर कहा था–प्लीज़...गाड़ी यहीं बाईं तरफ रोक लीजिए या किसी और सड़क पर निकल चलिए...

–क्यों क्या हुआ?

–अगली गाड़ी में मेरा भाई शाहिद जा रहा है...उसके साथ मेरा बेटा भी बैठा हुआ है...वो उसे घुमाने, आइसक्रीम खिलाने लाया होगा...प्लीज़...गाड़ी रोकिए! सलमा ने मिन्नत की थी...जो कि बहुत सही थी और उसने बाईं तरफ मोड़ कर गाड़ी रोक दी थी।

–मैं यहाँ से पैदल चली जाऊँगी! सलमा बोली थी।

सलमा उतरी तो अदीब भी गाड़ी बंद करके उसके पास आया और बोला था–

–मुझे नहीं मालूम था कि तुम जिन्दगी की इतनी बड़ी जिम्मेदारियाँ उठाके चल रही हो!

–लेकिन मुझे मालूम है कि आप मुझसे ज़्यादा बड़ी जिम्मेदारियाँ उठाते हुए चल रहे हैं...

अदीब भौंचक्का रह गया था...

–क्या मालूम है तुम्हें?

–यही कि आप शादीशुदा हैं...आप एक बहुत नेक बीवी के पति हैं एक बहुत सुन्दर और ज़हीन लड़की के बाप हैं...और यह कि आपकी लड़की आपकी लड़की ही नहीं, आपकी दोस्त हैं...सलमा कह रही थी, तब सर पर खड़े नीम की पीली पत्तियाँ झर रही थीं। उस अँधेरे में वे झपकते पलकों की तरह चमकती और खो जाती थीं। तब उसे लगा था कि जब भी किसी के मन में कोई तूफान आता है, तब प्रकृति भी चौकन्नी हो जाती है...

–क्यों, आप कुछ उलझने लगे? सलमा ने पूछा था।

–नहीं, नहीं तो...यह नीम की पत्तियाँ झड़ रही हैं न...

–हाँ, पतझड़ का मौसम है न...

–नहीं यह अंधेरे का मौसम है...लगता है अंधेरा पत्ती-पत्ती झड़ रहा है...

–तो एक बात क्यों न करें!

–क्या?

–कि हम न कुछ पूछें, न जानें...अपने रवायती जिन्दगी के जबाव एक दूसरे से न माँगें...दिमाग़ को बरतरफ कर दें और उसे जी लें, जो मन चाहता है!...उन मोतियों को बटोर लें...गोताखोर की तरह...जो समुन्दर की सतह में जब उतरता है तो किसी बात का जवाब नहीं देता...नहीं?...सलमा ने यह कहा तो कुछ ज़्यादा ही पत्तियाँ झड़ने लगी थीं।

तभी कई आवाजें आने लगीं–दक्षिणी ध्रुव के पास से बर्नार्द पियरे बुलाने लगा–अदीब आओ न...वर्जित प्यार ही असली प्यार होता है...जिस प्यार में वर्जना नहीं, वह वेश्या वृत्ति है, पर वह वृत्ति समाज द्वारा स्वीकृत है...तुम समाज को बहिष्कृत करो...मैंने अभी-अभी सुना...तुम्हारी प्रेमिका ने चाहा है कि उसे जी लो, जो मन चाहता है!...सुनो, दिमाग़ से जिओगे तो जी नहीं पाओगे और यह दुनिया भी तुम्हें जीने नहीं देगी...अपनी वर्जना से ऊपर उठकर आसक्ति को ग्रहण करो...आसक्ति में ही आनन्द है...आसक्ति ही अन्तिम है, वह चाहे किसी शाश्वत मार्ग से प्राप्त होती हो या नश्वर-उपादान से!...

–तो क्या पॉल और वर्जिनी जैसी शाश्वत प्रेम कथा के उपादान नश्वर थे? अदीब ने पूछा।

–तो और क्या! पियरे बोला–अगर मिसेज़ पोईव्र न होतीं तो मैं उसके पति की बात कभी मंजूर नहीं करता...वही तो कहानी है...मैं तो मॉरिशस में मिसेज़ पोईव्र के लिए रुका था, और तब वही किन्नरी मेरे उपन्यास की नायिका वर्जिनी बनी थी–और मैं खुद बना था पॉल! और उसके पति को मैंने बनाया था खूसट बूढ़ा...ऐ अदीब! तुम किस असमंजस में फंसे हो...अपनी प्रेमिका को लेकर मॉरिशस चले आओ–वर्जनारहित आसक्ति का वरण करो, इसे जिओ...क्योंकि मनुष्य के सबसे कोमल, प्रतिबद्ध क्षण आसक्ति में ही निहित होते हैं और प्रकृति इन्हें पवित्र बनाती है!

सलमा सब सुन रही थी। अदीब सोच रहा था। फिर वह धीरे से बोला–सलमा! प्रकृति की पवित्रता तो मॉरिशस में बिखरी पड़ी है। लोग केवल उसका सौन्दर्य देखते हैं...ग्रांड-बे जितनी पवित्र जगह तो दुनिया में नहीं है...सौन्दर्य तो खुद हमारे पास मौजूद है, पर सौन्दर्य की पवित्रता कोई नहीं देखता...वह तो वहाँ बिखरी पड़ी है...त्र्योबिश में भी...सभी जगह...

–सोचना आसान है अदीब...सोचे हुए को जीना बहुत मुश्किल...हमारे और तुम्हारे हालात क्या हमें इस बात का मौका देंगे कि हम उसे जी सकें जिसे हमारा मन जीना चाहता है? सलमा ने कहा था...

नीम के झरते पत्तों और उतरते अँधेरे के बीच चलती हुई, यह बात न जाने कैसे तब त्र्योबिश के चाँदी के तट पर पहुँच गई थी। रात चाँदनी थी...सागर की लहरें सफेद फूलों की चादर की तरह काँप रही थीं। भीगा हुआ तट मद्धिम स्वर में कुछ गा रहा था...कोरल की रेत चाँदी की तरह बिखरी हुई थी। काही रंग के सेवंती के ठिगने पौधे हथेलियाँ खोले खड़े थे...पत्तियाँ पलटती थीं, तो उनकी हथेलियाँ चाँदी की तश्तरियों में बदल जाती थीं...सेवंती की हथेलियाँ।

–लगता है पूरे चाँद की रात है! अदीब ने फैली चाँदनी को देख कर कहा था।

–नहीं, आज चाँद थोड़ा-सा अधूरा है...कल पूरे चाँद की रात होगी! सलमा ने चाँद को देखकर कहा तो चाँद उतरकर आया और उसके रेशमी बाल थपथपा कर चला गया।

रेत पर दोनों बैठे थे तब सलमा ने कुछ सोचते हुए कहा था–क्या यह ठीक नहीं होगा कि हम दोनों इसी तरह पास रहते हुए दूर रहें...बस, एक दूसरे के लिए सोचें और जिएँ...

–क्यों, कुछ ऐसा है जो तुम्हें रोकता है?

–नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं...

–कोई यादें...

–यादें! यादें तो बहुत-सी हो सकती हैं...पर कोई भी याद मुझे बाँधती नहीं!

–कहीं ऐसा तो नहीं कि हम अपने लिए किन्हीं खूबसूरत यादों का विसर्जन कर रहे हों...

–शायद यह ठीक हो अदीब, पर यादें तो वही हैं जो एक खलिश की तरह जिन्दगी का साथ देने के लिए टिकी रह जाती हैं...और शायद इन्हीं अधूरी यादों को हम बार-बार पूरा करने की कोशिश करते हैं...सलमा ने कहा और उसकी पलकें भीगे तट की तरह कुछ और भी कहने लगीं।

–सलमा...यादें पवित्र होती हैं, शायद इसीलिए टिकी रह जाती हैं...कोई याद न छोटी होती है न बड़ी, लेकिन हर याद की आहटें अलग होती है...क्यों न हम उन गहरी, और अगर हो सके तो पूरी यादों में तब्दील होने के लिए सफ़र पर चल पड़ें! अदीब ने कहा और पहली बार उसने बदन की ओस से भीगी सलमा की गर्दन पर अपने ओंठ रख दिए थे। सलमा लहर की तरह सिहर उठी थी...उसके ओंठ तितली के पंखों की तरह खुले और काँपे थे और पलकें त्र्योबिश की सीपियों की तरह मुँद गई थीं।

कुछ बूँदे मोतियों की तरह अदीब की हथेलियों पर गिरी थीं...वह उन्हें देखता रहा...वे मोती उसकी हथेलियों पर सूख गए थे। उनके दाग़ फिर नहीं छूटे। आँसुओं के न मिटने वाले दाग़ उसने पहली बार देखे थे!

रात का पता ही नहीं चला। कब आई और कब बीत गई थी...लहरों के साथ आती हवा की नमी ने बताया था कि रात बीत गई...चाँदनी सुबह के सुरमीले अँधेरे में घुलने लगी

थी। वे दोनों रेती से उठकर कॉटेज में चले आए थे।

बिस्तर उनका इन्तज़ार कर रहा था। वह भी त्र्योबिश की रेती की तरह साफ़ था।

–मेरे स्पर्श से, छूने से, कुछ ऐसा तो नहीं जो तुममें जीवित होता हो और मेरा प्रतिकार करता हो ?

–नहीं, ऐसा भी कुछ नहीं...सलमा ने बहुत गहरी नजरों से अदीब को देख कर कहा था–और फिर...

–क्या ?

–यही कि...वह कुछ झिझकी।

–कि ?

–कि सच्चाई यही है कि कुदरत ने कुछ कानून बनाए हैं...आदमी औरत के आपसी रिश्तों का यही कानून है कि औरत कुछ देकर पाती है और आदमी कुछ पाकर देता है ! सलमा बोली थी।

–इस कानून से तो बराबरी खत्म होती है।

–नहीं...बराबरी जिंस नहीं, जिसे तराजू पर रख कर तौल लिया जाए। बराबरी तो तमन्नाओं की होती है...सपनों की होती है...

अदीब ने उसे गहराई से देखा–आज रात कौन-सा सपना देखा ?

–आज रात रात हुई ही कहाँ...आज तो खुली आँखों वाला सपना देखा !...और इत्तफाक की बात है कि यह सपना भी मैंने और आपने एकसा देखा ! हॉलीडे इन वाले सपने की तरह। शायद यही हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी सच्चाई है...

–कि जो दुनिया में कहीं सच नहीं होता, कभी सच नहीं हुआ, वह हमारे साथ सच की तरह मौजूद है ! अदीब बोला...

–यही सच है ! सलमा ने कहा।

और सलमा के वे शब्द 'यही सच है !' मॉरिशस के उस कॉटेज से निकल
कर ब्रह्मांड में गूँजते चले गए...

यही सच है....यही सच है...

तब दोनों ही खुद को रोक नहीं पाए थे और तूफानी साँसों के एक घर में समा गए थे !

पत्थर, ईंटों और शरीर के घर तो इस दुनिया में बहुत बने थे। सभी ने बनाए थे। पर यह घर साँसों का था...साँसें...जो दूर कोरल रीफ से टकराती हिन्द महासागर की लहरों की तरह फेनिल हो आई थीं...और दोनों की कसती बाँहों और उलझते अंगों से चिंगारियों के फूल झरने लगे थे...

–लगता है, हम कहीं ढाक के जंगल में लेटे हैं ! रुकती थरथराती साँसों से सलमा बोली थी...

–हाँ ! अदीब की साँसें भी भारी थीं–सदियों, सहस्राब्दियों पहले मॉरिशस में एक ज्वालामुखी फूटा था, सागर के अतल से...उसी ने इस देश को जन्म दिया था...आज हमारे ज्वालामुखी ने हमें जन्म दिया है...कितना खूबसूरत है आग के झरने में नहाया हुआ यह पलाश वन !

और तब फिर एक और गहरी पहचान के लिए दोनों एक दूसरे में कुछ खोजने लगे थे।

–आप क्या और खोजना चाहते हैं ?

–वही, जो तुम भी शायद खोजना चाहती हो...मैं किसी भी अंग का स्पर्श नहीं करना चाहता और शायद हर अंग का सघन स्पर्श खोज रहा हूँ !

–अदीब ! महसूस करो जब आदिम हवा ने आदिम धरती को पहली बार छुआ होगा...

अदीब उसे देखता रह गया...

–सलमा !

–हाँ !

–तुमने कब नहाया...तुमने मेकअप कब किया ?

–मेकअप ! आधा दिन चढ़ आया है, हमने आई हुई सुबह कहाँ देखी है...जो मेकअप...

–लेकिन...तुम्हारी पलकें जामुनी क्यों हो गई हैं, माथे पर चाँदनी का यह कुंकुम तुमने कब लगाया ?

–और ? और ?

–तुम्हारे हर जोड़...बगलों-जाँघों और हर रंध्र से कस्तूरी की यह गन्ध क्यों फूट रही है !

–आह...पर आपके बदन से आती भीगी धरती की यह महक मुझे बेहोश क्यों कर रही है ?...

–पता नहीं यह सब क्या है...सलमा, शायद हम ही सृष्टि हैं...नश्वर होते हुए भी निरन्तर जी सकने की शृंखला की एक कड़ी...अदीब उसमें समाहित होते हुए बोला था।

–अब कुछ बोलो मत अदीब...कुछ सोचो मत...कुछ भी बोलो मत...नहीं तो साँसों का यह महल ढह जाएगा...सोचो मत...मन जो चाहता है, वह उसे दे दो...वही होने दो जो होना है ! जो होता है...जो हमेशा होगा...कहते-कहते सलमा उसके शरीर में साँस की तरह समा गई थी...और उनके शरीरों पर हजारों नीले फूल खिल उठे थे।

एकाएक तभी दरवाजे पर दस्तक हुई...थकान की मदहोशी में दोनों ने दरवाजे की तरफ देखा और आवाज दी–कम इन !

चैम्बर बॉय भीतर आया तो दोनों ने खुद को सँभाला।

–सर ! आप लोगों ने न चाय मँगवाई, न लंच पर आए...कहिए तो कमरा साफ कर दूँ...चैम्बर बॉय बोला।

–थैंक यू...लेकिन यहाँ गन्दा कुछ है ही नहीं...सलमा बोली थी–फर्नीचर साफ़ करने की ज़रूरत हो तो कल कर देना !

–नो प्राब्लम मैडम ! कहता हुआ चैम्बर बॉय वापस चला गया।

और तब सलमा ने अदीब को सहजता से देखते हुए कहा था–सुनिए ! अब हम इस बिस्तर पर नहीं लेटेंगे !

–क्यों ?

–इस बिस्तर पर मुहब्बत सोई है, इस पर लेटने से हमारी मुहब्बत कहीं मैली न हो जाए...

–चलो अब ब्रश कर लो...नहा लो...और चल कर कुछ खा लो...वैसे भी यहाँ मॉरिशस में रात आठ बजे के बाद खाना नहीं मिलता...

–नहा तो लेंगे, पर ये नीले फूल तो तब भी नहीं कुम्हलाएँगे। इनका क्या करेंगे ? सलमा ने पूछा था।

–हमसे पूछनेवाला है कौन ? अदीब बोला था और उसने सलमा को एकबार फिर बाँहों में भर लिया था।

•

19

जब अदीब और सलमा कॉटेज से निकले, तब भी नीले फूल खिले हुए थे। सलमा ने साड़ी पहनी थी, बदन के बाकी फूल तो साड़ी और ब्लाउज के अन्दर गुलदस्तों की तरह समा गए थे, पर बाँहों पर उन नीले फूलों की जो लतर उतर आई थी, वह काबू नहीं आ रही थी। सलमा बार-बार उस लतर को पल्लू से ढाँकने की कोशिश कर रही थी, ताकि महक भीतर ही रहे, बाहर न फैलने पाए।

उस वक्त सामने पश्चिम में सूरज डूब रहा था। बादलों का पल्लू उसे छुपाने की कोशिश कर रहा था पर वह बार-बार अपनी किरनों की टार्च फेंकते हुए त्र्योबिश को पलट-पलट कर देख रहा था।

हिन्द महासागर की शान्त लहरें तट को थपकियाँ दे रही थीं। कुछ खानाबदोश नावें अब भी कोरल की तरफ जा रही थीं या उत्तर में ग्रां-बे की ओर उड़ती चली जा रही थीं। उनके पॉल डूबते सूरज की रोशनी में मुकुटों की तरह चमकते और खो जाते थे।

–कैसी लगती हैं इस खामोश समुन्दर की लहरें...जैसे नुक्कड़ का रंगरेज़ नीला दुपट्टा सुखा रहा हो...सलमा बोली थी...और रात में यही लहरें बाँहों में बदल जाती हैं...

अदीब ने उसकी पीठ को लपेटते हुए कंधे पर हाथ रख लिया था और उसे लगभग लिए-लिए वह गन्ने के पतवारों वाली छतरी के नीचे ले आया था। वहीं मेज पड़ी थी। खाना खाने के लिए होटल के डायनिंग हॉल में जाना उन्होंने पसन्द नहीं किया था। सूरज अब डूब गया था। चाँदनी वाली सेवंती की झाड़ियों की पत्तियाँ पलट गई थीं और नीचे सीपियों के आटे का सफेद कालीन बिछा था।

–कितनी अच्छी है यह रेत...पैर मैले नहीं होते ! सलमा बोली ही थी कि वेटर आ गया।

–इंडिया ! भारत...

–हाँ, इंडिया...भारत !

–सर ! सुना है उदर भारत में बोत बड़ा सूरज निकलता ! वेटर ने दोनों हाथ फैलाकर बताया।

–नहीं, उतना ही बड़ा निकलता है, जितना बड़ा यहाँ होता है ! सलमा ने ही जवाब दिया था।

–कइसिन हो सकता है मैडम ! वेटर ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया था, लेकिन उसने आगे बहस नहीं की।

–आप आर्डर दस मिनट बाद ले सकें तो मेहरबानी होगी। सलमा ने वेटर से कहा। वह चला गया।

–देखा ! बड़ी संस्कृति का सूरज भी बड़ा होता है ! अदीब बोला तो सलमा ने उसके हाथ पर हाथ रख लिया। धीरे-धीरे उसकी अंगुलियाँ लहरों की तरह थरथराती रहीं...

–एक अजीब-सी बात मन में आती है। धीरे से सलमा ने कहा।

–क्या ?

–लगता है हम दो सदी पहले चले हों...गिरमिटिया मजदूरों की तरह और यहाँ आकर उतरे हों...उसी तरह नाव में...ठेकेदार ने गिनवा दिया हो...उस लाश को भी, जो रास्ते में अपना चोला बदल चुकी थी...अंग्रेज मालिक ने सेप्टिक टैंक से नहला कर हमें निकाल लिया हो और गले में नम्बर का पट्टा पहना दिया गया हो...और तब हम गन्ने के खेतों में काम करने के लिए चल पड़े हों...पता नहीं सलमा कहाँ खो गई थी और सदियों को पुकारते दौड़ी चली जा रही थी।

कि तभी एक साहब आए थे...

–जी, मैं एक मिनट दख़ल दे सकता हूँ ?

–ज़रूर...ज़रूर..जी बताइए ?

–जी, मैं आपसे नहीं, इनसे बात करना चाहता हूँ !

–सलमा से...कीजिए...

–हम उस छतरी के नीचे बैठ जाएँ...उन्होंने कहा।

–क्यों ? ऐसी क्या ज़रूरत है ? सलमा ने एतराज़ किया।

–कोई ज़रूरी नहीं कि आप मेरी मौजूदगी को महसूस करें ! अदीब ने कहा तो सलमा के चेहरे पर उसे परेशानी दिखाई दी। उसी परेशानी में सलमा ने पूछा–आप कहाँ चले जाएँगे ?

–कहीं नहीं, मैं यहीं-कहीं चला जाऊँगा !...जो लोग बातें छुपा कर करते हैं, उन्हें नहीं मालूम कि बातें छुपती नहीं !...तुम मेरी मौजूदगी जब चाहोगी, मैं मौजूद हो जाऊँगा ! और इतना कहते ही अदीब ग़ायब हो गया।

–ख़ैर कोई बात नहीं, जी बताइए ? सलमा ने उन साहब से कहा।

–पहले तो मैं अपने बारे में बता दूँ...मेरा नाम नईम है...मैं पाकिस्तान सिविल सर्विस में हूँ...आप सीएसपी से रिटायर्ड आफताब अहमद की शायद नातिन हैं ! नईम ने पूछा।

–जी ! और हिन्दुस्तानी सिविल सर्विस आईएएस के सलमान हुसेन की बेवा ! सलमा ने थोड़ा तमक कर कहा।

–जी हाँ, जी हाँ, वह मुझे मालूम है...मैं सलमान का कज़िन हूँ, मुझे मालूम है, शिमला में उनकी मौत हो गई थी...

–और मुझे उनके घरवालों ने सलमान की कमाई की दो तिहाई जायदाद की विरासत से बेदख़ल कर दिया था। एक झूठी 'विल' बनाकर! सलमा ने गुस्से में कहा।

–हाँ, कुछ-कुछ तो मुझे मालूम है...हिन्दुस्तान की सारी और पूरी खबरें तो मिलती नहीं...नईम बोले।

–तब तो शायद आपको यह भी नहीं मालूम होगा कि आपके खानदानवालों ने मुझे अदालत में घसीटा था...और सलमान की मौत का इल्ज़ाम मुझ पर लगाया था और दलील यह दी थी कि शादी से पहले मेरा रिश्ता किसी और आदमी से था...सलमा तुर्शी से कह रही थी।

–हाँ, और शायद अदालत ने आपको कटघरे में खड़ा देख कर कहा भी था कि इतनी खूबसूरत औरत का हक़दार एक आदमी हो और वो लगातार हक़दार बना रहे, यह नामुमकिन है! नईम ने कहा।

–हाँ, यह चटपटी खबरें अखबारों ने छापी थीं! और सरहद के इस पार और उस पार वाले रिश्तेदारों ने सिर्फ यही खबरें सुनी, पढ़ी और जानी थीं! और फिर आप नौकरशाहों का कुनबा तो एक है, फिर वह चाहे हिन्दुस्तान के आईएएस हों या पाकिस्तान के सीएसपी!...सलमा ने ज़हर बुझे लहजे में कहा, तो नईम कुछ अचकचा के रह गया– नहीं, ऐसा तो नहीं है...

–ऐसा ही है नईम साहब! आपके कुनबे से छिटक कर, अपनी मर्ज़ी का मालिक कोई भी मर्द आज़ाद हो सकता है पर औरत को आप अपने कुनबे की जायदाद समझते हैं! अगर किसी हादसे के बाद कोई औरत किसी और कुनबे के मर्द को मंजूर कर ले तो आप लोग बर्दाश्त नहीं करते...

–आप कुछ ग़लत सोच रही हैं!

–इसमें ग़लत कुछ भी नहीं है...पहले तो आप औरत को अपने कुनबे में घेर कर रखना चाहते हैं, फिर खानदान का वास्ता देते हैं, और जब कुछ भी कारगर नहीं होता तो मज़हब का वास्ता देते हैं!...

–हाँ, शायद आप ठीक कह रही हैं! आप अब भी मुसलमान तो हैं ही...लेकिन एक हिन्दू मर्द के साथ जो रास्ता आप तलाश रही हैं...वह कुफ्र है! नईम ने सख़्ती से कहा।

–तो आप यहाँ भी वही घटिया बात ले आए! क्या दिली रिश्ता कायम करने से पहले कभी किसी ने पूछा है कि तुम्हारा मज़हब क्या है? क्या आप कुदरती मोहब्बत और मज़हबी मोहब्बत में फ़र्क़ नहीं कर सकते नईम साहब? किसी भी मज़हब से पहले कुदरत है! सलमा बोली तो नईम लाजवाब-सा हो गया।

–मैं कहना सिर्फ इतना चाहता हूँ कि...

–कि मैं एक हिन्दू के साथ अपनी दिली, जिस्मानी और रूहानी खुशी का रास्ता न तलाशूँ!

–आपके सामने एक बेटा भी है...सोचिए, उसका क्या होगा?

–वह मेरा बेटा ही सही, पर मर्द को जीने के लिए कहीं मुश्किल नहीं होती।

–मैं एक दोस्त और रिश्तेदार की तरह आपको राय देता हूँ कि बेहतर होगा आप अपने बेटे के साथ, अपने नाना के पास पाकिस्तान लौट आएँ! नईम ने कहा।

–आप तो बिल्कुल यज़ीद की तरह पेश आ रहे हैं!

–यज़ीद की तरह...मैं समझा नहीं!

–आप समझ रहे हैं, यह आप क्यों मंजूर करना चाहेंगे? यज़ीद ने भी हज़रत हुसैन को मदीने से ईराक आने की दावत दी थी और कर्बला के मैदान में उन्हें भूखा प्यासा रख कर आख़िर उनका क़त्ल कर दिया था!...आपका बुलावा यज़ीद का बुलावा है और आपका पाकिस्तान मेरा कर्बला ही बन सकता है...जहाँ आप मुझे हर तरह से भूखा रखकर अपनी हवस का शिकार बना सकते हैं और जिन्दा रहते हुए भी एक ग़ैर-कुदरती मौत मुझे दे सकते हैं!...हज़रत हुसैन तो सिर्फ कर्बला में शहीद हुए थे, पर मुसलमान औरत के लिए तो आप लोगों ने पूरी जिन्दगी ही एक कर्बला बना रखी है! सलमा के भीतर एक ज़लज़ला उठ रहा था, वह चीख पड़ी–क्या है वो खास चीज़ जो एक मुसलमान मर्द औरत को दे सकता है, जो ग़ैर-मुस्लिम नहीं दे सकता?

–इस्लाम ने औरत के लिए जो दर्जा तजवीज़ किया है वह किसी और मज़हब के पास नहीं है! जिस्मानी सतह पर तो हर मर्द सिर्फ वही दे सकता है जो कोई भी मर्द औरत को दे सकता है, लेकिन रूहानी और दुनियावी सतह पर एक मुसलमान मर्द औरत को वह सब कुछ दे सकता है जो दुनिया का कोई मज़हब नहीं देता! नईम बोला–इस्लाम माननेवालों के पास कुरआन पाक है, हदीस है!

–लेकिन वो तो अरबों के पास हैं...उनकी ओरिजनल कापियाँ, जो उन्होंने अब तक किसी को नहीं दीं। फिर तो 'फिकहा' ने ही इस्लामी कानून की अलग-अलग पहचान दी। और यह भी आपकी मालूम होगा कि तभी इस्लामी शरीयत के कानूनों की पहचान में फ़र्क़ आया...सुन्नियों के चार स्कूल बने...शियाओं ने तब सुन्नियों से अलग अपने स्कूल फिका-ए-असनाअश्री को मंजूर किया...यह सही है इन सभी स्कूलों के लोग मुसलमान हैं, इनका ख़ुदा एक है, इनका नबी एक है, इनकी किताब एक है मगर इनकी जिन्दगी जीने के उसूल अलग-अलग हैं!...

–जी! और? नईम ने जैसे चुनौती के स्वर में कहा।

–और यही कि...आप सीएसपी में ज़रूर हैं, पर आप पाकिस्तान नाम के मुल्क को नहीं, आप इस्लाम के नाम पर अपनी कमज़ोरियों को चलाना चाहते हैं! मुल्क तो आपको अंग्रेजों ने जागीर में दिया है...और आप अवाम के लिए नहीं, ग़लत मज़हबी मंसूबों के लिए दस-बीस पीढ़ियों को इस्लाम के नाम पर ग़ारत कर देना चाहते हैं...हालाँकि इस्लाम ने नफ़रत का पैग़ाम कभी नहीं दिया, पर आप नफ़रत को मज़हबी मंसूबों की पोशाक पहना

कर दूसरे मज़हबों के साथ वही करना चाहते हैं जो इस्राइल के जूडाइज़्म ने इस्लाम के साथ किया था!

–यह आप कैसे कह सकती हैं? पाकिस्तान की बुनियाद एक उसूल पर रखी गई है...

–किस बुनियादी उसूल पर? मज़हब तो क़ौम की पहचान नहीं है! मज़हबों के आने और नाज़िल होने से बहुत पहले भी तो लोग किसी और मज़हब, किसी और अक़ीदे, किसी उसूल के तहत ही अपने समाज को चला रहे थे!...आज अगर पूरा अमरीका इस्लाम को मंजूर कर ले, तो क्या वो क़ौम की शक्ल में अमरीकी नहीं रह जाएँगे? क्या वो अरबी या ईरानी हो जाएँगे?

–आप तो बहस कर रही हैं और इस बहस में आप ख़ामख़्वाह इस्लाम को घसीट रही हैं!

–वह इसलिए कि पाकिस्तानी होने के नाते आप खुद को इस्लाम का अलमबरदार समझते हैं, इसीलिए बार-बार आप मुझे इस्लाम का वास्ता दे रहे हैं! इस्लाम के नाम पर एक मुल्क पाकिस्तान बना था...यह दुनिया में कभी नहीं हुआ था...हमेशा मुल्कों के नाम पर मज़हबों ने अपनी पहचान हासिल की है...पाक नबी हज़रत मोहम्मद के आने और पाक क़ुरआन के नाज़िल होने के बावजूद अरब अरब ही रहा, ईराक ईराक ही रहा, मिस्र मिस्र ही रहा, ईरान ईरान ही रहा, लेकिन पाकिस्तान भारत या हिन्दुस्तान नहीं रहा!...

–आप कहना क्या चाहती हैं?

–यही कि खुद आपके प्रेसीडेंट ज़िया-उल-हक़ ने कहा था कि पाकिस्तान उसी तरह एक मज़हबी मंसूबे की मिसाल है जैसे कि इस्राइल जूडाइज़्म की देन है, अगर इस्राइल से जूडाइज़्म खत्म हो जाता है तो इस्राइल नहीं बचेगा, उसी तरह अगर पाकिस्तान से इस्लाम की बुनियाद खत्म हो जाती है तो पाकिस्तान खत्म हो जाएगा!...मज़हब ख़त्म हो जाते हैं नईम साहब पर क़ौमें तो ख़त्म नहीं होतीं!...क्या ईसाइत क़ौमें ख़त्म करवा सकी?...क़ौम का तसव्वुर ही अलग है...क्या बौद्ध धर्म आने के बाद चीन, जापान, कम्बोदिया, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया की क़ौमों को कोई बदल सका...उनमें भी बहुत से ईसाई और मुसलमान बन गए, पर क्या मज़हब क़ौम को तोड़ पाया?

–आप बेहूदी बहस कर रही हैं! नईम ने कहा।

–आप इस वक्त मॉरिशस में अकेले हैं, आप मेरे फ़ौत फरमाये खाविंद सलमान हुसैन के कज़िन हैं...अगर मैं इस्लाम के नाम पर अदीब को छोड़कर अभी, इसी रात आपके साथ सो जाऊँ तो शरीयत, हदीस और पाक कुरआन शरीफ़ सब मेरा साथ देने लगेंगे...क्योंकि आप इन पाक उसूलों को इन्सानी पहचान से अलग करके इस्लामी पहचान देकर अपने लिए महदूद कर लेना चाहते हैं! इसलिए नईम साहब! आप मुझे मज़हब का वास्ता मत दीजिए...हर मज़हब में आप जैसे घटिया और कमीने लोग मौजूद हैं जो अपनी

जिस्मानी ख्वाहिशों के लिए मज़हब का इस्तेमाल एक तमंचे की तरह करते हैं! यह तमंचा आपकी पैंट के नेफ़े में क़ैद है और कुलबुलाता रहता है और इसकी ज़रूरत के मुताबिक आप जैसे लोग मज़हब का वास्ता देते रहते हैं! सलमा चीख रही थी!

–आप निहायत बेहूदी औरत हैं! नईम गुस्से से मेज़ पर मुक्का मार कर चीखा था।

–आप निहायत बेहूदे आदमी हैं जो पाकिस्तान के नाम पर एक बड़े मज़हब को निहायत छोटे दायरे में क़ैद करना चाहते हैं...मेरा इस्लाम इतना घटिया मज़हब नहीं है। आपने पाकिस्तान के नाम पर एक पुख्ता क़ौम को बाँटा और अब आप मुझे, एक फ़रीक़ को फिर मज़हब के नाम पर किसी दूसरे से अलग करके मेरे वजूद को तकसीम करना चाहते हैं!...सलमा चीखी तो कोहराम-सा मच गया। नईम हड़बड़ा गया...और वह जैसे-तैसे अपने को संभालता हुआ उठ गया। उठ क्या गया, भाग-सा लिया।

उस वक्त चाँद निकल आया था। तट से लगे सागर की सतह झिलमिलाती पन्नी में बदल गई थी। रेत भुड़-भुड़ की तरह चमक रही थी और सागर से आती हवा चाँदनी को दुपट्टे की तरह लपेटे इधर-उधर टहल रही थी। सेवंती के पौधों की पत्तियाँ पलट चुकी थीं और हलके-हलके ताली बजा रही थीं–सी पाइन की झूमरें कुछ गुनगुना रही थीं और दूर गन्नों के खेतों के पत्ते गोटे की किनारियों की तरह आपस में उलझ रहे थे...

आज पूरे चाँद की रात थी...सलमा का तमतमाया चेहरा उस चाँदनी में टीन की चादर की तरह चमक रहा था। नईम साहब न जाने कहाँ गायब हो गए थे...त्र्योबिश में सन्नाटा था। पता नहीं बाकी लोग कहाँ छुप गए थे। झिलमिलाती पन्नी वाले पानी पर कुछ बोट्स थाप देते हुए थरथरा रही थीं...दूर काली जेटी की जाली पर चाँदी की बर्फियाँ बिछी थीं। लावे की कत्थई चट्टानें सुस्तातें हिरनों की तरह बैठी थीं और पानी के भीतर छोटी-छोटी मछलियों के झुंड मोतियों की चादरों की तरह आते और पलट कर चले जाते थे।

आख़िर अदीब को अनन्त से निकल कर सलमा का खयाल आया कि वह बिलकुल अकेली है। अदीब पास पहुँचा और जैसे ही उसने सलमा को छुआ, वह रेत की मीनार की तरह बिखर कर उसके वजूद में समा गई...

अदीब ने रेत के एक-एक कण को सहेजा, उसे फिर जोड़ा...हर कण को उसकी जगह रखा तो सलमा फिर ज्यों की त्यों बनकर खड़ी हो गई। फ़र्क इतना ही था कि अब उसकी आँखों में आँसुओं की जगह रेगिस्तानी अंधड़ थे और साँसों में तेज़ाब की महक।

अदीब ने उसे झकझोरा–सलमा! आख़िर तुम्हें हुआ क्या है...

–कुछ नहीं अदीब! नईम जैसे लोग आख़िर यह क्यों नहीं समझते कि मुसलमान और इस्लाम के नाम पर इन पाकिस्तानियों को बोलने का कोई हक़ नहीं है...आज हिन्दुस्तान में पाकिस्तान से ज़्यादा मुसलमान हैं और पाकिस्तान से ज़्यादा इस्लाम को समझने वाले लोग हैं और इस्लाम को दिल से मानने वाले मुसलमान हिन्दुस्तान में उनसे

कहीं ज्यादा हैं, तब इन पाकिस्तानियों को बोलने का हक़ कहाँ है ? सलमा बुरी तरह धधक रही थी।

–छोड़ो यह बातें...आओ...खाना खा लें! अदीब ने कहा।

–हाँ, मुझे बहुत भूख लगी है!

अदीब ने पलट कर देखा। होटल के मेन हाल की रोशनियाँ गुल थीं। वह उधर गया तो पता चला होटल बन्द हो चुका है...होली की छुट्टी है और अब खाना नहीं मिल सकता!

–लेकिन वेटर तो आर्डर लेने आया था!

–जी हाँ, उसने बहुत देर आपका इंतजार किया...आखिर छुट्टी का दिन था। इन्तजार करते-करते वह थक गया। फिर किचिन बन्द हो गया तो वह चला गया!

–तो अब कुछ नहीं मिल सकता ?

–सॉरी सर...

–लेकिन आप साउथ अफ्रीकन टूरिस्टों को तो रात भर खिलाते हैं!

–जी, तब जब छुट्टी का दिन नहीं होता...वैसे भी साउथ अफ्रीकन टूरिस्ट शाम आठ-साढ़े-आठ बजे तक अपना डिनर खत्म कर लेते हैं और हम हर दिन साढ़े नौ बजे अपना किचिन बन्द कर देते हैं, अब तो साढ़े ग्यारह बज रहे हैं!

वह जब कॉटेज में लौटा तो बिस्तर पर पड़ी सलमा बुरी तरह सुबक रही थी...नईम की बातों और भूख ने उसे बेहाल और बदहाल कर दिया था।

–सलमा!

–कुछ नहीं, मुझे बहुत भूख लग रही थी और आप रिसेप्शन पर बहस में उलझे हुए थे...आपको मेरी भूख की फ़िक्र ही नहीं थी, इसलिए मैं यहाँ चली आई ! मुझे पता है, होटल में भी किचिन बन्द हो चुका है, होली की वजह से, पर हरेक तो हिन्दू नहीं है...ग़ैर-हिन्दुओं को भी तो भूख लगती है! कहते कहते सलमा भूख से रोने लगी।

–देखो, मैं कुछ कोशिश करता हूँ ! कहते हुए अदीब ने बाहर निकलकर गाड़ी उठाई और पोर्ट-लुई की ओर निकल पड़ा।

वही गन्ने के खेतों की कतारें...अंधेरा और गाँव त्रियोले से होती हुई पतली सड़क...त्रियोले से गुज़रा तो बाईं ओर एक मकान की लाइटें ऑन थीं। वह समझ गया कि यह बर्नार्द पियरे का कोई वंशज है...रुक कर पूछा तो पता लगा कि यह एक लेखक का घर है। इस लेखक का नाम अभिमन्यु अनत है और यह भारतीय मूल का है...जब सारा मॉरिशस रोशनियाँ बुझा कर सो जाता है तो यह ऋषि लेखक अपनी लेखनी को शमा की तरह जलाता है...ताकि दुनिया में रोशनी की कमी न पड़े...

और उस लेखक के कलम की वह रोशनी उसका पोर्ट-लुई तक साथ देती रही। जब वह उस बंदरगाह वाले शहर में पहुँचा तो गोदी से लहसन और प्याज उतरने की महक आ रही थी। पता चला कि यह भारत से आता है। क्रीम और चीज़ आस्ट्रेलिया से आती है।

मटन न्यूजीलैंड से, सीरियल्स योरुप से...पेट्रोल गल्फ से और टूरिस्ट पूरी दुनिया से...सामान की कोई कमी नहीं थी, पर बाजार तो बंद था। आखिर अदीब को एक जगह त्रियोले की तरह ही रोशनी टिमटिमाती दिखाई दी। वहाँ पहुँचा तो पता लगा कि यह प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम का घर है, जिसके नीचे खोंचे जैसी एक दूकान अब तक खुली हुई थी। उस पर कुछ समोसे, पकौड़े और केले मौजूद थे। खरीदते हुए मालूम हुआ कि दुकानदार मैडागास्कर का एक मामूली सा आदमी है जो हिन्दुस्तानी नाश्ता बनाकर बेचता और अपना पेट भरता है और मॉरिशस के प्रधानमंत्री ने अपने घर के नीचे उसे खोंचा लगाने की इजाज़त दी हुई है...अदीब को लगा था कि आखिर यह कैसा देश है...जो हर तरफ और जिंदगी के हर पहलू से पवित्र है।

जो कुछ मिला, उसे लेकर अदीब त्र्योबिश की ओर भागा। आधी रात बीत गई थी। त्रियोले से गुज़रा तो उस ऋषि लेखक अभिमन्यु अनत के कमरे की रोशनी अब भी जल रही थी...

कॉटेज में पहुँचा तो सलमा इन्तजार करती बैठी थी। अदीब ने समोसे-पकौड़े प्लेट में रखे, केले भी रख दिए।

–लो खाओ...

–मेरा पेट तो उसी वक्त भर गया जब आप इसे लाने के लिए निकल पड़े थे ! पेट की भूख बहुत समझदार होती है ! सलमा ने कहा और उसे प्यार कर लिया–प्यास लगी है...

अदीब ने पानी की तरफ़ हाथ बढ़ाया तो सलमा ने रोक लिया और उसे अपनी बाँहों में भर लिया–प्यास का पानी और होता है अदीब...

और तब कमरे की सारी औपचारिक सुगन्ध कहीं और उड़ गई थी। शरीर अपनी कुदरती महकों के साथ, नदियों की तरह उमड़ कर एक होते हुए बहने लगे थे...शरीर वनस्पतियों के जंगल बन गए थे...देवदार, चीड़, बुराँस, चंदन, दालचीनी और धरती के सोंधे-महकते जंगलों से होते हुए सदियों की बांहों में फैले हुए थे...

–आह...अब मुझे छोड़ना मत...हम इसी तरह जीते-जीते पत्थरों में तब्दील हो जाएँगे...आह...अदीब...मेरे अदीब...

नदियों की बाँहों के पानी किनारों की तरफ बह चले थे...बीच धार का पानी अब उद्दाम सतह पर बह रहा था।

–एक बात कहूँ...आपके पसीने की तरह यह भी खारा है...या खुदा...या मेरे परवरदिगार...मुझे मुश्किल से मिली इस रूहानी ख़ुशी से महरूम मत करना ! मेरी जिस्मानी खुशियों पर चाहे जो पाबन्दियाँ लगा दे मेरे खुदा...यह मुझे मेरा हासिल मिला है परवरदिगार...ख़ैरात में इतनी बड़ी दौलत नहीं मिलती...शायद यह खैरात नहीं, मेरा हासिल है...इसमें मुझे जी लेने दे !

–आमीन !

–यह आमीन आपने बोला था? सलमा ने चौंक कर पूछा।

–नहीं तो!

–कोई तीसरा शायद लगातार हमारे साथ है...

जो हमें एक-सा नाश्ता देता है, एक से सपने देता है। अदीब बोला।

–अदीब!

–हूँ!

–अदीब...आपने इतने-से दिनों में मुझे वह सब दे दिया जो मेरे शौहर सलमान ने मुझे आठ बरसों में नहीं दिया...

–क्या कह रही हो तुम?

–वही...जो सच है! जो सच है...आपने मुझे हैबत से निकाल कर इबादत की दुनिया में पहुँचाया है अदीब!...काश...

–काश?

–काश! आप शुरू से मेरे शरीके हयात होते! हम शादीशुदा होते...कहते हुए सलमा बुरी तरह रो पड़ी थी। अदीब ने उसकी आँखों पर ओंठ लगाकर एक भी बूंद गिरने नहीं दी थी।

–तुम्हारे आँसू तो मेरे पसीने की तरह खारे नहीं! ये दज़ला-फ़रात, नील और गंगा के पानी की तरह मीठे हैं! अदीब ने उसे बाँहों की रेशमी बंदिश में लेते हुए कहा था।

–आप उस साल कहाँ थे?

–किस साल?

–जिस साल सलमान से मेरी शादी हुई थी!

–तब मैं तुम्हारी कोठी के कोने पर एक पेड़ की तरह खड़ा जी रहा था...जिसकी शाखों में बारात के स्वागत की चाँदनी और बल्बों की सुतलियाँ बाँधी गई थीं! अदीब ने पेड़ की तरह उदासी से हँसते हुए कहा था–पर तब मैं लाचार था...और तब मैंने तुम्हें तुम्हारी ख़ुशियों के लिए खुला छोड़ दिया था।

–हाँ, ऐसा नहीं है कि सलमान ने मुझे खुशियाँ नहीं दीं...लेकिन कुछ ऐसी बातें भी दीं, जिनके बारे में सोचती हूँ तो समझ में नहीं आता कि उस आठ साल की जिन्दगी के बारे में कहाँ तक सोचूँ?...अदीब, सच कहूँ...सलमान का चेहरा मैं उनकी मौत के बाद भी खोजती रही, पर कोई एक चेहरा कभी मेरे सामने नहीं आया! हर औरत की शायद यही कमज़ोरी है कि वह एक चेहरे वाले आदमी को खोजती है!

–सलमा! मेरे भी अगर ज़्यादा चेहरे नहीं, तो भी दो चेहरे तो हैं...एक वह, जो मेरी बीवी के साथ जुड़ा है और दूसरा वह, जो तुम्हारे साथ जुड़ गया है! अदीब ने कहा।

–उसकी असलियत मैं जानती हूँ अदीब!

–क्या?

—यही कि न आप मुझे छोड़ सकते हैं, न अपनी बीवी को!

—यह तुम कैसे जानती हो?

—ऐसे, कि मैं आपको जानती हूँ! आप अपनी हसरतों की सज़ा किसी दूसरे को नहीं दे सकते। यह मैं बखूबी जानती हूँ कि आप अपनी हसरतों के लिए जिएँगे, उन्हें जिलाएँगे, आप अपनी हसरतों को रेगिस्तानों के पार ले जाएँगे, उनमें ऊबेंगे, दुःख उठाएँगे, लेकिन उनका दुःख किसी और को नहीं उठाने देंगे! सलमा ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा था।

—तुम कहना क्या चाहती हो?

—यही कि आप अपनी बीवी शांता को मेरे लिए छोड़ सकते हैं, लेकिन आप उन्हें अकेला नहीं छोड़ सकते!...क्योंकि आप अपनी हसरतों की सज़ा खुद को दे सकते हैं, शांता को नहीं! इसलिए मुझे भरोसा होता है कि आप मुझे भी नहीं छोड़ सकते!...अगर आप शांता को छोड़ सकते होते, तो आप मुझे कभी भी छोड़ सकते हैं! सलमा ने अदीब के पैरों पर हाथ रख लिए थे...

—सलमा! तुम क्या हो? औरत हो या फरिश्ता!

—अदीब! सोचती हूँ तो थोड़ी घबराहट होती है कि मुझे मेरे मज़हब के नईम की तरह के लोग मज़हब के नाम पर आपके साथ जीने नहीं देंगे...आप ऐसा करो...

—क्या?

—कि सिर्फ़ जीने के लिए मैं हिन्दू बन जाऊँ और आप मुसलमान हो जाओ! क्योंकि मुसलमानों की ज़हनियत यह तो मंजूर कर सकती है कि कोई मुसलमान मर्द हिन्दू औरत को ब्याह ले, पर कोई हिन्दू मर्द मुसलमान औरत को बिस्तर तक ले जा सके, यह उन्हें मंजूर नहीं...तो क्यों न हम सिर्फ़ अपनी ज़िन्दगी जी सकने के लिए अपने मज़हबों को बदल लें। ताकि इन्हें चैन पड़ जाए। नहीं तो नईम जैसे लोग हमें जीने नहीं देंगे!

•

20

सलमा और अदीब ने मज़हब तो नहीं बदले...पर उन्हें इस बात में मज़ा ज़रूर आने लगा। यह उनके लिए जैसे खेल की बात बन गई। सबसे पहले तो उन्होंने जगह बदली। वे पूरब की ओर भागे...भागते-भागते ब्लैक रिवर के घने जंगलों को पार करते हुए जब वे रुके, तो सामने उन्हें फूलों से लदा एक रास्ता मिला। कुछ ही आगे बढ़े तो एक बूढ़े इतिहास पुरुष ने उन्हें टोका–कइसन बा ? भागत काहे का हो ?

–हम अपनी खुशियों के लिए वर्तमान से भाग रहे हैं ! अदीब ने हाँफते हुए कहा। सलमा पसीने से तर उसके कन्धे का सहारा लिए और भी ज़्यादा हाँफ रही थी। उसने साँस लेते हुए जैसे-तैसे कहा–असल में हम सदियों से इसी तरह भाग रहे हैं...ऐ बाबा आदम...हमें राहत से जीने का वक्त कब मिलेगा ?

इतिहास पुरुष हँसा। उसकी हँसी ब्लैक-फॉरेस्ट के कदीमी पेड़ों से उलझती...झरनों से झरती, शमारेल की सतरंगी धरती से गुज़रती, क्यूपिप में पल भर की राहत लेकर ज्वालामुखी के शांत दहाने में गूँजती और सतत प्रहरी मुड़िया पर्वत के कालिदास से टकराती, वहीं लौट आई और धीरे-धीरे शांत हो गई।

अदीब और सलमा चकित से इतिहास पुरुष को देख रहे थे।

–कहाँ तक भागोगे तुम दोनों ? मनुष्य हमेशा भागता ही रहा...लेकिन पुरुषार्थी कभी भागता नहीं...मैंने यहाँ भी उन भारतीय मजदूरों को ब्लैक-फॉरेस्ट में भागते देखा है, जो अंग्रेज उपनिवेशियों के अत्याचार नहीं सह पाए...कुछ ने आत्महत्याएँ कर लीं, कुछ हिन्द महासगार में कूद कर अपने देश की ओर भागे और सागर के गर्भ में समा गए...कुछ को उपनिवेशियों के शिकारी कुत्तों ने चींथ डाला...कुछ यहाँ के आबनूस के जंगलों को काटते-काटते खुद पेड़ों की तरह काट डाले गए तुम्हीं बताओ तिब्बत कहाँ भाग कर जाएगा ? नाइजीरिया या बोलिविया कहाँ भागेगा ? मैक्सिको भागकर भारत का हिस्सा नहीं बन पाएगा...साइप्रिस भाग कर स्पेन के पेट में नहीं समा पाएगा...तुम कहाँ तक भागोगे...भागने से दुनिया नहीं बदलती...दुनिया का सामना करो।

–हम यही करेंगे बाबा आदम ! सलमा ने कहा और वे इतिहास पुरुष से फिर मिलने की इल्तजा करते हुए फूलोंवाले रास्ते से टुशरॉक होटल में घुस गए थे। यहाँ की दुनिया तो पानी का रहस्य महल थी। दुनिया के सारे मोतियों ने मिलकर मॉरिशस के तटों की रचना की है और सृष्टि में आज तक मनुष्य के जितने उजले आँसू बहे हैं, वे सब मॉरिशस के समुद्रों में संचित हैं...इसीलिए वे इतने धवल और पवित्र हैं। यहाँ हर पेड़ गाता

है, हर पत्ती हाथ हिलाकर पास आने का निमंत्रण देती है। हर चिड़िया एक पेड़ का संदेशा लेकर मीलों दूर खड़े पेड़ तक पहुँचाती है और मेघों को मुड़िया पर्वत का कालिदास हर क्षण बुलाता रहता है और वे दूत यहाँ-वहाँ छाये रहते हैं...और हवा लगातार उन मेघदूतों को अपनी बाँहों में भरकर लाती है और फिर उड़ा ले जाती है।

अभी वे कमरे में प्रकृतिस्थ होकर चाय पी ही रहे थे कि इतिहास पुरुष ने एकाएक फिर प्रवेश किया। वे दोनों उन्हें देखते ही रह गए।

–आप चाय पिएँगे ? एकाएक अदीब ने पूछा।

–होटलों की चाय में रस कहाँ है ? मुझे मेरी धरती के चाय बगान अपना रस पिलाते रहते हैं...आप दोनों चाय पीजिए। पर मैंने आपके एकांत में दख़ल देने का साहस इसलिए किया कि मैंने आप दोनों को एक बड़े ऊहापोह में पाया...ऐसी संकुल स्थिति में, जो आपको प्राकृतिक जीवन जीने से अवरुद्ध करती है...वह जो पशुता का दैहिक जीवन नहीं है, बल्कि मनुष्य की रागात्मक अनुभूतियों का लयपूर्ण जीवन है !

–हाँ कुछ-कुछ ऐसा ही है...हम थोड़े से त्रस्त भी हैं और इस त्रास से मुक्त होने का रास्ता खोज रहे हैं !

–त्रास से मुक्त होने का महामार्ग है एक दूसरे में अटूट विश्वास...और संभावना के प्रति आस्था...सम्भावना की स्वीकृति...जो शक्तियाँ इसे नकारती हैं, वे सम्भावना विरोधी हैं...क्योंकि हर व्यक्ति के भीतर सम्भावना की एक अज्ञात ज्योति जल रही है...एक अखंड ज्योति...और संभावना ही सबसे बड़ा जीवन प्रयोग है जिसका आविष्कार खुद मनुष्य ने जीवन को निरन्तरता देने के लिए किया है !

–लेकिन इस सम्भावना के आविष्कार और इसकी ज्योति को कोई मंजूर नहीं करता ! सलमा ने कहा।

–तुम दोनों इस आविष्कार के अगले प्रयोगों के वैज्ञानिक हो...तुम ख़ुद वह अखंड ज्योति हो...तुम दोनों उसी जलती ज्योति के कारण 'दिन' हो...तुम्हारे पास जो उजाला है, वह इसी का है...यह उजाला कभी समाप्त नहीं होता। दिन कभी रात नहीं बनता। जब क्यूपिप और इस इलाके में घनघोर बादल छा जाते हैं, अँधेरा छाने लगता है, तब भी यह प्रतीति बनी रहती है कि अभी रात नहीं है, दिन है ! उसी तरह तुम्हारे सम्बन्ध पाप की प्रतीति नहीं, वह पुण्य-प्रतीक हैं !

कहकर वे इतिहास पुरुष अदृश्य हो गए।

बहुत देर रात तक अदीब और सलमा टुशरॉक होटल के अलग-अलग हिस्सों में घूमते रहे...जहाँ आँसुओं की तरह उजला पानी आबे ज़म-ज़म की तरह लगातार बह रहा था। बहुत देर तक दोनों इस पवित्र पानी में तैरती मछलियों को देखते रहे...कभी पानी के नीचे लहलहाती कोरल की वनस्पति को देखा और कभी मछलियों की साँसों से उठे

बुलबुलों को...फिर वे एक नाव लेकर सामने के टापूवाले रास्ते-राहत में चले गए और जब मार्टिनी की मदहोशी में लौटे, तो सलमा ने कहा–

–आप अब मुसलमान बन जाइए!

–बन गया!

–और मैं हिन्दू बन जाती हूँ!

–बन जाओ!

और अदीब मुसलमान बन गया, सलमा हिन्दू!

–मैं तुम्हारा हाथ पकडूँ? अदीब ने कहा।

–पकड़िए!

–हाँ, तो अब कैसा लगा? एक मुसलमान के हाथ में हाथ देते हुए? अदीब ने पूछा।

–इसमें तो कोई मज़हब आड़े नहीं आया। यह तो उसी तरह मुझे कँपाता है, जब आप हिन्दू थे! और न मेरा हिन्दू होना आड़े आता है...मैं भी उसी तरह लाजवंती की तरह आपकी छुअन से अपनी पंखुड़ियाँ बन्द कर लेती हूँ...सलमा ने उत्तर दिया।

–और अब?

–मेरे ओंठ उसी तरह भीगते और प्यासे हो जाते हैं जैसे पहले थे । यह प्यास तो मज़हब बदलने से बदलती नहीं, बुझती नहीं। सलमा ने भारी साँसों के साथ कहा।

–शायद यह ग़लत तरीका हो...आओ, हम दोनों मुसलमान हो जाते हैं! या दोनों हिन्दू ही हो जाते हैं! अदीब ने उसे बाँहों में कसते हुए कहा।

–अब! अब भी आपकी बाँहों में वही कशिश और ताक़त है...

–और अब...

–अब भी आपकी हथेलियाँ और उँगलियाँ वही तलाश रही हैं जो हमेशा तलाशती थीं! और उन्हीं नखलिस्तानी जगहों में पनाह ले रही हैं जो लम्बे रेगिस्तानी सफ़र के बाद कभी-कभी जिन्दगी में मिलती हैं...आह अदीब...आह...अब यह भूल कर कि तुम कौन हो, समा जाओ मुझ में और मुझे आज़ाद कर दो...सलमा ने उद्दीप्त होते हुए कहा और वह अपनी साँसों सहित अदीब में समा गई, और अदीब सलमा में। वे साँसों के महल में क़ैद हो गए।

जब होश आया तो सलमा रेगिस्तान की तरह उसके सामने थी और अदीब अभी भी उसकी रेशमी रेत पर गिरे मीठे खजूर की तरह मौजूद था। और दोनों ही रेत में धँस कर अपनी जड़ों को रस देने वाली पाताल की नदी में डूबे रहना चाहते थे।

–आह इन शिखरों पर अपना नाम लिख दो अदीब!

–पर इन शिखरों पर लिखे हुए नाम तो मिट जाएँगे!

–नहीं, नाम तो हमेशा लिखे रह जाएँगे! अपना नाम लिखो न अदीब!

मेज़ की स्टेशनरी के साथ रखे हुए कलम को उठाकर तब अदीब ने उसके उभरे और गुदाज़ शिखरों पर नाम लिखा था। एक बार...पचासों बार...

–लिखते जाओ अदीब, लिखते जाओ...

–तकलीफ तो नहीं होती ? टुशरॉक का यह कलम बहुत नुकीला है !...दर्द होता होगा...

–रेत हर दर्द को सह लेती है...अदीब ! इस बदन के हर हिस्से पर लिख दो अपना नाम...

और अदीब उस रेशमी रेगिस्तान के हरेक शिखर पर अपना नाम लिखते-लिखते जब थक गया तो सलमा ने उसे अपनी बाँहों में फिर घेर लिया।

–अब मैं बहुत पूरा महसूस कर रहा हूँ सलमा !

–तो फिर मेरी बाँहों में समा जाओ अदीब...

–सलमा ! यह मीठी और शर्बती थकान कितना सुकून देती है...इतना सुकून तो किसी मज़हब में नहीं है...

–आओ, अदीब...फिर अपने सुकून के लिए एक बार और मज़हब बदलकर देखें ! सलमा ने उसकी थकी साँसों को पीते हुए कहा।

–सलमा !...किसी धर्म के पास इतनी ठोस शांति, इतना पुख्ता सुकून नहीं है जो हमें आख़िरत के दिन तक सँभाल सके...हमें तो वहीं तक जीना है ! अदीब ने कहा।

–पर आप तो फ़िलहाल मुसलमान हैं...आप मरने के बाद जिन्दगी को कैसे मंजूर कर सकते हैं, इसलिए आप वहीं तक जीने की बात करते हैं !

–लेकिन तुम तो अब हिन्दू हो, क्या तुम पुनर्जन्म में विश्वास कर सकती हो ?

–विश्वास करूँ या न करूँ...पर पुनर्जन्म में विश्वास करना अच्छा लगता है !

–ओह !...ओह सलमा...तब तुम कुछ और हो ! मज़हब से ऊपर...नश्वर मनुष्य की शाश्वतता में यक़ीन करनेवाली एक फ़र्द ! एक शर्त !

–इसमें नया क्या है अदीब...यही तो ईरानी सूफ़ियों के तसुव्वुफ ने कहा है और हिन्दुस्तानी वेदान्तियों ने भी...

तभी कहीं नेपथ्य से एक तीखी आवाज़ उभरी–

–ऐ लड़की ! तू बहुत सरकश होती जा रही है...लानत है तुझ पर...तू जो ज़िन्दगी जीना चाहती है, दाराशिकोह वाला जो फ़लसफ़ा अपने लिए मुहैया कर रही है...वह कुफ़्र है ! आख़िर तो तुझे इस होटल के कमरे से निकल कर आना ही होगा...तू इसी दुनिया की सड़कों पर चलेगी और तू संगसार होगी...आख़िरत के दिन तो ऐबी मर्द का आधा हिस्सा ही टूट कर गिरेगा, पर तेरी जैसी ऐबी औरत का तो पूरा बदन खून और पीव से लथपथ जख्मों की शक्ल में टूट-टूट कर गिरेगा...

वह करख़्त आवाज बिजली की तरह तड़क और कड़क रही थी...और अब वह कौंधती हुई वहीं कमरे में खड़ी हो गई थी।

–अदीब...यह कौन है ? डर से सहमती सलमा ने उसके कंधे के पीछे छुपते हुए पूछा।

–मैं ! मैं जल्लाद हूँ ! आलमगीर औरंगजेब का जल्लाद ! मैं कोतवाल भी हूँ...और जल्लाद भी। वही जल्लाद जिसने जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर सूफ़ी सरमद का सर धड़ से अलग किया था...मैं वही हूं जिसने शिवाजी के बेटे संभा जी की ज़ुबान काटी थी और भरे दरबार में उसकी दोनों आँखें कोटरों से निकाली थीं...मैंने ही कोट पिथौरा के किताबों के गोदाम को तहस नहस किया था, उन्हें जलाया था...किताबों का एक-एक वर्क जला कर राख कर दिया था !

–ख़ामोश ! यह उन काली ताकतों का नुमाइन्दा है जो सम्भावना और उसके उज्वल इतिहास को रोकना चाहती हैं...ऐसे जल्लादों ने ही दुनिया को बदलने से रोका है ! कोई जल्लाद अपने वक्त का प्रवक्ता नहीं बन सकता...पता है, कोई किताब मरती नहीं...वह भी सिर्फ चोला बदलती है, जिन किताबों को तूने फाड़ा और जलाया था, उनके विचार सफ़ेद कबूरों की शक्ल में उड़ गए थे, तू उन्हें नहीं देख पाया था...यह आवाज़ और कड़कदार थी !

और सामने इतिहास पुरुष फिर खड़ा था–क्यों तू हिन्दुस्तान के शहंशाह आलमगीर को बदनाम कर रहा है...हालाँकि औरंगजेब ने बड़े क़हर ढाए, लेकिन वह फिर भी शहंशाह था, उसने दस ग़लत काम किए तो एकाध अच्छा काम भी किया होगा। औरंगजेब अगर अकबर के रास्ते पर चला होता तो आज हिन्दुस्तान का ही नहीं, दुनिया का नक्शा दूसरा होता और इस्लाम विश्व धर्म की एक सर्वव्यापी शक्ति का अगुआ होता, लेकिन औरंगजेब यह नहीं कर पाया...लेकिन कुछ भी सही, आलमगीर को तेरे जैसे रद्दी समर्थकों की ज़रूरत नहीं है...तुझ जैसे जल्लादों की वजह से ही आलमगीर और बदनाम हुआ...देख ! देख सकता है तो देख ! औरंगाबाद में अपनी क़ब्र में औरंगजेब की आसमानी नींद तूने तोड़ दी है और वह क़ब्र में करवटें बदल रहा है...अरे संभाजी की बात तो तूने याद की लेकिन यह तू क्यों भूल गया कि आलमगीर ने उसी संभाजी के बेटे सा हूजी को पनाह भी दी थी, जब वह सिर्फ़ सात साल का था। उसे हफ्त-हज़ारी का पद दिया था और राजा का ख़िताब ! उसे पढ़ाने के लिए आलमगीर ने पंडितों को नियुक्त किया था और उसकी सही देखभाल के लिए एक दीवान और एक बख़्शी को तैनात किया था। उसके दोनों छोटे भाइयों मदन सिंह और ऊधो सिंह को युवराजों का दर्जा दिया था...औरंगजेब ने समस्त दक्षिण एशिया की तारीख बदलने की कोशिश की...इसके लिए वह मज़हब का इस्तेमाल न करता तो बेहतर होता...

–नहीं...मज़हब ही तो हम मुसलमानों की जीत है! जल्लाद ने चीख़ कर कहा–औरंगजेब ने हमें मुसलमान होकर जीना सिखाया है...उसने कहा कि 'अस्सलाम वालेकुम' को 'नमस्कार' या 'राम-राम' की जगह मंजूर करो। उसने शहंशाहों की 'दर्शन' प्रथा को ख़त्म किया, ताकि वह काफ़िरों को अलग कर सके, क्योंकि दर्शन परम्परा और कुछ नहीं मूर्तिपूजा थी...वह चाहे शहंशाह ही की क्यों न हों! हमने हिन्दू दर्शन परम्परा को बन्द किया...

–और?

–और! हमने इस्लाम के तहत, आलमगीर के पड़दादा शहंशाह अकबर और उसके बड़े भाई दाराशिकोह का विरोध किया...क्योंकि वे करीब-करीब काफ़िर हो गए थे!

–इसलिए कि अकबर और दाराशिकोह हिन्दुस्तान में मौजूद धर्म और आध्यात्मिकता में इस्लाम की आध्यात्मिक सोच और परम्पराओं को ढाल देना चाहते थे...यह सभ्यता और संस्कृति के समीकरण का एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक अवसर था, पर औरंगजेब ने उस अवसर को अपने शहंशाही अहम् और भाइयों-भतीजों की हत्या की कुंठा के तहत नामंजूर किया और एक इस्लामी इलाके की परिकल्पना की...जो इंसानी मोहब्बत पर नहीं, बल्कि नफ़रत पर आधारित था। उसने तिब्बत से लेकर गोलकुंडा-बीजापुर, बंगाल से लेकर काबुल-कंधार तक के इलाके को, उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक जरूरतों और खूबियों को नकार कर एक इस्लामी राज्य का सपना देखा था...इसीलिए औरंगज़ेब मुग़ल सल्तनत का आखिरी बादशाह हुआ, जो बदलती दुनिया में एक जिद्दी मुसलमान बादशाह बन कर, मराठों से हार कर, आखिर अंग्रेजों को बागडोर सौंपे जाने का रास्ता खोल कर चल बसा!

–यह ग़लत है...अंग्रेजों को बागडोर उसकी निकम्मी औलाद ने सौंपी!

–वह भारत का पैसा मक्का के शरीफ़ को हर साल भेजता था। मक्का शरीफ़ के लोग भारत आते और भर-भर कर पैसा ले जाते थे...यह वही पैसा था जो जज़िया के रूप में काफिरों से वसूल किया जाता था। वह भारत को अपना मुल्क मानता ही नहीं था, इसीलिए उसने अंग्रेजों को सूरत और बम्बई के बन्दरगाहों पर तिजारत की खुली छूट दी थी, इसीलिए अंग्रेज इतिहासकार लेनपूल ने उसे बहुत समझदार और इंसाफ पसंद बादशाह कहा था...और यह भी कहा था कि उसके निज़ाम में काफिरों पर जो कुछ जुल्म होते भी थे, वे सिर्फ़ इसलिए कि वह कट्टर मुसलमान था...

–अगर वह भारत को अपना मुल्क नहीं मानते थे तो वह आज तक औरंगाबाद में जमींदोज़ न पड़े रहते! जल्लाद ने कहा–कुछ भी हो...सारी तवारीखें बताती हैं कि औरंगजेब से बड़ा मुसलमान बादशाह दुनिया में नहीं हुआ...किताबों में लिखा है कि उसने दीन के लिए अपनी जिन्दगी सौंप दी...किताबों में यह भी लिखा है कि आलमगीर ने तैमूरी ख़ानदान की अज़मत में चार चाँद लगाए!

–उसी तैमूर की अज़मत में, जिसने इस्लाम का मज़ाक उड़ाते हुए कहा था– आसमान का ख़ुदा तो नहीं दिखाई देता लेकिन ज़मीन का ख़ुदा दिखाई भी देता है और सुनाई भी देता है...वह है बादशाह! उसी तरह जैसे आसमान में एक ख़ुदा है, उसी तरह ज़मीन पर भी एक ही बादशाह होना ज़रूरी है! वह इस्लाम को ताक पर रख कर ख़ुदा को ख़ुदा का दर्जा देता था...तुम दाराशिकोह की तरह बुद्धिमान नहीं, तुम तैमूर, अब्दाली, औरंगजेब की तरह जाहिल और अनपढ़ हो और अनपढ़ों-जाहिलों की परम्परा में जल्लाद ही पैदा हो सकते हैं!...ख़ैर इस बहस को छोड़ो, इतना बताओ कि तुम सलमा और अदीब को कुछ लमहे, जीने के लिए कुछ वक्त दोगे या नहीं? इतिहास पुरुष ने सवाल किया।

–हमारी हदीस, हमारी शरीयत...

–किताबों की बात मत करो जल्लाद! इस्लाम की किताबें तुमसे बहुत बड़ी हैं, पर तुमने किताबों को किताब रहने कहाँ दिया है! तुम किताब के नाम पर ख़ुद को लागू करते हो...नाम किताब का लेते हो...तुम कौन सी किताब लागू करोगे? सबने अपना-अपना 'फिक्ह' पेश किया है...हनफ़ी, मलिकी, हंबली और शाफ़ई पंथों ने...और इन चारों पंथों को भी अहले-हदीस का पंथ मंजूर नहीं करता...यह तो सुन्नियों के आपसी झगड़े हैं, शिया तो इनसे अलग अपनी ही व्याख्या को मंजूर करते हैं! तब तुम इन फर्दों को किस डंडे से हाँकोगे?...खुदा के लिए तुम किताबों को अपने ज़ाती उसूलों और व्याख्याओं का गुलाम मत बनाओ, और इन दोनों को खुदा की रहमत पर जीने दो...खुदा ने सबको सुकून से जीने का हक़ दिया है...इन्हें जिन्दगी जी लेने दो जल्लाद, इन्हें किताबों की हदों में मत बाँधो!

–यूँ मेरा भरोसा बातचीत में नहीं...

–इसलिए कि तुम जल्लाद हो, जो कभी खलीफाओं, कभी शहंशाहों का वास्ता देकर दुनिया को सताते रहते हो और यह भूल जाते हो कि हज़रत मोहम्मद ने जब अरबी खानाबदोश कबीलों के लिए कानून आयद किए थे, तब सारी दुनिया रेगिस्तान या जंगल में नहीं रह रही थी...ईराक, सीरिया, मिस्त्र, ईरान में तब तक विकसित संस्कृतियाँ मौजूद थीं और उनके तहज़ीबयाफ्ता लोगों को अरबी कबीलों के लिए बनाए गए कानूनों से नहीं बाँधा जा सकता था...उन्होंने नबी के एक ईश्वर को मंजूर किया था लेकिन अरबों के तौर तरीकों को अपने लिए मौजूँ नहीं पाया था!

–मुझे बहस में मत उलझाओ...सवाल तो उस औरत का है! यह औरत खुली बेहयाई में पड़ गई है। इसने अल्लाह की तय की हुई हदों को लाँघा है...इसलिए...

इन दोनों की बहस के बीच सलमा लगभग बेहोश-सी हो गई थी, वह समझ ही नहीं पा रही थी कि यह सब क्या हो गया था? क्या मुसलमान होना और मुसलमान रहकर जीना इतना मुश्किल बना दिया गया है...क्या मुसलमान होते हुए जीने की शर्तें सिर्फ़ किताबों की शर्तें हैं? उनमें जिन्दगी के कुदरती और बड़े उसूलों के लिए कोई जगह नहीं?

–जगह है ! इस्लाम में हर कुदरती ज़रूरत के लिए जगह है, लेकिन जब मज़हब को सियासी फायदे के लिए नफ़रत में बदला जाता है, तो एक नहीं, तमाम पाकिस्तान पैदा होते हैं ! मेरी बच्ची ! तुम्हारी जिन्दगी को इस ग़लत विभाजन ने तोड़ दिया है, क्योंकि इन लोगों ने एक मज़हब के तहत एक क़ौम, एक मुल्क और एक तहज़ीब को तक्सीम किया है ! पता नहीं, कहाँ से आकर अब्दुल गफ्फार खाँ बोलने लगे, तो नासिरा शर्मा भी हाजिर हो गईं–

–तहजीब को कैसे तक्सीम किया जा सकता है ?...यहाँ अफगानिस्तान में तो अपना सिक्का चलता है–'कलदार'। और मेरे हवाई टिकट पर बनी है गौतम बुद्ध की मूर्ति, जो शहर बामियान में मौजूद है। अफगानिस्तान की इस धरती पर वर्षों हिन्दू और बौद्ध धर्मों का प्रभाव रहा है, यह तहज़ीबी और तारीखी रिश्ता है जो सरहदों के बँटवारे के बावजूद आज भी जिन्दा है ! शत्रुओं से काबुल की रक्षा के लिए बौद्ध राजा कनिष्क ने ही वह दीवारें बनवाई थीं, जो इसे शायद आज भी महफ़ूज़ रखे हैं !...और बौद्ध धर्म से पहले इसी धरती पर चारों वेद रचे गए...इन वेदों में अफगानिस्तान के सारे पहाड़ों, वादियों, शहरों और बादशाहों के नाम मौजूद हैं...और इसी धरती पर अग्निपूजक जरथुस्त्रियों के स्तोत्र रचे गए और ऐकेश्वरवाद की शिक्षा आरम्भ हुई...इस समय तक आर्य नैतिक विज्ञान और सत्य की खोज कर चुके थे। तब रोम और ग्रीस का कहीं पता नहीं था। योरुप अंधकार में डूबा हुआ था, तब आर्यों ने अफगानिस्तान में अग्नि पूजा का युग शुरू किया था और अग्नि की रोशनी का वह ईश्वर 'अहुरमज़दा' था !

–बेटी ! तुम ठीक कह रही हो ! तहज़ीब को तक्सीम नहीं किया जा सकता ! ख़ान अब्दुल गफ़्फार खाँ ने नासिरा के कंधे को थपथपाते और उसे राहत देते हुए कहा था–आओ, हम लोग चलें और इन दोनों को पवित्र आग में जलने दें, ताकि ये उसमें तप कर आनेवाली दुनिया को कोई नया ज़ाबिया दे सकें।...

–उसके लिए हम सलमा और अदीब को उनकी जिन्दगी जीने की मोहलत दें...उन्हें किताबों के दकियानूसी फैसलों में न बाँधें ! इतिहास पुरुष ने खान अब्दुल गफ्फार से इल्तजा की और वह बात फौरन मंजूर हुई।

– हम अपने मज़हबी और किताबी मसले बाहर चल कर तय करेंगे...आओ...सब मेरे साथ आओ और तब अब्दुल गफ्फार खाँ, औरंगजेब का जल्लाद, मारिशस का इतिहास पुरुष और भारत की नासिरा शर्मा–सब, उन दोनों को वहीं छोड़कर बाहर निकल गए...

और तब टुशरॉक होटल की वह रात जंगल की रात में बदल गई।

–यह जंगल तो इतना घना है कि हवा भी इसमें रास्ता भूल सकती है ! सलमा ने कहा था।

–इसीलिए आदमी ने उसे साँस बना कर सीने में क़ैद कर रखा है ताकि आदमी अपना रास्ता न भूल जाए! अदीब बोला।

सलमा बुरी तरह सहमी हुई थी...बड़ी मुश्किल से फिर बोली–मेरे भीतर कुछ मर गया है अदीब! आदमियों का यह जंगल मुझे डराता है...लगता है चारों तरफ कब्रिस्तान ही कब्रिस्तान फैले हैं...और इन्हीं के बीच खड़ी मैं पल-पल मरती जा रही हूँ...

–सलमा! यह शरीर और इसके भीतर मौजूद आत्मा एक मन्दिर भी है और एक श्मशान भी...इन दोनों में दीए जलते हैं...अपने दीए जलाए रखो...

–कैसे जलाए रखूँ अदीब! अब ये जलते भी हैं, तो भी कब्रिस्तान की महक देते हैं...इनमें बत्ती नहीं, मेरे जिस्म, मेरे ज़हन का कोई कटा हुआ हिस्सा जलने लगता है...

–अपनी इच्छाओं की महक को जिन्दा रखो सलमा! तुम्हारी इच्छाओं के दीयों से ही मेरे दीए रोशन हो पाएँगे...नहीं तो यह शरीर तो बुझे हुए दीयों का घर है सलमा, और है क्या? जिनके दीए जल उठते हैं वे तैरते हुए पार हो जाते हैं, बुझे हुए दीए तो नदी के पानी में डूब जाते हैं...अदीब ने उसकी ओस से तर गर्दन को चूम लिया था।

–कुछ भी कहो अदीब...मुझे लगता है कि मैं एक अंधेरे जंगल में खो गई हूँ! सलमा ने डरी-डरी नजरों से उसे देखते हुए कहा।

–हौसला रखो सलमा। आख़िर उम्र के इस दौर में हम दुःखों के रास्ते बनाने के लिए तो नहीं मिले हैं! हमें इस जंगल में छोटे-छोटे सुखों की पगडंडियाँ भी चलने के लिए मिलती रहीं, तो सफ़र पूरा हो जाएगा!

–मुझे तो अब शक होता है अदीब!...कि ये पैर अब मेरा साथ दे पाएँगे? ऐसा लगता है, यह किसी गहरी चोट से टूट गए हैं...

–लेकिन जंगल में आधी दूर आकर, यहाँ, इस जगह तो जिन्दगी खड़ी नहीं रह सकती...यहाँ से किसी तरफ तो चलना ही होगा! बने बनाए रास्ते वापस भी ले जाते हैं, पर जो पैर खुद पगडंडियाँ बनाते हैं...उन पैरों के मुसाफिर वापस नहीं आते...वे चलते जाते हैं! अदीब ने बहुत गहरी नजरों से उसे देखते हुए कहा था।

–हूँ! शायद आप ठीक कह रहे हैं...आपके पास तो फिर भी घर तक वापस जाने का रास्ता है...मेरे पास तो वह भी नहीं...सिवा मेरे बेटे सोहराब के, जो हॉस्टल में होते हुए भी अब तक मेरी उँगली पकड़ कर ही चलता है...कहते हुए सलमा बुरी तरह रो पड़ी थी–अदीब! इस जंगल से मैं तो कहीं वापस भी नहीं जा सकती!

अदीब ने उसकी आँखों से झरते हरसिंगार के एक-एक फूल को बटोर लिया था।

–सलमा! अब अपने पैरों से बनाई पगडंडियाँ ही हमें इस जंगल के पार ले जा सकती हैं...या उस तरफ, जिस तरफ हमें जाना है। इस अंधेरे जंगल में बस, हम एक दूसरे को आवाज देते रहेंगे, ताकि कोई भी कहीं ज़्यादा पीछे न छूट जाए और अपने को अकेला पाकर हताश न हो जाए। इस जंगल में खो न जाए!

–जब जंगल पार करने के अलावा कोई चारा ही नहीं है तो फिर साथ-साथ ही निकल चलें अदीब! सलमा ने कहा और उसे एकटक देखा था...

–आमीन!

–आमीन!

और दिशाएँ गूंज गई थीं–आमीन...

–अदीब! अब यह जंगल मेरा है...और अब तुम भी मेरे हो! और तब सलमा ने उसे समेट लिया था और वे दोनों भीगते जंगल में खो गए थे। उसके बाद वही, भीगती जंगली हवाएँ, जंगल को समेटती बाँहें...और ग्री-ग्री के व्याकुल हिन्द महासागर में डूबता और नहाता पूरा जंगल...

ज्वार थमा तो वे बिस्तर पर नहीं, अँधेरे के विस्तार में कहीं उसी तट की एक चट्टान पर निर्वस्त्र पड़े थे...और व्याकुल हिन्द महासागर की लहरें पुकार रही थीं–मम्मा! मम्मा!

सलमा चौंकी थी–यह तो सोहराब की आवाज़ है...

छुट्टियों में आया हुआ सोहराब अपनी माँ को खोज रहा था। अपने कपड़ों को लपेट कर, घबराई हुई और बेहद परेशान सलमा तब पागलों की तरह भागी थी। हड़बड़ाहट में उसने ब्लाउज़ उल्टा पहन लिया था...

अदीब ने तब उस अँधेरे में इतना ही देखा था कि अपनी माँ से लिपट कर सोहराब रो रहा था और सोहराब से लिपट कर उसकी माँ रो रही थी।

यह रोना फिर कई हफ्तों तक जारी रहा। यह तभी थमा जब सोहराब हॉस्टल लौट गया।

तब सलमा फिर अदीब से मिली। दोनों उसी चाँदनी वाली रेत पर बहुत देर तक खामोश बैठे रहे। आख़िर सामने नीले पानी पर डूबते सूरज को देखते हुए अदीब ने पूछा–

–अब हम बातें कहाँ से शुरू करें?

–वहीं, उसी पहले दिन से, जब हम लाहौर एयर पोर्ट पर मिले थे...

–और फिर...

–हर बार हमारी बातें वहीं से शुरू होंगी और ग्री-ग्री की उसी चट्टान पर ख़त्म होंगी, जहाँ मुझे पुकारता हुआ सोहराब आया था! सलमा की आँखों में जुगनू से चमक रहे थे–मेरा सुख और मेरा पूरापन यही है...यह अगर आपको नहीं बता पाऊँगी तो किसे बताऊँगी...शायद इतना हक़ तो मुझे है...कि मैं खुद के लिए, खुदा के लिए और सोहराब के लिए ईमानदारी से जीती रहूँ...गुनाह वहाँ है जहाँ फरेब या बेईमानी है। मैं आपके साथ, सोहराब के लिए और खुदा के सामने एक खुली जिन्दगी जीना चाहती हूँ...मेरा अल्लाह जानता है...सब कुछ जानता है कि मैं क्या चाहती हूँ! कहते हुए वह उठी थी और कमरे की ओर चल दी थी। अदीब भी उसके साथ-साथ कमरे में चला आया।

बिस्तर पर बैठते हुए उसने कहा–तुम तो बहुत गहरी बातें कर रही हो सलमा!

–गहरी नहीं, ज़रूरी...अंग्रेजों और जिन्ना साहब ने सोचा ही नहीं था कि जब हिंदुस्तान नाम का मुल्क तक्सीम होगा तब मेरी जैसी एक सलमा कैसे तक्सीम होगी और वह अपनी इज्ज़त और आकबत कहाँ तलाशेगी।

–सलमा! अदीब ने उसे बहुत प्यार से पुकारा था।

–हाँ अदीब...मैं तुम्हारे साथ सलमा और सोहराब के साथ मम्मा बनकर जी सकूँगी। तुम्हारे पास से लौट कर जब मैं अपनी घर की सीढ़ियों पर खड़ी होऊँगी, तो ताला खोलकर तीर की तरह भीतर जाऊँगी, अपने कपड़े बदलूँगी, ताकि उनमें तुम्हारी महक न रहे और कपड़े बदल कर सोहराब की मम्मी बन जाऊँगी और अपने को समझाऊँगी कि यही सच है! लेकिन मेरा सच हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की तरह विभाजित ही रहेगा! शायद यही हिन्दुस्तानी मुसलमान औरत का नसीब बन गया है...औरत यहाँ की हो या वहाँ की, वह पहले भी आधी से कम थी, इस तक्सीम ने तो उसे आधे से भी आधा बनने पर मजबूर कर दिया है...सलमा बड़ी तकलीफ से बोल रही थी, और गुलदान से गिरी फूलों की पत्तियों को बीनती जा रही थी।

बीच-बीच में खामोशी आकर खड़ी हो जाती थी।

अदीब ने साइड कैबिनेट में रखी किताब उठा ली थी...उसके सफ़े वह यूँ ही फरफरा रहा था।

–कौन सी किताब है? सलमा ने पूछा।

–हूँ...किताब देखकर अदीब बोला–बाइबिल!

–ख़ुदा के लिए इन किताबों को बंद कर दीजिए!

तभी, टुशरॉक के उस कमरे में लहराती और तैरती हुई एक ग़जल आ गई। साथ में वो दुष्यन्त कुमार, शहरयार, निदा फ़ाज़ली और जगजीत सिंह को ले आई।

–आप! मैंने पहचाना नहीं...सलमा ने झरी हुई पंखुड़ियों को मुट्ठी में बन्द करते हुए कहा।

–जी...मैं हिन्दुस्तान की ताज़ा गज़ल हूँ...मैं दुष्यंत कुमार, शहरयार, और निदा साहब के यहाँ जन्मी और जगजीत जी के यहाँ पली-बढ़ी!

–आप कुछ कहना चाहती हैं?

–यही...कि जिन सियासी हालात में आप बँट गई हैं, उनसे घबराइए मत। मेरे साथ कितना बुरा हुआ, यह आप सोच भी नहीं सकतीं। फ़ैज़ उस तरफ रह गए, फ़िराक इस तरफ अकेले पड़ गए। मेरी तो फ़जीहत हो गई...लेकिन जीना तो मुझे भी था। मैंने ग़लत सरहदों को मंजूर नहीं किया...मेरी जुबान की एकता ने मुझे बचा लिया...उधर अहमद फ़राज जैसे शायरों ने, इधर दुष्यन्त, शहरयार जैसे ग़ज़लकारों ने...आप तकसीम की शमशीर को अपने दिल से निकाल दीजिए!

–वही तो नहीं हो पाता...हर पल, हर कदम, हर करवट, हर साँस का पीछा वही शमशीर करती है...

–तो सिर्फ इन लाइनों का सहारा लीजिए...

–कौन सी लाइनें।

–कि, धूप में निकलो, घटाओं में नहाकर देखो, ज़िन्दगी क्या है किताबों को हटाकर देखो...

और वे लाइनें गूंजती रहीं...सलमा उठी और जाकर खुले समुन्दर की तरफ वाली काँच की दीवार के पर्दे हटाकर, हिन्द महासागर को देखती रही। अदीब भी उसके पास जाकर खड़ा हो गया...वे दोनों समुन्दर को देखते रहे कि तभी सागर के लहराते वक्ष पर एक समुद्री बेड़ा धीरे-धीरे उभरता दिखाई दिया। फिर एक और बेड़ा उभरा, फिर एक और।

–यह क्या है अदीब ? सलमा ने पूछा।

–यह शायद समुद्री डाकुओं के बेड़े हैं !

–यह कहाँ जा रहे हैं ?

–पूरब की तरफ !

•

21

हिन्द महासागर को चीरते वे बेड़े लगातार पूरब की ओर बढ़ रहे थे। मारिशस तब एक कुँवारा टापू था। वहाँ लंगर डालने की सुविधाएँ नहीं थीं। पुर्तगाली बेड़े उत्तर पूर्व की ओर निकलना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीका में वास्कोडिगामा को एक हिन्दुस्तानी मछुआरा मिल गया था, वह उसकी रहनुमाई में हिन्दुस्तान की ओर बढ़ चला था। डच बेड़ों ने पहली बार मॉरिशस के तट पर लंगर डाले थे।

फ्रांसीसी और इंग्लिस्तानी बेड़े मॉरिशस के नीचे से होते हुए हिन्दुस्तान के तटों पर पहुँचने की जल्दी में थे। ये सभी बेड़े धन-दौलत की तलाश में निकले थे ! यह नई दुनिया की तलाश करनेवाले खगोल शास्त्रियों के बेड़े नहीं थे। यह अर्ध व्यापारी, अर्ध अन्वेषी और अर्ध लुटेरों के बेड़े थे, जो एक दूसरों के हितों से टकराते अपने-अपने भविष्य और धन सम्पदा की तलाश में थे। कोलम्बस भी भारत की तलाश में निकला था, पर वह अमरीका के तट पर जा लगा था। अगर यह खगोल शास्त्रियों के बेड़े होते तो नई दुनिया की तलाश में यह एक दूसरे के सहयोगी होते, लेकिन ऐसा नहीं था। यह सब एक दूसरे के विरोधी थे और इनमें आपस में समुद्री और ज़मीनी युद्ध भी लगातार होते रहते थे। इतिहास पुरुष बता रहा था।

–यह आँख खोलती सत्रहवीं सदी का वह दौर था, जब भारत और चीन के क्षेत्र में कुल पृथ्वी का तीन चौथाई औद्योगिक उत्पादन होता था। भारत केवल कृषि प्रधान देश नहीं था, उसके मसाले, वस्त्र, काष्ठ, चर्म आदि उत्पादों की विशिष्टता और गुणवत्ता विश्व विख्यात थी। तब योरुप के देश विकासशील थे। उनके सौदागर भारत और चीन तक पहुँचने के स्थल और जलमार्ग तलाश रहे थे।

ऐसे ही दौर में अंग्रेज व्यापारी थामस रो शहंशाह जहाँगीर के दरबार में हाज़िर हुआ था। वक्त सुबह का था। जहाँगीर, नूरजहाँ और महल के सैनिक और ख़बास मौजूद थे। किले से कुछ ही दूरी पर तूरान के ख़लीफा के वो सात नुमाइन्दे भी मौजूद थे, जो कई दिनों से शहंशाह के हुजूर में हाजिर किए जाने की प्रतीक्षा में थे। दूसरी तरफ चुनिन्दा व्यापारियों का एक दल दूसरे मुल्कों से हुई तिजारत का हिसाब-किताब देने के लिए हाज़िर था। तीसरी तरफ सल्तनत के वह आला अफसर मौजूद थे, जो तिजारती रास्तों की देखभाल किया करते थे। सड़कों को चाक-चौकस रखना, सरायों की मरम्मत करवाना और नई पनाहगाहों को बनवाना भी इन्हीं अफसरों की जिम्मेदारी थी। मुंशियों की एक जमात इन्हीं के साथ रहती थी, जो आने वाले कारवांओं की गिनती रखती और मामूली-सा

महसूल वसूलती थी। यह महसूल कारवाँ में मौजूद ऊँटों, ऊँट गाड़ियों और खच्चरों की तादाद के मुताबिक तय होता था। दूर-दराज़ के देशों से आए व्यापारियों के ऊँटों-खच्चरों के सुस्ताने के लिए छायादार पेड़ों के नखलिस्तान जगह-जगह मौजूद थे। पानी के जोहड़ों की कमी नहीं थी।

एक खास फौजी दस्ता इन विदेशी व्यापारियों को रेशम-सड़क की सरहद तक बाहिफ़ाज़त पहुँचा देने के लिए हमेशा तैनात रहता था। इसीलिए विदेशों से आए व्यापारी ख़ुद को और अपने माल असबाब को महफ़ूज़ पाते थे । उनके अपने सुरक्षा-दस्ते भी होते थे, जिन्हें सरहद पर ही रुकना पड़ता था। हिन्दुस्तानी सुरक्षा-दस्ते व्यापारियों को सरहद के ठिकानों तक पहुँचा कर, उनके दस्तों के सुपुर्द कर देते थे। व्यापार की इस चौतरफा व्यवस्था और सुचारु संचालन की पूरी जानकारी हर बरस शहंशाह के सामने पेश की जाती थी।

रेशम-सड़क का दरोगा भी बादशाह सलामत के सामने पेश होने के इन्तजार में था। इतिहास पुरुष ने बताया

–शहज़ादी की बीमारी के कारण शहंशाहे आलम मिलने वालों को वक्त नहीं दे पा रहे थे। लेकिन आज उम्मीद बंधी थी। शहजादी सेहतयाब हुई थी!

तभी किले की बुर्ज पर से जहाँगीर ने उगते सूरज को देख कर इबादत में सिर झुकाया। नीचे खड़ी रियाया की भीड़ 'शंहशाह सलामत जिन्दाबाद' के नारे लगाने लगी...पीछे कहीं किसी मन्दिर से सूर्य स्तोत्र की ध्वनि गूंज उठी।

तब जहाँगीर ने नूरजहाँ से कहा–

–कितना खूबसूरत मंज़र है...हमारे वालिद शहंशाह अकबर इस झरोखे में खड़े होकर उदित होते सूरज की हमेशा इबादत किया करते थे...उन्होंने यह रस्म हमारी वालिदा जोधाबाई से पाई थी!

–उगते सूरज को सलाम करना और डूबते सूरज को नमाज़ के साथ विदा करना...यह तो हमारी हिन्दुस्तानी परम्परा का खास हिस्सा है...नूरजहाँ ने कहा।

इन बातों की भनक से नूरानी ख़लीफा के नुमाइन्दों की भवों में छोटी-छोटी गाँठें और माथों पर लहरें पड़ गईं। एक ने आहिस्ता से कहा–

–सुनी यह बातें...इस्लाम परस्त होते हुए इन हिन्दुस्तानी बादशाहों का ज़हनी नक्शा बदल रहा है...

–हाँ बेगम, यही बनते हुए हिन्दुस्तान की नई तहजीब का नक्शा है। यहाँ कदीमी कुदरत की तरह कदीमी रीति-रिवाज और मज़हब मौजूद हैं...यहाँ के मज़हब कुदरत की उस कोख से निकले हैं जो हमें मौसम देती है, मौसम के साथ-साथ अन्न देती है। यहाँ के मज़हब हमें कुदरत के साथ-साथ यकसाँ रखते हैं।

तभी नूरजहाँ ने उनका ध्यान नीचे मौजूद रियाया की तरफ दिलाया।

–उधर देखिए हुज़ूर ! इतने दिनों बाद आप बाहर निकले हैं। आपकी रिआया आपके दीदार के लिए उमड़ पड़ी है...

तभी भीड़ की पुरजोश आवाज़ें आने लगीं–

–बादशाह सलामत! जिन्दाबाद!

–शहजादी की सेहतयाबी मुबारक हो! मुबारक हो!

–अदले-जहाँगीरी सलामत रहे! सलामत रहे!

–हमारे सर पर बादशाह का साया रहे!

तभी एक दरबारी ने आकर दरख़्वास्त की–

–हुज़ूरे आलिया! तूरानी खलीफा के नुमाइन्दे, तिजारती महाजनों का एक खास दल, रेशम सड़क के दरोगा के अलावा दीगर हाकिम, खासतौर से इंग्लिस्तान के दो व्यापारी थामस रो और विलियम फिंच आपके दीदार के लिए दरबार में तशरीफ फरमां हैं!

–थामस रो! जिनकी दवा से हमारी बेटी ने शफ़ा पाई है...शहज़ादी मौत के मुँह से बचके निकल आई हैं...हम उनको इनामो-इकराम से मालामाल कर देंगे...उन्हें हमारे हुज़ूर में यहीं पेश किया जाए! शहंशाह जहाँगीर ने हुक्म दिया।

और कुछ ही पलों में कोर्निस करते थामस रो और विलियम फिंच हाज़िर हुए। थामस रो ने आगे बढ़कर सलाम करते हुए कहा–

–शरफ़े बाज़याबी की इजाजत के लिए यह थामस रो आपका शुक्रगुज़ार है जहाँपनाह!

–शुक्रगुज़ार तो हम हैं थामस रो! आपने हमारी बेटी को नई जिन्दगी दी है। यह जान कर हम और भी ख़ुश हैं कि आप हमारे लिए अपने मुल्क से फन्ने- मुसव्विरी के नादिर नमूने...दिलकश तस्वीरें भी लाए हैं...

–शहंशाहें हिन्द की खुशी हमारे लिए बेशकीमती है जहाँपनाह!

–लेकिन थामस रो, हम यह नहीं जान पाए कि हकीक़त में थामस रो कौन है? वह एक हकीम है या एक फ़नकार?

थामस रो ने अदब से शहंशाह को देखा, तो शहंशाह ने अगली बात पूछी–और यह भी जानना जरूरी है कि थामस रो अपने मुल्क से इतनी दूर क्यों आया है?

तो थामस रो ने अर्ज़ किया–नाचीज़ एक सौदागर है हुज़ूर...तिजारत की गरज से आया हूँ...इंग्लैंड के बाशिन्दे आप की रियाया के साथ कारोबार करना चाहते हैं आलमपनाह!

–जरूर करें। हिन्दुस्तान के ताजिर और महाजन हर किस्म की तिजारत के क़ाबिल हैं।

–हुज़ूरे आलिया! बन्दा इस मसले पर तफसील से बातचीत करना चाहता है।

–ज़रूर...ज़रूर...उस पर हमारी मलिका ग़ौर करेंगी। हमारे मसले कुछ और ही हैं ! कहते हुए शहंशाह दरबार की जानिब मुड़े और दरबारियों के साथ रुख़सत हो गए। तब मलिका नूरजहाँ ने उससे कहा–शहंशाह हुजूर और हम आपके मशकूर हैं...बताइए आप क्या चाहते हैं ?

–मलिकाए आलिया ! हम कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने ईसवी सन् 1600 में एक तिजारती कम्पनी कायम की है...उसी के लिए हम...कहते-कहते थामस रो थोड़ा-सा अटका।

–रुक क्यों गए ? बिला खतर बयान करो !

–मलिका हुजूर ! हम अपनी उसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए सूरत के बन्दरगाह पर एक फैक्टरी कायम करना चाहते हैं !

–फैक्टरी...हम समझे नहीं...

–फैक्टरी...मतलब एक दूकान...एक गोदाम, जहाँ हम तिजारत का सामान रख सकें !

–ओह...सिर्फ़ इतनी सी ज़रूरत...हम आपकी दरख़्वास्त बखूबी मंजूर करते हैं ! मलिका नूरजहाँ ने कहा तो वजीरे तिजारत ने मलिका को आगाह किया–मलिका हुजूर ! देख लीजिए...क्योंकि पुर्तगाल के गोरे ताजिरों के बेड़े भी हमारी इजाज़त से सूरत के बन्दरगाह पर लंगर डाले रहते हैं...इस पर ग़ौर फरमा लीजिए !

तो थामस रो ने बीच में ही दख़ल दिया–मलिका हुजूर ! हमें उन पुर्तगालियों से कुछ लेना-देना नहीं...हम तो आपकी कदमबोसी करते हुए सूरत और मछलीपट्टम जैसे बन्दरगाहों के रास्ते तिजारत करके कुछ खा-कमा लेंगे...

–बशद शौक हम आपको तिजारत की इजाज़त देते हैं !

और उधर तूरानी खलीफ़ा के सातों नुमाइन्दे बादशाह सलामत जहाँगीर से मिलने के बाद सल्तनत के बड़े-बड़े और अहम उमरा और हाकिमों से मिल कर गुप्त मंत्रणाएँ कर रहे थे, उनमें से एक कह रहा था–इस्लामपरस्ती को हिन्दुस्तानपरस्ती में बदल दिया जाए, यह मुनासिब नहीं है...यही आपके बादशाह अकबर ने किया था और यही अब आपके शहंशाह जहाँगीर कर रहे हैं...इन हालात पर आप लोग नज़र रखिए...वतन-परस्ती से ज़्यादा ज़रूरी है मज़हब-परस्ती !

यह जुमला सुनकर वक्त ने सदमे भरी गहरी साँस ली...एकाएक पेड़ों के पत्ते झुलस गए। आग तो कहीं नहीं थी, पर ताज़ा हरे पत्ते झुलसते जा रहे थे और परिन्दे परेशान थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि कुदरत ने ऐसी साँस क्यों ली है, इससे उनके घोंसले भी झुलसने

लगे...घोसलों में बच्चे चीखने लगे...जो परवाज़ कर सकते थे, उन बच्चों को लेकर उनकी माँएँ उड़कर इधर उधर भटकने लगीं। लेकिन जो नहीं उड़ सके और जो अभी तक अंडों के अपने खोल में क़ैद थे, वे वहीं घोंसलों में झुलस कर रह गए। मौत से बचते पंछियों-परिन्दों का शोर पूरी कायनात में भर गया और धरती उनके नुचे हुए कुम्हलाए पंखों की परत से ढक गई।

फिर मौसम बदले। सूरज निकला। चाँद चमका। खेतों में धान उगा। तीज-त्यौहार आए। धरती ने गीत गाए। परिन्दों ने घोंसले बनाए। आषाढ़ की बारिश में सब मिलकर नहाए।

लेकिन न मालूम एक सदी बाद वक्त ने फिर सदमें से भरी गहरी साँस ली और फिर पेड़ों के पत्ते झुलसने लगे!

तब, पता नहीं कहाँ से इतिहास पुरुष की आवाज़ आई–परिन्दों! धीरज रखो...हमें मालूम है, कब कहाँ क्या हुआ है...घबराओ मत! कोई भी वह विचार जो इन्सानपरस्त नहीं है, मज़हब-परस्ती के नाम पर विचार को झुलसा कर अपनी चपेट में ले सकता है, लेकिन उसे जला कर राख नहीं कर सकता...अगर ऐसा मुमकिन होता तो दुनिया में सिद्ध साधु, सूफ़ी, कबीर और नानक न पैदा होते...

परिन्दों ने इतिहास पुरुष को उम्मीद से देखा। आवाज़ फिर आने लगी–

–हिन्दुस्तानी इस्लाम भी यहाँ के दकियानूसी ब्राह्मणवाद का शिकार हुआ है! इस्लाम की रूहानी आत्मा से जो सूफ़ी उदारवाद जन्मा था, उसे इस्लाम के इन कट्टर ब्राह्मणों ने हिकारत से नामंजूर किया था। खुद इन्होंने हिन्दुस्तानी इस्लाम को हिन्दू वर्णाश्रम धर्म वाले साँचे में ढाल लिया। नहीं तो क्या वजह थी कि जो भी हिन्दुस्तानी कलमा पढ़ कर मुसलमान बना, मुग़लिया सल्तनत में वह खादिम और चोबदार के ओहदे से ऊपर नहीं जा सका...यही था मुग़लों का जातिवाद इसी जातिवाद...के चलते सदियों पहले हिन्दू हारा था और इसी के चलते मुल्की मुसलमान की मदद से मुग़ल महरूम रहे थे। जैसे हिन्दू क्षत्रिय का साथ हिन्दू दलित ने नहीं दिया था, वैसे ही मुग़ल-क्षत्रिय का साथ मुल्की-मुस्लिम-दलित ने नहीं दिया था...इसी इस्लामी-ब्राह्मणवाद ने अकबर की कोशिशों को नाकाम किया था...इसी ने जहाँगीर को अपनी चपेट में ले लिया था। शाहजहाँ पूरी तरह इसका शिकार हुआ था और तब इस्लाम के नाम पर औरंगज़ेब मुसलमान-ब्राह्मण बनकर इन्सानपरस्ती को छोड़ कर मज़हबपरस्ती के रास्ते पर चल पड़ा था!

–यह सरासर ग़लत है! एक दूसरी आवाज़ ने इतिहास पुरुष की बातों में दख़ल दिया।

ग़लत और सही की यह बहस अभी शुरू ही हुई थी कि एक नाव जो शायद अपने बेड़े से बिछुड़ गई थी, टुशरॉक होटल की जेटी से आकर लगी। अदीब और सलमा ने उस नाव के

मल्लाह को देखा और कुछ-कुछ पहचाना। शक्ल तो पहचानी जाती थी, लेकिन वह नाविक जिस हाल में था, उसमें उसे पहचानना मुश्किल हो रहा था। तभी सलमा ने धीरे से कहा–

–मुझे लगता है, यह तो आपके अर्दली साहब हैं!

–हाँ, यह यहाँ कैसे पहुँच गया?

–मुझे पहुँचना ही था हुज़ूर...एक बार जब आपने तहज़ीब के जिस्म पर लगे जख्मों को जानने की जिम्मेवारी उठा ली है, तब आप अपनी ज़ाती ज़िन्दगी जीने के लिए आज़ाद नहीं हैं!

–तो इन चंद लम्हों में ऐसा क्या हो-गुज़रा है कि तुम मेरी तलाश में निकल पड़े हो?

–चन्द लम्हे! हुजूर! दुनिया की साँसों पर एक-एक लमहा इतना भारी पड़ रहा है कि बयान से बाहर है...अफगानिस्तान कब्रिस्तान बन गया है...उधर लेबनान से पाकिस्तान का मुर्तजा भुट्टो खुद अपने मुल्क को खून से नहला देने की पेशकश कर रहा है। वह अपने वालिद की सियासी विरासत में अपनी बहन बेनज़ीर से बँटवारे की माँग कर रहा है...उधर ईराक में कुर्द अपना पाकिस्तान बनाने की जद्दोजहद कर रहे हैं। गोरी ताकतों ने कुवैत को ईराक से आज़ाद करवा दिया है। सद्दाम हुसैन ने कुर्दों के ठिकानों पर हवाई हमले किए हैं...और आप पूछ रहे हैं कि ऐसा क्या हो-गुज़रा है? अफगानिस्तान में लाशें ही लाशें बिछी हुई हैं...जब से आप इस आरामगाह में छिपे हुए हैं, तब से दुनिया में तबाही मची हुई है और अदालत के इन्तजार में मुर्दे दम तोड़ रहे हैं! अर्दली ने कहा।

अर्दली की बात सुनकर सलमा ने खुद को करीब-करीब गुनहगार पाया। उसने अदीब को देखा, तो उसे पछतावे के उस अहसास से उबारने के लिए अदीब ने कहा–

–हम सिर्फ़ आरामगाह में नहीं थे...हमने यहीं से पुर्तगालियों, स्पेनियों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के गुज़रते बेड़ों की शिनाख्त की है...वे एक दूसरे का पीछा करते हुए कुछ देर पहले यहाँ से गुजरे हैं...

–जी, वह तो ठीक है...उनके बेड़े अपने-अपने रास्तों से पूरब की तरफ बढ़ गए हैं...यह ख़बर भी मैं आपको सदियों पहले देना चाहता था...उन बेड़ों ने कौन-सा इतिहास लिखा है, यह पूरब जानता है। इतिहास की वह इबारत भी पढ़े जाने का इन्तज़ार कर रही है...फिलहाल अगर आप दम तोड़ते मुर्दों से मिल सकें...तो...कहता कहता अर्दली रुक गया।

सलमा ने उसकी खामोशी में कुछ गहराई से पढ़ा, और तभी अदीब को अपने कन्धे के पास एक बहुत महकती-सी आवाज़ सुनाई दी–

–खुदा हाफ़िज़!

अदीब चौंका–क्या मतलब?

–यही कि अब मैं चलती हूँ। आप जब भी मुझे आवाज़ देंगे, मैं लौट आऊँगी!

–लेकिन क्यों? तुम जा क्यों रही हो?

–मुझे जाना ही चाहिए, नहीं तो वक्त आपको माफ़ नहीं करेगा। और फिर आपको भी वक्त की बरबादी का मलाल कचोटता रहेगा!

–सलमा!

–देखिए, आपके अर्दली साहब बेसब्री से आपका इन्तज़ार कर रहे हैं...चलने से पहले एक दरख्वास्त है...दुनिया से मिलने के पहले आप पाकिस्तान की सारा शगुफ़्ता से ज़रूर मिल लीजिए...खुदकुशी करने के बाद से वे भटक रही हैं...

–सारा शगुफ़्ता...

–हाँ...तो मैं अब चलती हूँ...खुदा हाफिज़...

–खुदा हाफिज! अदीब ने गहरी उदास साँस लेकर कहा।

अर्दली ने राहत की साँस ली।

अदीब सोचने लगा–सारा शगुफ़्ता से यूँ तो उसकी कभी मुलाक़ात नहीं हुई है, लेकिन अपनी बिरादरी की जितनी शक्लें उसके सामने झिलमिलाती थीं, उनमें से उसे यह अहसास था कि सारा शगुफ्ता एक बेपनाह खूबसूरत औरत और निहायत बेबाक शायर है, जिसकी एक आँख से आँसू और दूसरी आँख से अंगारे बरसते हैं...उसने अपने खूबसूरत सपनों और ख्वाहिशों की कीमत खुद अपनी खुदकुशी से अदा की है!

–सारा शगुफ्ता इस वक्त कहाँ है? अदीब ने अर्दली से पूछा।

–वे इस वक्त दिल्ली, हौज ख़ास में अमृता प्रीतम के घर मौजूद हैं...

–अमृता जी के यहाँ!

–जी हाँ...वे और कहाँ हो सकती हैं? पूरे एशिया में आँसुओं और अल्फाज़ों का एक ही तो विद्यापीठ है–अमृता प्रीतम का घर!

होटल टुशरॉक से उन्हें हौजखास पहुँचने में देर नहीं लगी। अदीब ने आगे बढ़कर सारा शगुफ़्ता का इस्तकबाल किया–

–ऐ ऐशिया की सबसे आलातरीन शायरा और मोहतरमा! आप पाकिस्तान से कब आईं?

–मैं सारा शगुफ़्ता नहीं, अमृता प्रीतम हूँ! सामने मौजूद महिला ने उत्तर दिया–वो उधरवाले कमरे में अपने आँसुओं की गिनती कर रही हैं...मैं बुलाती हूँ।

तब तक एक और महिला वहाँ आईं तो देखकर अदीब चौंक उठा–अरे सलमा, अभी-अभी तुम वहाँ...और अब...यहाँ?

–अदीब! मैं सलमा नहीं, सारा शगुफ़्ता हूँ!

अदीब उलझन से दोनों को देखने लगा तो अमृता प्रीतम ने उसकी मुश्किल हल कर दी–अदीब...माँ बनने के बाद हर औरत की शक्ल एक हो जाती है...औरत और औरत की शक्ल में फ़र्क़ नहीं रह जाता...बैठो, मैं तुम लोगों के लिए नींबू की चाय भिजवाती हूँ...

अदीब ने बैठते हुए कहा–सारा शगुफ़्ता...हम अदीबों की बिरादरी आपको सलाम करती है...हमने आपका कविता संकलन 'आँख' पढ़ा है, उसमें आपने जो आखिरी ख़त जोड़ा है, वह हर्फ़े-आख़िरत है...

–नहीं...जिस दिन शायरी का आख़िरी हर्फ़ लिख दिया जाएगा, उस दिन के बाद आँखों में पानी नहीं रह जाएगा। इन्सान बंजर हो जाएगा...मैंने जो आख़िरी खत जोड़ा है, वह एक माँ के आँसुओं का मर्सिया है ! सारा शगुफ़्ता ने ख़ुदकुशी की आखिरी साँस के बाद की साँसें लेते हुए कहा।

तब तक नींबू की चाय आ गई थी।

–अदीब ! यह तब की बात है जब मेरी कोख में कोई साँस लेने की कोशिश कर रहा था। जिन्दगी अपना वजूद माँग रही थी। मैं उसे जनम देने के लिए दर्द से कराह रही थी। तभी मकान मालकिन ने मेरी तकलीफज़दा आवाजें सुनी थीं और वह मुझे एक अस्पताल में भर्ती कराके, हाथों में पाँच रुपए का एक नोट थमा के लौट गई थी। वहीं मेरी कोख ने एक बेटे को जनम दिया था। रात बहुत सर्द थी। मेरे बेटे को लपेटने के लिए अस्पताल में एक तौलिया भी नहीं था। सिस्टर ने पाँच मिनट के लिए उसे मेरी बग़ल में लिटाया था। उसने अपनी उजली आँखों से मुझे देखा...फिर न जाने क्या हुआ...उसने क्या सोचा...उसने आँखें बन्द कीं और हमेशा के लिए सो गया।

अदीब ने उदासी और परेशानी से सारा शगुफ़्ता को देखा।

–अदीब, तब से मेरे बदन में उसकी दो नहीं, सैकड़ों-लाखों आँखें लगातार उगती हैं, झपकती हैं, मुझे देखती हैं और अपने लिए कफ़न माँगती हुईं बुझ जाती हैं। शायद वह जिन्दगी के कुछ ही पलों में जान गया था कि यह दुनिया उसके जीने लायक जगह नहीं रह गई हैं। उसने जीना मुनासिब नहीं समझा...

अदीब ने सारा को फिर देखा।

–मेरे पास सिर्फ पाँच रुपए थे। मैंने अस्पताल से घर तक जाने की इजाज़त माँगी। इजाज़त मुझे नहीं मिली, एक तो इसलिए कि अभी मैं घर जाने लायक नहीं थी और दूसरे इसलिए कि मेरे बेटे की लाश वहीं पड़ी थी।

–तब ? सारा शगुफ्ता तब ?

–तब मुझे अस्पताल का खर्च चुकाना था और बेटे की लाश को दफ़नाने का इन्तज़ाम करना था।

–तब ?

–उस वक्त मुझे एक सौ तीन डिग्री बुखार था। अस्पताल वालों को अपने पैसों की दरकार थी। तब मैंने कहा था–मेरे बेटे की लाश रेहन रख लीजिए। मैं पैसे चुका कर इसे ले जाऊँगी...एक शख़्स ने तब मुझे शक की निगाह से देखा था। मैंने कहा था, मैं भागूँगी नहीं, लौटकर आऊँगी...और अदीब, ताज्जुब यह था कि दुनियावालों में अभी तक यह विश्वास

मौजूद था कि और कोई लौटे या न लौटे, माँ अपने जिन्दा या मुर्दा बच्चे के लिए ज़रूर लौट कर आती है! मैं जब चली तो मेरी छातियाँ दूध के निकास के लिए फटी जा रही थीं। घर पहुँच कर मैंने अपनी छातियों का दूध निचोड़-निचोड़ कर एक गिलास में निकाला और वह गिलास अभी रखा ही था कि तमाम शायर और अदीब मातमपुर्सी के लिए आ गए। कुछ देर वह सब खामोशी से दूध भरा गिलास देखते रहे, फिर अपनी हमेशा की बहसों में उलझ गए, वही फ्रायड, रिम्बो, लोर्का, सादी, सार्त्र, कामू, काफ्का, अल्लामा इक़बाल...वे मेरे बेटे की लाश को भूल चुके थे...

–फिर सारा?

–फिर क्या, मैं उसकी रेहन रखी लाश ले आई...

–फिर?

–देखिए तो हुजूर...बेटे की लाश तो सारा शगुफ़्ता की गोद में मौजूद है! यह आवाज़ अर्दली की थी।

तभी लाशों के बाज़ार खुलते चले गए। सोमालिया में शान्ति कायम करने गए पाकिस्तानी फौजियों की लाशों का अम्बार लगा था। बोस्नियाँ में कत्ल किए गए मुसलमानों की लाशों को कफन में लपेट कर सजाया जा रहा था। अज़रबेजान में लाशों का बाज़ार लगा था। गीदड़, चील-कउवे और कुत्ते उनका बँटवारा कर रहे थे। नायजीरिया में लाशों की शिनाख्त हो रही थी और बोलिबिया में तमाम लाशें अपनी शहादत का खुतबा पढ़े जाने का इंतजार कर रही थीं। कश्मीर में पड़ी लाशें अपने बयान दर्ज करा रही थीं...उन लाशों में कश्मीरी मुसलमान भी थे और कश्मीरी पंडित भी। अफगानिस्तान में लाशें दफनाने के लिए ज़मीन की कमी पड़ रही थी। और ताज्जुब की बात यह कि तालिबानों द्वारा रौंद दिए जाने के बावजूद, अपने अपने हिमायती लोगों की लाशों के ढेर पर गुलाम रब्बानी, अहमद शाह मसूद, गुलाबुद्दीन हिकमतयार और तालिबानों का तानाशाह मोहम्मद उमर जैसे लोग अपने-अपने इस्लाम का ताज पहने शान से खड़े थे। तभी एक मुर्दा दौड़ता हुआ आया और चीख़ने लगा–

–अदीबे आलिया! इस्लाम के नाम पर अफगानिस्तान कब्रिस्तान बन चुका है...यह चारों तो इस्लाम का ताज पहन कर बेशर्मी से खड़े हैं, पर कोई देखे तो हम आम इस्लामपरस्तों का क्या हाल हुआ है! हुजूर! हम लाखों करोड़ों लोग तो मारे गए...इन चारों के दामन बेगुनाहों के खून से तर हैं...पूरा मुल्क तबाह हो चुका है...

अभी वह मुर्दा अपनी बात कह ही रहा था कि कराहता हुआ बाबर अदीब के सामने हाजिर हुआ–

–अदीबे आलिया...मैं तो आपसे छुट्टी माँग कर अपनी कब्र में लौट गया था लेकिन जगह-जगह बरसते और फटते गोलों की आवाज़ ने मेरा सुकून से लेटना मुश्किल कर दिया...अब तो अफगानिस्तान से कदीमी मुर्दों को भी भागना पड़ रहा है, क्योंकि कब्रें

मिसमार हो चुकी हैं। लाशें शहतूत की तरह सड़ रही हैं...तेज़ाबी बदबू और सड़े हुए गोश्त को देखकर मांसभक्षी जानवर और परिन्दे भी मुल्क छोड़ कर उत्तर या दक्षिण की ओर चले गए हैं...अदीबे आलिया! अफगानिस्तान मर गया है। मेरा काबुल मर गया है...मेरे काबुल पर यह क़हर इस्लाम के नाम पर बरपा किया गया है!

–बाबर तुम किस मुँह से यह बात कह रहे हो! तुमने भी तो इस्लाम के नाम पर यह क़हर हिन्दुस्तान पर बरपा किया था! इतिहास की एक किताब के पन्नों से निकलकर राणा सांगा ने बाबर को ललकारा।

–नहीं! यह ग़लत है! हिन्दुस्तान मेरे लिए हिन्दुओं का मुल्क नहीं, सोने का मुल्क था। तुम्हारे हिन्दुस्तान में तब सिन्धु नदी की रेती में सोने के ज़र्रे बहकर आते थे...तुम तो अनपढ़ हो। पता है, यूनान के हैरोडोटस ने क्या लिखा है? तुम्हारे सिन्ध इलाके का राजा खुद मनों सोने की रेत निकलवाता था और फारस के सम्राट साइरस से उसकी तिजारत किरता था! उसी सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान पर मैं कब्ज़ा करना चाहता था। मुझे एक मजबूत सल्तनत की जरूरत थी...मेरा दुश्मन हिन्दुस्तान का हिन्दू नहीं बल्कि आगरा का मुलसमान बादशाह इब्राहीम लोदी था...और क्या तुम यह भी भूल गए कि इब्राहीम लोदी पर हमला करने के लिए तुमने और इब्राहीम लोदी के चचा पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी ने मुझे सन्देश भेजा था...

–तुम ग़लत बयानी कर रहे हो बाबर! तुम भी मुहम्मद बिन कासिम और महमूद गज़नी की तरह काफिरों के विरुद्ध धर्मयुद्ध करने आए थे। इस्लाम फैलाने आए थे! तुम तलवार के ज़ोर पर अपना मज़हब फैलाना चाहते थे! राणा सांगा ने तेज आवाज़ में कहा।

–इसी तरह की बहसों से धार्मिक, सामुदायिक और ऐतिहासिक असलियत की दिशाएँ बदल जाती हैं और कालान्तर में वे अलगाव, बहिष्कार और द्वेष का कारण बन जाती हैं...पराजित पक्ष इस तरह की स्मृतियों को संचित करके एक दूसरा ही मनोवांछित इतिहास लिख लेता है और उसी में जीना शुरू कर देता है! अदीब ने कहा तो सब उसकी ओर सहमति या असहमति से देखने लगे–और विजेता जब इन संचित स्मृतियों के इतिहास का सामना करता है तो धर्म उसका सहायक हथियार बन जाता है। तब वह धर्म को अपने शस्त्रागार में शामिल करके निरंकुश होने की हद तक चला जाता है...आरंभिक मध्यकालीन आक्रमणों का विकसित होता और बदलता सच यही है...

–यह आंशिक सच हो सकता है...राणा सांगा ने हस्तक्षेप किया–सम्पूर्ण सच नहीं। पूछिए इस बाबर से...अगर यह धर्मांतरण का पक्षधर नहीं था तो इसके मुल्लाओं ने इसे गाज़ी होने की पदवी क्यों दी थी?

–उससे पहले मैं राणा सांगा से पूछना चाहता हूँ कि इब्राहीम लोदी के चाचा दौलत खाँ लोदी और इन्होंने जब मुझे हमले का दावतनामा भेजा था, तब क्या इन्होंने मुझे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए बुलाया था? बाबर ने तुर्शी और तर्क से पूछा।

–मैंने कोई निमंत्रण बाबर को नहीं भेजा था! राणा सांगा ने तैश में कहा।

–तुम्हारा वह दावतनामा मेरी तवारीख बाबरनामा में दर्ज है...और वह दस्तावेज आज का नहीं, सोलहवीं सदी का है! अगर यह ग़लत है तो तुमने तब क्यों नहीं कहा? आनेवाली सदियों में तुम्हारे वंशजों ने उसे खारिज क्यों नहीं किया?

–मैं इस इल्जाम को मंजूर नहीं करता! राणा सांगा ने तिलमिला कर कहा।

–तुम मंजूर करो या न करो, लेकिन वक्त गवाह है, सबूत गवाह हैं, इतिहास गवाह है! मुझे तो मनचाहा मौका दिया था तुमने...फिर इस सोने की चिड़िया को छोड़कर चला जाऊँ, इतना बेवकूफ मैं नहीं था। यहीं से हमारी तुम्हारी दुश्मनी का आग़ाज़ हुआ था! तब हुकूमत चलाने के लिए मुझे इस्लाम-परस्त मुसलमानों और बादशाह-परस्त हिन्दुओं की ज़रूरत पड़ी थी...

–इसीलिए तुमने ग़ाज़ी-मुसलमान होने का सेहरा अपने सर बाँध लिया था! अदीब ने तंज किया।

–तब हालात दूसरे थे अदीबे आलिया! बाबर बोला–मेरे साथ जो लड़ाकू सिपहसालार और कबीले कंधार, खुरासान, बदख्शां, ताजिकिस्तान और उत्तरी ईरान से आए थे, वे लड़ते-लड़ते थक गए थे। हिन्दुस्तान के मौसम को वे बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। गर्मी, लू, रेतीले बवंडरों, पसीने और पित्त के चकत्तों ने उन्हें बेहाल और बदहाल कर दिया था। जंग में लगे उनके घाव बारिश के मौसम में फिर खुल जाते थे...इन हालात में वे अपने घर लौट जाना चाहते थे...वे मुझसे भी दरख़्वास्त कर रहे थे कि सल्तनत की सूबेदारी सौंप कर मैं भी वापस चल पड़ूँ...फरगना को सर करूँ और वहीं रहूँ। लेकिन मेरे लिए यह मुनासिब और मुमकिन नहीं था। तब उन लौटने वाले फ़ौजी कबीलों और सिपहसालारों को रोकने के लिए मैंने मजबूरी में मज़हब का वास्ता दिया था...धन-दौलत और ओहदों की पेशकश भी उन्हें नहीं रोक पा रही थी। मुझे तो यहीं रहना था। इसीलिए मैं आगरा में दफ़्न हुआ था...वह तो बाद में मुझे आगरा से खोद कर काबुल में दफ़नाया गया और तास्सुबी इस्लाम परस्तों की ज़रूरतों की वजह से मुझे ग़ाज़ी बनाया गया!

राणा सांगा ने फिर हस्तक्षेप करना चाहा तो अदीब ने उन्हें रोक कर हुक्म दिया–मोहम्मद बिन कासिम को पेश किया जाए!

अर्दली तूफान की तरह गया और खलीफा अल-वालिद की राजधानी से मोहम्मद-बिन-कासिम को पकड़ लाया। तेईस चौबीस साल के उस सजीले जवान को अदालत में पेश किया गया। रास्ते में ही अर्दली ने उसे गिरफ्तारी की वजह बता दी थी। अदालत को अदब से सलाम करने के बाद उसने बयान दर्ज कराया–

–हुज़ूरे अदब! मैं बाअदब कहना चाहता हूँ कि मैं अरब हूँ। मेरे कबीले का मालिक हज्जाज था। जनाब अलवालिद हमारे ख़लीफा थे। उन दिनों हिन्द की धन-दौलत की दास्तानें हवा में तैरती थीं। हमने खजूर, रेत और रेतीली आंधियों के सिवा कुछ देखा नहीं

था, हमारा कबीला नया-नया मुसलमान बना था। हमें तो सिर्फ़ यह मालूम था कि मज़हब को मंजूर किया जाता है। मज़हब को फैलाया जाता है, यह हमें तब पता भी नहीं था। मैं तो तब खुद सत्रह साल का था। धर्मांतरण कैसे किया जाता है, इसका मुझे इल्म तक नहीं था, इसलिए यह इल्ज़ाम कि मैं तलवार के जोर पर हिंदियों को मुसलमान बनाने आया था, बिल्कुल बेबुनियाद और ग़लत है!

–तो तुम किसलिए आए थे? अदालत ने सवाल किया।

–हुजूर! मुझे तो मेरे मालिक हज्जाज ने हिन्द को लूटने भेजा था। इसके लिए उन्होंने पैसा उधार दिया था। इस शर्त पर कि उनका दिया हुआ पैसा तो मैं वापस करूँगा ही, साथ-साथ हिन्द नदी के उपजाऊ इलाके में हुकूमत कायम करके मैं उन्हें लगातार पाँच लाख दीनार की सालाना मालगुज़ारी भी देता रहूँगा!...इसी के साथ-साथ उन्होंने एक खास राज़ मेरे हवाले किया था...हुजूर! जंग के वक्त हमारा तो बच्चा-बच्चा लड़ता है, लेकिन हज्जाज ने हमें यह राज़ बताया था कि हिन्द में पूरी क़ौम नहीं लड़ती। रवायत के मुताबिक वहाँ सिर्फ क्षत्रिय लड़ता है। क्षत्रिय हारता था तो सब हार जाते थे। यह बात सच साबित हुई हुजूर! राजा दाहर हारा तो सब हार गए! सारे हिन्दू ब्राह्मणों और बौद्धों ने भी शिकस्त मंजूर कर ली...इन्हीं हिन्दू ब्राह्मणों के मन्दिरों और बौद्धों के विहारों में अकूत धन दौलत का खजाना था। मैंने इन्हें लूटा। फिर मुझे इन्हीं ब्राह्मणों से जानकारी मिली थी कि वह जीबावन, जो कश्मीर के महाराजा का सूबेदार था हुजूर! उसने मुलतान की बस्ती के पूरब तरफ बड़े तालाब में एक मन्दिर बनवा रखा है। हिन्दुओं के ख़ज़ाने मन्दिरों के नीचे ही ज़मींदोज़ रहते थे। तालाब वाले उस मंदिर के नीचे उसने ताँबे के चालीस कोठारों में सोने का चूरा छिपा रखा था। कोठार तोड़ने से पहले मैंने मूर्तियों को तोड़ा था। मूर्तियाँ तोड़ कर मुझे तीन सौ मन सोना मिला था...फिर जब तालाब के अन्दर मन्दिर के नीचे वाले चालीस कोठारों को मैंने तोड़ा तो तेरह हज़ार दो सौ मन सोना मेरे हाथ आया था!...तब मैं मन्दिरों को क्यों न तोड़ता अदीबे आलिया?

अदालत जैसे सकते में सब कुछ सुन रही थी।

–और फिर हुज़ूर! हिन्द के बाशिन्दों का अल्लाह एक नहीं था। यहाँ हर ब्राह्मण का खुदा अलग-अलग था। एक खुदा लुटता था तो दूसरा बचाने नहीं आता था। दूसरा लुटता था तो तीसरा बचाने नहीं आता था। इन हालात ने मेरी मदद की। मेरे सामने हिन्दू और ग़ैर-हिन्दू का सवाल नहीं था। मैं तो हिन्द नदी के दहाने से तक्षशिला के बौद्ध-ब्राह्मणों को चीरता हुआ कांगड़ा तक जीतता चला गया...

अभी मोहम्मद-बिन-कासिम का बयान जारी था कि कश्मीर से ज़बरदस्त शोर उठा। ताजिकिस्तान चीखने लगा। ईराक पर अमरीकी बमबारी आतिशबाज़ी की तरह दिखाई देने लगी। बोस्नियाँ के मुसलमानों पर दुबारा सर्बों ने हमला कर दिया। श्रीलंका में प्रभाकरन ने जो दो हज़ार नागरिक जान से मारकर जमीन में गाड़ दिए थे, उनके पिंजर

निकल-निकल कर कराहने लगे ! सऊदी अरब, सूडान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान के आतंकवादी जेहाद के नाम पर मासूम नागरिकों को मारते-खदेड़ते हुए डोडा, ऊधमपुर और कुल्लू-मनाली तक आग़जनी, हत्याएँ, अपहरण और लूटमार में मशगूल हो गए।

उसी में, कराँची से कराहते घायलों की आवाज़ आई–

–अदालते आलिया ! सुनिए...लंदन से हमारे मुल्क को तोड़ने के लिए मुहाजिर अल्ताफ हुसैन ज़हर उगल रहा है...यह वही ताकतें हैं जिन्होंने पहले हिन्दुस्तान को तोड़ा, अब पाकिस्तान को तोड़ना चाहती हैं...

अदीब चीखा–सुनो कराँची के बाशिन्दो ! जितना जो कुछ टूट गया, उसे भूल जाओ। जो कुछ टूटने के बाद बना है, उसे टूटने से बचाओ। जितने मुल्क बनेंगे, वे सिर्फ़ इंसान को तक्सीम करेंगे ! जरूरत से ज़्यादा इस दुनिया का बँटवारा हो चुका है...ख़ुदा के लिए बँटवारे की इस ज़हनियत को खत्म करो !

–लेकिन जो ग़लत बँटवारे हुए हैं, उन्हें खत्म करना ज़रूरी है, नहीं तो अदीबे आलिया ! दुनिया में क़त्ले आम और खून खराबा बन्द नहीं होगा ! यह तेज तर्रार आवाज़ सिन्ध पाकिस्तान के नेता डॉ. हलेपोता की थी–धर्म के नाम पर तहजीबें भी खूंखार और रक्तजीवी हो जाती हैं...यही हम सिन्धियों के साथ हुआ है...हम सिन्धी सदियों से स्वाधीन रहे हैं...हमारी जुबान, संस्कृति, फलसफा और सभ्यता इन पाकिस्तानियों से अलग है ! हम चार करोड़ सिन्धियों को आत्म निर्णय का अधिकार चाहिए ! हमारे साथ सन् 1947 में दग़ा हुआ है...पढ़िए पाकिस्तान के उस घोषाणा-पत्र को, जो सन् 1940 में लाहौर में जारी हुआ था। इसमें हम सिन्धियों को पूरी स्वायत्तता देने का वादा है लेकिन पाकिस्तान बनने के बाद सियासत के इरादे बदल गए। कठपुतले हुक्मरानों और सैनिक तानाशाहों ने वह वादा पूरा नहीं किया। इसी तरह और वादे न निभाने की वजह से पाकिस्तान टूटा और बंगलादेशियों ने अपना पाकिस्तान बना लिया ! अब हम अपना सिन्ध आज़ाद चाहते हैं...सिन्धी मुसलमानों और सिन्धी हिन्दुओं के लिए, क्योंकि हमारी भाषा, इतिहास, संस्कृति और सभ्यता एक है !

और होटल कनिष्क के एक कमरे में तभी तीन लोग बैठे दिखाई दिए...चौरासी वर्षीय 'जिये सिंध' आन्दोलन के जनक जी.एम. सैयद, बाल कवि वैरागी और रामेश्वर नीखरा । जी.एम. सैयद कह रहे थे–

–डॉ. हलेपोता ठीक कहता है ! सिन्ध की सभ्यता ही अलग है। वह इस्लाम और वैदिक धर्म की मिली-जुली सभ्यता है...यह ठीक है कि मैंने ही सन् 43 में सिन्ध असेम्बली में भारत विभाजन का प्रस्ताव मुस्लिम लीगी सदस्य के रूप में रखा था पर दो साल बीतते-बीतते सन् 45 में ही पाकिस्तान की नफ़रत की फिलासफी मेरी समझ में आ गई थी...मुझे

शक होने लगा था कि जो जिन्ना भारत में आज हिन्दुओं से नफ़रत करने की राजनीति चला रहा है, वह कल हम सिंधियों से भी नफ़रत करेगा। सन् 1947 में इसीलिए मैंने बहुत बुझे मन और आशंकाओं के बीच पाकिस्तान बनाने का स्वागत किया था...

–अगर तुम सिन्धी हिन्दुओं और सिन्धी मुसलमानों की भाषा, संस्कृति और सभ्यता एक मानते हो, तो फिर आज विभाजन के इतने बरसों के बाद भी भारत गया हुआ सिन्धी हिन्दू तुमसे इतनी नफ़रत क्यों करता है ? यह सवाल एक पत्थर की तरह आकर गिरा !

–यह ग़लत है...हमारी ग़लती से विभाजन तो एक सच्ची घटना में तब्दील हो गया था, पर विभाजन के भयानक दौर में भी सिन्ध में मार काट नहीं हुई। हमने मन-ही-मन अपनी ऐतिहासिक गलती मंजूर करते हुए बहुत भरे दिल से अपने हिन्दू भाइयों को बिदाई दी थी। सिन्ध से जो भी हिन्दू निकला वो जान माल और इज्ज़त समेत इतना सुरक्षित निकला कि अपना पालतू तोता तक पिंजरे समेत लेकर भारत गया। उन हिन्दू भाइयों के साथ सिन्धी मुसलमानों ने कोई बदसलूकी नहीं की, बदसलूकी अगर की तो सिन्ध में बसने वाले पंजाबी मुसलमानों ने, वे पंजाबी मुसलमान तब भी जाहिल थे और आज भी उनकी जहालत कमतर नहीं है। हम सिन्धी तब भी उनसे लड़ रहे थे और आज भी लड़ रहे हैं...हमारी लड़ाई उनसे मुसलसल है...हम मज़हब के लिए नहीं, अपनी संस्कृति के लिए लड़ रहे हैं...

–यह बयान तो भड़काने के लिए है...लेकिन मसला दूसरा है। सवाल वाले पत्थर ने जुमला खड़ा किया।

–हाँ मसला यह है कि विभाजन के वक्त हमारे सिन्ध में सिर्फ़ ग्यारह परसेंट ग़ैर सिन्धी थे, हिन्दू तो तब तेरह लाख ही भागे थे, पर हमारी छाती पर आज जो अड़तालीस फीसदी ग़ैर-सिन्धी आकर बैठ गए हैं इनसे हमें अब जिन्दगी भर लड़ना है !

–यानी तुम कायदे आज़म मुहम्मद अली जिन्ना और पाकिस्तान के बानी शायर अल्लामा इक़बाल की विरासत से लड़ना चाहते हो ? सवाल वाले पत्थर ने करवट बदल कर पूछा।

–हाँ ! वो विरासत है ही नहीं...वह तो मज़हब के नाम पर लूटा गया सिर्फ़ एक इलाका है, जिसे मुल्क कहा गया। यह मुल्क तो टूटेगा, टूट कर रहेगा...इसे दुनिया की कोई ताकत नहीं बचा सकती...जिन्ना की कमनज़री, माउंटबैटन की साजिश, धर्म परिवर्तित शायर इक़बाल की कुंठाओं की वजह से वह सारा खून खराबा हुआ। जिन्ना अपने आप को तवारीख में अमर करना चाहता था, उसकी हवस किस कीमत पर पूरी हुई है, वह सबके सामने है। इक़बाल शायर बड़ा था लेकिन अपने हिन्दू खून को सँभाल न पाने और उससे विद्रोह के कारण वह बहुत बेहूदा और पाखंडी आदमी बन गया था...

–सैयद साहब ! माफी चाहूँगा...इक़बाल जैसे बड़े शायर के बारे में यह अदालत आपके बेहूदे अल्फ़ाज बर्दाश्त नहीं करती !

–मैं माफी चाहता हूँ अदीबे आलिया...मैं अदालत को बन्दगी करता हूँ। मुझे मालूम नहीं था कि मैं एक अदीब की अदालत के सामने हूँ...मुझे तो यही पता

...था कि मैं अड़तीस साल बाद भारत आया हूँ और दिल्ली के कनिष्क होटल के अपने कमरे में बालकवि वैरागी और रामेश्वर नीखरा के साथ बैठा हूँ ! गुलाम मुर्तज़ा सैयद ने अदब से कहा।

–सार्वजनिक जीवन में काम करने वाले लोगों का कुछ भी निजी या अपना नहीं होता ! वह लोग हमेशा अवाम की अदालत में हाजिर समझे और माने जाते हैं...उनके व्यक्तिगत विचार अगर उनके सार्वजनिक विचारों से मेल नहीं खाते तो ऐसे लोगों को वह नैतिक अधिकार नहीं है कि वे सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र में रहें ! अदीब ने कहा।

–लेकिन हुजूर मैंने अपने विचार कहाँ बदले हैं ? आप विचार और राय में तो फ़र्क़ करेंगे ! मेरे व्यक्तिगत और सार्वजनिक विचारों में मतभेद नहीं है, पर शायर इक़बाल ने तो अपनी शायरी के साथ ज़िना किया है...आपके उसी शायर ने पहले कहा था–'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा...' उसी ने अपनी लाइनों को बदल कर क्या एक शायर की नैतिकता को चुनौती नहीं दी है ? आपका वही इक़बाल पलट कर बोला–'चीनो अरब हमारा, हिन्दोस्तां हमारा, मुस्लिम हैं, हमवतन हैं, सारा जहाँ हमारा !' हुजूर, मैं जानना चाहूँगा कि यह कौन सी और कैसी शायराना नैतिकता है ? क्या आप जैसे अदीबों और शायरों की कोई नैतिकता नहीं है ? या कि आप किसी अदालत में हाजिर और जवाबदेह नहीं माने जाते ?

एक मिनट के लिए अदालत खामोश होकर अर्दली और सारा शगुफ़्ता से मशवरा करने लगी। मशवरे के बाद अर्दली चुपचाप एक कोने में जाकर खड़ा हो गया। तब अदीब ने कहा–

–सैयद साहब ! हर व्यक्ति की एक अदालत है...अपनी अदालत से कोई मुक्त नहीं है, चाहे वह अदीब ही क्यों न हो...लेकिन यह अदालत उन लोगों पर चल रहे मुकदमों की अदालत है, जिनकी इन्सानी आत्माएँ उनके जीते जी चल बसी थीं, या चल बसी हैं या चल बसेंगी...और जो अपने दौर के या अगले दौर के या आने वाले दौर के आदमी की जिन्दगी, उसकी सोच और राहत से जी सकने के लिए ख़तरा बन गए थे, बन गए हैं या बन सकते हैं !–अदीब ने बड़े गहरे अन्दाज में कहा, तो अर्दली बिना आवाज़ किए ताली बजाने लगा।

–तो हुजूर ! मैं भी तो उसी ख़तरे की बात कर रहा हूँ ! सोच का ख़तरा ही तो जिन्ना और इक़बाल ने पैदा किया था। मुझे इक़बाल की शायर की शख्सियत से कुछ लेना-देना नहीं, लेकिन शायर भी तो वही होता है जो दुनिया के रूहानी दर्द को समझता है...जो शायर दर्द के दरिया में दूसरों को मरने के लिए डुबो दे...वह शायर कैसा ? आखिर

बुल्लेशाह और कबीर भी तो शायर थे...लेकिन इक़बाल ने तो ख़ून का दरिया बहाया...क्योंकि उसने ख़ुदा को सिर्फ़ 'मुसलमानों का ख़ुदा' बनाकर रख दिया। इक़बाल से पहले खुदा सबका था...हिन्दू का था, मुसलमान का था...मीरा का था, कबीर का था, नानक और टैगोर का था, सुब्रमण्यम भारती और नजरुल इस्लाम का था...सन्त रैदास और ज्ञानेश्वर का था, वह किसका ख़ुदा नहीं था, लेकिन इक़बाल ने खुदा को मस्जिदों में क़ैद कर देने का पाप किया है। जिन्ना और इक़बाल इस सदी के सबसे बड़े शैतान थे ! शैतान...जी.एम. सैयद तैश में थे।

अदालत में सन्नाटा छा गया।

–हुज़ूर ! मैं महात्मा गाँधी की समाधि पर एक चिराग़ जलाने जाना चाहता हूँ ! जी.एम. सैयद ने इल्तजा की।

–जाइए ! अर्दली ने अदीब से पूछ कर इजाज़त दे दी।

तभी करॉंची से भयग्रस्त लोगों की आवाजों ने आक्रमण किया–तो क्या यह मुहाजिर अल्ताफ हुसैन जो कुछ सिंध में कर रहा है, वह सही है ?

–नहीं वह भी सरासर ग़लत है ! यह अदालत पाकिस्तान नाम के देश और उसकी एकता को अहमियत देती है और उसे ज़रूरी समझती है पर यह अदालत पाकिस्तान नाम के उस जज्बे को ग़लत और खतरनाक मानती है जिसके आधार पर पाकिस्तान बनाया गया...और मुहाजिर अल्ताफ हुसैन जो कर रहे हैं...वह ग़लत है ! इस सोच को दफनाया न गया तो अगली सदियों में एक मानवीय विश्व नहीं बनेगा, तब यही विश्व कब्रिस्तान बन जाएगा और हर व्यक्ति अपनी-अपनी सोच का कब्रिस्तान बनाना चाहेगा, जिसे वह अपना पाकिस्तान पुकारेगा ! तब अगली सदियों की शक्ल क्या होगी ? अदीब पागलों की तरह चीख रहा था–अल्ताफ हुसैन और डॉ. हलेपोता को कोई अधिकार नहीं है कि वो पाकिस्तान के अवाम को खून के दरिया में डुबो दें !

–पाकिस्तान की तानाशाही पंजाबी हुकूमत मेरे जैसे पाकिस्तानियों के इरादों की तलवार को नहीं छीन सकती ! इरादे हाथों में नहीं, हमारे दिलों में हैं !

–यही तो सबसे बड़ा खतरा है...ऐ अल्ताफ ! दिलों को तलवार बनने से रोको ! दिलों में खुदाई रहमत और इंसानी जज्बे को पनपने का मौका दो ! अगर इंसान के दिल की धरती को तुमने खून की ख्वाहिश से सींच दिया तो पाकिस्तान भी वीरान हो जाएगा और यह वीरानी हर मुल्क, हर संस्कृति, हर सभ्यता में फैलती चली जाएगी ! इसलिए ऐ अल्ताफ हुसैन ! मनुष्य के बुनियादी संघर्ष को पहचानो और पाकिस्तान में फिर फौजी तानाशाही की हुकूमत के दरवाजे मत खोलो...आज बहादुरी भौतिकवाद की यांत्रिकता की गुलाम है...कोई फौजी, कोई आदमी यांत्रिकता की मदद के बिना बहादुर नहीं है, इसे समझो और ज़ाती दुःखों और नफ़रत की दुनिया से बाहर निकल कर एक बेहतर और न्यायसंगत पाकिस्तान की तामीर में हाथ बँटाओ !

–मुझे बदला लेना है ! अल्ताफ हुसैन तमक कर चीखा–पाकिस्तान हमने बनाया है। इन पंजाबियों, बलूचों, सिंधियों और पख्तूनों ने नहीं। पाकिस्तान बनाने की कीमत हम अवध और बिहार के मुसलमानों ने चुकाई है...असली पाकिस्तानी तो हम हैं, हमें इन नकली पाकिस्तानियों से हिसाब चुकाना है !

—अल्ताफ हुसैन...घृणा, बदले की भावना और खून खराबे से इन्सान को आज़ाद करो ताकि आनेवाली सदियाँ गुमराह न होने पाएँ ! अदीब बोल ही रहा था कि अर्दली ने तूफान की तरह अदालत में दाखिल होते ईराक के सद्दाम हुसैन को जैसे-तैसे सँभाला, फिर पेश किया–

–हुजूर ! ये ईराक के सद्दाम हुसैन हैं ! ये बहुत चीख रहे हैं !

–क्या बात है सद्दाम हुसैन ? अदालत ने पूछा।

–अदीबे आलिया !...आज ईराक और ईरान के बीच चल रही जंग के खत्म होने की सालगिरह है ! सद्दाम ने बताया।

–यह तो बड़ी अच्छी बात है !

–नहीं ! क्योंकि अमन की इस साल-गिरह के दिन अब अमरीका, सऊदी अरब और ईरान ने अपनी अपनी वजहों से हमें खत्म करने का बीड़ा उठाया है !

–लेकिन क्यों ? आखिर सऊदी अरब और ईरान भी तो मुस्लिम मुल्क हैं। एक ही मजहब को माननेवाले मुल्कों में यह दुश्मनी कैसी ?

–क्योंकि शिया ईरान सुन्नी अरबों के खिलाफ एक नई सल्तनत खड़ी करना चाहता है ! वह इस्लाम को अपने दायरे में बाँधना चाहता है, इसलिए वह मेरी और मेरे मुल्क की मुखालफत करता है, खासतौर से इसलिए कि ईरानी नसों में आर्यों का खून बहता है और वो हम अरबों तथा सुन्नियों को मंजूर नहीं करता !

–लेकिन सद्दाम हुसैन ! सऊदी अरब तुमसे ज्यादा अरबी है, वह सुन्नी भी है, तब वह तुम्हारा साथ क्यों नहीं देता ?

–क्योंकि उन्हें शक है कि दज़ला-फ़रात की वादी के हम अरब भी मूलतः आर्य हैं। हमारी नसों में बहते खून को सऊदी अरबवाले और उनके गुरगे भी मंजूर नहीं करते...हम सुन्नी हैं, पर अरबी लोग हमारे खून को अरबी-इस्लामी खून से अलग मानते हैं...सद्दाम हुसैन बोल ही रहा था कि अर्दली ने बीच में टोका–

–हुजूर ! आप तो ग़ैर जरूरी बहस में उलझ गए...सारी सदियाँ रुकी हुई खड़ी हैं। हिटलर खड़ा है, मुहम्मद बिन-कासिम आठवीं सदी से खड़ा है, महमूद गजनवी अपने सबूत लिए दसवीं सदी से मौजूद है...सोलहवीं सदी का बाबर अभी अपनी बात और जिरह पूरी नहीं कर पाया है...और सत्रहवीं सदी के बंद होते दरवाजे पर औरंगज़ेब अपनी बारी का इन्तज़ार कर रहा है और बीसवीं सदी की सारा शगुफ़्ता अभी तक अपने बेटे की लाश लिए कोने में खड़ी हैं...शाहीन कब से अपनी बात कहने के लिए आपका इंतजार कर रही

है...और आपकी सलमा जो खुदा हाफिज कह के चली गई है, इस अहम अदालत का कारोबार रोक कर आपको फिर अपने लिए हासिल करने की कोशिश में लगी हुई है...और उधर आपके दोस्त भवानी सेनगुप्त ईरान की राजधानी तेहरान से लौट कर कुछ ज़रूरी बातें आपसे करना चाहते हैं...मुझे आपका हुक्म चाहिए कि मैं किसे बुलाऊँ!

–देखो अर्दली दोस्त! आज ही भवानी सेनगुप्त तेहरान से लौट कर आए हैं और आज ही हिन्दुस्तान की बनती तहज़ीब के सबसे बड़े पैरोकार नूरुलहसन का देहान्त हुआ है...मेरा दिल दुःख से भरा हुआ है...मुझे थोड़ी-सी छुट्टी दो! अदीब ने कहा।

–ओह!...तब ठीक है।

–और सबको रोको, भवानी सेनगुप्त से वक्त की कुछ और मोहलत माँगो। शाहीन से कहो कि वह और थोड़ा इन्तज़ार करे। मुहम्मद-बिन-कासिम से बोलो कि वह लौटना चाहे तो लौट जाये। महमूद गज़नवी से कहो कि अपनी लूट का हिसाब तैयार करे और बाबर से कहो कि तालिबानों की तोपों के गोलों की परवाह न करे–वह फिलहाल अपनी कब्र में जाकर लेट जाये...और इन तमाम फर्मानों को जारी करने के बाद औरंगज़ेब से कहो–कुछ देर बाद, वह अदालत में हाज़िर हो!

•

22

औरगंजेब दौलताबाद की अपनी कब्र में आराम से सोया पड़ा था। अर्दली ने बड़ी शाइस्तगी से औरंगज़ेब की क़ब्र पर दस्तक दी।

–कौन है जो मुझे जगा रहा है ? क़ब्र से आवाज़ आई।

–हुजूर ! आज अगला वक्त आपसे कुछ बात करना चाहता है !

–तो करो !

–माफ कीजिए शहंशाह ! अब वक्त और अदालतें बदल गई हैं...अब आपको एक अदीब की अदालत में हाज़िर होना पड़ेगा ! अर्दली ने कहा।

–क्या ? अदीब ! शायर ? ये लोग तो उसी मीरासी खानदान के लोग होते हैं...वही लोग जिन्हें मैंने अपने दरबार और सल्तनत से खारिज कर दिया था ! औरंगज़ेब ने कहा।

–आज वक्त आपको खारिज करने में लगा है, इसीलिए आपको याद फरमाया गया है !

–अच्छा ! कहते हुए शहंशाह औरंगज़ेब उठ कर खड़ा हुआ तो दिशाएँ थर्राने लगीं। नदियों ने अपना पानी समेट लिया ताकि शहंशाह को उन्हें पार करने में दिक्कत न हो ! वह अर्दली के साथ चल पड़ा।

बुरहानपुर के आगे धर्मट के पास से औरंगज़ेब गुज़रा तो रुक गया–जैसे इतिहास उसके सामने एक पल के लिए थम गया हो।

–यहीं...इसी मैदान में, यहीं धर्मट में मैंने दारा शिकोह के सिपहसालार राजा जसवन्त सिंह की फौजों का सामना किया था...क्योंकि दारा मुझे हज़रत से मिलने नहीं देना चाहता था !

–हज़रत ? अर्दली ने अदब से पूछा।

–मेरे अब्बा हुजूर ! शहंशाह शाहजहाँ, जो तब गुर्दे की बीमारी से परेशान थे, मैंने दक्षिण से कूच किया तब मैं बीजापुर से बुरहानपुर पहुँचा था, यहीं...राजा जसवंत सिंह से हुई धर्मट की इस जंग में हजारों लोग मारे गए थे। यह मैदान लाशों से पट गया था।जसवंत सिंह जोधपुर की तरफ भाग गया था...यहाँ खून का कीचड़ फैला था...इसी खूनी मैदान पर आज खेत लहलहा रहे हैं ! कितना अच्छा लगता है यह देखकर !...आलमगीर ने कहा।

तभी चार पाँच छायाएँ एकाएक सामने आकर कोर्निस करने लगीं।

–आलमपनाह ! आदाब !

–कौन ? ओह आप लोग ! औरंगज़ेब ने उन्हें पहचानते हुए कहा–आप...काज़िम शीराजी साहब और आप मुहम्मद साक़ी मुस्ताद खान साहब...अरे खाफी खान साहब और

आक़िल खान साहब भी...अच्छा हुआ आप इतिहासकार मुझे वक्त पर मिल गए, क्योंकि वक्त की अदालत ने मुझे याद फर्माया है!

–इसीलिए तो हम हाज़िर हुए हैं।

–मैं तो ख़ासतौर से 'वकात-ए-आलमगीरी' के लेखक आक़िल खाँ को भी साथ लाया हूँ...क्योंकि इन पर दरबारी इतिहासकार होने का इल्जाम नहीं लगाया जाता! इतिहासकार काजिम शीराज़ी ने कहा।

–हुजूर...चलिए! अर्दली ने कहा।

और जब शहंशाह अदीब की अदालत में हाजिर हुआ तो अदीब उसे देखता ही रह गया!...

औरंगज़ेब! एक मंझोले क़द का शानदार आदमी! दुबला, उम्र और इल्जामों के बोझ से झुके हुए कंधे। लंबी आर्य नाक, तीखे तराशे हुए नक्श। चुनी हुई गोल सफेद दाढ़ी...जो उसके बदन के जैतूनी रंग पर और भी ज़्यादा ख़ूबसूरत लग रही थी। बर्फ़ की तरह साफ़ और सफ़ेद मलमल का अंगरखा और पगड़ी में चमकता हुआ बड़ा-सा नगीना।

तीखी और बेलौस नज़र से औरंगज़ेब ने अदीब को देखा।

उसी वक्त सैकड़ों कबूतर फसीलों से उड़कर आसमान में समा गए। तब अदीब ने उसे और ज्यादा ग़ौर से देखा।

औरंगज़ेब अपने इतिहासकारों के साथ खड़ा था। अर्दली ने उसे कुर्सी दी। वह एक शाहंशाह की शान से बैठ गया।

–आलमगीर! तमाम इल्ज़ाम तुम पर आयद हैं...सबसे बड़ा तो यह है कि तुम एक धर्मांध शहंशाह थे, कट्टर सुन्नी थी...इसीलिए तुमने दक्षिण की गोलकुंडा, बीजापुर, खानदेश, बरार और अहमदनगर के राज्यों के उन सुल्तानों को बर्बाद किया जो मुसलमान तो थे, पर सुन्नी नहीं शिया थे!...और यह कि तुमने अपनी हिन्दू रियाया को सताया, उसे तलवार के ज़ोर पर मुसलमान बनाया, उनके त्योहारों-उत्सवों पर प्रतिबंध लगाया, उनके मन्दिरों को तोड़ा...तुम मराठों से लड़े, जो तुम्हारे सब से अच्छे दोस्त बन सकते थे...इसके अलावा तुमने अपने पिता शाहजहाँ को क़ैद किया, अपने भाई दाराशिकोह और मुराद को मरवाया। शुजा को जलावतन किया। तुमने खून से सनी हिन्दुस्तान की गद्दी हासिल की...तुम हिन्दुस्तान को दारुल हरब मानते थे और इसे दारुल इस्लाम में तब्दील कर देना चाहते थे...तुमने कट्टर शुद्धतावादी मुसलमान की तरह राज्य को मज़हब से जोड़ दिया...

औरंगज़ेब अपनी कुर्सी पर वैसा ही बैठा रहा।

और अदालत के सामने से एक जुलूस-सा गुज़रने लगा–चीखते-चिल्लाते लोगों का...

–यह पहला शहंशाह है जिसने धार्मिक सेंसर लगाया!

–तख़्तो-ताज हासिल करने के लिए यह मुल्लाओं का ग़ुलाम हो गया...अपने भाई दाराशिकोह को मारने के लिए इसे धर्मांध उलेमाओं की जरूरत पड़ी ताकि इसके नृशंस कारनामों पर कोई उंगली न उठाए...इसीलिए इसे मज़हब की ज़रूरत पड़ी और इसके शासन में मज़हब की घुसपैठ शुरू हुई। यह नक्शबंदिया सम्प्रदाय का चेला बना और शेख़ सिरहिन्दी का पोता लगातार धार्मिक राय और मशवरा देने के लिए इसके दरबार में बैठने लगा!

–इसने हम संगीतकारों और शायरों की बेइज्जती की...हालाँकि हम ज़्यादातर मुसलमान थे!

–इसने हम ज्योतिषियों को दरबार से निकाल दिया! क्योंकि हम हिन्दू थे!

–हमारे मुग़लिया शहंशाहों का यह रिवाज था कि वे ईद और दशहरा में हमेशा शामिल होते थे, लेकिन जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह को हराने के बाद आलमगीर ने हम हिन्दुओं के दशहरा व दीगर त्यौहारों में शामिल होना बन्द कर दिया!

–और तो और हुजूर! यह तो हमारी परम्परा थी कि जब भी कोई हिन्दू राजा गद्दीनशीन होता था तो शहंशाह उसका तिलक करता था, लेकिन इसने तिलक को हिन्दू परम्परा कहकर बंद कर दिया!

–यह तो छोड़िए अदीबे आलिया! इसने हम मुसलमानों को भी नहीं बख़्शा...इसने हुक्म निकाला कि कोई मुसलमान चार अंगुल से बड़ी दाढ़ी नहीं रख सकता!...तब सल्तनत की हर बस्ती, हर मोहल्ले में नाई लोग कैंचियाँ लेकर घूमने लगे और हम गरीब मुसलमानों का जीना मुहाल हो गया!

–इतना ही नहीं हुजूर!...एक शख़्स नशे में धुत डगमगाता हुआ आया और चीखने लगा–इसने शराब बन्दी का ऐलान किया...हम जैसे शौकीन और दिलजले लोगों को शराब पीने के कारण इसने सरेआम पिटवाया और यह कहकर कि दीवान-ऐ-हाफिज़ को पढ़ने से शराबनोशी बढ़ती है, इसने मदरसों से उसे खारिज करवा दिया...इतना ही नहीं...इसके गुर्गे मुहम्मद फाज़िल ने राजनगर के जागीरदार रामसिंह गौड़ की जागीर में घुस कर शराब के सारे मटके तोड़ दिए, मश्कें फाड़ दीं...दो दिन तक शराब नालियों में बहती रही और हम जैसे शौकीन लोग प्यासे बैठे रह गये!

–अर्दली! इस शराबी को अदालत से बाहर करो! अदीब ने हुक्म दिया।

–तो हुजूर...आप भी औरंगज़ेब की तरह पेश आने लगे!...वह शराबी लड़खड़ाती ज़बान में बोला–लेकिन इतना सुन लीजिए कि इसने अपने फिरंगी तोपचितोयों को पीने-पिलाने की छूट दी हुई थी...और दूसरी तरफ उसके वित्तमंत्री राजा रघुनाथ ने भांग की खेती तक पर पाबन्दी लगा दी थी! समझ में नहीं आता, यह बिना सोचे-समझे गलत-सलत हुक्मनामे क्यों जारी करता था!

–हुजूर! हम सूफ़ी हैं...इस पागल शहंशाह ने हुज़ूर पैग़म्बर के जन्मदिन पर गाए जानेवाले हमारे भजनों पर भी पाबन्दी लगा दी...तब हम सूफ़ी-सन्तों को इसके गुर्गे और दरोग़ा मिर्जा बाक़र के खिलाफ गोलबंद होकर निकलना पड़ा...इसके दरोग़ा ने हम फ़कीरों पर क़ातिलाना हमला किया। यह अहमदाबाद के हमारे बुजुर्ग और पवित्र सूफी सन्त शेख़ याहिया चिश्ती की ख़ानकाह में हुआ...क्योंकि इसके दरबार में बैठे कठ-मुल्लाओं ने इसे अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया था...यह खुद के सिवा सब को काफ़िर मानने लगा था...

–हुजूर हम भी कुछ फरियाद करना चाहते हैं...हम लोग गरीब कुम्हार हैं...हम सभी धर्मवालों के मेलों-नुमाइशों, तीज त्योहारों पर मिट्टी के खिलौने बना कर बेचते थे...परिन्दों-जानवरों, आदमियों-औरतों के खिलौने...इस शहंशाह ने पूरी सल्तनत में मिट्टी के खिलौनों का बनाना बन्द करवा दिया...

–अदीबे आलिया! हम बोहरी मुसलमान हैं...हम ज़्यादातर शिया हैं। आलमगीर ने हमारी मस्जिदों में सुन्नी इमाम और मोअज़्ज़िन तैनात करवा दिए!

–इसके अलावा इसने हम शियाओं के मोहर्रम के त्यौहार पर भी पाबन्दी लगा दी! इसने बड़े बड़े सूफी-सन्तों को नहीं बख़्शा...यह बंगाल के दरवेश सैय्यद नियामत अल्लाह, मियाँ मीर के चेले कश्मीर के मुल्ला शाह बदख़्शी और इलाहाबाद के शेख मुहीब-उल्लाह जैसे साधुओं को बेइज़्ज़त करने से बाज़ नहीं आया...इसने सैकड़ों मुसलमानों के सिर क़लम करवा दिए...हुजूर! इसके दौर में दहशत छाया रहा...हर सुबह हमारे दिल धड़कते रहते थे कि कहीं आज पागलपन से भरा कोई और हुक्मनामा न आ जाए! इसके दरबार में घटिया मुल्लाओं और मौलवियों का जमावड़ा था...इस पर उन छिछले और उथले धर्मशास्त्रियों ने घेरा डाल रखा था जो इस्लाम के बड़प्पन को भूलकर हमारे धर्म को स्वार्थी सीमाओं में क़ैद कर रहे थे। और यह कठपुतला उनकी हर बात को आँख मूँद कर मंजूर करता जाता था। ज़ुल्म के हर क़दम पर अपनी मुहर लगाता जाता था...इसका इस्लाम हम मुसलमानों को भी नहीं बख़्शता था...पता नहीं हुजूर, इसका इस्लाम कौन-सा और कैसा था!

अदालत ने पूछा–औरंगज़ेब! क्या कहना है तुम्हें?

–क्या कहना है मुझे?...मैं कोई सफ़ाई नहीं देना चाहता! मुझे जब जो ठीक लगा, वही मैंने किया...आखिर मैं शहंशाह था...औरंगज़ेब ने हिकारत से कहा–मुझे अच्छी तरह मालूम है कि अब्बा हुज़ूर को सात साल क़ैद में रखने, अपने भाइयों को मार कर तख़्त हासिल करने, दकन की इस्लामी रियासतों को बरबाद करने, हिन्दुओं को सताने और उनके मन्दिरों को तोड़ने और मराठों से लड़कर मुग़लिया सल्तनत को पतन के रास्ते पर डालने के तमाम इल्जाम मुझ पर हैं! मैं खुद कुछ नहीं कहना चाहता।...मेरे साथ मेरे दौर के जिम्मेदार इतिहासकार मौजूद हैं। आप जो भी जानना चाहते हैं, इनसे पूछ लीजिए...तसदीक कर लीजिए!

–ये सारे इतिहासकार इसके दरबारी इतिहासकार हैं...ये न सोचने के लिए आज़ाद थे न लिखने के लिए...राज्याश्रय में जो कुछ लिखा जा सकता है, या जो लिखाया जाता है, वही इन्होंने दर्ज किया है! मैं खुद औरंगज़ेब का चारहज़ारी मनसबदार रहा हूँ...मैंने खुद इन इतिहासकारों को भुगता और बर्दाश्त किया है!...एक शाही राजपूत से लगते योद्धा की यह आवाज़ थी।

–आप हैं कौन? अदालत ने जानना चाहा।

–जी, मैं राव छत्रसाल बुंदेला हूँ! मालवा का! मुझे इन्होंने अट्ठारहवीं सदी के शुरू में चारहज़ारी मनसबदारी दी थी, क्योंकि मैं लगातार बीस बरस इनसे लड़ता रहा था...मुझे बहुत मजबूरी में इनकी मनसबदारी मंजूर करनी पड़ी थी...ख़ैर...वह अलग कहानी है...लेकिन इनके इतिहासकारों पर भरोसा मत कीजिए । आलमगीर-नामा, माथिरे-आलमगीरी, मुंतख़ाबुल-लुबाब और वक़ाते-आलमगीरी–यह सारे इतिहास इसके ज़रख़रीद गुलामों ने लिखे हैं! ये इतिहास भरोसेमंद नहीं हैं! राव छत्रसाल बुन्देला ने कहा।

–लेकिन आक़िल खाँ तो आज़ाद था! हमें आप दरबारी इतिहासकार मान लीजिए, लेकिन वक़ाते-आलमगीरी तो इन्होंने छुपा कर लिखी थी! काज़िम शीराजी ने कहा–हुजूर! उस पर तो आप भरोसा कर ही सकते हैं!

–नहीं! एक दहाड़ती आवाज़ आई...और एक शानदार राजपूत बुजुर्ग और हाजिर हुए।

–आप?

–मैं! राजा जसवन्त सिंह! जोधपुर का महाराजा...मुग़लिया सल्तनत की जितनी ख़िदमत मैंने की है, उतनी तो जयपुर के महाराजाओं ने नहीं की है! शाहजहाँ और औरंगज़ेब की सारी बड़ी लड़ाइयाँ मैंने लड़ी हैं...मुझे फिलहाल इतना ही कहना है कि आक़िल खाँ ने अपना इतिहास ज़रूर छुपा कर लिखा, लेकिन यह भी आलमगीर के दरबार का एक सामन्त था...यह भी आज़ाद कहाँ था! राजा जसवन्त सिंह ने हिकारत से कहा।

–ठीक है, ठीक है...यह मामला काफी पेचीदा है।

–पेचीदा बिलकुल नहीं है हुजूर! राव छत्रसाल बुन्देला बोला–यही औरंगज़ेब नाम का वह शख़्स है जिसने अपने पिता को क़ैद किया। भाइयों को मारा...और हिन्दुस्तान के बनते हुए इतिहास को सलीब पर चढ़ा दिया। दाराशिकोह की हत्या एक नए बनते हुए हिन्दुस्तान की हत्या थी!

–तुम कुछ कहना चाहोगे औरंगज़ेब? अदालत ने सवाल किया।

–नहीं! क्योंकि जो बातें कहीं गई हैं, वह भी सच हैं और जो नहीं कही गई हैं, वह भी सच हैं! औरंगज़ेब बोला।

–मतलब?

–मतलब ! औरंगज़ेब थोड़ा सा मुस्कराया...मुस्कराहट में कड़वाहट थी–आज ये कुछ चंद मामूली लोग मुझसे बग़ावत कर रहे हैं, मेरे ज़माने में इनकी यह जुर्रत नहीं थी ! तब वक्त और हिन्दुतान का मुस्तकबिल मेरा ग़ुलाम था, मैं किसी का ग़ुलाम नहीं था...कहकर औरंगज़ेब एकाएक बहुत ऊँची आवाज़ में हँसने लगा, कुछ इस तरह जैसे कोई उलझा हुआ आदमी अपनी ही बात कहने के बाद उसका मज़ा लेने लगता है !

शहंशाह औरंगज़ेब यह भी भूल गया कि वह वक्त की अदालत के सामने मौजूद है...वह अपना दरबार लगा कर बैठ गया और पागलों की तरह चीखने लगा–

–सोमनाथ मन्दिर ! क्या कहा ? मन्दिर मौजूद है...उसे तो महमूद गज़नवी ने मिसमार किया था...फिर कैसे खड़ा हो गया ? उसे ज़मींदोज़ कर दो और उड़ीसा...क्या ? उड़ीसा में फिर मन्दिर बनाए गए हैं !...तो असद खाँ को हुक्म भेजो कि पिछले दस बारह सालों में जितने भी नए मन्दिर वहाँ बने हैं, उन्हें गिरा दिया जाए और पुराने मन्दिरों की मरम्मत के लिए इजाज़त न दी जाए। हुक्म तामील हुआ है इसकी खबर काज़ी की मुहर लगी तहरीर के साथ फौरन दरबार में दाख़िल की जाए। मथुरा के केशवराय मन्दिर को भी गिरा दिया जाए...उस मन्दिर पर पत्थर की जो पैड़ी दाराशिकोह ने बनवाई है उसे तोड़ दिया जाए और मथुरा के फौजदार को हुक्म दिया जाए कि हुक्म तामील होते ही उसकी ख़बर फौरन शाही दरबार को दी जाए !

औरंगज़ेब हाँफता हुआ इधर से उधर टहल रहा था। उसके दरबारी ज़ुबान बन्द किए बैठे थे...कुछ पलों की खामोशी के बाद कुछ कानाफूसी-सी हुई–

–आलमपनाह आलमगीर को यह हुआ क्या है ?

–ऐसा तो शहंशाह शाहजहाँ और जहाँगीर के जमाने में भी नहीं हुआ...खुद शाहजहाँ ने बहुत से मन्दिरों को तुड़वाया, लेकिन कभी ऐसे ज़िद भरे और सख़्त फ़रमान जारी नहीं किए...

सुना है कल दरबारे ख़ास में शहंशाह से सिरहिन्द के कई मुल्ला मौलवी मिले थे। उनसे घंटों बातचीत होती रही...वहाँ शाही काज़ी अब्दुल अज़ीज़ भी मौजूद थे, उन सबने आलमगीर को बहुत से मसलों पर मशवरा दिया...ख़ासतौर से सियासत और मज़हब के मामलों में...

–तुम्हें कैसे पता चला ?

–एक खबास ने बताया...जो वहीं तैनात था।

–कुछ खास बातें तय हुईं ?

–यही कि हिन्दुओं को दबा कर रखा जाए...अकबर और जहाँगीर के जमाने का जो मेल-जोल, हिन्दू मुसलमान बराबरी की जो रवायतें चली आ रही हैं, उन्हें खत्म किया जाए, हिन्दू को रियाया माना जाए और राज्य को निज़ामे मुस्तफा के तहत चलाया जाए...जयपुर के महाराजा मिर्जा राजा जयसिंह के बाद उनके खानदान के किसी आदमी

को सल्तनत में वह इज्जत और मर्तबा न दिया जाए, जो उन्हें हासिल रहा है। मौक़ा पाते ही सल्तनत के वज़ीरे खारिजा राजा रघुनाथ को हटाकर यह ओहदा किसी मुसलमान को दिया जाए। किसी हिन्दू अफसर के नीचे मुसलमान को तैनात न किया जाए...और अब खुल कर इन काफ़िर हिन्दुओं को बता दिया जाए कि वह प्रजा हैं, उन्हें बराबरी का हक़ नहीं हासिल है...क्योंकि मुसलमानों ने इस मुल्क को फ़तह किया है! और आप इस मुल्क के शहंशाह हैं! और यह कि आप मुसलमान हैं! इसलाम के रक्षक हैं...बस तभी से आलमगीर का दिमाग़ ख़राब हुआ है...

और तभी सन् 1669 दहाड़ता हुआ आ गया! चारों दिशाओं से भयानक आवाजें आने लगीं...पूरा माहौल दहशत से भर गया। मन्दिरों की इमारतें गिरने लगीं, टूटे हुए घंटे लुढ़कते हुए इधर-उधर चकराते चले गए। मूर्तियाँ खंडित होने लगीं...शहरों, बस्तियों में कोहराम मच गया...केशवराय मन्दिर की रत्नजड़ित मूर्तियाँ आगरा लाई गईं और जहाँआरा मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे दफ़्न कर दी गईं। बल्लभाचार्य के गोवर्धन मन्दिर की मूर्तियों को लेकर उसका पुजारी दामोदरलाल जोधपुर की तरफ भागा...लेकिन गोवर्धन मन्दिर के भगवान को जोधपुर में शरण नहीं मिली। आख़िर भगवान छह साल तक भागते रहे...दामोदर ने अपने साथी पुजारी गोपीनाथ को मेवाड़ के राणा राजसिंह के पास भेजा। सीसोदिया राणा राजसिंह ने भगवान की मूर्ति का स्वागत किया और उन्हें अपने राज्य में शरण दी — सिहर गाँव में...वही सिहर गाँव धार्मिक वैष्णव केन्द्र के रूप में विकसित होते होते बाद में नाथद्वारा के नाम से विख्यात हो गया।

मथुरा, वृन्दावन, काशी, प्रयाग, उज्जैन, पुरी आदि के पुजारी मूर्तियों को लिए हुए, छुपते-छिपाते शरण खोज रहे थे...शाही फ़रमान का फायदा काज़ी उठा रहे थे...गुजरात के वणिकों ने काज़ियों से समझौता कर लिया और उन्हें रिश्वतें दे देकर अपने मन्दिरों को बचा लिया। लेकिन तभी काशी से आवाज़ें आने लगीं–काशी विश्वनाथ मन्दिर ध्वस्त हो गया! ध्वस्त हो गया! मुग़ल बादशाह ने हम हिन्दुओं पर हमला किया है, हमारी आस्था और धर्म पर हमला किया है...

–बदला! बदला! हर-हर महादेव! अल्लाहो अकबर!

तभी अपनी छड़ी पकड़े विश्म्भरनाथ पांडे आकर अदालत पर चीख पड़े–अदीब! तुम समझदार आदमी हो...यह क्या कर रहे हो। इस रक्तपात, इस नफरत को रोको! और हिन्दुस्तान को सही बात बताओ कि औरंगज़ेब ने काशी विश्वनाथ के मन्दिर को क्यों तोड़ा ?...वह ज़माने और थे...पट्टाभि सीतारमैया ने अपनी पुस्तक 'फैदर्स एंड स्टोंस' में लिखा है कि–'तत्कालीन शाही परम्परा के अनुसार, जब मुग़ल सम्राट किसी यात्रा पर निकलते थे, तो उनके साथ राजा-सामन्तों की काफी बड़ी संख्या चलती थी और उनके साथ उन सबका अन्तःपुर भी चलता था। कहना न होगा, मुग़ल दरबार में हिन्दू सामन्तों की संख्या बहुत थी। जब औरंगज़ेब बनारस के निकट के प्रदेश से गुज़र रहा था, तो भला क्या ऐसा कोई हिन्दू

होता जो दिल्ली जैसे दूर प्रदेश से आकर गंगास्नान और विश्वनाथ दर्शन किए बिना चला जाता, विशेष रूप से स्त्रियाँ! अतः सभी हिन्दू दरबारी अपने परिवार के साथ गंगा स्नान करने और विश्वनाथ दर्शन के लिए मंदिर आए। विश्वनाथ के दर्शन कर जब लोग बाहर निकले तो ज्ञात हुआ कि दल की एक रानी ग़ायब है। इस रानी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह कच्छ की रानी थी। लोगों ने उन्हें मन्दिर में जाते देखा था, पर मन्दिर से बाहर आते किसी ने नहीं देखा...जब अधिक कड़ाई और सतर्कता से खोज की गई तो मन्दिर के नीचे एक तहखाने में...उन्हें वस्त्राभूषण विहीन, भय से त्रस्त वह रानी दिखाई पड़ीं। जब औरंगज़ेब को पंडों की यह काली करतूत ज्ञात हुई तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ और बोला–जहाँ मन्दिर के गर्भ गृह के नीचे इस तरह की डकैती और बलात्कार हो, तो वह मन्दिर ईश्वर का घर नहीं हो सकता, और उसने उसे तुरन्त गिराने का आदेश दिया। आदेश का तत्काल पालन हुआ। लेकिन मन्दिर गिराए जाने से रानी अत्यन्त दुःखी हुई और उसने शहंशाह से कहला भेजा कि इसमें मन्दिर का क्या दोष, दुष्ट तो पंडे हैं। रानी ने यह इच्छा भी प्रकट की कि उस मन्दिर का फिर से निर्माण करा दिया जाए। औरंगज़ेब ने अपने धार्मिक विश्वास के कारण, जिसका उल्लेख उसने अपने 'बनारस फ़रमान' में किया है 'कि नए मन्दिर नहीं बनाए जा सकते!' उसके लिए नया मन्दिर बनवाना सम्भव न था, अतः उसने मंदिर के स्थान पर मस्जिद खड़ी करके रानी की इच्छा पूरी की!

अदीब ने आदर से पांडेजी की तरफ देखा।

–तो अदीब! यह पट्टाभि सीतारमैया द्वारा प्रस्तुत एक घटना है। यह घटना कितनी ऐतिहासिक है, यह कहने के लिए सम्प्रति कोई साधन नहीं है...अगर ऐसी घटना वस्तुतः घटी थी तो औरंगज़ेब ही नहीं, कोई भी न्याय प्रिय शासक यही करता। यदि इस घटना के परिप्रेक्ष्य में विश्वनाथ मन्दिर गिराया गया, तो उसके लिए औरंगज़ेब पर किसी प्रकार का कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता!...बोलते-बोलते पांडे जी थक कर अपनी छड़ी का सहारा लेने लगे।

–महामहिम पांडे जी! आपमें इच्छा-दोष नहीं है। आपमें सद्भावना-दोष भी नहीं है, परन्तु इतिहास-बोध को गाँधीवाद ने जितना सरलीकृत करना चाहा, उतना ही वह रोमांटिक होता गया...कटु सत्यों का सामना करने, उन्हें पहचानकर स्वीकारने और तब उसे अहितकारी घोषित करने का जो साहस होना चाहिए, उसे आपकी यह सद्-इच्छा लीपा-पोती करके खोखला बना देती है!...ख़ैर...पट्टाभि सीतारमैया को हाज़िर किया जाए!

–जी, मैं हाज़िर हो गया हूँ! खादी की धोती से अपना पसीना पोंछते हुए सीतारमैया जी ने अपनी हाज़िरी दी।

–पांडेजी ने आपके हवाले से जो घटना बयान की है, उसका स्रोत क्या है? अदालत ने पूछा।

–इस घटना का स्रोत लखनऊ के एक प्रतिष्ठित मुसलमान हैं, जिनके पास एक हस्तलिखित ग्रन्थ था जिसमें इस घटना पर प्रकाश डाला गया है...उन सज्जन का असमय निधन हो गया, इसलिए उसका समुचित परीक्षण नहीं किया जा सका और न वह ग्रन्थ प्रकाश में आ सका है! सीतारमैया ने कहा।

–तो महोदय! आपने उसे सच कैसे मान लिया?

–यह घटना सच हो भी सकती है! पांडे जी ने थोड़ी तेजी से कहा।

–महामहिम! मेरा निवेदन है कि गाँधीवादी विचारकों ने सद्भावना और एकता के जो सरलीकृत नुस्खे निकाले हैं, वे अनपढ़ और अधकचरे भारतीय के लिए कारगर हो सकते हैं–आज के बुद्धि संपन्न, तर्कशील भारतीय के लिए आपका यह जो अति सरलीकृत साधारणीकरण है, इसी ने हिन्दू कट्टरपंथियों और हिन्दुत्ववादियों को ग़लत इतिहास लिखने की छूट दी है!...वैसे औरंगज़ेब एक भयानक कुंठा और ख़ललभरे दिमाग़ी जुनून का शिकार था...क्योंकि उसने एक सोची समझी साजिश के तहत अपने बाप को क़ैद किया और अपने भाइयों को मारा था!

–लेकिन उसकी वजह थी! एक बड़ी सभ्य आवाज़ आई।

–आप? आप कौन?

–जनाब! मैं शिबली नोमानी हूँ!

–अर्दली! शिबली नोमानी साहब को कुर्सी दो...और हुजूर! मैं आपको प्रणाम करता हूँ! अदालत शिबली नोमानी को सामने पाकर खड़ी हो गई और जब तक उनके लिए कुर्सी नहीं आई, खड़ी रही।

–हुजूर फर्माइए! अदालत ने शिबली नोमानी से प्रार्थना की।

–जी, शुक्रिया! यहाँ, आपकी अदालत में हाज़िर आलमगीर पर जितने जुर्म आयद किए गए हैं, वे ग़लत तो नहीं, पर उनके सन्दर्भों को समझना ज़रूरी है!

तभी इतिहासकार श्रीराम शर्मा ने हस्तक्षेप किया–अदालते आलिया! शिबली नोमानी साहब ने औरंगज़ेब को अपने बच्चे की-सी सरपरस्ती दी है, क्योंकि शिबली नोमानी खुद एक ख़ुदापरस्त हिन्दुस्तानी हैं, लेकिन औरंगज़ेब के ज़माने में जो भी इतिहास लिखे गए, उनमें वही सब लिखा गया जो औरंगज़ेब ने चाहा। और शिबली नोमानी साहब उन्हीं राजाश्रयी इतिहासों के समर्थक हैं...वैसे औरंगजेब तो ख़ुद यहाँ मौजूद है, अगर इसके पास ज़मीर बाकी है तो यह खुद बतायेगा कि इसने सारे इतिहासों में सिर्फ अपने पक्ष को रखा और वही लिखवाया जो इसे रास आया...

–यह ग़लत भी है और सही भी! आलमगीर ने अपनी पेशानी का पसीना पोंछते हुए कहा।

–इसका मतलब?

–यही कि जो मैंने किया वह ग़लत भी था और सही भी था। सरज़मीने हिन्द की नज़र से मैंने बहुत कुछ ग़लत किया, जो मुझे शायद नहीं करना चाहिए था लेकिन इस्लामी मिल्लत की नज़र से जो कुछ मैंने किया, वह शायद सही था! औरंगज़ेब बोला।

–असल में अदीबे आलिया! हमें औरंगज़ेब की एक मनोवैज्ञानिक गुत्थी को गहराई से समझना चाहिए...होता यह है कि या तो आस्तिक लोग सहज भाव से मज़हब की ओर जाते हैं या फिर वो लोग मज़हब की तरफ दौड़ते हैं, जो जानते हैं कि मज़हब के लिहाज से हमने पाप किया है। औरंगज़ेब ने हिन्दुस्तान का ताज हासिल करने के लिए जो जघन्य अपराध किए थे, उसकी ग्रंथि ही इसका पाप-बोध बन गया और पाप-बोध की इसकी यही कुंठा थी, जो इसे मज़हब की ओर मोड़ ले गई और यह कठमुल्लाओं का गुलाम बन गया! श्रीराम शर्मा ने कहा–और यह भारत में हिन्दुओं का दुश्मन बन गया!

–ऐसा भी तो हो सकता है कि हिन्दू इसके दुश्मन बन गए हों और तब दुश्मनी, नफ़रत, राजा और रियाया, विजेता और पराजित, धर्म और सम्प्रदाय की लड़ाइयों का यह नया सिलसिला चला हो!...क्योंकि तब तक बाग़ी साधुओं की परम्परा शुरू हो चुकी थी, जिनके अपने सम्प्रदाय और अखाड़े थे, जो छावनियाँ कहलाते थे...यह छावनियाँ तीर्थस्थानों और बड़े मन्दिरों में स्थापित की गई थीं। ये छापामार साधु एक सैन्य-शक्ति के रूप में संगठित हुए थे। औरंगज़ेब के दौर में जो इस्लामीकरण शुरू हुआ...उसकी प्रतिक्रिया में हिन्दू अवश्य ही संगठित हुए होंगे और लगता है कि इस संगठित साधु सैन्य-शक्ति को ध्वस्त करने के लिए औरंगज़ेब ने खासतौर से मन्दिरों को ढहाया होगा...

–लेकिन इस तर्क को प्रमाणित करने के लिए इतिहास कोई मदद नहीं देता!...और फिर मैं पांडे जी और पट्टाभि सीतारमैया से यह भी जानना चाहूँगा कि काशी विश्वनाथ मन्दिर के ध्वंस में कच्छ की रानी की मनगढ़न्त कहानी जोड़ दी गई, पर मथुरा, उड़ीसा, सोमनाथ, उज्जैन के मन्दिरों में कौन-सी बलात्कारी घटनाएँ हुई थीं, जिनके कारण उन्हें तोड़ा गया? श्रीराम शर्मा ने पूछा।

–इसका जवाब मैं देता हूँ!

आवाज की तरफ सबने देखा। हज़रत शिबली नोमानी बोल रहे थे। सबकी आँखें उनकी तरफ उठ गईं।

–इसका जवाब यह है कि इस दौर में मन्दिर और मस्जिद इबादतगाहों के साथ-साथ अपने-अपने मज़हब के राय-मशवरे के मरकज़ भी हुआ करते थे। इन इबादतगाहों में बग़ावतों की साजिशें तैयार की जाती थीं। ईरानी, हिन्दुस्तानी और अंग्रेज इतिहासकारों का यह कहना ग़लत है कि आलमगीर ने मन्दिर तोड़े इसलिए बग़ावत हुई, सही वजह यह है कि बग़ावत हुई, इसलिए मन्दिर तोड़े गए!

–तो हिन्दुओं की पाठशालाएँ क्यों बन्द की गईं?

–इसलिए कि उनमें हिन्दू पंडित मुसलमान बच्चों को अपनी मज़हबी साइंसें पढ़ाने लगे थे! शाहजहाँ के दौर में दाराशिकोह की शह पर हिन्दुओं के हौसले बहुत बढ़ गए थे...आखिर मुसलमानों को हिन्दू धर्मशास्त्र और विज्ञान पढ़ाने का मतलब क्या था...दाराशिकोह की वजह से हिन्दुस्तान में हिन्दू-तुष्टीकरण नीति शुरू हुई थी...दारा इस्लाम विरोधी था! शिबली नोमानी ने ज़ोर देकर कहा।

–यानी औरंगज़ेब ने इस्लाम के नाम और उसके उसूलों पर सल्तनत चलाने की नीति तय की थी! इसीलिए औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर जज़िया टैक्स लगाया था! श्रीराम शर्मा ने सवाल किया।

–वह इसलिए कि अकबर के दौर से लेकर जहाँगीर के शासनकाल तक हिन्दुओं को सर पर चढ़ा लिया गया था और वे यह भूलने लगे थे कि मुग़लों ने भारत को फतह किया है...शाहजहाँ ने इस भूल को सुधारा लेकिन शाहजहाँ के आख़िरी दिनों में दाराशिकोह ने उन्हें अपने क़ाबू में कर लिया था...हिन्दू लोग मुसलमानों की बराबरी करने लगे थे, इसलिए जज़िया लगाकर उन्हें यह बताना और जताना ज़रूरी हो गया था कि वे अपनी औक़ात में रहें...इसके अलावा शाहजहाँ के दौर में जो बेतहाशा खर्चा मस्जिदें, क़िले और ताजमहल बनवाने में हुआ था, उसकी वजह से शाही ख़जाना ख़ाली हो गया था...

–इनमें से कौन सी वजह अहम थी आलमगीर? अदीब ने पूछा–तुम हिन्दुओं को उनकी औक़ात बताना चाहते थे या खाली हो गए ख़जाने को भरना चाहते थे?

–वह भी सही था और यह भी सही है! औरंगज़ेब ने कहा–मेरे हक़ में या मेरे ख़िलाफ जो कुछ भी कहा जाता है, उसकी दोनों सिम्तें सही हैं...

–तुम अजीब इन्सान हो!

–अजीब न होता तो और क्या होता! हर शहंशाह अजीब होता है, क्योंकि वह शहंशाह होता है...तुम अदीब लोग तो सिर्फ़ हाशियों में बैठ कर कहानियाँ गढ़ते रहते हो! तुम्हारी असलियत और औक़ात मुझे पता है! औरंगज़ेब ने बड़े कड़वे अन्दाज में, बहुत धीमे से मुस्कराते हुए कहा, पर जो कुछ उसने बोला बहुत शाइस्तगी से बोला।

उसकी मुस्कराहट में ज़हर-सा था। फिर वह ख़ुद ही बोलता चला गया, बड़े कोमल अन्दाज में–

–मुझे बताइए अदीबे आलिया...

–अदीबे आलिया! यह सम्बोधन तुम कर रहे हो, जो अभी एक पल पहले अदीबों के बारे में गुस्ताखी से बोल रहे थे।

–हुजूर! मैं बाबर या अकबर नहीं हूँ...मैं वक्त का मारा हुआ एक शहज़ादा था, जिसे हिन्दुस्तान का तख़्त चाहिए था, उसके लिए मैंने हर तरह की कोशिशें कीं, यह कोशिशें ग़लत भी नहीं थीं, क्योंकि मुग़लिया ख़ानदान में तख़्त हासिल करने की शर्तें और कानून तय नहीं थे...मैंने अपने भाइयों-भतीजों को मरवा कर और हज़रत-अब्बा हुजूर को

क़ैद करके वही किया जो मेरे अब्बा हुजूर हज़रत शाहजहाँ ने अपने दौर में किया था...हर दौर के कसूर को उसके वक्त की परम्परा के आधार पर तय कीजिए...

तभी इतिहास के करोड़ों पन्नों से चीखती हुई आवाजें आने लगीं–

–औरंगज़ेब ! तुम ज़ालिम हो ! तुमने पोस्ते का पानी पिला-पिलाकर मुराद को मारना चाहा...जब वह तंदुरुस्त शहज़ादा अफीम के पानी से नहीं मरा, तो तुमने उसे जल्लादों से मरवा दिया...अपने उस छोटे भाई को, जिसे तुमने अल्लाह और पाक क़ुरान की क़सम खाकर अपना शहंशाह मंजूर किया था !

–यह ग़लत है ! शिबली नोमानी ने दख़ल दिया–असल बात यह है कि दारा की फौजों को हराने के बाद...

–लेकिन वो दारा की फौजें नहीं, शहंशाह शाहजहाँ की फौजें थीं ! इतिहासकार श्रीराम शर्मा ने टोका।

–जी नहीं, क्योंकि दारा ने शाहजहाँ की बीमारी के चलते उन्हें अपने काबू में कर लिया था, इसलिए शाही फौजें दारा के हुक्म से निकली थीं, और औरंगज़ेब तथा मुराद की ताकत ने उन्हें तोड़ा था...मुराद एक शेर की तरह लड़ा था...फतह हासिल करने के बाद उसका दिमाग़ खराब हो गया था। वह सोचने लगा था कि दारा, शुजा और औरंगज़ेब को मिसमार करके वह हिन्दुस्तान के तख़्त को हासिल कर लेगा ! इसीलिए उसने औरंगज़ेब की फौज के अहम सैनिक सरदारों को तोड़ना शुरू किया। उन्हें खिलवतें, इनाम और ज्यादा वेतन देकर उसने अपनी तरफ मिला लिया...उसके इन नापाक इरादों का बदला औरंगज़ेब ने लिया। शिबली नोमानी ने अपना तर्क पेश किया।

–और आक़िल खाँ इतिहासकार के मुताबिक इसका बदला लेने का तरीका औरंगज़ेब ने यह निकाला कि पेट दर्द की शिकायत करके मुराद को अपनी छावनी में बुलवाया, उसे ज़रूरत से ज्यादा शराब पिलाई और बेहोशी के आलम में उसके पास एक वेश्या भेज कर उसे शस्त्रहीन कर लिया। तब बेहोशी और वेश्या के साथ मस्ती करने की मदहोशी में उसके तम्बू में घुसकर शेख़मीर ने उसे जंजीरों से जकड़ कर औरंगज़ेब का क़ैदी बना लिया ! इतिहासकार श्रीराम शर्मा ने तंज़ से असलियत बयान की।

–हाँ ! आलमगीर ने यह किया...उसे जंजीरों से बाँध कर सिर्फ़ क़ैद किया...बेहतर तो यह होता कि आलमगीर उसका सिर क़लम करके ख़त्म कर देता...तब हम औरंगज़ेब की दूरदर्शिता को ज़्यादा मुनासिब समझते ! शिबली नोमानी बोले, तो अदालत चीख उठी–

–शिबली नोमानी साहब ! लगता है आप बुद्धिजीवी इन्सान नहीं, समझदार और बुद्धिजीवी इन्सान होने से पहले आप मुसलमान हो जाते हो ! अदालत ने शिबली नोमानी को टोका–यही आपकी दिक़्क़त है...

–हाँ है ! शिबली नोमानी ने कहा–क्योंकि मैं मुसलमान हूँ ! हूँ !

–लेकिन आप मुसलमान नहीं, इन्सान पैदा हुए थे और जब तक आप मासूम इन्सान थे और आपके कान में कलमा नहीं फूँका गया था, तब तक आप मुसलमान नहीं थे...फिर आपका ख़तना हुआ, तब भी आप समझदार नहीं थे...मुसलमान नहीं थे, आपको मुसलमान बनाया गया...अदालत अभी अपनी बात कह ही रही थी कि एक हंगामा-सा बरपा हो गया। अदालत में लोग चीखने चिल्लाने लगे–हमारे मज़हब की तौहीन की जा रही है। यह हम बर्दाश्त नहीं करेंगे!

–खामोश ! कोई मज़हब इन्सान से ऊपर नहीं है...पहले इंसान पैदा हुआ, फिर मज़हब! अदीब चीखा।

तो शिबली नोमानी ने बात का रुख़ पलटने की कोशिश की–अदीबे आलिया, बात आलमगीर की हो रही थी...इस बात को पूरा कर लिया जाए, खुद आलमगीर यहाँ मौजूद हैं...तो मैं बताना चाहता हूँ कि यह इनका बड़प्पन था कि सल्तनत की सारी ताकत होने के बावजूद आलमगीर ने खुद को खलीफ़ा घोषित नहीं किया...और यह भी इनका बड़प्पन था कि इन्होंने इस्लामी शहंशाह के रूप में राज्य किया। अगर अकबर द्वारा डाली गई परम्पराएँ चलती रहतीं तो तैमूरवंश की सल्तनत एक ग़ैर- इस्लामी साम्राज्य में तब्दील हो जाती । आलमगीर ने जब साम्राज्य की जिम्मेदारी संभाली तब तक तहज़ीब और मज़हब के सारे तौर-तरीके करीब-करीब ख़त्म हो रहे थे। शाही दरबार में भी लोग हिन्दुओं के बेहूदे धोतीनुमा पैजामे और पगड़ियाँ पहन कर हाज़िर होने लगे थे...हिन्दू चरण स्पर्श या साष्टांग प्रणाम तब दरबारों में चलता था। ग़ैर- इस्लामी झरोखा-दर्शन शहंशाहों में प्रचलित था। हिन्दू लोग मुसलमान लड़कियों से खुलेआम शादियाँ करने लगे थे...आलमगीर ने इन तमाम ग़लत और ग़ैर-इस्लामी परम्पराओं को बन्द किया और हिन्दू तुष्टीकरण की नीतियों को ख़त्म किया ! इसीलिए आलमगीर ने शरीअत पर आधारित न्यायशास्त्र का ग्रन्थ तैयार करवाया ताकि 'फतवा-ए-आलमगीरी' के मुताबिक इन्साफ अता किया जा सके!

–यानी आप यह साबित करना चाहते हैं कि औरंगज़ेब, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ से ज़्यादा बड़ा मुसलमान है!

–बिलकुल...आलमगीर ने अपनी जड़ों को तलाशा!

–यानी उसकी जड़ें हिन्दुस्तान में नहीं थीं?

–तो क्या वही तैमूरी खून अकबर जहाँगीर, शाहजहाँ, दारा, शुजा और मुराद की नसों में नहीं था?

–था! लेकिन उन्होंने अपने मज़हब की जरूरतों को नज़रअन्दाज़ किया...मज़हब की ताकत का फ़ायदा नहीं उठाया! इसने मज़हब की तासीर को शमशीर की ताकत बख़्श दी...इसीलिए तो मैं इस शहंशाह को औरंगज़ेब नहीं, आलमगीर पुकारता हूँ...क्योंकि राजा जसवंत सिंह और दारा को हराकर जब आलमगीर आगरा पहुँचा तो खुद शहंशाह शाहजहाँ ने अपने इस दिलेर बेटे के लिए आलमगीर नाम की पुश्तैनी तलवार भेंट में भेजी थी!

शिबली नोमानी बड़े जोशो-ख़रोश से बता रहे थे–मज़हब की शक्ति का अगर किसी ने पहली बार इस्तेमाल किया तो वह सिर्फ़ यही दिलेर आलमगीर था!

–कहीं ऐसा तो नहीं कि औरंगज़ेब ने इस्लाम का सहारा अपनी कमजोरियों और ज्यादतियों को छिपाने के लिए लिया हो ?...अदीब ने पूछा तो एक बुजुर्ग इतिहासकार उठकर खड़े हो गए–

–हुजूर, इससे पहले कि आप मेरा परिचय पूछें, मैं खुद ही बताए देता हूँ। मेरा नाम मुहम्मद हबीब है। मैं हिन्दुस्तान की अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में इतिहास का प्रोफेसर था। मुझे कहना यह है कि वक्त पड़ने पर या अपनी ज़रूरत के मुताबिक अपना निजी दबदबा या प्रभुत्व बढ़ाने के लिए बहुतों ने इस्लाम का सहारा लिया। इस्लाम का शोषण सदियों किया गया और आज भी जारी है। पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के दौर में जो तलवार इंसाफ और हिफ़ाजत के लिए उठाई गई थी, उसका ग़लत इस्तेमाल किया गया, बाद में वह तलवार प्रतिशोध और निजी स्वार्थ के लिए उठाई जाने लगी...और उसे इस्लामपरस्ती का नाम दिया गया! सुन रहे हैं आप शिबली नोमानी साहब? मुहम्मद हबीब ने आगे कहा–

–और मैं अदालत के सामने यह बात भी रखना चाहूँगा कि यह सोचना बिल्कुल ग़लत है कि मोहम्मद-बिन-कासिम से लेकर बाबर तक–एक हजार वर्षों तक जो भी आक्रमण हुए वे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं पर हुए! वैसे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस्लाम मात्र एक धर्म का ही उदय नहीं था, इस्लाम एक राज्यशक्ति के रूप में भी उदित हुआ था! और राज्य शक्तियों के नियम अलग होते हैं, धर्म के अलग। मैं ज़्यादा कुछ नहीं कहना चाहूँगा, लेकिन शिबली नोमानी साहब की इस्लामी ज़हनियत का जवाब इतना ही है कि इस्लाम को मंजूर करनेवाला कोई भी हमलावर सिर्फ़ मुसलमान था, लेकिन वह इस्लाम के नाम पर हिन्दुओं के खिलाफ जेहाद लेकर भारत में नहीं आया था।

–यह आप कैसे कह सकते हैं? हज़रत शिबली नोमानी ने टोका।

–मुहम्मद-बिन-कासिम से लेकर बाबर तक जो भी मुसलमान हमलावर हिन्दुस्तान में आया, वह मध्यकालीन युग के यश और धन के लिए हिन्दुस्तान को लूटने आया। वे इस्लाम के ग़ाज़ी नहीं, वे सिर्फ़ अपनी सल्तनतों के, अपने निजी स्वार्थों के बानी थे। इस्लाम को बीच में मत घसीटिए...इस्लाम एक मज़हब के रूप में अलग था, पर जो मुसलमान बना उसने अपनी लूटमार के लिए इस्लाम का परचम उठाया! हाँ, यह ज़रूर कहा जा सकता है कि जो लुटेरे पर्शिया की सांस्कृतिक और धार्मिक क्रान्ति के बाद भारत पर हावी हुए, वे मुसलमान थे...हिन्दुस्तान पर इस्लाम ने नहीं, मुसलमानों ने अपनी मध्यकालीन चेतना और सामंती मूल्यों के तहत स्वार्थों को हासिल करने के लिए आक्रमण किए थे! इस सच्चाई को बारीकी से देखना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के हिन्दुओं पर इस्लाम ने नहीं, इस्लाम स्वीकार करने वाले मुसलमानों ने हमले किए थे, क्योंकि उन्होंने इस्लाम में मौजूद राज्यशक्ति की अहमियत को पहचाना था और उन्हें लगा था कि इस्लाम के नाम पर वे अपनी फौजों को

लामबंद कर सकते हैं...इसके बावजूद सातवीं सदी से सोलहवीं सदी तक का इतिहास बताता है कि मुसलमान ख़ुद मुसलमान से लड़ता रहा! अगर अदालते आलिया चाहे तो अमीर ख़ुसरो, बर्नी और फरिश्ता जैसे अदीबों और इतिहासकारों को बुलाकर असलियत जान सकती है! मुहम्मद हबीब बोलते-बोलते हाँफ कर अपनी जगह बैठ गए।

–अमीर ख़ुसरो, बर्नी और फरिश्ता को बाइज़्ज़त अदालत में हाज़िर किया जाए! अदीब ने हुक्म दिया।

–सर! लेकिन दाराशिकोह अपनी दुःख भरी दास्तान पेश करना चाहते हैं! अर्दली ने अदब से कहा।

–लेकिन भवानी सेनगुप्त कब से इन्तजार कर रहे हैं, अतीत के अलावा हमें इस दौर की नब्ज़ पर भी तो हाथ रखे रहना है, नहीं तो वर्तमान भी अतीत की इतिहास कथा बन जाएगा...लेकिन मैं उतने ही अतीत को देखना और समझना चाहता हूँ, जो इस वर्तमान पर अपनी काली छाया डाल कर हमारी आज की जिन्दगी में नफरत और प्रतिशोध के पाकिस्तानों की नींव डालना चाहता है! अदीब ने अपने कागजों, किताबों, दस्तावेजों और इतिहास के अम्बार के बीच से उठते हुए कहा–दारा शिकोह और अमीर ख़ुसरो, बर्नी और फरिश्ता साहब से बात कर लो। जो पहले आना चाहें, उन्हें बाइज़्ज़त लाया जाए...मैं सबका स्वागत करूंगा...खासतौर से अमीर खुसरो साहब का, क्योंकि वे ज़िला ऐटा के हैं और मैं मैनपुरी का! दोनों ज़िले एक दूसरे की बाँहों में बाँह डाले बैठे हैं। दूसरी बाँह आगरा में उलझी हुई है जहाँ मिर्जा ग़ालिब, मीर और नज़ीर पैदा हुए! तो मेरे पास तो वैदिक आर्यों से लेकर कबीर, अमीर ख़ुसरो और ग़ालिब, मीर तक की विरासत मौजूद है...और अदीब ने पलट कर भवानी सेनगुप्त की ओर देखते हुए पूछा–क्यों दोस्त! हम दाराशिकोह को बुला लें?

–दाराशिकोह के साथ-साथ डॉ. कालिकारंजन कानूनगो को भी बुलवाइए, क्योंकि शिबली नोमानी ने औरंगज़ेब को एक पाक-साफ़ इस्लामी शासक के रूप में पेश किया है...प्रो. हबीब बोल रहे थे–मैं कहता हूँ कि हफ्ते में तीन दिन रोज़ा रखकर क़ुरान शरीफ की प्रतियाँ लिखकर और नमाज़ियों की टोपियाँ सिलकर भी औरंगज़ेब इस्लाम का पैरोकार नहीं था, उसने इस्लाम को अपनी ज़रूरतों के लिए इस्तेमाल किया था। नहीं तो क्या वजह थी कि उसने अपने भाइयों दाराशिकोह और मुराद को मरवा दिया...उसने अपने बड़े भाई शुजा को हिन्दुस्तान से बर्मा की तरफ खदेड़ कर बेदख़ल कर दिया–उसने अपने बाप शहंशाह शाहजहाँ को जिन्दा रहते क़ैद किया और खुद हिन्दुस्तान का बादशाह बन बैठा। ये तो मुग़लिया खानदान या तैमूर की वंश-परम्परा नहीं थी...क्या यह हरकतें इस्लाम या शरीयत के मुताबिक थीं? इसलिए यह मानना पड़ेगा कि औरंगज़ेब मुसलमान तो था, पर वह इस्लाम का बन्दा नहीं, एक ज़ालिम बादशाह था! मुहम्मद हबीब ने कहा तो अदीब ने अर्दली को हुक्म दिया–

–दाराशिकोह, मुराद, दारा के बेटे सुलेमान शिकोह और इतिहासकार कालिका रंजन कानूनगो को फौरन हाज़िर किया जाए!

हुक्म तामील करने के लिए अर्दली ने कदम बढ़ाया ही था कि न्यूयार्क टाइम्स की क्रिस हेजेज हाँफती हुई हाज़िर हुई।

–पता है आपको! धर्मांध लोग ईजिप्ट की 'बादशाहों की घाटी' में क्या कर रहे हैं ?...नील नदी रो पड़ी है...उसके आँसुओं की बाढ़ का पानी मिस्र के हर नागरिक की आँखों में भर गया है...उनकी आँखें डबडबा रही हैं...और वे आँसू भरी आँखों से अपनी सभ्यता का विनाश देख रहे हैं!...बादशाहों की घाटी में तीस सदियों से खामोश लेटे हुए फारोह अपने पिरामिडों में डर से थर-थर काँप रहे हैं वे फारोह जिनसे मध्य ऐशिया और दक्षिण-पूर्वी योरुप थर्राता था...जिनके ऐश्वर्य, ख़जाने और शूर-वीरता के वर्णन पूरी दुनिया में होते थे...जिन्होंने भारतीय और चीनी सभ्यता के उदय के साथ-साथ एक और विराट मानवीय सभ्यता की नींव रखी थी! आज वह पूरा इतिहास और गौरवशाली सभ्यता मुसलमान कट्टरपंथियों और आतंकवादियों के भय से थरथरा रही है...गमाल-इस्लामिया और जेहाद जैसे अंधे इस्लामवादी संगठन सामान्य आदमी की जिन्दगी पर क़हर बरपा कर रहे हैं!

–हाँ! हाँ! तुम लोग क़हर की बात करते हो...हम क़यामत बरपा करेंगे और मिस्र में हम वह कुछ भी जिन्दा नहीं छोड़ेंगे जो इस्लाम से पहले का है! हम उसे बरबाद करके रहेंगे! यह आवाज़ ऐन वक्त पर दूरदराज़ अमेरिका से आई–वहाँ मिस्र का मुल्ला शेख उमर अब्दुल रहमान चीख रहा था, जो अमेरिका में बिना इजाज़त घुस गया था और गरीब, अनपढ़ मुसलमानों को इस्लाम के नाम परा भड़का रहा था।

–इस शेख़ उमर अब्दुल रहमान को यहाँ हाजिर किया जाए! अदालत बोली।

–पर हुज़ूर वह तो फिलहाल अमरीकियों की गिरफ्तारी में है! अर्दली ने बताया ।

–ओह! ठीक है, पर उसकी आवाज़ को मत रोको! आने दो आवाज़! अदालत ने हुक्म दिया।

मुल्ला शेख़ उमर-अब्दुल-रहमान की आवाज़ फिर दहाड़ने लगी–हाँ! हम इस्लाम परस्त हैं! हमने ही अनवर सादात को मारा था क्योंकि उसने इस्राइलियों से कैंप डेविड का समझौता किया था...अब हम हुस्नी मुबारक और हसन-अल-अल्फी की सरकार को भी माफ़ नहीं करेंगे...मिस्र तो है क्या, वहाँ की सत्ता तो हम हासिल करके रहेंगे, पर हम तो पूरे उत्तरी अफ्रीका और दक्षिणी योरुप को भी हिला कर रख देंगे...अल्जीरिया और टर्की को भी हम माफ नहीं करेंगे...क्योंकि ये मुल्क मुसलमान तो हैं, पर ये निधर्मी हो गए हैं, इन्हें हम मज़हब के रास्ते पर लाएँगे!

–मज़हब का यह रास्ता नहीं है! तुम इस्लाम के नाम पर हमारी संस्कृति, सभ्यता और इतिहास को नहीं मिटा सकते! मैं भी मुसलमान हूँ! लेकिन मैं अपने इतिहास से इनकार नहीं करता...मिस्र के पास सदियों पुरानी सांस्कृतिक और बौद्धिक परम्परा है...तुम्हें

कोई हक़ नहीं है कि तुम हमारे फारोहों, हेलिनिकों और ईसाइयों की इस विरासत को मिटा दो ! इसे मिटा कर तुम इस्लाम को बड़ा कैसे साबित कर पाओगे ? इन्हें सामने रखकर ही हम इस्लाम की सौगात को समझ पाएँगे, कि क्यों इस्लाम बड़ा है, क्यों इतना विराट है...

अदालत में आवाज़ तो आ रही थी, पर बाकी मौजूद लोग आवाज़ वाले आदमी को नहीं देख पा रहे थे। अर्दली ने मुश्किल हल कर दी–

–सर ! पहली आवाज़ तो अमरीका से मुल्ला शेख उमर की थी। वह आपने सुनी। इस दूसरी आवाज़ के मालिक हैं मिस्र के काज़ी–जज सईद अशवामी ! मैं देख रहा हूँ कि सईद अशवामी अपने विचारों के लिए खतरा उठाते हुए सशस्त्र सुरक्षा कर्मियों से घिरे हुए हैं, क्योंकि सईद अशवामी जैसे बुद्धिजीवी को जान से मार डालने की धमकी लगातार जारी है और वे इस वक्त भी काहिरा के अपने घर में, सुरक्षा बलों के घेरे में हैं ताकि बर्बर कट्टरपंथियों की धमकी असलियत में न लागू हो जाए !

–ओह ! अदालत चौंकी।

–तभी अल-अहराम अख़बार ने खबर दी–

–फारोहों के मन्दिरों और गीज़ा के पिरामिड में अभी-अभी बम विस्फोट हुआ...है गीज़ा की रेत धुएँ के बादलों की तरह मीनार की शक्ल में आसमान की ओर उठती जा रही है...

–यही होगा अदीब ! यही होगा ! नील नदी पर नावों में बैठ कर मिस्र के गौरव और सौंदर्य को देखनेवाले बीस गोरे सैलानियों को मौत के घाट उतारते हुए गमाल-इस्लामिया का कट्टरपंथी आतंकवादी चीखा–यही होगा ! ये यहूदी और ईसाई यहाँ नाच देखने आते हैं...जिस्म की मंडियों में ये खुलेआम नंगे होकर घूमते हैं और फारोहों के मन्दिरों में जाकर ये तंत्रों और मंत्रों से पूजा करते हैं...हमारा इस्लाम इसे मंजूर नहीं करता...हम तो इन ग़ैर-इस्लामी निशानों, प्रतीकों, पुरानी तहज़ीब के परचमों को मिटाने और ख़त्म करने में दसवीं सदी से लगे हुए हैं ! हमारे उलेमा साई दह्र ने तो तभी इस उड़नेवाले नरसिंह घोड़े स्फिंक्स की नाक तोड़ दी थी...फिर हमारे शेख़ों ने फारोहों के इन मन्दिरों पर हमले किए थे...

–लेकिन यही पुरातन मन्दिर और पिरामिड गरीब को अपने पत्थर देते रहे हैं, ताकि वे अपने घर बना सकें...और तुम्हारे वही लालची शेख, जिन्हें तुम इस्लाम का झंडाबरदार बता रहे हो, चौदहवीं सदी में इन मंदिरों-पिरामिडों को गिराने नहीं, वे इनकी धन-दौलत लूटने आए थे...वे इस्लाम के सिपाही नहीं, वे इस्लाम के नाम पर लूटमार करनेवाले डाकू कबीले थे जिन्होंने अपनी असली पहचान छुपाने के लिए धर्म-प्रचारकों के लबादे पहन लिए थे ! सशस्त्र सुरक्षा गार्डों से घिरे काज़ी सईद अशवामी ने उन्हें लताड़ा–मैं भी काज़ी हूँ...मैं भी इस्लामी शरीअत और हदीस के मुताबिक इन्साफ करता हूँ...तुम इन डाकुओं को, जो मुल्लाओं की पोशाक पहन कर आए थे, इस्लाम का सिपाही कह कर इस्लाम की तौहीन कर रहे हो !

यह तेज बहस जारी थी कि लक्सर मंदिर के उत्तर-पूर्वी तरफ अबू हज्जाज मस्जिद से इमाम वाहिद मुहम्मद हफनी ने भयग्रस्त आँखों से झाँक कर देखा...यहीं, इसी मस्जिद में अपने समय के सबसे बड़े विद्वान अबू हज्जाज दफ्न हैं...और जिनकी 'नाव' का जुलूस आज भी निकलता है...वैसे ही जैसे पुराने मिस्री अपने भगवान अमन की नाव का जुलूस निकाला करते थे...

और इमाम वाहिद मुहम्मद हफनी ऊँची आवाज़ में बोलने लगे–हमें अपनी जिन्दगी, अपनी आस्थाओं के साथ जीने दो...यह पुराने मन्दिर, यह पिरामिड हमारी तहज़ीब के प्रतीक हैं, इन्हें मिटा दोगे तो कहाँ सुकून पाओगे ? इससे इंकार कर दोगे तो पैपीरस का कागज़ बनाकर बौद्धिक दुनिया में क्रांति करने का सबाब कैसे कमाओगे ? रेमज़े के महल में पैपीरस के डंठलों की तरह खड़े, पथरीले खम्भों के बीच, दोपहर की रोशनी से रौशन इमाम वाहिद मुहम्मद बोल रहे थे–सुनो ! यहाँ सदियाँ बोलती हैं...जब तक अपने पुरातन खंडहरों को तुम प्यार नहीं करोगे, तब तक भविष्य को खंडहर होने से नहीं बचा पाओगे ! अरे पापियों ! अबू हज्जाज की यह पाक मस्जिद भी उसी धरती पर खड़ी है, जिसमें पुराने गिरजे और फारोह के मन्दिरों की नींव मौजूद है ! और यहाँ से दरिया नील की तरफ देखो–सामने रोमन स्थापत्य के आलीशान मीनारे खड़े हैं...यह वह जगह है जहाँ तमाम सभ्यताएँ कन्धे से कन्धा मिलाए मौजूद हैं...यह सारी विरासत हमें बताती है कि आज हम जितने जानकार और समझदार हैं, वह इन्हीं के कारण हैं !

–और इसी विरासत को देखने के लिए फ्रांसीसी तानाशाह नेपोलियन आया था...और फारोह और रेमज़े के इन मंदिरों और पिरामिडों के सामने नतमस्तक हुआ था। लौट कर वह अपने फ्रांसीसी संस्कृतिकर्मियों, बुद्धिजीवियों और पुराविदों को लाया था, इसलिए कि मानव की इस प्राचीनतम सभ्यता के मूल तत्वों को पहचाना और जाना जा सके ! यहीं रोमन और ग्रीक आए थे...यूनानी दार्शनिक और इतिहासकार हेरेडोटस आया था और मिस्री सभ्यता के इस चमत्कार को उसने आत्मसात किया था...उसने कहा था कि इन खण्डहरों, इन मन्दिरों, इन बेजान पिरामिडों में एक जीवित सभ्यता साँस ले रही है...सईद अशवामी ने कहा।

–कुछ भी हो ! हम उस अतीत से कोई रिश्ता नहीं रखना चाहते जो इस्लामी नहीं है। यह पिरामिड, ये स्फिंक्स मूर्तियाँ हैं...हमारे रसूल ने मूर्तियों को मंजूर नहीं किया, हम भी इन्हें मंजूर नहीं करते...म इन मूर्तियों को, जो पिरामिड और स्फिंक्स की शक्ल में यहाँ मौजूद हैं, इन्हें तोड़कर और मिटाकर सबाब के हक़दार बनेंगे...ये पिरामिड, ये मन्दिर, ये स्फिंक्स तब टुकड़े टुकड़े होकर गीज़ा के रेगिस्तान में दफ़्न हो जाएँगे ! सुना तुमने !...इन्हें हम इंसान की याददाश्त से खत्म कर देंगे ! यह धमकी मिस्र का एक मामूली आतंकवादी मुल्ला शेख अली याहिया दे रहा था।

–यानी तुम मिस्र में भी अपना अलग मिस्र बनाना चाहते हो! तुम मुसलमान और मुसलमान के बीच भी पाक और नापाक का भेद करना चाहते हो! अदीब ने सवाल किया तो शेख अली याहिया की आवाज़ खामोश हो गई। अमरीका से भी मुल्ला शेख उमर-अब्दुल-रहमान की कोई आवाज़ नहीं आई...

एकाएक सन्नाटा छा गया। कहीं कोई आवाज़ नहीं थी।

अदीब तब बहुत शान से उठा और पूरी दुनिया को सम्बोधित करते हुए बोला– देखा!...ये आवाजें अपने आप ख़ामोश हो गईं! आवाजों और विचारों को मत रोको। उन पर कोई पाबन्दी मत लगाओ...जनमत और जनभावनाएँ खुद इन मनुष्य विरोधी शक्तियों का उत्तर देंगी! यह जानना जरूरी है कि मज़हबों में एकता नहीं है लेकिन यह जानना उससे भी जरूरी है कि हर मज़हब का इन्सानी सन्देश एक है!...लोकतंत्रवादियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि चाहे जितनी भी नकारात्मक, घातक और मनुष्य विरोधी विचारधारा क्यों न हो, उसे खुली, निर्बाध और स्वतंत्र अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए...अभिव्यक्ति की इस आजादी से ही इन निर्मम, विरोधी और घातक विचारधाराओं का स्खलन होगा, इनका शमन होगा, क्योंकि इनके पास अंधी उत्तेजना है, शक्ति नहीं!...

–हुजूर! आप फिर भाषण देने लगे! अर्दली ने अदालत को आगाह किया।

–क्यों ? क्या भारत के न्यायाधीश, पढ़े-लिखे लोग अन्त में हजार-दो हजार पेज का भाषण नहीं देते ?...ख़ैर, मुझे उनकी अच्छी आदतों से बचना चाहिए। फिर भी अपने भाषण के अन्त में मैं कहना चाहूँगा कि पिछले युगों की आवश्यकताएँ निजी, सामरिक और मूलतः आर्थिक थीं...धार्मिक नहीं! उन्हें धर्म, नैतिकता और कबीलाई न्याय-अन्याय के प्रश्नों से जोड़कर धर्मगत बना दिया जाता था...धर्म को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता था और सामूहिक हत्याकांड या धर्म-परिवर्तन-कांड किए जाते थे। आज की दुनिया में यह दोनों ही कांड असम्भव हैं...पिछले युगों की इस ध्वंसकारी प्रवृत्ति को मानवता तिरस्कृत कर चुकी है...फिर भी इनके अवशेष मौजूद हैं। इन वैचारिक खंडहरों से अपने दौर...

–हुजूर! आप फिर...अर्दली ने बीच में उसे आज़िजी से टोका।

–ओह! मैं भूल ही गया...अरे भवानी सेनगुप्त कहाँ हैं?

•

23

इससे पहले कि बोस्निया ओर सोमालिया के मुर्दे दस्तकें देते और उधर ब्राजील और बोलिविया में मारे गए निर्दोष अपनी दास्तान सुनाते, भवानी सेनगुप्त ने उन्हें रोका–

–हाहाकार तो है, पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, हिंसा, हत्या, कष्ट, उत्पीड़न, यातना, बेईमानी, बदकारी के सैलाब उमड़ रहे हैं...खुद भारत में रक्त के तालाबों में कमल उगाए जा रहे हैं...लेकिन फिर भी कुछ ऐसा भी है जो शुभ है!

–हाँ! अदीब ने कहा–जो हमारी अन्तरात्मा की रक्षा भी कर रहा है, जो घटित हो रहा है पर घटित होता हुआ दिखाई नहीं देता, जो सुनाई पड़ता है पर सुना हुआ प्रतीत नहीं होता, जो सोचा जा रहा है पर सोचा हुआ मालूम नहीं पड़ता, जो समझा जाता है पर समझ में नहीं आता...यही हमारे समय की त्रासदी है...क्योंकि हम सब मूल्य बोध के बावजूद मूल्य हीनता की चपेट में हैं!...

–इसीलिए तो मैं साउथ अफ्रीका, इस्राइल और फिलिस्तीन से ईरान होता हुआ लौटा हूँ...ट्यूनिस में मैं यस्सर अराफात से भी मिला और इस्राइल में राबिन और पेरेज़ से भी। यहूदियों और फिलिस्तीनियों ने अपने-अपने पाकिस्तानों की दीवारों को झुका कर आदमी को यह मोहलत दी है कि वे एक दूसरे का मानवीय सच देख सकें और मनुष्य की मौलिक स्वतंत्रता को पहचानने की कोशिश कर सकें! यहूदी और फिलिस्तीनी मानस ने एक दूसरे की धड़कनों को समझा है और बन्दूकें, मिसाइलें और इत्तेफदा के उड़ते हुए पत्थर थम गए हैं! यह एक निर्णायक कदम है! यह समझौता हो गया है कि यहूदियों के इस्राइल में रहने के हक़ को फिलिस्तीनी मंजूर करेंगे और यहूदी उन्हें गाज़ा पट्टी और पश्चिमी तट में खुद अपना देश स्थापित करने और हुकूमत चलाने की गारन्टी देंगे। राजधानी जेरिको होगी और जेरुसलम, गोलन पहाड़ियों का मसला बाद में तय होगा।

भवानी सेनगुप्त बड़े उत्साह से बता रहे थे–

–और उधर दक्षिण अफ्रीका में तीन सौ चालीस वर्षों से चल रहे वर्णभेदी साम्राज्य का अन्त हुआ है...नेल्सन मंडेला ने अन्तिम विजय हासिल की है और लंबी लड़ाई में परास्त होकर गोरों ने दुनिया में रंगभेद की समाप्ति की घोषणा कर दी है...और अभी मैं तेहरान से लौटा हूँ...ईरान की इस्लामी क्रांति को पश्चिम ने दानवी, भयानक और मानव विरोधी घोषित किया था और वे लगातार प्रचार करते रहे कि वहाँ पर मानव मूल्यों की हत्या कर दी गई है...वहाँ नृशंस इस्लाम का उदय हुआ है...मैं खुद वहाँ गया...यह देखने कि पश्चिमी देश पूरब के देशों को किस चश्मे से देखते हैं...ईरान को देखने का उनका चश्मा भी ग़लत है,

इसीलिए पश्चिमवाले ईरान की इस्लामी क्रांति को आत्मसात नहीं कर पाए। अयातुल्ला खोमैनी की इस्लामी क्रांति ने ईरान जैसे सभ्यता सम्पन्न देश को फिर एक बार उसकी धुरी दे दी और आज अपनी धुरी पर लौट कर ईरान अपने क्षेत्र की दोनों बड़ी सभ्यताओं–भारत और चीन के प्रति अक्षय शांति और मैत्री का हाथ बढ़ा रहा है!

तभी शिवसेना का आदमी बीच में बोल उठा–यह मत भूलो कि मुसलमान बर्बर हैं...वह अपने धर्म वालों को भी नहीं छोड़ते तो वह हमें कैसे छोड़ सकते हैं...ईरान और ईराक, दो मुसलमान देश आठ साल तक लड़ते रहे!

–हाँ! लेकिन क्या महाभारत के दोनों लड़ाकू वंश पांडव और कौरव एक ही धर्म के माननेवाले नहीं थे? वे भी तो लड़ते रहे! इसलिए धर्म को बीच में मत घसीटो! भवानी सेनगुप्त की बात सुनो, ताकि कुछ राहत मिले...

तभी बोस्निया के मुसलमानों का हाहाकार आने लगा। अदालत के दरवाजों पर दस्तकों की बौछार होने लगी। चीखों और कराहों से सारा माहौल भर गया। मुसलमान औरतें अपनी इज्जत लूटे जाने की दास्तानें लेकर हाज़िर हुईं...और सर्वों तथा क्रोट लोगों ने जिन मुसलमानों के साथ बर्बर अत्याचार किए थे, वे लगातार चीख-चिल्ला रहे थे–

–क्या हमारी बात सुनने वाला कोई भी नहीं है! कोई भी देश क्या हमारे ऊपर हो रहे अत्याचारों का प्रतिकार नहीं कर सकता? हम बोस्निया में भूखे मर रहे हैं, हमारी औरतों के साथ लगातार अत्याचार और बलात्कार हो रहे हैं, हमारे बेटे घरों से निकाल-निकाल कर मारे जा रहे हैं...हमें बेघर और बेइज्ज़त किया जा रहा है और सारे देश ख़ामोश हैं...बोस्निया का एक मुसलमान मुर्दा अपने मुल्क की हालत बयान कर रहा था...

–लेकिन अब हालत कुछ ठीक हैं। यूगोस्लाविया के क्रोट, सर्ब और मुसलमान एक साथ नहीं रहना चाहते हैं...इसीलिए सबने विभाजन मंजूर कर लिया है! भवानी सेनगुप्त ने बड़ी तकलीफ से कहा–युगोस्लाविया की तीनों जातियाँ समस्त क्षेत्र का बँटवारा करके, स्वतंत्र देश के रूप में अलग-अलग रहने को राज़ी हो गई हैं!

–क्या कह रहे हैं आप? यानी युगोस्लाविया में तीन पाकिस्तान बन गए! वहाँ जातियाँ तो दो ही है–सर्ब ओर क्रोट, तीसरा तो इस्लाम धर्म है, उसके माननेवाले मुसलमान हैं, वे कोई जाति तो नहीं है, वे क्रोट भी हो सकते हैं और सर्ब भी! यानी युगोस्लाविया में भी वही अनुदारता, घृणा और नफ़रत कारगर हो गई? अदीब ने तकलीफ से कहा।

–लेकिन इस बार तो क्रिश्चियंस ने मुसलमानों को खुद अपने से अलग किया है...वे मुसलमानों पर भयानक अत्याचार कर रहे थे...सराजेवो शहर को उन्होंने अपने बमों से खंडहर में बदल दिया है, मुसलमानों का जिन्दा रहना मुश्किल कर दिया है...उनकी औरतों को ईसाई उठा ले जाते हैं, उनके साथ वे इतना गर्हित सलूक करते हैं, जितना पाकिस्तानी फौजों ने बंगलादेश की औरतों के साथ नहीं किया था...उतना तो जापानी फौजों ने कोरियन औरतों के साथ भी नहीं किया था! औरतों के साथ बदसलूकी, ज़िना ओर

पाशविक अत्याचार का इससे जघन्य उदाहरण और कहीं नहीं मिल सकता! और फिर वहाँ तो सब उल्टा हुआ है। इस बार तो सर्ब और क्रोट ईसाइयों ने अपने ही देश के मुसलमानों को अपना पाकिस्तान बनाने पर बाध्य किया है! उनका हुक्कापानी बन्द कर दिया है!

–ये भी एक जघन्य काम है...मनुष्य का मनुष्य के साथ रहने से इनकार करना एक मानवीय जुर्म है धर्म बदलने से इतिहास की जड़ें नहीं बदलतीं! अदीब अभी कह ही रहा था कि गाज़ियाबाद के देहरा गाँव की रिपोर्ट लेकर विशेष संवाददाता ओम प्रकाश हाज़िर हुए। अदीब का दिल धड़कने लगा...ओमप्रकाश को देखते ही अदीब ने गहरी साँस ले कर पूछा–

–क्यों भाई...हिन्दुस्तान के गाज़ियाबाद में फिर कोई खून-खराबा या मारकाट हुई है क्या?

–नहीं! इस बार ऐसा कुछ नहीं है... बल्कि मैं ऐसी रपट लाया हूँ, जिससे आपको, दुनिया की तमाम आहत, संकुल और व्याकुल आत्माओं को कुछ राहत मिलेगी! दुनिया जानती है, राजपूतों और मुगलों के बीच लगातार युद्ध चलता रहा। महाराणा प्रताप ने कभी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की... मुग़ल काल के उसी दौर की कहानी कहता है गाज़ियाबाद ज़िले का देहरा गाँव।... देहरा मुसलमान राजपूतों का गाँव है। ये सिसोदिया हैं और महाराणा प्रताप के वंशज ही नहीं, उनके कुल के हैं। इनका धर्म परिवर्तन औरंगज़ेब के ज़माने में हुआ... ये मुसलमान राजपूत अपने पूर्वज महाराणा प्रताप की मूर्ति अपने गाँव में स्थापित कर रहे । इन लोगों का मानना है कि धर्म परिवर्तन से रक्त नहीं बदल जाता। वे अपना परिचय दोहरा मानते हैं कि वे केवल मुसलमान नहीं हैं, वे मुसलमान राजपूत हैं। साठ गाँवों के साठे में से साढ़े आठ गाँवों में सिसोदिया मुसलमान हैं, बाकी में हिन्दू सिसोदिया, लेकिन ये सभी अपने को एक ही रक्त और एक ही वंश का मानते हैं। इनके पूर्वज पृथ्वीराज चौहान की मुहम्मद गौरी से हुई लड़ाई में ये राजस्थान से यहाँ आए थे। यहीं इन राजपूतों का डेरा पड़ा था, इसी 'डेरा' को आज देहरा कहते हैं। हिन्दू और मुसलममान–दोनों ही सिसोदिया राजपूतों के लिए देहरा एक वंशगत केन्द्रबिन्दु है। साठे में कुल साढ़े आठ गाँव मुसलमानों के हैं पर सब के नम्बरदार-मुखिया हैं–मेहर अली राजपूत! वे कहते हैं–धर्म परिवर्तन के कारण जरूरत पड़ी तो मन्दिर की दीवार के सहारे ही हमने मस्जिद खड़ी कर ली है। आज भी मुसलमान बहन अपनी सन्तान की शादी के समय भइया को भात लाने के लिए बुलाने जाती है तो यही लोकगीत गाती है–'भैया रघुवीर भात हमारो लइयो...' इस मुसलमान बहन के ओठों पर रघुवीर उसकी संस्कृति का शब्द है... विधर्म का नहीं! अदालते आलिया–दिल्ली से गढ़-मुक्तेश्वर तक बीच-बीच में राजपूतों के विभिन्न कुलों के गाँव फैले हैं... हर कुल से कुछ गाँव मुसलमान हुए हैं। साठे के बगल में ही चौरासी है। तोमर हिन्दू मुसलमानों के चौरासी गाँव। बगल में बारह गाँव निर्वाण राजपूतों के

हैं। छह हिन्दू और छह मुसलमान... यही स्थिति इस क्षेत्र के त्यागियों, गूजरों और चौधरियों की भी है इन राजपूतों, ब्राह्मणों ने धर्म परिवर्तन के बाद भी अपनी संस्कृति को तिरस्कृत नहीं किया है... यही स्थिति उधर पश्चिम में अलवर राजस्थान तक फैले मेवाती मुसलमानों की है... वे मुसलमान हैं पर अपनी पुरातन संस्कृति और लोक प्रथाओं से अब भी जुड़े हुए हैं...

–इसीलिए कोई भी संस्कृति पाकिस्तानों के निर्माण के लिए जगह नहीं देती। संस्कृति अनुदार नहीं, उदार होती है... वह मरण का उत्सव नहीं मनाती, वह जीवन के उत्सव की अनवरत शृंखला है... इसी सामासिक संस्कृति की ज़रूरत हमें है क्योंकि वह जीवन का सम्मान करती है!

–हुजूर! यही कोशिश तो मैंने की थी! एक बड़ी शाइस्ता और गूँजती हुई आवाज़ आई थी... सामने एक बेहद खूबसूरत शहज़ादा खड़ा था!

उसे देखते ही अदालत में मौजूद औरंगज़ेब एकाएक चौंका...

–दाराशिकोह... तुम!

–हाँ मैं!

चारों तरफ एक अजीब-सा हैरानी भरा सन्नाटा समा गया। खचाखच भरी अदालत दाराशिकोह को देखती ही रह गई। चारों तरफ अजीब-सी अनुगूंजें भरने लगीं। कुछ आवाजें इस्लामी दरवेशों की थीं, अज़ानों की थीं और उन्हीं के साथ बौद्ध प्रार्थनाओं, ईसाई कोयर की और उन्हीं में मिली जुली मन्दिरों के घंटों और पूजा की थीं, युद्धों की आवाजें भी उन्हीं में गड्डमड्ड हो रही थीं और मरते-कटते सिपाहियों की चीत्कारें भी उसी में शामिल थीं...

ख़बर मिलते ही बाबर अपने बदनसीब परपोते दाराशिकोह को देखने खासतौर से आया था । वह बहुत प्यार से अपने वंशजों को देख रहा था... खासतौर से दाराशिकोह को ! उस वक्त आकाश में सतरंगी इन्द्रधनुष खिले हुए थे।

–अदालते आलिया! मैंने यही चाहा था कि भारत में समझदारी और सहिष्णुता की एक नई संस्कृति जन्म ले...वह संस्कृति जिसे सूफ़ी सन्तों ने मंजूर किया था... ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ही हमारे मुगल वंश के संरक्षक सन्त थे। मैं उन्हीं का मुरीद था। मेरी बहन जहाँआरा भी उन्हीं ही मुरीदा थी...उसने तो 'मूनिसुल-अर्बा' नाम की ख्वाजा की जीवनी भी लिखी थी! दारा अभी बोल ही रहा था कि औरंगज़ेब ने उसे टोका–

–यह सरासर ग़लत है! कंधार से लौटते हुए यह लाहौर के बाबालाली का चेला बना था... फिर बाद में यह लाहौर के फ़कीर मियाँ मीर का शिष्य हो गया था। इसकी बीबी नादिरा बेगम भी उनकी मुरीद बन गई थी! मियां मीर क़ादिरिया सम्प्रदाय का सूफ़ी था... संत अब्दुल कादिर जीलानी का शिष्य! यह उसी सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ और खुद को क़ादिरी और हनफ़ी मानने लगा था!

–हाँ ! लेकिन सूफ़ी-सूफ़ी में भेद कहाँ था ? और फिर अब्बा हुजूर भी तो मियाँ मीर को अपनी अकीदत पेश किया करते थे…और मैं सूफी सन्त अब्दुल कादिर जीलानी की इस पेशकश से सहमत था कि–'नर्क के द्वार सर्वथा बन्द कर दिए जाएँ और स्वर्ग के द्वार मुसलमानों और काफ़िरों-अविश्वासियों के लिए समान रूप से खोल दिए जाएँ!' हुजूर अब्दुल कादिर जीलानी सबका भला चाहते थे और वे मुसलमानों व हिन्दुओं का भेद मिटा देना चाहते थे ! दारा शिकोह ने अपना पक्ष रखा–और हुजूरे आलिया ! मैंने देखा कि हिन्दुस्तान का हर आदमी तौहीद का पैरोकार है…सूफीवाद के तौहीद और वैदिक धर्म के अद्वैतवाद में कहीं कोई फ़र्क नहीं है ! तौहीद का मार्ग समझदारी, समन्वय और दया का है…यह तौहीद ही एकेश्वरवाद का महामार्ग है…लेकिन मैंने खुरासान के सबसे बड़े सूफी संत अबू सईद फज्लुल्लाह के मुताबिक इस बात को भी मंजूर किया कि ईश्वर एक है, लेकिन उससे एकाकार होने के रास्ते सैकड़ों ही नहीं, लाखों और करोड़ों हैं, क्योंकि एकेश्वरवाद का हर पुजारी किस तरह अपने ईश्वर से एकात्म होना चाहता है, यह उसकी आज़ादी है ! तौहीद है ही यही कि न तो वहाँ अपनेपन का अस्तित्व है और न ईश्वर के अलावा किसी और वस्तु का वजूद…यानी वस्तु और व्यक्ति खुद पिघल कर एक ईश्वर में समा जाते हैं ! यह समझ लेने के बाद मेरी तिश्नगी दर-तलाबे तौहीद बढ़ती ही गई…दो लाइनों में कहूँ तो–'जा कारण जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं, परदा दिया भरम का ताते सूझे नाहिं !'

–यह तब भी पागल हो गया था और अब तक पागल है ! शिबली नोमानी ने बीच में हस्तक्षेप किया।

–हाँ ! हर वह शख़्स जो एकत्व-इत्तिहाद से होता हुआ संयोग के उन्माद…सक्रुल-जम की स्थिति हासिल करके आरोहण…उरूज़ की सीढ़ी पर पहुँच कर तौहीद को प्राप्त करता है, वह शख़्स उन्हें पागल ही दिखाई देता है जिनके पास आँखें नहीं हैं…इसीलिए तुम्हारे आलमगीर को सरमद भी पागल दिखाई दिया था। और उस यहूदी संत सरमद को इसी आलमगीर ने जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर क़त्ल करवा दिया था ! आज इस बीसवीं सदी में औरंगज़ेब का वह पाकिस्तान नफ़रत की नींव पर खड़ा दिखाई देता है ओर मेरा हिन्दुस्तान उसी पाकिस्तान की आबादी से ज़्यादा मुसलमानों को अपना धरती-पुत्र मानकर सहेजे हुए है और सामासिक-संस्कृति की नींव पर खड़ा है ! औरंगज़ेब के पाकिस्तान से ज्यादा मुसलमानों की आबादी मेरे हिन्दुस्तान में है ! दाराशिकोह कुछ तैश में बोल रहा था–इस्लाम बर्बर विजेताओं का धर्म नहीं, वह दुनिया को खूबसूरत बनाने वाले सह-अस्तित्ववादियों का धर्म है !…पाक रसूल ने खुद मंजूर किया है कि उनसे पहले अल्लाह ने ईश्वर का रास्ता दिखाने के लिए और रसूलों को भी भेजा है…

अभी यह बातचीत और बहस चल ही रही थी कि फ़लक पर छाये सतरंगी इन्द्रधनुष एकाएक मिटने लगे और आसमान से खून की बरसात होने लगी। अफगानिस्तान

की पथरीली वादियों और चट्टानी पठारों पर कलिश्कनोव बन्दूकों की भयानक आवाज़ तड़तड़ाने लगीं, मासूम बाशिन्दे तड़पने, कराहने और चीखने लगे... वही चीखें मध्य ऐशिया की छाती को चीरती हुईं तुर्की तक पहुँचीं और अफ्रीका के सूडान से मिस्र होती हुई सऊदी अरब को हिलाने लगीं... और पाकिस्तान की सरजमीं से होती हुईं कश्मीर तक पहुँच कर और भी ज़्यादा तबाही ढाने लगीं!

–ये दरिन्दे कौन हैं? अदीब ने खून की बारिश में लथपथ तमाम मुल्कों के मुर्दों को अपनी बाँहों में लेते हुए पूछा तो पत्रकार निखिल चक्रवर्ती परेशान से भीतर आए...

अदीब ने उठकर उनका स्वागत किया।

–अदीब! तुम्हें पता है कि आकाश पर छाए हुए इन्द्रधनुष क्यों मिट गए? निखिल चक्रवर्ती ने परेशानी से पूछा–क्या तुम्हें यह पता है कि खून की यह बारिश क्यों हो रही है?

तब तक देवास से प्रभु जोशी खून की बारिश में बरबाद हो गई अपनी पेंटिंग्स लिए हुए, तड़प कर बताने लगे–अदीब भाई साहब! मेरी इन पेंटिंग्स ने तो सौन्दर्य का सृजन किया है... यह तो सभी देशों के सच की कलाकृतियां हैं... इस खून की बारिश को क्या अधिकार है कि ये मेरे सारे सृजन को मिटा दे!

–ऐ अदीब! ए कलाकार! निखिल चक्रवर्ती ने घायल आवाज़ में कहा–अफगानिस्तान से मध्य एशिया तक और ईराक के कुर्दिश इलाकों पर से तुर्की, उत्तर अफ्रीका को घेरती, मिस्र से सऊदी अरब तक यह जो रक्त-वर्षा हो रही है, यह उन मुजाहिदीनों के कारण है, जो अफगानिस्तान से फ़ारिग होकर नए युद्ध की तलाश में घूम रहे हैं!

–क्योंकि वे दिशाहीन सैनिक अब जेहाद के नए सीमान्त खोज रहे हैं... वे मुजाहिदीन जो रूस के खिलाफ़ नायक थे, अब अफगानिस्तान के गृह युद्ध के साथ-साथ नायक से खलनायक बन गए हैं! इनकी यही नियति थी! आज वे ही मुल्क इन कट्टर और अन्धे मुजाहिदीनों का शिकार हैं, जिन्होंने इन्हें जन्म दिया था। यह भस्मासुर वाली स्थिति है !

–हाँ! यह सही है! यह फंडामेंटलिस्ट जिन्हें खुद अरब मुल्कों ने अफगानिस्तान को आज़ाद करने के लिए जन्म दिया था, इनकी कारस्तानियों से अब परेशान हैं। ये बेकार हो गए मुजाहिदीन अब एक नए युद्ध की तलाश में भटक रहे हैं!... इन युद्ध और रक्त पिपासु मुजाहिदीनों ने मिस्र, अल्जीरिया, जोर्डन और ट्यूनिसिया में तहलका मचा रखा है...

तभी विएतनाम के जंगलों से कुछ अमरीकी फौजी निकल कर आए। वे वनमानुष की तरह लग रहे थे और चीख रहे थे–

–युद्ध कहाँ है। युद्ध कहाँ है?

–विएतनाम युद्ध दशकों पहले समाप्त हो चुका है! प्रभु जोशी ने उन्हें समझाना चाहा–जैसे विएतनामियों ने तुम्हें जंगल में खदेड़ दिया था, वैसे ही उन्होंने तुम्हारी अमरीकी फौज को अपने देश भाग जाने के लिए मजबूर कर दिया था! वे दशकों पहले परास्त होकर अपने देश जा चुके हैं... विएतनाम-युद्ध समाप्त हो चुका है!

–नहीं! वे वनमानुष चीखे–युद्ध कभी समाप्त नहीं होता!

–क्योंकि तुम उसे समाप्त होने नहीं देते! तुम्हारी राइफलें ज़ंग लगने से कुन्द हो गई हैं, तुम्हारी बन्दूकों की नलियां और कुन्दे जड़ हो गए हैं और उसी जड़ता में तुम्हारी बुद्धि क़ैद हो चुकी है! तुम युद्ध ही चाह सकते हो... युद्ध और विनाश...

–कुछ भी हो, हमें केवल युद्ध चाहिए!

–जो युद्ध में शामिल नहीं हो पाएँगे वे अपने समाजों के लिए डकैत और हत्यारे बन जाएँगे! ऐ अदीबे आलिया! आप हमारी मजबूरी क्यों नहीं समझते... हम युद्ध लोलुप, रक्त-पिपासु नहीं थे। हम भी इन्सान की औलाद की तरह मासूम पैदा हुए थे... पर सत्ता और साम्राज्य की स्पर्धा ने हमें, अपने हितों के लिए दरिन्दों में बदल दिया है... हमें कोई और हुनर नहीं आता, हमें बस मौत का खेल खेलने का हुनर आता है... काश! हमें कुछ और सिखाया गया होता, तो हम भी खेत-खलिहानों, कारखानों में काम कर रहे होते... कहते कहते एक अफगानी मुजाहिदीन रो पड़ा।

उसके आँसुओं में जंगल से निकले अमरीकी फौजियों के आँसू भी घुल-मिल गए ...

–अब हम क्या करें? वे फौजी समवेत चीखे–हमारी नियति यही है कि हम लड़ते रहें! हम शापग्रस्त हैं अदीबे आलिया! शापग्रस्त! हम मौत के सिवा किसी चीज़ को जन्म नहीं दे सकते!

कहते हुए वे हजारों तालिबानी और अमरीकी सैनिक, अमरीकी, चीनी और रूसी हथियारों को लिए हुए बोस्निया, सोमालिया, जोर्डन, मिस्र, लीबिया, ट्यूनिसिया की ओर दौड़ पड़े... मौत का अंधड़ चलने लगा। रक्त की नदी बहने लगी और उसी में तमाम खूनी धाराएँ मिलने लगीं। अल्जीरिया से इस्लामिक सालवेशन फ्रंट की, जोर्डन से मोहम्मदी आर्मी की। ट्यूनिसिया से इस्लामिक पार्टीकी, कश्मीर से हिजुबुल मुजाहिदीन, लश्करे-तोइबा, जे.के.एल.एफ. जैसी दसियों तंजीमों की। कोहराम मचा हुआ था... और वह कोहराम अदालत के अहाते से निकल कर दुनिया के मुसीबतज़दा मुल्कों की ओर हल्ला बोलता हुआ चला गया।

अदीब अपनी कनपटियाँ कचोट कर बैठ गया।

तभी उसके कानों के बन्द दरवाजों को भेदते हुए दाराशिकोह की आवाज़ आई–

–हुजूरे आलिया ! मैं अपने मुल्क को इन्हीं खूनी अंधड़ों से बचाना चाहता था। मेरा मुल्क दुनिया की सबसे बड़ी तहज़ीब का केंद्र है... हमारी तहज़ीब ने लोहे और बारूद के भौतिक हथियार नहीं, आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक हथियारों का अन्वेषण किया था। हमने धर्मान्ध मुजाहिदीन पैदा नहीं किए। हमने पीर, फ़कीर, सूफ़ी, संत, दरवेश और महात्मा पैदा किए... हमारे जंगलों से युद्ध-युद्ध पुकारते दरिन्दे नहीं, शान्ति-शान्ति का सन्देश देते साधु-संत निकलते हैं... इसीलिए तख़्तो-ताज से पहले मैंने इन्सानी ईमान की तलाश की थी और तौहीद के उसी आलम में मैंने शाह दिलरुबा जैसे फ़कीर और सन्त को लिखा था कि मुझ जैसे फ़कीर के हृदय से इस्लाम के बाह्य अंग अब ग़ायब हो गए हैं और सच्चा कुफ्र–सच्ची आस्तिकवादी नास्तिकता मुझमें प्रकट हो गई है... मैं जनेऊधारी मूर्तिपूजक हो गया हूँ... नहीं, मैं स्वयं अपना उपासक, खुदपरस्त हो गया हूँ... क्योंकि हर मूर्ति में जीवन छुपा हुआ है और कुफ्र–अविश्वास के नीचे विश्वास–ईमान छिपा हुआ है। इस ईमान को मैं नहीं तोड़ सकता। तोडूँगा तो इन्सान हर तरह के विश्वास, ईमान से रहित हो जाएगा। यह ईमान ही मनुष्य के अस्तित्व की कुंजी है, क्योंकि इसी ईमान के सहारे वह 'बहु' को 'एक' में पैबस्त पाता है। सच्चा मुसलमान यही देखता है... बहुत्व को एकत्व में देखना ही वहिदिय्या है यही तौहीद का फ़लसफ़ा है ! यही एकत्ववाद है... ईश्वर के नाम की एकता नहीं, वे नाम हमेशा अलग-अलग रहेंगे, पर मज़हबों में मौजूद एकत्ववाद के बारे में कोई भी मतभेद किसी मज़हब में नहीं है !

अभी दारा यह कह ही रहा था कि फिर तोपें गरजने लगीं इमारतों की नीवें हिलने लगीं... प्रभु जोशी ने फौरन राजेंद्र माथुर को आवाज़ दी। आवाजें आने लगीं–

–अफगानिस्तान का गृह युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। जलालाबाद सन्धि बेकार हो गई है ! अब यहाँ के खलनायक आपस में लड़कर यह तय करना चाहते हैं कि खलनायकों का खलनायक कौन है। कल रात से यह खलनायक एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं तभी से अफगानिस्तान के हर शहर की दीवारें थर्रा रही हैं... यहाँ की खूनी शतरंज के सारे मोहरे अपने पाले बदल चुके हैं... चारों तरफ से शैलिंग हो रही है... राकेट्स गिर रहे हैं बमबारी लगातार जारी है। हर बस्ती की मासूम जनता अपने बाल-बच्चों को लेकर पाकिस्तान की सरहद की ओर भाग रही है... काबुल तबाह हो चुका है... मज़ारे शरीफ शिकस्त खा के कराह रहा है...

–ओह ! काबुल तबाह हो गया... तब तो मेरी कब्र भी मिसमार हो गई होगी... मैं अब लौट कर कहाँ जाऊँगा ! कहाँ सोऊँगा... बाबर परेशानी से बोला।

–यहाँ जिन्दा लोगों के लिए जगह नहीं है, ताजे मुर्दे लावारिस पड़े हुए हैं... तुम तो फिर भी इतनी सदियों तक आराम से सो लिए !... राजेंद्र माथुर की आवाज़ ने बाबर को जवाब दिया ओर आगे का हाल बताने लगी–

–असल में सोवियत सेनाओं की वापसी और नजीबुल्ला सरकार का तख्ता पलटने के बाद यहाँ अमरीकी डालर की आमद बन्द हो गई है। अफगानिस्तान का पठान सऊदी अरब और पाकिस्तान के कट्टर इस्लामीकरण की जंजीरों को भी मंजूर नहीं कर पा रहा है... क्योंकि उसके खून में आजादी मौजूद है। उसका इस्लाम भी अन्य मुल्कों के इस्लाम से आज़ाद है...

–इस्लाम हर जगह आज़ाद है ! सैफुद्दीन सोज़ ने दखल दिया। वे हुमायूँ रोड, दिल्ली से आए थे–कश्मीर का इस्लाम कश्मीर में, ईरान का ईरान में, मिस्र का मिस्र में और टर्की का इस्लाम टर्की में आज़ाद है... और इस्लाम का यही बड़प्पन है कि उसने धरती के हर हिस्से की तहज़ीब को अपना बनाया। इसीलिए कश्मीरी मुसलमान कश्मीरी है, वह ईरानी या तूरानी मुसलमान नहीं है। वह पाकिस्तान के पंजाबी मुसलमान के साथ एक घंटे जीवित नहीं रह सकता... वह अपनी सांस्कृतिक परम्परा में जीनेवाले कश्मीर के हिन्दू पंडितों के साथ सदियों जीवित रहा है और रहेगा। लल्लेश्वरी और हब्बा खातून का बँटवारा कश्मीर में नहीं हो सकता। पनुन कश्मीर के जो कश्मीरी हिन्दू पंडित मेरे इलाके में हिन्दू होमलैंड माँग रहे हैं, वे कश्मीर के हिन्दू पंडितों का नुकसान कर रहे हैं... हमारी परम्परा सूफी-ॠषियों की परम्परा है। कट्टरपंथ की परम्परा नहीं, यह कश्मीरी इस्लाम की एक नई परम्परा है जो ज़ैनुल आबदीन, लल्लेश्वरी और हब्बा खातून से होती हुई हम तक पहुँची है।

अदीब ने तब टोका–तो सैफुद्दीन सोज़ साहब, कश्मीर के ये हिन्दू पंडित अपना हिन्दू होमलैंड, अपना 'हिन्दू पाकिस्तान' क्यों माँग रहे हैं?'

–पाकिस्तान से पाकिस्तान पैदा होता है... यह छूत का एक रोग है! जब तक धर्म, नस्ल, जाति और दुनिया की पहली शक्ति बनने का नशा नहीं टूटता, जब तक सत्ता और वर्चस्व की हवस नहीं टूटती तब तक इस धरती पर पाकिस्तान बनाए जाने की नृशंस परम्परा जारी रहेगी... निखिल चक्रवर्ती ने हस्तक्षेप किया।

–युगोस्लाविया बरबाद हो गया... उसी तरह अफगानिस्तान बरबाद हो रहा है... तालिबानों के पास अब पैसा कहाँ है? वह तो नशीली दवाइयों की तस्करी से ही आएगा... नशीली दवाइयों के उन रास्तों पर हक़ जमाने के लिए काबुल में सत्ता की जरूरत है। जो सत्ता में होगा, वही राज करेगा और नशीली दवाइयों के अरबों-खरबों रुपयों की आमदनी का हक़दार होगा!... इसीलिए पाकिस्तान की इंटर सर्विसेज एजेंसी तालिबानों के साथ सक्रिय है और चाहती है कि उसके जरिए वह अपनी आमदनी का रास्ता खुला रख सके... पाकिस्तान सरकार के पास भी इतना पैसा नहीं कि वह आई.एस.आई. को जीवित रख सके, इसलिए आई.एस.आई. को जीवित रहने के लिए नशीली दवाइयों के उद्योग पर कब्जे की ज़रूरत है लेकिन तकलीफदेह स्थिति यह है कि नशीली दवाइयों के हेराती व्यापारी अब मशाद नहीं जाते, बल्कि वे पाकिस्तान के दक्षिण-पूर्वी इलाकों में जाते हैं, कंधार और क्वेटा जाते हैं... वे बलूचिस्तान के दक्षिणी सागर तटों और उन इलाकों तक दौड़ लगाते हैं

जो ईरान और पाकिस्तान की सरहदों के सरहदी शहर हैं! यहीं, इसी इलाके में रहती हैं वे जनजातियाँ और कबीले, जो हमेशा आज़ाद रहे हैं। ये कबीले अपनी आजादी को आज भी पाकिस्तान की सत्ता को सौंपना नहीं चाहते। अपनी आजादी के दीवाने यह कबीले बेहद खुद्दार हैं, फिर वे चाहे वज़ीर कबीले के लोग हों, मसूद हों, भट्टानी, मंगल, बंगश, ओरकज़ई, आफरीदी, मोहमंद, उतमनखेल या तर्कलनरी कबीले के लोग!

तभी एक गूँजती पर बीमार-सी आवाज़ आई–

–मुग़लिया खानदान और उसकी विरासत के बिना अफगानिस्तान का इतिहास तय नहीं होगा...और हिन्दुस्तान का इतिहास भी उसके बिना पूरा नहीं होगा! इसलिए आपको मुझे सुनना पड़ेगा अदीबे आलिया!

–आप कौन हैं?

–मैं शाहेजहाँ हूँ...शाहेजहाँ, यानी शाहजहाँ! मैं अपने हिन्दुस्तान के शहर आगरा के पथरीले क़िले से उठकर आया हूँ। मेरी बेटी जहाँआरा मुझे यहाँ तक लाई है...मैं बेहद बीमार हूँ...अभी कल ही हकीम बाशी ने मुझे सेहत का गुस्ल करवाया है!

–लेकिन...लेकिन...आप शाहजहाँ! यहाँ कोई भी आपको पहचान नहीं पा रहा है और न मैं आपको पहचान पा रहा हूँ! अदीब ने असमंजस से कहा।

–आप कैसे पहचानेंगे! वक्त को बुलाइए, वह मुझे पहचान लेगा...बीमारी की वजह से मैं बहुत बदल गया हूँ अदीबे आलिया...मैं वह नहीं दिखाई देता, जो मैं हुआ करता था...अदीब! मैं तुम्हें इतिहास में लेकर चलता हूँ। उस इतिहास में, जो न तुम्हारे शिबली नोमानी का है न काज़िम शीराज़ी का। वह इतिहास साक़ी मुस्ताद खाँ का भी नहीं है ओर न काफ़ी खाँ का। और अगर तुम आक़िल खाँ का नाम लोगे, तो उसका लिखा हुआ इतिहास भी झूठा पड़ जाएगा, क्योंकि उसने चाहे 'दरबार से आज़ाद इतिहास' लिखा हो, पर वह भी तो उसी वक्त का गुलाम था, जो वक्त दरबार का गुलाम था! कहकर शाहजहाँ हाँफने-सा लगा। जहाँआरा ने उसे सँभाला।

–मैंने वह वक्त बड़ी तकलीफ से गुज़ारा है अदीब! बहुत तकलीफ से! कहते कहते और शून्य में देखते शाहजहाँ की आँखों में आँसू तैर आए थे। जहाँआरा ने अपनी ओढ़नी में अब्बा हुजूर के उन मोतियों को चुन लिया।

–काश! मैं वह सब देखने के लिए जिन्दा न रहता... जहाँआरा ने मेरी बीमारी के दौरान खिदमत करते हुए, मुझसे बहुत कुछ छिपाए रखा। अगर दारा का बेटा, मेरा पोता सिपहर शिकोह मेरे पास न आया होता तो मुझे कुछ मालूम ही न पड़ता।

–लेकिन अब्बा हुजूर...मैंने वो तकलीफदेह खबरें आपकी गिरती सेहत की वजह से नहीं दीं, मैं नहीं चाहती थी कि शुजा, औरंगज़ेब, मुराद और रोशानआरा की साजिशों की चोट से हिन्दुस्तान के शहंशाह और मेरे अब्बा हुजूर का दिल टूटे...हमारे लिए आपकी जिन्दगी ज्यादा जरूरी थी, मुल्क की सल्तनत नहीं!

–मुझे मालूम है बेटी... सब मालूम है! तकलीफ इस बात की है कि औरगंजेब और रोशनआरा, मेरे एक बेटे और एक बेटी ने मिलकर मेरे ख़िलाफ साजिशा की! शाहजहाँ फिर बहुत पस्त आवाज़ में बोला।

–यह बात ग़लत है, आलमपनाह! शिबली नोमानी ने बीच में टोका–औरंगज़ेब और रोशनआरा पर जो इल्ज़ाम आप लगा रहे हैं, उसे इतिहास भी मंजूर नहीं करता... उस दौर का इतिहास यह नहीं कहता!

–इतिहास बड़ा है या इतिहास बनानेवाला! अदीब ने नोमानी साहब को टोका–इतिहास कहे न कहे, पर मेरा दिल कहता है कि रोशानआरा ने जामा मस्जिद के शाही इमाम और कासिम खाँ को अपनी साजिश में ही नहीं, अपने प्रेमपाश में भी लपेट लिया था... वह चाहे उसका नाटक ही रहा हो, पर रोशनआरा ने एक खूबसूरत शहज़ादी होने का भरपूर फ़ायदा उठाया... और नोमानी साहब! एक अदीब के दिल की गवाही किसी भी इतिहास लेखक के तर्कों की गवाही से ज्यादा बड़ी और महत्वपूर्ण है!

शिबली नोमानी फिर कुछ कहना चाहते थे तो शाहजहाँ ने अदीब का ध्यान अपनी तरफ मुखातिब कर लिया–अदीब, इस बहस में क्यों पड़ते हो, कुछ लोग सच्चाइयों के लिए नहीं, सिर्फ बहस करने के लिए पैदा होते हैं... छोड़ो इस बहस को... मैं चाहूँगा कि तुम अपने मन और अपने वक्त की आँखें लेकर मेरे दौर में दाख़िल हो जाओ... और देखो कि तब क्या हुआ था और जो हुआ वह क्यों हुआ था!

शाहजहाँ के यह कहते ही वक्त पीछे दौड़ने लगा। लड़खड़ाती सदियाँ उलटने लगीं... और आकर दिल्ली पर रुक गईं।

•

24

वक्त हाँफता-लड़खड़ाता हुआ आया और आकर दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों का सहारा लेकर बैठ गया। एक भिश्ती मशक लिए गुज़र रहा था। अदीब ने उसे पुकारा, और वक्त को पानी पिलाने के लिए कहा। भिश्ती ने चाँदी के कटोरे में पानी निकाला और उसे पकड़ा दिया। वक्त ने पानी पीकर राहत की साँस ली।

–अदीबे आलिया ! वक्त ने गहरी साँस लेकर कुछ ठीक होते हुए कहा–वक्त के साथ एक बदवक्त भी होता है। बदवक्त की मार से मैं बहुत बार लहूलुहान हुआ हूँ...यह सदी मेरी नहीं, उसी बदवक्त की है क्योंकि हिन्दुस्तान की मुग़लिया सल्तनत बरबाद होने के कगार पर है...हिन्दुस्तान के ताज के लिए यहाँ साज़िशों का दौर चल रहा है। अकबर और जहाँगीर का दौर खत्म हो चुका है। शाहजहाँ बीमार है।

दिल्ली से ही अदीब को दिखाई दिया...आगरा के किले की बारादरी में शाही पलंग पर बीमार शाहजहाँ लेटा हुआ है। जहाँआरा उसके माथे पर हाथ फेर रही है।

–बादशाह बेगम !

–जी अब्बा हुजूर !

–समझ में नहीं आता। इस सल्तनत की किस्मत में क्या लिखा हुआ है...ग़लती मेरी है बादशाह बेग़म...मैंने अपने चारों बेटों को अच्छी और इल्मी तालीम नहीं दी, शायद इसीलिए यह चारों चार दिशाओं की तरह अलग-अलग चल पड़े...दारा तौहीद की तलाश में उपनिषदों की ओर चल पड़ा, वज़ीर सादुल्ला खाँ की गिरफ़्त में आकर औरंगज़ेब कट्टर और तास्सुबी मुसलमान बनता जा रहा है, सुना है शुजा शिया बनने की ओर झुकता जा रहा है और वह नामुराद मुराद तो बस शराब और शबाब का गुलाम हो गया है...

अदीब ने गौर से देखा–वक्त और सिकुड़ गया। फिर वह एक खूबसूरत सुनहले पंछी जैसे सोनहंस में बदल गया, जैसा पंछी कभी बाबर ने आगरा की गद्दी जीतने के बाद पहली बार देखा था। सोनहंस हवा में उठती-गिरती लहरों की तरह पंख चलाकर एक दिशा की ओर उड़ने लगा। उसके पंखों में कोई आवाज़ नहीं थी लेकिन तरह-तरह की रोशनियों के टुकड़े उसके बर्फ़ से सफेद पंखों को छूते हुए गुज़रने लगे...और रोशनी के वे टुकड़े कागजों की तरह इधर-उधर उड़ने लगे...

देखते-देखते वे कागज़ जैसे पूरे ब्रह्मांड में भर गए और फिर ग्रन्थों की शक्ल में तब्दील होने लगे...बादशाहनामा,अमले सालेह,आलमगीरनामा,लतीफ़-उल-अख़बार, तारीख़े शुजाई, मुन्तख़ाबुल-लुबाब, मसीरुल-उमरा, दबिस्तान-उल-मज़ाहबि-ओशी,

मीरात्-उल-ख़ियाल, वक़ाते-आलमगीरी, फय्याद-उल-क्वानीन, माथिर-ए-आलमगीरी सामने आने लगे...मनुची और बर्नियर के वृत्तान्तों के पन्ने फड़फड़ाने लगे...दस्तावेजों का एक महल-सा बन गया!

अदीब उस महल में घुसा तो देखता ही रह गया। दस्तावेजों की कितनी बड़ी दौलत है हिन्दुस्तान के पास! दस्तावेजों का वह महल, पके बेल की मदहोश कर देने वाली महक से भरा हुआ था...उसमें फारस की महक थी, तुर्की की भी और ख़ुरासान, फ़रगना, समरकंद, अंदिजान, खुजिंद, बल्ख, बुखारा, ग़ज़नी, कंधार, काबुल, पेशावर, लाहौर और न जाने कितने शहरों, बाशिन्दों और मुल्कों की भी। वैदिक, बौद्ध धर्म और इस्लाम की महक भी। हजारों लाखों सोच सकने, सोचनेवालों के बुत उस महल में मौजूद थे...और तभी रेगिस्तानों से बालू के सैकड़ों बगूले उठने लगे...और उन गर्म हवाओं के साथ-साथ एकाएक सर्द हवाएँ भी आने लगीं और...हिन्दूकुश, पामीर और शिवालिक की पहाड़ी श्रेणियों पर बर्फ़ पड़ने लगी। अंदिजान, ख़ुरासान, समरकंद और पेशावर के मैदानों में ओले पड़ने लगे। तभी उधर लद्दाख, कश्मीर और तिब्बत में पतझड़ आया और चिनार सुर्ख होकर झरने लगे, सफ़ेदे निहंग हो गए और चीड़ के जंगलों के नीचे बादामी सुइयों के कालीन बिछ गए। मौसम बड़ा अजीब था...

तभी वक्त ने आवाज़ दी–ऐ अदीब! सारी सभ्यताएँ, सारी किताबें तेरे सामने खुली पड़ी हैं...इन्हें पढ़ और दुनिया को सुकून का रास्ता दिखा...

–ऐ मेरे वक्ते-आलम! हर किताब कोई न कोई रास्ता दिखाती है, लेकिन हर दौर अपनी किताब लिखना चाहता या लिखवाता है...इसलिए हर सच्ची किताब झूठी बन जाती है और हर झूठ सच बन जाता है! ऐसे में मैं क्या करूँ?

–ऐसे में...ऐसे में तू सिर्फ इस कायनात के आँसुओं का रंग देख...वही जो तूने मारिशस के टुशरॉक होटल के पानी में देखा था...जो अपने दौर के आँसुओं का रंग पहचान लेता है, वही अपने दौर के सही अर्थों को खोज सकता है...ऐ अदीब अपने आँसुओं के समन्दर को सँभाल...जिस दौर के आँसू सूख जाते हैं, उस दौर का अदीब मर जाता है...जिन्दगी का तकाज़ा है तू इस ज़रूरी सफ़र पर निकल जा!

सत्रहवीं सदी सामने खड़ी थी।

और तब अदीब ने आवाज़ लगाई–शहंशाह बाबर,औरंगज़ेब! सब अपने-अपने सिंहासनों से हट जाएँ, क्योंकि वक्त का प्रामाणिक पैमाना अपने तराजू पर सबको ठीक-ठीक तौलना चाहता है!

वक्त के हरकारे दौड़ने लगे। एलची और जासूस खबरें देने लगे–

–हुजूर! शहंशाह अकबर की सुलेहकुल नीति को जारी रखते हुए दारा शिकोह ने अपने बेटे सुलेमान शिकोह की शादी का पैग़ाम मिर्जा राजा जयसिंह की भांजी के लिए भेजा है, साथ ही उधर शहंशाह शाहजहाँ के दूसरे बेटे शुजा और तीसरे बेटे औरंगज़ेब के

बीच एक गुप्त पारिवारिक सन्धि हो गई है।शुजा की बेटी गुलरुखबानू की सगाई औरंगज़ेब के बड़े बेटे सुल्तान मुहम्मद से हो गई है! हालाँकि इसे गुप्त रखा गया लेकिन फिर भी यह खबर फैलती जा रही है। मिर्जा राजा जयसिंह की भांजी का हाथ माँग कर दारा शिकोह ने अपनी उस भयानक ग़लतफहमी का प्रतिकार कर लिया है जो कंधार की तीसरी घेराबन्दी के दौरान उन दोनों के बीच हो गई थी, जिसे लेकर सम्बन्ध टूट जाने के कगार पर पहुँच गए थे।

अर्दली ने टीप लगाई–देखा आपने...मुग़लिया दौर में शादियाँ भी शतरंज की चालों की तरह चली जाती हैं। यही दारा और मिर्जा राजा जयसिंह के बीच हुआ है और यही औरंगज़ेब के लड़के और शुजा की लड़की के बीच हुआ है...इतनी बड़ी सल्तनत को कायम रखना कोई मामूली बात नहीं है।

तभी एक और दूत खबर लेकर आया–हुजूर! मेवाड़ के महाराणा ने चित्तौड़गढ़ की मरम्मत बड़े पैमाने पर शुरू कर दी है। इससे बहुत बड़ा बखेड़ा खड़ा हो सकता है...

तीसरे दूत ने आकर खबर दी–हुजूरे आला! इस वक्त शहंशाहे आलम शाहजहाँ के दरबार में कुछ अहम फैसले लिए जा रहे हैं। मैं खुद देख कर आ रहा हूँ...मेवाड़ का मसला उठते ही शहंशाहे आलम ने अपने आला वज़ीर सादुल्ला की तरफ देखा। उसकी भौंहों में गाँठें पड़ गईं। लेकिन बहुत शाइस्तगी से उसने कहा–इस मरम्मत के पीछे के इरादों को जानना ज़रूरी है। राजपूतों, खासतौर से मेवाड़ के सिसोदियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता...

शहज़ादा दारा ने सादुल्ला के तेवरों को भाँपने की कोशिश की...

–हाँ! मुझे इस बात का अहसास है कि दारा ने क्या सोचा होगा! वक्त ने कहा–दारा जानता है कि सादुल्ला पाँच वक्त का नमाज़ी है और कट्टर सुन्नी। उसके दिलो-दिमाग़ में यह बात बहुत गहरे पैठी हुई है कि मुग़लों ने हिन्दुस्तान को फतह किया है, इसलिए शासक और शिासत का भेद बनाए रखना बहुत जरूरी है। इस बात को लेकर दारा और सादुल्ला में कई बार नाचाकी भी हो चुकी है। मुझे याद है, भरे दरबारे में कई बार सादुल्ला ने ज़ोर देकर कहा था–हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम तैमूरी खानदान के शहंशाह बाबर की तलवार के बल पर फ़रगना से हिन्दुस्तान आए हैं...नहीं तो खुजिंद की शिकारगाहों में हम आज भी उजले हिरनों, पहाड़ी बकरों, बारहिसंगों, खरहा, तीतर वगैरह का शिकार खेल रहे होते और अंगूर, खूबानी और अनार के बागों में बैठे आशकीना–बही अपना कबाइली सालन पका रहे होते!

एक बार सादुल्ला ने यही बात फिर दोहराई थी तो दारा बर्दाश्त नहीं कर पाया था। उसने शहंशाह के सामने कहा था—मोअज्जिज़ वज़ीरे आला वह दौर और था...अब हिन्दुस्तान की यह सरजमीं हमारा मुल्क भी है और मादरे वतन भी! हम यहीं पैदा हुए हैं और यहीं दफ्न होंगे!

सादुल्ला ने कोई जवाब नहीं दिया था लेकिन सबके ऊपर यह ज़ाहिर हो गया था कि मुग़लिया साम्राज्य की नीतियों को लेकर वज़ीरे आज़म और युवराज के बीच बुनियादी मतभेद है।

ऐलची ने बताया–लेकिन हुजूर ! इस बार आला वज़ीर ने एक अहम पुराने दस्तावेज का हवाला दिया है, वह यह भी बोले कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शहंशाह जहाँगीर और मेवाड़ के महाराणा अमर सिंह के बीच सन्धि की वह प्रतिज्ञा मौजूद है, जिसमें कहा गया है कि चित्तौड़ के क़िले का विस्तार नहीं किया जाएगा और उसे शाही इजाज़त के बिना दुर्भेद्य बनाने का कोई काम हाथ में नहीं लिया जाएगा !

तभी एक और दूत आ पहुँचा। उसने खबर दी–ताज़ातरीन हालात यह हैं कि शहंशाह की इजाज़त लेकर आला वज़ीर ने अब्दुल बेग को मेवाड़ के महाराणा के पास किसी खास मकसद से रवाना कर दिया है, इस फरमान के साथ कि दक्षिण के सूबेदार शहजादा औरंगज़ेब की सेवा में वह सैनिकों का एक खास दस्ता फौरन रवाना कर दे...हुजूर ! असल में अब्दुल बेग का काम यह है कि वह राणा की शक्ति में इजाफे और किले में मरम्मत के नाम पर हो रही तामीर और विस्तार का पता गुप्त रूप से लगा ले।

अब्दुल बेग ने लौटते ही तफसील से अपनी रपट पेश की। और उसकी बिना पर यह स्थापित करके कि चित्तौड़ के महाराणा के इरादे नेक नहीं हैं...वजीर सादुल्ला तीस हजार सैनिकों की फौज लेकर मेवाड़ की ओर बढ़ चला है। वह महाराणा को युद्ध के लिए विवश करना चाहता है। आखिर दारा को दख़ल देना पड़ा। मेवाड़ के महाराणा का साथ देकर उसने शाहजहाँ से फरमान जारी करवाया कि मेवाड़ पर आक्रमण न किया जाए। सादुल्ला ने इस हस्तक्षेप का विरोध किया है। वह शाही फरमान की अवज्ञा नहीं कर सकता, लेकिन मौके का फायदा उठाते हुए और महाराणा को सबक सिखाने की नीयत से उसने कुछ सख्त शर्तें लगाकर मेवाड़ राज्य के कुछ इलाकों को अपने समर्थकों के लिए आज़ाद करवा लिया है। यह भी तय करवा लिया है कि महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र भविष्य में, शाही दरबार के संरक्षण में रहेगा।

दारा ने महाराणा को सम्पूर्ण बरबादी और पराजय के ज्यादा बड़े अपमान से बचा लिया, लेकिन महाराणा ने इस उपकार को भी अपमान के रूप में लिया और वह दारा का साथ छोड़ कर औरंगज़ेब का दोस्त बन गया है। यही सादुल्ला चाहता था। सादुल्ला के सामने, आगे आनेवाले उत्तराधिकार युद्ध की बिसात बिछी है, वह बहुत सूझ-बूझ और कायदे से अपने मोहरे बिसात पर बैठा रहा है। वह दारा की वतनपरस्ती और क़ौमी इत्तहाद का समर्थक नहीं है।

अपने सर्वाधिक सम्मानित मित्र वज़ीर सादुल्ला और अपने सर्वाधिक प्रिय पुत्र युवराज दारा के बीच चलती स्पर्धा से शाहजहाँ उसी तरह दुःखी था जैसे अकबर अपने जमाने में सलीम और अबुलफज़ल की शत्रुता को लेकर था।दारा को सादुल्ला की ताकत से

भी उतनी ही घृणा थी, जितनी कि उसके कट्टर सुन्नी होने से। साथ ही वह आला वज़ीर सादुल्ला और औरंगज़ेब के गहरे सम्बन्धों को भी मंजूर नहीं कर पाता था।

औरंगज़ेब खुद को सादुल्ला का शागिर्द मानता और मंजूर करता है। सादुल्ला और दारा के बीच लगातार नोंक-झोंक चलती रहती है। दरबार में हाजिर शहजादों के वकील और दूत यह खबरें अपने-अपने मालिक शहजादों–शुजा, मुराद और औरंगज़ेब को पहुँचाते रहते हैं। सादुल्ला नेक और ज़हीन आदमी है, लेकिन वह अपने रास्ते के रोड़ों को मंजूर नहीं करता। दारा के मन में भी कोई कलुषता नहीं है, पर यह दो अहम व्यक्तियों के अहंकार और महत्वाकांक्षाओं का युद्ध है। दारा भावुक, अध्ययनशील और सर्व-प्रिय युवराज है। सादुल्ला, एक विजेता जाति का समर्थक, गम्भीर, योग्य वज़ीर और कट्टर मुसलमान है।

शाहजहाँ का शासनकाल अन्तर्विरोधी-खिंचावों का दौर है जहाँ कट्टर धर्मांध भी हैं और उदार तथा न्यायवादी-जनवादी भी।

और फिर मौजूद है दक्षिण का मसला–जहाँ का सूबेदार है औरंगज़ेब। दक्षिण के प्रश्न पर आला वज़ीर सादुल्ला, औरंगज़ेब और रोशनआरा का गरम दल एक ओर है और दूसरी ओर है–दारा और जहाँआरा का नरम दल! अन्ततः यह दलीय युद्ध ही उत्तराधिकार युद्ध का मूल कारण बन रहा है।

अदीब ने इस सारे इतिहास की भूमिका तो जान ली, पर शहजादों के दिमागों में बिछी बिसात पर उत्तराधिकार युद्ध के मोहरों में जान पड़ चुकी थी और वे अपनी-अपनी जगह अपनी चालें चलने के लिए विवश थे। अदीब ने आवाज़ दी–

–ऐ समय...तुम कहाँ हो?

–बोलो! वक्त ने पूछा।

–जब तुमने मुझे इतिहास में दाखिल होने का वरदान दे ही दिया है तो मेरी एक मदद और करो...

–क्या?

–यही कि इतिहास के नीचे जो इतिहास दबा है, उस इतिहास की धमनियों में बहते हुए रक्त की रवानी को, घटनाओं के पीछे घटित होती दिमागी साज़िशों, आकांक्षाओं और महत्वाकांक्षाओं के सैलाबों को मैं देखना चाहता हूँ...उस अमूर्त, अदृश्य, आकारहीन सत्य को मैं कैसे देखूँ?

–अदीब ! मैं तो अदेखा सिलसिला भर हूँ जिसे तुम्हीं ने महाकाल जैसा सर्वशक्तिशाली नाम दिया है...तुम्हीं ने मुझे सर्वशक्तिमान और सतत् बनाया है! फिर तुम्हीं ने अपनी सुविधा के लिए युगों, संवत्सरों, सदियों, दशकों, पहरों और पलों में बाँटा है...और वह इतिहास, जिसके भीतर तुमने इतिहासकार बनकर प्रवेश किया है, वह भी तो मेरे उन्हीं तमाम कालखंडों का एक टुकड़ा है! उसे देख सकना या उसमें निहित सत्य को स्पष्ट कर सकना तुम्हारे लिए तो कतई कठिन नहीं है! समय बोला।

अब अदीब को खुद पर ही भरोसा करना था...इसलिए अदीब ने गोलकुंडा के अजेय दुर्ग को आवाज़ दी...और गोलकुंडा का वह क़िला हाज़िर हुआ।

–तुम्हारे खिलाफ साजिशें क्या हैं? अदीब ने पूछा।

–साजिशें तो बहुत हैं। एक साजिश तो इसी के खिलाफ है कि हम अपने सुलतान अब्दुल्ला कुत्बशाह के अधीन शिया हैं, हम सुन्नी नहीं हैं। दूसरा यह कि हिन्दुस्तान में शाहजहाँ के चारों पुत्रों के बीच उत्तराधिकार युद्ध शुरू हो चुका है, इसलिए औरंगज़ेब सुन्नी होने के नाम पर गोलकुंडा और बीजापुर की शिया रियासतों को जीत कर, उनकी तीन लाख फौज को अपने अधीन करना चाहता है। औरंगज़ेब इतना ज़हीन नहीं है, जितना उसे समझा जाता है...यह साजिश है उसकी बहन रोशनआरा की ताकि उत्तराधिकार युद्ध में औरंगज़ेब अपनी सैनिक सर्वोच्चता और शक्ति का प्रदर्शन कर सके और इसमें साथ दे रहा है–शहंशाह का आला वज़ीर सादुल्ला! इसीलिए औरंगज़ेब ने हमारे क़िले पर छः महीने से घेरा डाला हुआ है और हमारी रियाया और फौज की रसद के रास्ते बन्द कर दिए हैं!

गोलकुंडा का किला बोल रहा था–हमें तो यही मालूम है कि मुगल शहंशाह शाहजहाँ ने औरंगज़ेब को महज़ इतना हुक्म दिया है कि वह सिर्फ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करे, ताकि गोलकुंडा से मीर जुम्ला के परिवार को मुक्ति प्राप्त हो जाए! इस हमले के लिए यह लंगड़ा तर्क निकाला गया है कि मीर जुम्ला गोलकुंडा के नहीं, शाही दरबार के नौकर हैं...यही बहाना बनाकर औरंगज़ेब हमारे कुली कुत्बशाह को मार कर हमारी रियासत पर कब्ज़ा करना चाहता है। और यही उसने बीजापुर रियासत के साथ किया। इसमें शहंशाह शाहजहाँ की चालाक बेटी रोशनआरा और उनका वज़ीरे आज़म सादुल्ला औरंगज़ेब का भरपूर साथ दे रहा है, क्योंकि सादुल्ला शियाओं और ईरानी सूफियों को इस्लाम के ख़िलाफ मानता है...असल में औरंगज़ेब की नज़र गोलकुंडा-बीजापुर पर नहीं, मुगलिया सल्तनत के तख्ते ताऊस पर है, वह हम दोनों रियासतों को हराकर हमारी फौज़ें अपनी अगली लड़ाई के लिए हासिल करना चाहता है!

तभी एक ज़लजला-सा उठा...तलवार से ज्यादा खतरनाक और चमकदार कलम आसमान का सीना चीर कर निकली! बादलों में छिपी बिजलियाँ तड़क कर टकराईं और आसमान के सीने से बिजलियों की धज्जियाँ कट-कट कर गिरने लगीं! अदीब ने तलवार से ज्यादा कारगर उस कलम को देखा और दरयाफ्त किया कि यह किसका कलम है?

अर्दली ने अदब से कहा–हुजूर यह आला दानिशवर शिबली नोमनी का कलम है और वह पहले से ही आपके सामने हाजिर हैं! अदीब ने शाइस्तगी से कहा—शिबली नोमानी साहब! आपको वक्त की इस तहरीर में कुछ और इज़ाफा करना है?

–हाँ अदीब...अब तक जो कुछ सोचा और कहा गया वह ग़लत है! सरासर ग़लत है! शिबली नोमानी ने दलील दी–असल में यह दारा की साजिश है। उसने शहंशाह को भड़का कर यह शाही फरमान भिजवाया है कि औरंगज़ेब गोलकुंडा का घेरा उठा ले,

औरंगज़ेब ने बीजापुर को घेर लिया है और छः महीने के घेरे के बाद जब यह करीब-करीब साफ और तय हो गया कि बीजापुर के अली आदिल शाह को परास्त करके औरंगज़ेब अपनी जीत का झंडा गाड़ देगा, तभी दारा की साजिशों के तहत, शहंशाह ने, अपने फरमान को उलट कर यह हुक्म भेजा है कि औरंगज़ेब के साथ गोलकुण्डा और बीजापुर में युद्धरत महावत खाँ और छत्रसाल हाड़ा सहित उनकी फौजों को फौरन वापस आगरा भेज दिया जाए ! यह फरमान देखते ही औरंगजेब सकते में आ गया है...कि आख़िर यह कैसा फैसला है। लेकिन शहंशाह शाहजहाँ चूँकि दारा के हाथ की कठपुतली बन चुका है...और दारा चाहता है कि उत्तराधिकार युद्ध के लिए उसका भाई ताकतवर न बनने पाए, यही वजह है कि औरंगज़ेब को बिना बताए, शहंशाह शाहजहाँ की तरफ से बीजापुर के अधिपति अली आदिलशाह की 'पेशकश' पर, दारा के ज़रिए, संधि कर ली गई ! यह औरंगज़ेब के खिलाफ दारा का घटिया षड़यंत्र है...

–नहीं ! और इस 'नहीं' के साथ एक और ज़लज़ला आया...इतिहासकार कानूनगो भी अपनी तेजस्वी कलम चलाता हुआ चीखा–यह इल्ज़ाम गलत है ! औरंगज़ेब खुद दक्षिण में अपनी ताकत को मुहैया करना चाहता था इसलिए घेरे से त्रस्त और परेशान गोलकुंडा के सुलतान के सामने उसने खुद सन्धि का यह प्रस्ताव रखा था कि तुम अपनी माँ को हमारे पास बन्धक रख दो और अपनी लड़की की शादी तुम मेरे बेटे से कर दो और यह अहदनामा लिखो कि उससे पैदा होनेवाली सन्तान ही गोलकुंडा की गद्दी की वारिस होगी !...इतिहासकार कानूनगो चीखा !

–अदीबे आलिया ! इस अहदनामे और इसकी शर्तों की कोई जानकारी औरंगज़ेब ने शहंशाह शाहजहाँ को नहीं दी !...यह एक साजिश थी जो औरंगज़ेब ने की थी, क्योंकि यह दक्षिण में अपने राज्य और हुमूमत की पक्की नींव तैयार करना चाहता था–अपनी साजिशों को सही साबित करने के लिए, वह सारे इल्जाम दाराशिकोह पर लगाता रहा, क्योंकि वह जानता था कि उत्तराधिकार युद्ध में उसकी अन्तिम लड़ाई दाराशिकोह से ही होने वाली है। इसी के साथ असल बात यह थी अदीबे आलिया कि शाहजहाँ औरंगज़ेब से परेशान था, उसमें उसे अपनी ही पापी आत्मा की परछाईं दिखाई देती थी। शहाजहाँ ने खुद अपने पिता जहाँगीर के खिलाफ विद्रोह किया था और अपने बड़े भाई की हत्या की थी। उसे लगता था कि औरंगज़ेब कहीं उसी इतिहास को फिर न दोहरा दे।वह औरंगज़ेब को लेकर बेचैन और चिन्ताग्रस्त रहता था कि दक्षिण में अपनी सूबेदारी को पुख्ता करके, गोलकुंडा और बीजापुर की विशाल सेनाओं के बल पर दिल्ली के राजसिंहासन पर वह अधिकार करने के सपने को कहीं अमली जामा न पहना दे ! इस सम्भावना को जड़ से मिटा देने की खातिर ही शाहजहाँ ने सोचा था कि दक्षिण की सूबेदारी शुजा को सौंप दी जाए। इस सम्बन्ध में शाहजहाँ ने अपने इरादे का खुलासा करते हुए शुजा को एक ख़त भी लिखा था। लेकिन अदीबे आलिया ! शाहजहाँ अपने इस फैसले को लागू नहीं कर पाया।

क्योंकि वह 6 सितम्बर 1657 से बीमार पड़ गया, उस समय दाराशिकोह की उम्र बयालीस साल थी। और शाहजहाँ की बीमारी के साथ ही यह उत्तराधिकार युद्ध शुरू हो गया।

तभी एक बुजुर्ग आलिम खड़े हुए और इजाजत माँग कर बोलने लगे–

–हुजूर! वह जमाना दूसरा था...यह सारे लोग उस बर्बर सामन्ती ज़माने को आज की क़द्रों, विकसित हुए राजतंत्र और आज के ज़माने की नज़रों से देखते हैं। इस्लाम ने अपनी राजव्यवस्था के लिए वंशानुगत अधिकारी के कुदरती हक़ जैसी अवधारणा पर कभी ग़ौर ही नहीं किया था, इसीलिए मुसलमान शासकों के यहाँ उत्तराधिकार हक़ की बिना पर नहीं, तलवार के बल पर तय होता है। इसके अलावा तैमूर वंश में उत्तराधिकार के लिए किया गया विद्रोह या रक्तपात भी निन्दनीय नहीं माना जाता। वहाँ जायज़ और नाजायज़ का सवाल ही नहीं, वहाँ वही जायज़ है जो तलवार तय कर देती है!

–इसके अलावा! एक दूसरे बुजुर्ग ने बात आगे बढ़ाई-शहजादों के व्यक्तित्व, चरित्र और धार्मिक विचार उनके आपसी उत्तराधिकार युद्ध के लिए कतई जिम्मेदार नहीं हैं। दारा और औरंगज़ेब के बीच जो उत्तराधिकार युद्ध हुआ वह हिन्दू प्रजा और मुसलमान प्रजा का युद्ध नहीं था, यहाँ मजहब का सवाल है ही नहीं...नहीं तो बारहा के सैय्यदों ने दारा का साथ न दिया होता और औरंगज़ेब की तरफदारी के लिए जयपुर के महाराणा राजसिंह उसके पक्षधर न होते!...हुजूर मैं शिबली नोमानी साहब की इस कट्टर दलील से भी सहमत नहीं हूँ कि दाराशिकोह धर्मभ्रष्ट हो गया था...दारा का मतभेद मुल्लाओं से हो सकता है, और था भी, पर वह हमेशा मुसलमान था, रहा और मुसलमान ही मरा! इस बात को दारा के विरोधी इतिहासकार बर्नियर ने भी मंजूर किया है!

शिबली नोमानी खुद को रोक नहीं पा रहे थे। वे बोल ही पड़े–

–कुछ भी कहा जाए, पर यह बात तय है कि शाहजहाँ दारा को तख्त सौंपना चाहता था।

–वो इसलिए कि शाहजहाँ को औरंगज़ेब से खूनखराबे और विद्रोह का डर था...इस खूनखराबे में औरंगज़ेब शाहजहाँ को भी मार सकता था! कानूनगो ने शिबली नोमानी को टोका।

–लेकिन वैसा हुआ तो नहीं! शिबली नोमानी ने आवाज़ ऊँची करके कहा।

–तलवार से न सही,पर उसने शाहजहाँ को आजन्म कैद में डाल कर तिल-तिल अपमानित होकर मरने के लिए मजबूर किया! कानूनगो ने टिप्पणी की।

–जो भी हो...शिबली नोमानी ने अपनी बात जारी रखी–दारा को शहंशाह ने अपने दामन से कभी दूर नहीं होने दिया। शाहजहाँ ने बीस बरस हुकूमत की, पर दारा साल भर या पन्द्रह महीनों से ज्यादा कभी दरबार से दूर नहीं रहा। युद्ध में भी उसने कभी कोई खास कौशल नहीं दिखाया, फिर भी वह साठ हजार ज़ात का ओहदेदार बन बैठा...यह ओहदा तो तीनों भाइयों के सम्मिलित ओहदे से ज्यादा बड़ा था। यहाँ तक कि दारा के बेटों तक को

ज़्यादा बड़ा माना गया...सुलेमान शिकोह काबुल का ग़ैरहाज़िर सूबेदार था, उसे बारह हजारी का पद दिया गया है। शहंशाह ने शाही खजाना, फौज़ें, सारे घुड़सवार और सल्तनत का सारा गोला बारूद उसके हवाले कर दिया...उत्तराधिकार युद्ध से पहले ही शहंशाह शाहजहाँ ने सोने का एक सिंहासन बनवा कर अपने तख़्ते-ताउस की बगल में रखवाया था, जिस पर उन्होंने दाराशिकोह को बैठाया था...इसके बाद ताजपोशी की रस्म में बाकी क्या रह गया था?

–तो इसमें ग़लत क्या था? क्योंकि दारा शहंशाह का सबसे बड़ा बेटा था और मुग़लिया सल्तनत को अब तक हिन्दुस्तान की सरजमीं पर शासन करते करीब एक सौ दस साल हो चुके थे, और उत्तराधिकार की भारतीय परम्परा से शाहजहाँ अच्छी तरह परिचित हो चुका था। खुद उसके मन का पाप कि उसने अपने बड़े भाई की हत्या करके ताज हासिल किया था, उसे भीतर ही भीतर धिक्कार रहा था, शायद इसीलिए वह अपने बेटों के खूनखराबे से बचने के लिए, उत्तराधिकार की भारतीय और अधिक सभ्य परम्परा को अपना समर्थन देना चाहता था। लेकिन यह सम्भव हो नहीं पाया! कानूनगो ने अपनी जिरह पेश की।

अदीब ने अपने अर्दली की तरफ देखा। वह बैठा-बैठा सब नोट कर रहा था।

–यह तुम क्या कर रहे हो? अदीब ने उससे पूछा।

–मैं गणेश की तरह इस महाभारत को नोट करता जा रहा हूँ ताकि हुजूर इस इतिहास को लिख सकें!

–हुजूरे आलिया! ग़लत इतिहास न लिखा जाए! यह आवाज़ शिबली नोमानी की थी।

–तो क्या आपकी इतिहास दृष्टि, जिरह और तर्कों को अन्तिम मान लिया जाए? अदीब ने सवाल किया।

–वो तो मानना ही पड़ेगा! क्योंकि शहंशाह शाहजहाँ भारत परस्त नहीं, इस्लाम परस्त था...वह सच्चा मुसलमान था...शिबली नोमानी अभी कह ही रहे थे कि एक बूढ़े आलिम ने तंज़ किया–

–शायद इसीलिए वह इस्लाम-परस्त औरंगज़ेब से भारत-परस्त दाराशिकोह को ज़्यादा चाहता था? क्यों?

–यह कोई दलील नहीं है! शिबली ने कहा।

–है! अदीब बोला—शिबली नोमानी साहब, हमें आपके लिखे पन्नों से ही मालूम हुआ है कि आपकी नज़र में शाहजहाँ औरंगज़ेब से ज्यादा हिन्दू विरोधी था। उसने औरंगज़ेब से ज़्यादा हिन्दू मन्दिरों को गिरवाया था...उन्हें बहुत ज्यादा सताया था...वह औरंगज़ेब से ज्यादा बड़ा कट्टर मुसलमान था।

–जी! यही सच्चाई है!

—तो फिर उसने हिन्दू विरोधी अपने कट्टर सुन्नी बेटे औरंगज़ेब का साथ न देकर हिंदू-परस्त दारा का साथ क्यों दिया?

—इसके बारे में मैं कुछ नहीं बता सकता! शिबली नोमानी ने कहा।

—लेकिन मैं बता सकता हूँ! खून की स्याही से तलवारों ने जो इतिहास धरती की छाती पर लिखा है, वही निर्णायक इतिहास नहीं है...यह तो वह इतिहास है जो पेशेवर इतिहासकार लिख सकते थे, या उनसे लिखवाया गया। इन इतिहासों के अलावा इतिहास के उन्हीं नायकों के मन, इरादों, पश्चातापों का एक ज्यादा बड़ा इतिहास होता है जो पेशेवर इतिहासकार नहीं लिख सकते...इसीलिए बाबर का बाबरनामा इतिहास की ज़्यादा सही और सच्ची पुस्तक है...बाबर ने भारतीय हिन्दू का मनोबल तोड़ने के लिए चाहे जितनी ज्यादतियाँ की हों, लेकिन वह भारत से लौट कर फ़रगना नहीं जा सका...इसीलिए वह आगरा में दफ्न हुआ था। यह बात दूसरी है कि बाद में उसे इस्लाम का ग़ाज़ी होने का दर्जा देकर आगरा की कब्र से उसकी बेपहचान और दीमक लगी हड्डियों को निकाला गया और काबुल में दफ़नाया गया...लेकिन काबुल भी उसकी जन्मभूमि या वतन नहीं था!

अर्दली ने बयान नोट किया।

—मैं मानता हूँ बाबर आक्रान्ता था...लेकिन उसके पश्चाताप को कभी समझा ही नहीं गया। अदीब ने कहा—सोचिए ज़रा...उससे हजारों वर्ष पहले ओड़िसा का कलिंग राज्य भी स्वायत्त प्रदेश नहीं, अपने राजा के अधीन स्वतंत्र देश था। अशोक ने कलिंग पर जब आक्रमण किया तो वह भी आक्रांता था...युद्ध में इतना खून बहा कि दया नदी का पानी लाल हो गया था...अपनी इस बर्बरता का पश्चाताप तब अशोक ने पंचशील और अहिंसा के सिद्धान्तों को देकर किया था। यदि अशोक का पश्चाताप भारतीय था तो भारत को अपना देश मान लेने वाले मुगलों के पश्चाताप के क्षणों को हम अभारतीय क्यों कहना चाहते हैं? वे अरबी, तुर्की, तातारी या अफगानी पश्चाताप के क्षण नहीं, वे भारतीय भूमि पर उदित हुए उनके गहन पश्चाताप के क्षण थे! अकबर उस भारतीय पश्चाताप का सबसे ज्वलंत उदाहरण है...लेकिन अन्ध स्वार्थी शहंशाह कभी धर्म, कभी नस्ल, कभी आकस्मिक विजय से प्राप्त शौर्य के बहाने अपनी विजय गाथाओं की महिमा में अपनी मानवीय आत्मा के त्रास को अलिखित छोड़ गए हैं। हमें अलिखित त्रास के उस इतिहास को दुबारा लिखना है—मध्यकालीन आक्रामकों के इस मानिसक पश्चाताप के पक्ष को भारतीय परम्पराओं और संदर्भों में दुबारा रूपायित करना है।...दोस्तो! मुझे लगता है कि बाबर और हुमायूँ के पश्चाताप और शोक का मूर्तिमान रूप था—अकबर! और जहाँगीर तथा शाहजहाँ के पश्चाताप का नतीजा था—दाराशिकोह! लेकिन मुश्किल यह है कि राजतंत्र की कोई धर्म संस्था, कोई मज़हबी तहरीक किसी शोक और पश्चाताप को मंजूर नहीं करती...क्योंकि धर्म या मज़हब जिन्दगी की सच्चाइयों से हमेशा सदियों पिछड़ा रहता है! और यही तमाम बेबुनियाद पाकिस्तानों की बुनियाद बनता है!...हजरत शिबली नोमानी जैसे लोग ही इन

ग़ैर–कुदरती पाकिस्तानों की बुनियाद डालते हैं...मिस्र, ट्यूनिसिया, तुर्की, अल्जीरिया, सोमालिया, लेबनान और ईराक में क्या हो रहा है ? वहाँ तो मुसलमान ही मुसलमान से लड़ रहा है, तो शिबली मोमानी साहब ! यह लड़ाई धर्म की नहीं, धर्म और धर्मान्धता की है। इस्लाम जैसा धर्म ही खुद अपनी धर्मान्धता से लड़ रहा है ! और शायद दुनिया के हर धर्म को अपनी धर्मान्धता से लड़ना और उसे जीतना पड़ेगा !...आप अपने धर्मान्धतावादी तर्कों से पाकिस्तानों में से और पाकिस्तान बनाएँगे, पर धर्मवादी दुनिया अपने धार्मिक विश्वासों को जीवित रखते हुए एक मनुष्यवादी धर्म के संविधान की परिकल्पना करेगी...यह किसी एक धर्म की दुनिया नहीं होगी, यह बहुधर्मी लोगों की एक धार्मिक दुनिया होगी ! अपने-अपने धर्म की धर्मान्धता से लड़ते रहनेवाले धर्म-परस्त लोगों की दुनिया !

–आप तो भाषण देने लगते हैं ! अपनी कलम रखकर अर्दली ने अदीब से कहा–हम इतिहास लिख रहे थे, आपने फलसफ़ाना बातें शुरू कर दीं...वक्त ने आपको इतिहासकार बनने का मौका दिया है, तो आप इतिहास को देखिए...अर्दली ने पेशकश की तभी मौक़ा पाकर शिबली नोमानी ने इतिहास का बखान करना शुरू कर दिया–

–देखिए...हुजूरे आलिया ! औरंगज़ेब और दाराशिकोह में बचपन से ही मनमुटाव मौजूद था। यह अट्ठाइस मई सोलह सौ तैंतीस की घटना है–आगरा गढ़ के नीचे जमुना के रेतीले मैदान पर दो हाथी–सुधाकर और सूरतसुन्दर लड़ाने के लिए उतारे गए। यह एक शाही शग़ल था। शहंशाह और सभी शहज़ादे मौजूद थे। क्रोधोन्मत्त सुधाकर हाथी ने सूरतसुन्दर हाथी को पछाड़ देने के बाद सामने घोड़े पर सवार औरंगज़ेब पर हमला कर दिया। घोड़ा गिर गया, लेकिन पन्द्रह साल का शहज़ादा औरंगज़ेब उस हाथी की चपेट से बच निकला। उस क्रोधोन्मत्त हाथी पर तब हमला करके शुजा, मिरजा राजा जयसिंह और औरंगज़ेब ने मार डाला। दाराशिकोह भी वहीं था, पर उसने अपने भाई औरंगज़ेब को बचाने की कोई पहल नहीं की ! शिबली नोमानी बोले, तो कानूनगो ने दूसरा पक्ष रखा–

–वह इसलिए मुमकिन नहीं था क्योंकि दारा उस हाथी के पिछवाड़े था...हमलावर हाथी पर वह कोई कारगर हमला कर सकने की हालत में नहीं था ! तभी दूसरे आलिम ने कहा–लेकिन अपनी जिन्दगी और मौत का सवाल उठाते हुए तब औरंगज़ेब ने शहंशाह से कहा था–अगर मैं हाथी के हमले में मारा जाता तो वह कोई लज्जा की बात नहीं होती, क्योंकि वह तो एक क्रोधोन्मत्त जंगली जानवर था, लेकिन लज्जा की बात तो मेरे भाइयों के आचरण और किरदार में थी ! शिबली नोमानी साहब ! ये अल्फाज बिल्कुल वही हैं जो औरंगज़ेब के सरपरस्त इतिहासकार हमीदुद्दीन खाँ ने लिखे हैं ! इस कथन में औरंगज़ेब की चतुराई और कथन का दंश स्पष्ट है, क्योंकि अपने भाइयों को लेकर बहुवचन का उपयोग करते हुए उसका इशारा केवल दारा के प्रति था। लेकिन ख़ुद इसी घटना को लिखते हुए औरंगज़ेब के सरकारी इतिहासकार ने लिखा है कि–दारा इच्छा होते हुए भी औरंगज़ेब की मदद नहीं कर सकता था, क्योंकि वह दूसरी तरफ़ था और कुछ ही पलों में यह प्रकरण

समाप्त हो गया ! इसके अलावा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना और है जनाब ! दारा ने आगरा में अपने नए महल का निर्माण करवाया था। वह मौसम गर्मियों का था। दारा ने शहंशाह और अपने तीनों भाइयों को बहुत आदर और प्यार से अपने महल के ग्रीष्मकक्ष में आमंत्रित किया था। शहंशाह के साथ शुजा और मुराद तो उस ग्रीष्मकक्ष में भीतर चले गए, पर औरंगज़ेब बाहर दरवाजे पर ही बैठा रहा। उसके इस विचित्र आचरण के कारण शाहजहाँ ने उससे बहुत पूछताछ की, परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। इस बात को लेकर सात महीनों तक औरंगज़ेब का दरबार में आना बन्द कर दिया गया।तब औरंगज़ेब ने अपनी बहन रोशनआरा को बताया था कि—चूँकि उस ग्रीष्मकक्ष में केवल एक ही दरवाजा था, इसलिए उसे यह शंका हुई कि कहीं दारा शहंशाह के साथ-साथ उसकी तथा उसके भाइयों की हत्या न कर दे, इसलिए वह भीतर नहीं गया, क्योंकि तब सबकी हत्या करके दारा के लिए राजगद्दी हासिल करने का रास्ता साफ़ हो जाता ! इसलिए मैं उस इकलौते दरवाजे पर सन्तरी बन कर बैठ गया था ! यह घटना और इसका विवरण औरंगज़ेब के राज्याश्रय प्राप्त इतिहासकार हमीदुद्दीन खाँ ने ‘औरंगज़ेब के सरकारी इतिहास’ में खुद दर्ज किया है !...

इतिहासकार कानूनगो ने तमाम दस्तावेज फहराते हुए एक आशंका व्यक्त की– क्या यह घटना और इसके पीछे छुपी मानसिक साज़िश यह स्पष्ट नहीं करती कि एक दिन, किसी न किसी दिन भविष्य में औरंगज़ेब अपने पिता और भाइयों की हत्या करेगा ! नहीं तो औरंगज़ेब दारा के मंसूबों को तोड़ने के बहाने अपनी भीतरी शंकाओं को यह स्वरूप न देता...औरंगज़ेब शुरू से ही उत्तराधिकार युद्ध के लिए तैयार था और उसी के मुताबिक वह अपनी सारी तैयारियाँ कर रहा था ! उसने उत्तराधिकार युद्ध के लिए दाराशिकोह को अपना निशाना बना रखा था, क्योंकि दारा ही उसका काँटा था। शुजा और मुराद को वह अपनी कूटनीति से सँभाल सकता था...इसका उसे विश्वास था। तभी तो उसने पाक क़ुरान की कसम खाकर गुजरात के सूबेदार अपने छोटे भाई मुराद को यह आश्वासन दिया था कि वह उसे हिन्दोस्तान का शहंशाह बना देने के बाद, खुद हज पर चला जाएगा और अपनी बाक़ी जिन्दगी मक्का-मदीना में एक हाजी और दरवेश की तरह बिताएगा...उत्तराधिकार युद्ध में औरंगज़ेब ने हिन्दू विद्वेष की तलवार को ही सबसे कारगर समझा। तभी तो उसने वज़ीरे आज़म सादुल्ला खाँ को लिखा था–कि बिहार के छबीला नामक ब्राह्मण ने रसूल के विरुद्ध कुछ अनुचित बात कही है...अतः उसे प्राण दंड देकर नरक में भेज दिया जाए...ताकि मुसलमानों के प्रति न्याय हो और हिन्दुओं की धर्म विरोधी साजिशों के लिए उन्हें सजा दी जा सके। उनकी बेजा चीख-पुकारों की कोई सुनवाई न की जाए ! कानूनगो बोल रहे थे कि अदीब ने टोका–

–देखिए ! मैं इस उत्तराधिकार युद्ध का इतिहास जानना चाहता हूँ।

और तब थका हुआ वक्त सामने हाज़िर हुआ–

–मैं बताता हूँ तुम्हें उस खूनी उत्तराधिकार युद्ध की सच्ची दास्तान, जिसका साक्षी सिर्फ मैं हूँ या इस भारतवर्ष की नदियाँ और भूगोल!

अदीब की अदालत में उत्सुकता भरा सन्नाटा छा गया।

–इतना उदास और गमगीन होने की जरूरत नहीं है अदीब! वक्त ने कहा–मैं बताता हूँ...सच्चाई यह है कि हिन्दुओं में औरंगज़ेब के उतने विरोधी नहीं थे, जितने कि कट्टर मुसलमानों में दारा के विरोधी मौजूद थे! क्योंकि इस दौर में मज़हब को सब मानते थे, पर मजहब की बात कोई नहीं मानता था।...जाओ, अब तुम्हें उस दौर में जाना होगा जो खून से नहाने की तैयारी कर रहा है!

•

25

अदीब ने आसमान की तरफ देखा–ऊपर सुर्ख़ लाल–लाल बादल चारों तरफ से घुमड़ रहे थे। वह चौंका। उसने अर्दली से कहा–काले, भूरे, सिलेटी और सफ़ेद बादल तो देखे थे...उगते या डूबते सूरज के साथ बादलों की किनारी में रुपहला और सुनहला गोटा लगा भी देखा है, लेकिन खून की तरह लाल, ऐसे बादल तो कभी देखे नहीं...

–हुजूर ! वक्त ने बताया था न...कि यह इतिहास का वह दौर है, जब खून की बारिश होनेवाली है...यह उसी की सरगर्मी है...अर्दली ने कहा।

–इन सरगर्मियों का खुलासा कौन करेगा ? यह इतने हाथी, घोड़े, इधर से उधर आते जाते फौजी, घोड़ों पर दौड़ते और खबरें पहुँचाते हरकारे...सन्देशवाहक, मुखबिर और ऐलची ! कहाँ अहमदाबाद, कहाँ औरंगाबाद और कहाँ बंगाल का राजमहल...डरे और घबराए हुए लोग...शहरों से बाहर इन्तजार में बैठी गिद्धों की फौज़...लावारिस कुत्तों के झुंड...आख़िर यह सब है क्या ? क्या गिद्धों, कुत्तों और चीलों को पहले से पता चल गया है कि क्या होने वाला है...अदीब ने अपना माथा ठोंकते हुए कहा।

–हुजूर ! इस सदी में क्या-क्या हुआ इन सारी सरगर्मियों के बारे में जमुना ही बता पाएगी ! अर्दली ने कहा।

–जमुना कौन ?

–जमुना नदी ! इस मुल्क की सभी नदियाँ यहाँ के इतिहास की चश्मदीद गवाह हैं...

तो जमुना को बुलाओ !

–हम खुद ही चले चलें हुजूर...वहीं किनारे पर बैठकर आप थोड़ा-सा आराम भी कर लीजिए और बातचीत भी।

दोनों जाकर नदी किनारे बैठ गए। जमुना अपना हरा आँचल लहराती आ गई...

— यह सब क्या हो रहा है...ये बादल खून की तरह लाल क्यों हैं ? यह अजीब-सी दहशत, साजिश जैसा माहौल, घबराए खामोश लोग...यह घुड़सवार सैनिकों की हलचल...इन्तज़ार में बैठे लकड़बघ्घे, गिद्ध और कुत्ते...यह सब क्या है ? अदीब ने परेशानी से पूछा।

जमुना ने बताना शुरू किया–

–देखो सूरदास !

–क्या ? हमारे अदीबे आलिया सूरदास नहीं हैं ! अर्दली ने टोका।

–मेरा तो सबसे बड़ा अदीब सूरदास था। इसलिए हर अदीब मेरे लिए सूरदास ही है। जिसके मन की आँखें खुल जाती हैं, वही सूरदास हो जाता है। मेरे सूरदास की खुशनसीबी थी कि उसने बहुत खूबसूरती से भरी एक मासूम दुनिया देखी थी। लेकिन तुम बदकिस्मत हो क्योंकि तुम्हें छल, कपट, महत्वाकांक्षाओं, दुरभिसंधियों, साजिशों, गोले बारूद और हत्याओं की इस थर-थर काँपती दुनिया में खूबसूरती और प्यार की तलाश में निकलना पड़ा है...उसके लिए भटकना पड़ रहा है...जमुना ने बहुत उदासी से कहा–लेकिन मैं तुम्हें सब बताती हूँ–देखो, मुग़लिया सल्तनत का उत्तराधिकार युद्ध अब एक खास मोड़ पर आ पहुँचा है...वो सर्दियों के दिन थे...मैं उठती नर्म भाप का दुपट्टा ओढ़े सो रही थी कि तभी मेरी नींद घोड़ों की तेज टापों से टूटी। मैंने देखा कि दक्षिण से शहज़ादा औरंगज़ेब आगरा में दाख़िल हो रहा है...राजमहल बंगाल से शहज़ादा शुजा भी आगरा पहुँच रहा है। दोनों शहज़ादे शहंशाह की बिना इजाज़त आगरा पहुँचे हैं। यह बात शाहजहाँ को अच्छी नहीं लगी हैं। वह सोच रहा था कि दोनों आते भी, तो जैसी परम्परा है, उससे पूछकर आते...यह तो शाही तौर-तरीके की बात थी।

और यहीं सर्दियों के उन्हीं तीन दिनों के बीच आपसी दावतों और आदर-सत्कार के दौरान औरंगज़ेब ने अपने बड़े बेटे सुल्तान मुहम्मद की शादी शुजा की बेटी गुलरुखबानू से तय कर दी। यह बात शहंशाह शाहजहाँ को बहुत नागवार गुज़री। आखिर वह बादशाह ही नहीं, खानदान का बड़ा भी था और उससे उसी के पोते-पोती की सगाई के मामले में राय तक नहीं ली गई थी। यहीं से शाहजहाँ को साजिश की तैयारी का शक हुआ था। इस मसले को लेकर शहंशाह और औरंगज़ेब के बीच बहुत सख़्त और कटु पत्र-व्यवहार भी हुआ था। शहंशाह चाहता था कि इस सगाई को तोड़ दिया जाए...आखिर कोई और चारा न देखकर शहंशाह ने शुजा को तोड़ना चाहा था। उसने शुजा को भरोसे में लेकर कहा था कि दक्षिण में औरंगज़ेब का शासन असफल हो गया है...और वह चाहता है कि बंगाल के एक सूबे के बदले शुजा दक्षिण के पाँच सूबों का सूबेदार बन जाए...लेकिन तब तक शुजा, औरंगज़ेब और मुराद बख़्श के बीच अगली साजिश का ताना बाना बुना जा चुका था...वह दौर बीत चुका है अदीब!

–और यह खामोश–सी सनसनी जो इस वक्त छाई हुई है...इतने हरकारे, ऐलची और संदेशवाहक जो बदहवास से दौड़ते आते हैं और फिर लौट जाते हैं...यह सब क्या हो रहा है? अदीब ने पूछा।

–अब यहाँ शक की आँधियाँ चल रही हैं...शाही दरबार रहस्यों, मुखबिरों, षड़यंत्रकारियों का बाज़ार बन गया है। यह लगातार इधर से उधर दौड़ते घुड़सवार, हरकारे दरबार की एक-एक ख़बर तीनों विद्रोही शहज़ादों तक पहुँचाने का काम कर रहे हैं। औरंगज़ेब ने ख़बरचियों का जाल बिछा रखा है...भीतर से आला वज़ीर सादुल्ला और औरंगज़ेब की बड़ी बहन रोशनआरा उसका साथ दे रहे हैं। सबसे छोटी बहन गौहरआरा

बहुत महत्वाकांक्षी है...वह मुराद को भीतर की सारी खबरें देती रहती है। साथ ही साथ तीनों विद्रोही शहज़ादों के बीच आपसी ख़तों और योजनाओं की जानकारियों का आदान-प्रदान होता रहता है...यह घुड़सवार गुप्तचर इसी काम को अंजाम दे रहे हैं। तीनों विद्रोही शहज़ादों के बीच शहंशाह और दारा के खिलाफ गुप्त समझौता हो चुका है...लेकिन भीतर की एक और ख़ास बात बताऊँ ? जमुना ने सवालिया नजरों से देखा।

–क्या ? बताइए न...

–यही कि इस साजिश का सरगना है औरंगज़ेब...वह कम बोलता है, सुनता ज़्यादा है और ज़्यादातर खामोश रहता है। वह अपने चेहरे पर ख़ुशी–नाख़ुशी को कभी उभरने नहीं देता। हालाँकि शुजा, औरंगज़ेब और मुराद के बीच एक अलिखित सन्धि है, पर औरंगज़ेब अच्छी तरह जानता है कि दारा के बाद तख्त का दावेदार शुजा ही होगा। दारा के बाद वह शुजा को अपने भावी शत्रु के रूप में देख रहा है...इसीलिए औरंगज़ेब ने अलग से मुराद के साथ एक और संधि कर रखी है, उसने एक गुप्त-लिपि ईजाद की है, उसकी कुंजी भी उसने मुराद को 23 अक्तूबर 1657 को भिजवाई है ताकि उसकी गुप्त तहरीर का अर्थ मुराद और मुराद की गुप्त तहरीर का अर्थ सिर्फ़ वह समझ सके ! उसने 'अपन' तीनों के लिए अनेकेश्वरवादी-मुल्हिद दारा को दुश्मन बताया है और 'अपन' दोनों के लिए उसने मुराद को बताया है कि शुजा 'फ़्रीज़ी' अर्थात विधर्मी शिया है...उसने मुराद के मन में यह बात भी बैठा दी है कि शहंशाही के लिए वह तीनों में से सबसे अधिक योग्य है। औरंगज़ेब अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के लिए उत्तराधिकार युद्ध को धार्मिक रूप देने की कोशिश कर रहा है–और विलासी, अयोग्य, बड़बोला मुराद उसके इस जाल में फँस कर कट्टर सुन्नी दिखने की जी-तोड़ कोशिश कर रहा है ! सूरदास ! यह तो अब तय है कि शहंशाह के खिलाफ़ तीनों भाई मिलकर विद्रोह करेंगे और बड़े भाई दाराशिकोह को हरा लेने के बाद उन तीनों के बीच एक बार फिर उत्तराधिकार युद्ध होगा...

अदीब ने वक्त की दूरबीन से पीछे देखा–

आगरा शहर में हंगामा बरपा है ! कोई कह रहा है-शहंशाह बीमार है, कोई कह रहा है-शहंशाह अल्लाह को प्यारा हो गया है। एक अजीब-सी बदहवासी चारों तरफ व्याप्त है...सौदागरों ने अपने गोदामों पर सख्त पहरा लगा दिया है। रोजमर्रा की चीजें जमींदोज़ कर दी हैं। कीमतें हर दिन बढ़ती जा रही हैं। असुरक्षा और भय का वातावरण हावी होता जा रहा है...बाहर से आए व्यापारी अपना सामान ऊँटों पर लाद-लाद कर वापस चल दिए हैं...बंगाल, दक्षिण और गुजरात से आने वाले रास्तों पर सन्नाटा छाने लगा है...बादलों की सुर्खी और बढ़ गई है...

–यह सब भी तो आपने देखा होगा ! अदीब ने दूरबीन से आँखें हटाकर जमुना से पूछा।

–यह पूछो कि क्या नहीं देखा...चलो वक्त का पन्ना पलट देते हैं और अगला पन्ना तुम्हें पढ़ कर सुना देते हैं। यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है कि ऐसे षड़यंत्रकारी समय में शाहजहाँ बीमार पड़ गया है। यह 1657 की गर्मियों के दिन हैं। सितम्बर आते-आते वह बहुत ज्यादा बीमार हो गया। उसकी बीमारी की सारी खबरें विद्रोह के लिए उद्यत तीनों शहज़ादों तक लगातार पहुँच रही हैं। और जब दारा शहंशाह की तीमारदारी और देखभाल में लगा हुआ था, तभी विरोधियों द्वारा यह अफ़वाह फैला दी गई कि शाहजहाँ की मौत हो गई है...शाहजहाँ इस अफवाह के फैलने से होनेवाले खून-खराबे को देख सकता था। शहंशाह ने अफ़वाह को ग़लत साबित करने और प्रजा को विश्वास में लेने के लिए 14 सितम्बर 1657 को क़िले के नीचे जमा हुए हजारों लोगों को अपने शयनागार के झरोखे से दर्शन दिए। एक दरबार भी किया गया। बीमारी की हालत में ही शाहजहाँ ने अपने विश्वासपात्र अधिकारियों और ख़ास दरबारियों को बुलाकर उनके समक्ष अपना इच्छा-पत्र लिखा और उन्हें आज्ञा दी कि वे सब दाराशिकोह के आदेशों का पालन करें! ताजपोशी तो नहीं हुई लेकिन एक तरह से दाराशिकोह को सम्राट के सारे अधिकार दे दिए गए! और इसी के साथ यह भी हुआ कि शहंशाह की हालत सुधरने लगी...और ज़्यादा स्वास्थ्य लाभ के लिए दिल्ली की जलवायु ज्यादा मुफीद मानी गई...18 अक्तूबर 1657 को शहंशाह के शाही काफिले ने दिल्ली के लिए कूच किया...इस खबर से तीनों विद्रोही शहज़ादों के हौसले कुछ देर के लिए पस्त हो गए...पर औरंगज़ेब मामूली आदमी तो था नहीं, उसने जोर–शोर से यह प्रचारित किया कि शहंशाह अब जीवित नहीं हैं और जो आदमी शयनागार के झरोखे से प्रजा को दर्शन देता रहा है, वह एक बूढ़ा खोजा है, जिसे उनके राजसी वस्त्र पहना कर दर्शन देने का नाटक किया जाता रहा है...औरंगज़ेब की पक्षधर बहन और किले में मौजूद रोशनआरा ने जब शहंशाह की मौत का खंडन किया तो पैंतरा बदला गया और कहा गया कि दाराशिकोह ने बीमार शहंशाह का अपहरण करके उन्हें बन्दी बना लिया है और सर्वोच्च सत्ता पर अधिकार कर लिया है...और तब तीनों शहजादों-शुजा, औरंगज़ेब और मुराद ने युद्ध के लिए कमर कस ली! और सिर्फ़ इतना ही नहीं, इस बात को फैलाकर कि शहंशाह की मौत हो गई है, शुजा ने ताज पहन कर ख़ुद को भारत का सम्राट घोषित कर दिया! और साथ ही उसने अपनी बंगाल की प्रान्तीय राजधानी राजमहल से निकलकर दारा के अधीन बिहार प्रान्त पर हमला कर दिया। शाहजहाँ तो जीवित था...उसे यह बर्दाश्त तो नहीं हुआ, पर वह नहीं चाहता था कि गृह-युद्ध की आग में उसका अपना बेटा ही नुकसान उठा जाए...या मारा जाए!

–तब ? इसके बाद ?

–इसके बाद का इतिहास तो अब गंगा, चम्बल, नर्मदा, सतलुज, व्यास और सिन्ध नदियाँ ही बता सकती हैं या फिर वे पात्र जो इस गृहयुद्ध में शामिल रहे हैं! जमुना ने कहा और अपना हरा आँचल लहराती हुई सर्द भाप में समा गई।

तभी अर्दली ने आवाज़ लगाई–

–सत्रहवीं सदी के भारतीय गृहयुद्ध के सभी नायक, प्रतिनायक, खलनायक और चश्मदीद गवाह अदीबे आलिया की अदालत में हाजिर हों!

और देखते-देखते वहाँ भीड़ लग गई...दाराशिकोह, शुजा, औरंगजेब, मुराद, जोधपुर का राजा जसवंत सिंह, जयपुर का महाराजा मिर्जा राजा जयसिंह, दारा के दोनों पुत्र सुलेमान शिकोह और सिपिहर शिकोह, डुमराव का राजपूत उज्जनियाँ, शाहजहाँपुर का रुहेला सरदार दिलेर खाँ, हिसार का दाऊद खाँ, विश्वासघाती खलील उल्ला खाँ, बारहा के सैयद सरदार, वेतनभोगी ईरानी और तूरानी फौजों के सिपहसालार, दारा का इतालवी तोपची मनुची, फ्रांस का वैद्य बर्ने और सैकड़ों लोगों के अलावा गंगा, नर्मदा, चम्बल, सतुलुज, व्यास और सिन्धु नदियाँ तो मौजूद थी हीं।

सबसे पहले गंगा ने अपना बयान शुरू किया—अर्दली बयान नोट करने लगा।

–मैं साक्षी हूँ! गंगा ने कहा-शुजा इस उत्तराधिकार युद्ध के लिए पहले से ही तैयार था। सम्राट की मृत्यु की झूठी ख़बर को बहाना बनाकर शुजा ने अपने प्रान्त से निकल कर बिहार प्रान्त पर आक्रमण किया। मेरी छाती पर उसकी युद्ध नौकाएँ दौड़ने लगीं और शुजा की फौजें सारे प्रान्त को रौंदती–कुचलती आगरा तक पहुँच सकने के लिए अकुलाने लगीं। उसे मालूम था कि गुजरात से मुराद और दक्षिण से औरंगज़ेब की फौजें नर्मदा नदी की ओर कूच कर चुकी हैं।...शहंशाह ने एक सख़्त फरमान भेज कर शुजा को भयभीत करना चाहा, पर उसका कोई असर नहीं हुआ। बल्कि उसने दारा से उसके प्रान्त बिहार के मुंगेर क़िले की माँग की! आख़िर किसी तरह दारा ने शहंशाह को मना लिया कि शुजा की बढ़ती फौज़ों को रोकने और पराजित करने के लिए फौरन सेना भेजी जाए। शाहजहाँ ने यह प्रस्ताव बड़े भारी मन से मंजूर किया क्योंकि इस गृह-युद्ध में वह मुग़लिया राजवंश की तबाही देख रहा था। आखिर दारा के बड़े पुत्र सुलेमान शिकोह के नेतृत्व में शाही फौज ने बनारस की ओर कूच किया। सुलेमान शिकोह तब सिर्फ़ बाईस वर्ष का था लेकिन था बहुत दिलेर। उसके साथ ही राजपूत फौज को रवाना किया गया, जिसके फौजदार थे जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह। उन्हें सुलेमान शिकोह का सलाहकार भी बनाया गया। आखिर शाही फौजें बनारस में मेरे तट पर आ लगीं...मिर्जा राजा जयसिंह और उनकी फौज़ को बनारस तक आने में क्यों देर लग रही थी, उसका कारण तो बाद में पता चला। असल में जयपुर घराने का मिर्ज़ा राजा जयसिंह औरंगज़ेब का अघोषित समर्थक था और वह नहीं चाहता था कि औरंगज़ेब की योजना में शामिल शुजा को कोई नुकसान पहुँचाया जाए।...तेजस्वी सुलेमान शिकोह तीन दिन बनारस में मेरे तट पर ठहरा। उसके बाद नावों का पुल बनाकर उसकी फौज ने मुझे पार किया...शुजा भी बनारस तक जल्दी से जल्दी पहुँचना चाहता था क्योंकि शाही सेना को बनारस में, मेरे उस पार, अनिश्चित काल के लिए रोका जा सकता था...और शुजा चाहता था कि मेरे दक्षिणी तट से चुनार और पटना से होता हुआ जो

राजमार्ग राजमहल तक जाता था, वह उसके लिए निर्विघ्न खुला रहे। सुलेमान शिकोह ने अपना पड़ाव बहादुरगढ़ में डाला। शुजा भी अपनी फौजों का बेड़ा लेकर बढ़ता आ रहा था, पर उसे रुकना पड़ा। आखिर उसने अपनी फौजों का पड़ाव मेरी धारा के पीछे एक ऐसे दुर्गम स्थान में डाला, जो छोटी छोटी पहाड़ियों, जंगलों और नालों से भरा हुआ था। उसके पीछे ही मेरी जलधारा बह रही थी, जिस पर शुजा के युद्धपोतों का अधिकार था। इसलिए जलमार्ग से रसद और गोला बारूद पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं थी।

–दोनों फौजों के पड़ाव पड़े रहे...यहीं पर रुहेला सरदार दिलेर खाँ और डुमराव का राजपूत सरदार उज्जनियाँ भी अपनी-अपनी फौजों के साथ सुलेमान शिकोह के साथ हो गए। मिर्जा राजा जयसिंह भी अब तक पहुँच गया था पर सैनिक सलाहकार होने के नाते वह आक्रमण को रोके हुए था। आखिर सुलेमान शिकोह को आक्रमण की आज्ञा मिली। इस बीच सुलेमान शिकोह ने अपने गुप्तचरों द्वारा सारी जरूरी जानकारियाँ एकत्रित करली थीं। फिर 14 फरवरी 1658 की सुबह सुलेमान ने शुजा के फौज़ी पड़ाव पर ज़बरदस्त हमला किया। शुजा सकते में आ गया। वह हाथी पर सवार होकर अपने सरदारों और सिपाहियों को पुकारने लगा, पर तब तक बहुत से सैनिक गाजर मूली की तरह काट डाले गए थे या जान बचाने के लिए भाग गये थे। शुजा कायर नहीं था। उसने शाही फौज का सामना किया। सुलेमान शिकोह और रुहेला दिलेर खाँ ने उसे जा घेरा। तब तक मिर्जा राजा जयसिंह और अनिरुद्ध गौड़ भी शुजा के हाथी के पास तक पहुँच गए...जबरदस्त युद्ध हुआ। शुजा का हाथी घायल हुआ। तब भी उसका निपुण महावत घायल हाथी के साथ शुजा को लेकर मेरे तट पर लगे बेड़ों तक पहुँच गया। शुजा तात्कालिक मौत और क़ैद से बच गया। वह अपने चीखते-कराहते घायल सैनिकों को वहीं छोड़कर पटना के रास्ते राजमहल को भागा। अब शेष कार्य तो वध और लूट का था...शुजा तो अपनी लाचार फौज़ को सुलेमान की तलवार और मेरी धार के बीच छोड़ कर भाग लिया था। मेरी छाती तैरती लाशों का कब्रिस्तान बन गई थी। मेरे पानी का रंग बदल गया था। सुलेमान को निर्णायक विजय हासिल हुई थी और दो करोड़ रुपये से ज्यादा की दौलत और युद्ध सामग्री उसके हाथ आई थी।

...उधर शुजा उलटे पैर भागता-भागता पाँच दिनों में पटना पहुँच गया था, पर उसका पीछा करके गिरफ्तार करने का काम अंजाम देने वाले मिर्जा राजा जयसिंह को पटना पहुँचने में बीस दिन लग गए। शुजा को गिरफ्तार करने के लिए सुलेमान ख़ुद इसलिए नहीं बढ़ा था क्योंकि वह उस प्रदेश के भूगोल से परिचित नहीं था, जबकि मिर्जा राजा जयसिंह को उस इलाके के चप्पे-चप्पे का पता था। पटना से भाग कर शुजा मुंगेर पहुँचा था। वहाँ से पन्द्रह मील दूर सूरजगढ़ में शुजा मार्च महीने के अंत तक डटा रहा...आखिर सूरजगढ़ को भी शाही सेनाओं ने जीता, पर शुजा यहाँ से भी बचकर निकल भागा। वह अब मेरी धार और खड़गपुर की पहाड़ियों के बीच घिर गया था...लेकिन तब भी

मिर्जा राजा जयसिंह की फौज उस पराजित और पलायन करते शहज़ादे को गिरफ्तार नहीं कर पाई...जीतने के बाद भी मिर्जा राजा जयसिंह पराजित शुजा के साथ शांतिवार्ता में उलझा रहा और उसके ऐलची मिर्जा जानबेग का राजसी ठाठ-बाट से सत्कार करता रहा।

–इसी के साथ एक और भयानक युद्ध की कहानी समान्तर चलती है! एक नदी बीच में बोली तो अदीब ने पहचाना, वह नर्मदा थी।

–जी बताइए! अदीब और अर्दली एक साथ बोले।

–हुआ यह कि पूरब में शुजा के विद्रोह और आक्रमण की खबर औरंगज़ेब और मुराद को मिल गई थी! वे दोनों दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम से आगरा की ओर बढ़ने लगे। गुप्तचरों ने यह सूचना दरबार को दी। शहंशाह को अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया था कि तीनों शहजादे मिलकर साम्राज्य की सत्ता और शक्ति से टकराने के लिए कटिबद्ध हैं! तत्काल जोधपुर के राणा जसवंत सिंह और कासिम खाँ को आज्ञा दी गई कि वे तेज़ी से आगे बढ़कर मेरे तट पर पड़ाव डाल दें और औरंगज़ेब की सेनाओं को मुराद की सेनाओं के साथ सम्मिलित न होने दें। लेकिन राणा जसवंत सिंह और कासिम खाँ देखते रह गए। औरंगज़ेब ने अपनी चतुराई और रण कौशल का परिचय देते हुए अपनी सेनाओं को मुराद की सेनाओं तक पहुँचा दिया। वहीं क्षिप्रा नदी पर बसे उज्जैन नगर से चौदह मील दूर धर्मट के मैदान में तब भीषण युद्ध हुआ। यह 15 अप्रैल 1658 की बात है। कासिम खाँ की सेना के मुसलमान सिपाहियों ने विश्वासघात किया। धर्मट की इस काँटे की लड़ाई में शाही सेनाओं की भयानक पराजय हुई। औरंगज़ेब और मुराद को फतह मिली। अपनी अपमानजनक हार के कारण राणा जसवन्त सिंह जोधपुर की ओर भागा। जोधपुर क़िले पर जब वह पहुँचा, तो उसकी गर्वशीला सिसोदिया रानी ने अपने पराजित पति का स्वागत करने से इन्कार कर दिया।

–हाँ! क्षिप्रा बोली–धर्मट में शाही सेनाओं की हार का यह समाचार मिर्जा राजा जयसिंह को तब मिला, जब वह शुजा के साथ सूरजगढ़ शांतिवार्त्ता में मशगूल था।वह बहुत प्रसन्न हुआ।उसकी प्रसन्नता के दो कारण थे,एक तो यह कि औरंगज़ेब विजयी हुआ था और दूसरा यह कि शाही दरबार में बराबरी का दावा करनेवाला उसका 'दुश्मन' जसवन्त सिंह धर्मट के युद्ध में परास्त हुआ था, और उसके सरपरस्त दाराशिकोह को मुँहतोड़ जवाब मिल गया था। उस शाम इस ख़ुशी में मिर्जा राजा जयसिंह ने गंगा के तट पर जशन मनाया, और 7 मई 1658 को उसने शुजा के साथ शान्ति-सन्धि पर हस्ताक्षर भी कर दिए थे!...अदीबे आलिया! अगर धर्मट के युद्ध में शाही सेनाएँ परास्त न होतीं तो भारत का इतिहास दूसरा ही होता!

–उसके बाद भी इतिहास की धारा बदल सकती थी। जसवंत सिंह की हार और मिर्जा राजा जयसिंह के विश्वासघात के बावजूद अभी भी बहुत उम्मीद बाकी थी! यह चम्बल नदी थी, जो अपना बयान दे रही थी।

—मुझे मालूम है ! चम्बल बोली...जब सामूगढ़ की लड़ाई के काले बादल मंडरा रहे थे, तब शाहजहाँ ने मिर्जा राजा जयसिंह को हुक्म दिया था कि वह बिहार से जल्दी से जल्दी वापस आए और औरंगज़ेब तथा मुराद की बढ़ती फौजों के खिलाफ दाराशिकोह का साथ दे। मेरे तट पर सामूगढ़ का यह युद्ध 29 मई 1658 को हुआ था।

–और कितनी त्रासद तथा उलझी हुई थी यह स्थिति कि सुलेमान शिकोह को मिर्जा राजा जयसिंह की साज़िशों का पता चल चुका था, इसलिए आगरा लौटते समय वह अपनी फौज को जयसिंह की फौज के पीछे रखना चाहता था। उसे यह खतरा था कि यदि जयसिंह की फौज उसके पीछे रही, तो वह विश्वासघाती कभी भी पीछे से हमला करके उसे धूल चटा सकता था। अदीबे आलिया ! गंगा नदी बीच में अपना बयान दे रही थी–अकबर के ज़माने से यह जयपुर घराना मुगलों का विश्वासपात्र बन गया था और उस पुरातन विश्वास का नाजायज़ फायदा अब मिर्जा राजा जयसिंह उठा रहा था। यही हालत ग्वालियर की थी। जमुना और चम्बल मेरी इस बात का समर्थन करेंगी की जयपुर का घराना लगातार अपने राजसी स्वार्थों के लिए अन्याय और अनाचार का समर्थन करता रहा और ग्वालियर हमेशा राजनीतिक बन्दियों का यातनागार बना रहा ! ग्वालियर के इसी घराने ने सन् 1857 में अंग्रेजों का साथ देते हुए झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई के साथ विश्वासघात किया...

–हाँ ! जमुना बोली–इतिहास यही है ! धर्मट की लड़ाई में अपनी सेनाओं की पराजय का समाचार दारा को बलोचपुरा में तब मिला, जब वह शहंशाह शाहजहाँ को स्वास्थ्य लाभ के लिए दिल्ली ले जा रहा था। पराजय की यह ख़बर मिलते ही शहंशाह का काफ़िला बलोचपुरा से आगरा लौट आया।

तभी अदालत में सनसनी-सी फैल गई। फुसफुसाहट होने लगी कि–अरे ! शहंशाह शाहजहाँ कुछ कहना चाहते हैं !

एक बहुत खूबसूरत बूढ़ा, पेट की बीमारी से ज़ार-ज़ार और मुल्क के सम्भावित राजनीतिक गृह-युद्ध से त्रस्त और पस्त, तब ख़ुद ही अदालत की भीड़ में से उठ कर खड़ा हुआ।

–हुजूरे आलिया ! मैं इससे पहले भी बयान दे चुका हूँ...लेकिन मैं इस भीड़ में आपकी नजरों से ओझल था...दुबारा बता दूँ कि मैं हिन्दोस्तान का बादशाह शाहजहाँ हूँ !...मेरी गवाही के बग़ैर आपका इतिहास पूरा नहीं होगा। मैं बताता हूँ...मुझसे ज़्यादा बदनसीब बाप और बादशाह इस दुनिया में दूसरा नहीं है। पेट की इस जानलेवा बीमारी ने मुझे तोड़ कर रख दिया है। मैं...मैं पागल हो गया हूँ...कभी मैं दारा को अपने ही विद्रोही शहज़ादों के खिलाफ फौजी कार्रवाई की सलाह देता हूँ, तो कभी मिर्जा राजा जयसिंह को पराजित शुजा के साथ सुलह की राय देता हूँ...कभी सुलेमान शिकोह और जयसिंह को जल्द-से-जल्द आगरा लौटने का आदेश देता हूँ, तो यह सोच कर दिल धड़कने लगता है कि मैं खुद ही अपने बेटों को एक दूसरे के खिलाफ लड़वा रहा हूँ !...अदीबे आलिया ! मैं कुछ

भी सोच नहीं पाता...मेरा दिमाग़ काम नहीं करता...मैं सिर्फ़ इस खूनी गृह- युद्ध से अपने मुग़लिया खानदान को बचाना चाहता हूँ...दरबार में तरह-तरह की बातें सामने आती हैं...मैं जानता हूँ कि मेरी प्रजा दाराशिकोह को पसन्द करती है लेकिन हमारे सामन्त, वज़ीर और मुल्ला दारा को बिल्कुल पसन्द नहीं करते...मैं, मेरा खुदा जानता है, मैं पक्का मुसलमान हूँ ! और...सारे जुल्म ढहाने, मन्दिरों को तोड़ने, हिन्दू रियाया पर ज्यादतियाँ करने के बाद मैं अब इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हिन्दोस्तान में इस्लाम का स्वरूप कुछ दूसरा ही होगा...दारा इसी कोशिश में लगा हुआ था, पर उसे अब कट्टर भेड़ियों का सामना करना पड़ रहा है...दूसरी तरफ मेरे कुछ दरबारी औरंगज़ेब का समर्थन करते हैं...तो मैं कभी-कभी उनकी तरफ झुक जाता हूँ...कभी मैं रोशानआरा की दलीलें सुनता हूँ जो खुलेआम औरंगज़ेब के साथ है, फिर जहाँआरा मुझे दारा के बड़प्पन और हिन्दोस्तान के मुस्तकबिल के बारे में बताती है, तो मैं उससे सहमत हो जाता हूँ...और मेरी तीसरी बेटी गौहरआरा जब मुराद की खासियतें बताती हैं तो मुझे मुराद भी ठीक और सही लगने लगता है उधर मैंने मिर्जा राजा जयसिंह और सुलेमान शिकोह को खबर भेजी है कि वे दोनों जल्द से जल्द आगरा पहुँच जाएँ ताकि हम औरंगज़ेब और मुराद की फौजों का मुकाबला कर सकें...लेकिन पता नहीं, वे दोनों कहाँ अटके हुए हैं...अगर उनके पहुँचने से पहले जंग ज़रूरी हो गई, तो लड़ना तो पड़ेगा ही !

–जी हाँ ! यही हुआ। शाहजहाँ के दरबार में बहुत गर्मागर्म बहसें हुईं। अन्त में, औरंगज़ेब और मुराद की बढ़ती सेनाओं के खतरे को पहचानते हुए शाहजहाँ ने दारा को आज्ञा दी कि वह उन बाग़ी सेनाओं को रोके ! अब चम्बल बोल रही थी–22 मई 1658 को दारा धौलपुर पहुँचा, और मेरे तटों की रक्षा पंक्तियों को सुदृढ़ करने में व्यस्त हो गया। मैंने तब दारा को भर-आँख देखा था...वह तो बिल्कुल सूफ़ी दरवेश लगता था...और इससे पहले कि दारा मेरे तट पर सुदृढ़ व्यूह रचना करे, 23 मई को ही धौलपुर से 40 मील दूर मुझे पार करके औरंगज़ेब ने दारा की फौजों के पृष्ठ भाग को उलट दिया। तब दारा मेरे तट से आगरा की तरफ भाग कर नौ मील दूर सामूगढ़ में रुका था और वहीं उसने अपनी छावनी डाली थी। वहीं सामूगढ़ में दारा और औरंजेब का भयानक निर्णायक युद्ध हुआ। और ख़लील उल्लाह की फौजों की गद्दारी की वजह से दारा हार गया...

–खलील उल्लाह को हाजिर किया जाए ! अदीब ने अर्दली को आवाज़ दी।

और खलील उल्लाह हाथ जोड़े सामने खड़ा था।

–जी हुजूर ! हमने दारा के साथ बेहद मजबूरी में गद्दारी की...क्योंकि तब जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह ने तमाम हिन्दू राजाओं को चिट्ठियाँ लिख-लिखकर और ऐलची भेज-भेज कर उन्हें औरंगज़ेब का समर्थक बना लिया था...और फिर हम तूरानी थे, हिन्दोस्तानी हिन्दू-मुस्लिम फौज के साथ हमारी पटती भी नहीं थी। वे हमें अपने देश का नहीं, भाड़े का सैनिक मानते थे...इसलिए भी हम भीतर ही भीतर शाही हिन्दोस्तानी फौज़

के खिलाफ थे। अदीबे आलिया ! हमने दारा के साथ जानबूझ कर गद्दारी नहीं की थी, लेकिन जब सामूगढ़ में औरंगज़ेब की फौजें हम पर टूट पड़ीं, तो हमने हारते हुए दारा के बजाय जीतते हुए, सुन्नी मुसलमान औरंगज़ेब का साथ देना बेहतर समझा...हम तो भाड़े के सिपाही हैं...जीने के लिए पैसा कमाते हैं, मरने के लिए नहीं। हम लड़ते ईमानदारी से हैं, पर हारने लगें तो हमारी ज़िन्दगी जीतने वाले के हाथ होती है। और फिर दारा शिकोह की फौज में ईरानियों, तूरानियों, राजपूतों, बारहा के सैयदों और यहीं पैदा हुए ज़मीनी मुसलमानों को लेकर भी नाचाकियाँ, ग़लतफहमियाँ और अपनी-अपनी हसदें थीं...सामूगढ़ के उस रेतीले मैदान में दारा ने अपनी फौजें तैनात कर दी थीं ! उसका तोपखाना बर्कन्दाज़ खाँ और मनुची के हवाले था। इस तोपखाने के पीछे पैदल फौजियों के शानदार दस्ते थे, उनके पास तोड़ेदार बन्दूकें थीं। इनके पीछे पाँच सौ ऊँट थे, जिनकी पीठों पर चक्करदार तोपें मौजूद थीं। इनके पीछे लड़ाकू हाथियों की कतारे थीं। यह फौज पाँच हिस्सों में तैनात की गई थी...अगले दस्ते में राजपूत और पठान थे। उनकी कमान राव क्षत्रसाल और दाऊद खाँ के हाथों में थी। बीचों-बीच दस हज़ार सैनिकों का दस्ता था–इसमें खुद हाथी पर सवार शहज़ादा दारा था...उसके चारों तरफ करीब छः हजार जाने-पहचाने वफ़ादार लड़ाकू थे। मैं अपनी पन्द्रह हज़ार-फ़ौज़ के साथ दाहिने बाजू था।जंग शुरू हुई।तोपें गरजने लगीं...औरंगज़ेब की तरफ से काफी देर तक गोला–बारी हुई फिर खामोशी छा गई। तो लगा कि बर्कन्दाज़ खाँ और मनुची ने औरंगज़ेब का तोपखाना बेकार कर दिया है...बस यहीं पर ग़लती हुई...हमें हमले का हुक्म...मिला घमासान जंग हुई...औरंगज़ेब के अगले दस्तों की फौजों को काट डाला गया। तब दारा ने ख़ुद आगे बढ़कर औरंगज़ेब के सामने वाले दस्ते पर हमला किया। दुश्मन तितर–बितर हुआ तो नगाड़चियों ने दारा की जीत के नगाड़े बजा दिए...यह दूसरी बड़ी ग़लती हुई...फिर तो हम पर औरंगज़ेब का क़हर बरपा हो गया। अपने बेटे, भाई और तीन भतीजों समेत राव क्षत्रसाल मारा गया, उधर रुस्तम खाँ मरा तो सिपिहर शिकोह अपनी बची-खुची फौज को लेकर भाग खड़ा हुआ...चक्करदार तोपों वाले ऊँट और जंगी हाथी पीछे छूट गए...दारा भी अब घिर गया था। उसकी हिफाजत के लिए अब सिर्फ दाऊद खाँ था। ऐसे में तीसरी ग़लती हुई–दारा अपने हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हो गया...वह कटते-मरते सैनिकों को दिखाई पड़ना बन्द हो गया। उसी वक्त चम्बल की ओर से गरम रेतीली आँधी आई...उसमें हम भुनने लगे...दारा ने अपने वफादार सिपाहियों को तड़पते, जख्मों से कराहते और पानी-पानी...चीखते-चिल्लाते सुना तो उसका दिल थरथरा गया...तभी दूर पर उसने सिपिहर शिकोह को रोते और आवाज़ लगाते देखा तो उसका धीरज टूट गया...ऐसे में मैं क्या करता ? मैंने भी मैदान छोड़ दिया...हुजूर यह कहना ग़लत है कि जब दारा अपने बाएँ बाजू की मदद के लिए बढ़ा और जब औरंगज़ेब के बेटे सुल्तान मुहम्मद ने सामने से हमला किया, तब मैं जान बचाकर भाग निकला ! असल बात तो यह है हुजूर कि दारा को इन खूनी जंगों का कोई तजुर्बा नहीं था।

उसमें अपनी फौजों में जोश भरने वाली फुर्ती, चतुराई और वीरता के गुण भी नहीं थे। औरंगज़ेब जैसे चालाक और तजुर्बेकार लड़ाकू के सामने दारा टिक ही नहीं सकता था...

–जो कुछ भी हो ! चम्बल चीखी–सामूगढ़ का यह युद्ध सिर्फ तख़्तोताज का युद्ध नहीं, यह युद्ध तो इस देश के भविष्य का निर्णायक युद्ध था...कि इस युद्ध से अकबर युग का अवसान हुआ था अकबर ने इस्लामी साम्राज्य को नहीं, राष्ट्रीय साम्राज्य को जन्म दिया था...और वही दारा जारी रखना चाहता था...दारा धर्म और मन की तौहीद...एकत्व का रास्ता तलाश रहा था...वह शरीयत को इस्लाम के बन्दों तक महदूद नहीं रखना चाहता था वह शरीयत की अनुकूलता की धारणा को धर्म से ऊपर ले जाकर मनुष्य मात्र के लिए लागू करना चाहता था वह इस्लाम का फायदा उन्हें भी पहुँचाना चाहता था, जो मुसलमान नहीं थे। वह इस्लाम को सिर्फ मुसलमानों के धर्म के रूप में ही नहीं, एक विराट मानव धर्म के रूप में फैलाना चाहता था...यह ठीक है कि कन्धार के असफल अवरोध के बाद जब दारा लौटा था, तब वह वेदान्ती-सूफी संत बाबा लाली के पास लाहौर के कोटल-मेहरां में तीन हफ्ते रुका था। उसने उपनिषदों का अनुवाद फारसी में करवाया था...लेकिन वह सूफ़ी संत मुल्लाशाह का भी शिष्य बना था। वह शेख महीबुल्ला इलाहाबादी से भी मिला था। सन्त शाह दिलरुबा, शेख मुहसिन फ़ानी और सरमद से भी उसकी लगातार बातचीत होती रहती थी...यह कोई गुनाह तो नहीं था।

–उसका गुनाह सिर्फ यह था कि वह मुग़लिया साम्राज्य का सबसे बड़ा शहज़ादा और तख़त का वारिस था...और वह मनुष्य के शुभ के इतिहास का नया अध्याय लिखने की कोशिश कर रहा था !–कहते हुए अदीब परेशानी से टहलने लगा। अर्दली उसे चिन्ता से देख रहा था।

तभी अँधेरा घिरने लगा। अदीब ने उतरते अँधेरे को देखा और जैसे पहचान कर चीखा–यह तो सत्रहवीं सदी का वही अँधेरा है...जो सामूगढ़ के रेतीले मैदान में छा गया था...खून से लदे लाल बादल भी अब काले पड़ गए हैं और हाथ-हाथ भर की दूरी पर रेत में समाते खून ने गहरे-पतले छेद बना लिए हैं...गिद्ध आकर उतर पड़े हैं, कुत्ते अशक्त घायलों को चींथ रहे हैं...अर्दली...देखो...इस दहला देने वाले हौलनाक मंजर को देखो...और तलाश करो–दारा कहाँ है ?

तभी एक गड़गड़ाती आसमानी आवाज़ आई–दाराशिकोह यहाँ से तीन कोस दूर एक पेड़ के नीचे मौजूद है...वह अपना जिराबख़्तर उतार रहा है !

अदीब ने देखा–

उस घने अँधेरे पेड़ के नीचे दारा कुछ सिपाहियों के साथ मौजूद है। उसने अपना जिराबख़्तर उतार कर फेंक दिया है और तने का सहारा लेकर बैठ गया है। हाँफते और फेन उगलते घोड़े खड़े हैं...फिर नगाड़ों की तेज गूंजती आवाज़...वह गड़गड़ाती आवाज इधर ही बढ़ी आ रही थी।

एक घायल सिपाही ने कहा–

–हुजूर! यहाँ से चल पड़िए...दुश्मन के नगाड़े और दस्ते इधर ही आ रहे हैं!

–नहीं! मैं कहीं नहीं जाऊँगा...आख़िर क्या होने वाला है? जो कुछ होना है, अभी हो जाए...दारा ने कहा।

–आपको चलना ही होगा!...यह पहली जंग है...अभी तो आपको कई लड़ाइयाँ लड़नी हैं!

–इसी लड़ाई का रुख़ बदल जाता...अगर मिर्जा राजा जयसिंह बिहार से हमारी शाही फौज लेकर वक्त से पहुँच जाता...उसी की वजह से सुलेमान शिकोह भी नहीं...पहुँच पाया वह जयसिंह की फौजों के आगे चलने का ख़तरा नहीं उठा सकता था...शायद अल्लाह को यही मंजूर था...दारा बोला।

फिर अदीब ने देखा, अपने वफादार अनुचरों के कहने से दारा घोड़े पर सवार होकर आगरा की तरफ चल दिया।

–हाँ, रात करीब नौ बजे दारा अपने महल में पहुँचा–जमुना गीली आँखें पोंछते हुए बता रही थी।

–उसने अपने महल को बन्द कर लिया...आगरा के हर गली-मोहल्ले से लोगों के रोने की आवाजें आ रही थीं। पूरा शहर मातम मना रहा था। शहंशाह शाहजहाँ ने तब एक सन्देशवाहक के हाथों फरमान भेजा कि वो फ़ौरन आकर उससे मिले...लेकिन दारा यह बात मंजूर नहीं कर पाया, उसने शहंशाह को लिख भेजा कि इस शर्मसार, पस्त और परास्त बेटे का मुँह देखने की इच्छा आप छोड़ दें। बस मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझ जैसे बदनसीब, अर्ध–विक्षिप्त और अर्ध-मृत बेटे को उसके सम्मुख उपस्थित लम्बी यात्रा और विदाई के लिए अपना शुभ आशीर्वाद दें!...और करीब तीन बजे रात दारा अपनी बेगम नादिरा बानू, अपने बच्चों, नाती पोतों और अपने बचे-खुचे वफादार सिपाहियों को लेकर दिल्ली की तरफ निकल गया...

फिर वही आसमानी आवाज गूंजी–और 3 जून 1658 की सुबह ही औरंगज़ेब की फौजों ने राजधानी आगरा को चारों तरफ से घेर लिया।

आसमानी आवाज़ फिर जैसे एक परछाईं में घिर गई...और वह परछाईं अदीब की तरफ बढ़ने लगी! और हैरत से अदीब और अर्दली ने देखा–वह परछाईं और किसी की नहीं–वह खुद दाराशिकोह था...अदीब ने उसे चौंक कर देखा।

–दाराशिकोह तुम!

–हाँ अदीबे आलिया! मैं ही हूँ वह बदनसीब शहज़ादा! जो औरंगज़ेब के पाकिस्तान को बनने से नहीं रोक पाया!

–तो उसके बाद क्या हुआ जब औरंगज़ेब ने आगरा को घेर लिया? अर्दली ने बहुत अदब से पूछा।

–जब तक औरंगज़ेब की फ़ौजों ने आगरा को घेरा तब तक मैं दिल्ली की तरफ कूच कर चुका था! कहता हुआ दारा वहीं अदीब के पास आकर बैठ गया और बोला–हालाँकि मैं शहंशाह को अकेला नहीं छोड़ना चाहता था, लेकिन उन हालात में यही मुनासिब था कि मैं आगरा छोड़ दूँ...देखिए अदीब! मेरे पलायन की एक लम्बी दास्तान है। मैं कहाँ-कहाँ दर-बदर नहीं भटकता रहा...उस वक्त मेरे लिए सबसे सुरक्षित दो ही ठिकाने थे–इलाहाबाद और लाहौर...मैंने लाहौर जाना बेहतर समझा...फिर तो मैंने पूरे हिन्दुस्तान की ख़ाक छानी...बहुत दर्दनाक है मेरी यह कहानी...

•

26

दारा बता रहा था–

–मेरे पलायन की कहानी भयानक है। मैं कटी पतंग की तरह न जाने कितने आसमानों और कितने झकोरों में चकराता रहा, कितने कंटीले पेड़ों में उलझा, कितनी लग्गियों ने मुझे छेदा, फटे परचम की तरह लहराया...कि अब बस...मेरा पिंजर ही शेष रह गया है।

उदास जमुना पास ही बैठी थी। उसने धीरे से कहा–

–दारा! तुमने कभी समय और कूटनीति का लाभ नहीं उठाया। तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि जब तुम सामूगढ़ में हारे थे, तो औरंगज़ेब की इस निर्णायक विजय से शुजा का माथा ठनक गया था। और शुजा औरंगज़ेब का शत्रु हो गया था...इसलिए तुम्हारी कूटनीति यही होनी चाहिए थी कि तुम शुजा से मित्रता करते और उसके साथ मिलकर ऐसी व्यूह रचना करते कि तुम दोनों भाई मिलकर पूरब से औरंगज़ेब का सफ़ाया कर देते...तुम में और शुजा में वैचारिक कटुता और धार्मिक कट्टरता भी नहीं थी और तुम साम्राजय की प्रजा को विश्वास दिला सकते थे कि तुम दोनों शहंशाह शाहजहाँ की सलामती और आगरा का घेरा तोड़ने के लिए सम्मिलित कदम उठा रहे हो...तुम शुजा के साथ सन्धि करते, तब घोषित उद्देश्यों के लिए तुम्हें हिन्दुस्तान की पूरी प्रजा का समर्थन मिलता!

–मैंने यह कोशिश की थी। इसीलिए तो मैंने सुलेमान शिकोह को आदेश दिया था कि वह शुजा के अधिकारियों को इलाहाबाद का इलाक़ा लौटा दे! दारा बोला।

–लेकिन फिर भी कूटनीति और राजनीतिक दूरदर्शिता का साहस तुमने नहीं दिखाया...तुमने शुजा पर अपेक्षित विश्वास नहीं किया...नहीं तो औरंगज़ेब के विरुद्ध पूरा हिन्दुस्तान खड़ा था। पूरब में शुजा था, मुराद भी...शुजा से सन्धि के लिए लगभग तैयार था। राजस्थान में जोधपुर का जसवंत सिंह मौजूद था...पंजाब और काबुल में औरंगजेब का कोई अस्तित्व नहीं था। दक्षिण में औरंगज़ेब के शत्रु गोलकुंडा और बीजापुर मौजूद थे। औरंगज़ेब की स्थिति तो बहुत ही संकटग्रस्त हो जाती यदि तुमने कूटनीतिक और सामरिक दूरदर्शिता से काम लिया होता! लेकिन तुमने लाहौर जाने का निश्चय किया, इसलिए औरंगज़ेब को एक-एक शत्रु से अलग-अलग निपटने का अवसर मिल गया। सबसे बड़ी ग़लती तुमने यह की कि शुजा के साथ पूरब में सैन्य संधि करने की बजाय तुमने सुलेमान शिकोह को हिमालय के नीचे-नीचे तराई के रास्ते वापस आ कर लाहौर में मिलने का आदेश दिया!

–शायद यही ग़लत हुआ...दारा ने गहरी साँस लेकर कहा–और शायद जब कुछ ग़लत होता है तो सब कुछ ग़लत हो जाता है!...यहीं से मेरी बदकिस्मती की दास्तान शुरू होती है...मैं 12 जून 1658 को दिल्ली से चलकर 3 जुलाई 1658 को लाहौर पहुँचा। वहीं मुझे जम्मू के राजपूतों का राजा राजरूप मिला...उसने साथ देने का वादा किया...मेरे उसके संबंधों को हिन्दुस्तानी प्रतिज्ञा में बाँध देने के लिए मेरी बेग़म नादिरा ने उसे अपनी छातियों का दूध भेजा। वे माँ और बेटे के सम्बन्धों में बँध गए...दाऊद खाँ और इज्जत खाँ के साथ मैंने सतलुज नदी पर रोपड़ में घेरेबन्दी की। औरंगज़ेब का सेनापति बहादुर खाँ मेरा पीछा करता बढ़ रहा था। उसके फ़ौजी दस्तों और बेड़ों ने रात में सतलुज पार कर ली...संकट बढ़ गया।

–मैंने दारा को देखा था...यह मेरे तटबन्धों पर अपने को असुरक्षित पा रहा था सतलुज नदी बोल रही थी–तब तक औरंगज़ेब ने मिर्जा राजा जयसिंह और खलील उल्लाह को दारा के खिलाफ बहादुर खाँ की मदद के लिए रवाना कर दिया था।

–हाँ, यह वही खलील उल्लाह था, जिसने सामूगढ़ में मुझे धोखा दिया था। दारा चीख कर बोला–मैं नहीं चाहता था कि मेरी आँखों के सामने मेरे बीबी-बच्चों का क़त्ल हो...इसलिए मैं मुलतान की ओर निकल गया।

–लेकिन भागना आसान तो नहीं था...औरंगज़ेब के फौजी दस्ते दारा को जीवित पकड़ना चाहते थे, तब मेरी बहन व्यास नदी ने दारा की भरसक रक्षा की थी। व्यास ने अपने पानी का फाट फैला दिया था। पीछा करती फौजों और दारा के बीच बस अब व्यास नदी के चौड़े फाट की दूरी थी।

–हाँ! सिर्फ व्यास नदी के चौड़े फाट की दूरी थी...लेकिन फिर भी दुश्मन को इतने नजदीक देखकर मेरा सबसे विश्वस्त सिपहसालार दाऊद खाँ भी अपने घरवालों की सुरक्षा को लेकर भयाक्रान्त हो गया था। हालाँकि मेरा विदेशी तोपची मनुची और सिपिहर शिकोह मेरे पास पहुँच गए थे, पर भक्कर में दाऊद खाँ ने मुझसे आज्ञा माँगी और वह जयसलमेर होता हुआ, अपने घर हिसार लौट गया।...पराजित योद्धा का साथ सिर्फ़ दुर्भाग्य देता है...मेरे सिपाही मुझे छोड़ने लगे...बाकी ओहदेदार भी मुझे छोड़कर अपनी जागीरों पर वापस लौटने लगे...और वह...वह ज़लील राजा राजरूप–जिसे नादिरा ने अपना दूध भेजा था, वह व्यास नदी के तट पर जाकर औरंगज़ेब की फौजों से मिल गया। इसी विश्वासघाती राजरूप ने, बाद में देवराई के युद्ध में मेरी सेना के पिछले हिस्से को उलट दिया था यह तो बाद की बात है। और...और मैं जैसे-तैसे 4 सितम्बर 1658 को मुलतान पहुँचा!

तभी वक्त ने दख़ल दिया–

–अदीबे आला! वक्त न हिन्दू है न मुसलमान...इतिहास गवाह है कि रजवाड़ों और सल्तनतों के लोग हिन्दू या मुसलमान तो थे लेकिन इनके स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं ने ही इन लोगों को और ज्यादा हिन्दू या मुसलमान बनाया था। जब- जब ये अपनी ताकत से

अपनी महत्वाकांक्षाओं को हासिल नहीं कर सके हैं, तब-तब ही इन्होंने धर्म का दामन थामा है...नहीं तो मुझे बताइए कि कितने राणा–महाराणा और सूबेदार–शहंशाह हैं, जिन्होंने धर्म की ख़ातिर अपनी गद्दी का परित्याग किया हो ? सच्चाई यह है कि आज तक किसी शहंशाह ने अपनी आन्तरिक मज़हबी जरूरतों के लिए अपनी सल्तनत नहीं छोड़ी ! नहीं तो क्या वजह थी...वक्त चीख रहा था–कि औरंगज़ेब, जो पाक कुरान की आयतें लिखता रहा और टोपियाँ सिल–सिलकर अपने गुज़ारे का इन्तजाम करता रहा, अगर वह सचमुच दिल से मज़हबपरस्त था, तो वह दिए गए आश्वासन के तहत मुराद को हिन्दोस्तान का शहंशाह बनाकर खुद हज पर क्यों नहीं चला गया और उसने अपनी बाकी ज़िन्दगी मक्का और मदीना में एक हाजी–दरवेश की तरह क्यों नहीं गुजारी ?...मैं फिर अपनी वही बात दोहराऊँगा कि अपने स्वार्थों के लिए सब मज़हब को मानते थे, लेकिन मज़हब की बात कोई नहीं मानता था !

वक्त की बात सुनकर एक अजीब-सा सन्नाटा छा गया। एक सोचता हुआ सन्नाटा। अपने-अपने दिलों को टटोलता हुआ सन्नाटा...

अपनी कीली पर घूमता हुआ दुनिया का गोला जैसे ठिठक कर रुक गया था।

–ऐ वक्त ! जब-जब इन्सान अपनी अन्तरात्मा को टटोलता है तो कीली पर गर्दिश करती इस कायनात के दिल की एक धड़कन अपना दम तोड़ देती है...अदीब ने कहा–लेकिन मुझे यह तो बताओ कि फिर हुआ क्या ?

वक्त ने अपना बयान जारी रखा–

–दाराशिकोह लाहौर की तरफ भागा था...यही इसने ग़लती की !

दारा ने सहमति की दृष्टि से वक्त को देखा।

–औरंगज़ेब की हमलावर फौज से बचने के लिए यह दाराशिकोह व्यास नदी से सिन्धु नदी के दक्षिण की तरफ उतर कर भक्कर चला गया ! क्योंकि भक्कर से पचास मील नीचे, कंधार होकर ईरान जाने का रास्ता वहीं से मिलता है !

–तो मैं और क्या करता ! पस्त हिम्मत दारा ने तकलीफ से कहा।

वक्त बिगड़ उठा–

— तुमने भी वही रास्ता पकड़ा जो तुम्हारे पूर्वज हुमायूं ने कभी पकड़ा था !...और हुजूरे आलिया ! जब इस डरे-घबराये दाराशिकोह ने अपनी बीवी और दीगर ओहदेदारों के हरम के साथ, ईरान के शासक शाह अब्बास की मिल्कियत में पनाह पाने की खातिर सन्देशा भेजा तो सारी खवातीन ने विद्रोह कर दिया था कि कुछ भी हो, हम अपने वतन की सरज़मीं पर बेमौत मर जाएँगी, लेकिन ईरान के शाह अब्बास के हरम में शामिल होकर हम उसकी वहशत का शिकार नहीं बनेंगी ! हम यहीं अपने मुल्क की राजपूती वीरांगनाओं की तरह जौहर की रस्म अदा करेंगी और ख़ुद को खत्म कर लेंगी ! लेकिन हम ईरान के शाह के अरदम में पेश नहीं होंगी !

तभी मद्धिम हवा का एक महकता-लरजता हुआ झोंका आया और सबके माथों का पसीना पोंछता हुआ वहीं खड़ा हो गया!

–तुम कौन हो? अर्दली ने इस झोंके से सवाल किया।

–मैं हिन्दुस्तानी तहज़ीब हूँ!

–तुम्हारा इस तारीख और इतिहास से क्या वास्ता? तुम देख नहीं रही हो कि हमारे अदीब, समय और दाराशिकोह गहरी पड़ताल और छानबीन में मशगूल हैं...तुम्हारी यह दखलंदाजी हमें मंजूर नहीं! अर्दली ने तहज़ीब को डाँटा।

तो, हिन्दुस्तानी तहज़ीब ने उसी मद्धिम–मुलायम आवाज़ में जवाब दिया–सुनो आला अदीब के अर्दली! औरत की आबरू ही संस्कृति के मयारों को तय करती है...जो तहज़ीब अपनी औरत की आबरू को इज्ज़त नहीं दे सकी, वह रोम, यूनान और मिस्र की तरह मिट गई...चाहे यह नृशंस ही लगे, पर हिन्दुस्तान में जब उसकी तहज़ीब औरत की आबरू की रक्षा नहीं कर सकी, तो खुद औरत ने अपनी सभ्यता की रक्षा की खातिर अपना बलिदान देकर इस संस्कृति का मुँह उजला किया है...और दाराशिकोह की बीवी नादिरा बानू और बक़िया ओहदेदारों की औरतें उसी व्यक्तिगत वजूद और हिन्दुस्तानी तहज़ीब और परंपरा के तहत मौत को गले लगाने के लिए तैयार हैं...इस ज़ालिम दौर में अगर औरत अपनी आबरू की हिफाजत के लिए विद्रोह करती है...तो यह हिंदुस्तानी औरत का फैसला है और इसे इसका हक़ है! जौहर की रवायत-परम्परा बर्बर है लेकिन औरत की अस्मत की बेक़द्री और उसका उल्लंघन करना तो और भी बड़ी बर्बरता है...समझे अर्दली साहब!–कहते हुए तहज़ीब वहीं उदास और नाराज़-सी बैठ गई।

तभी सफेद और काले पंखों वाली कई सदियाँ हिन्दुस्तानी तहज़ीब को सलाम करती हुई गुज़र गईं...और माहौल में एकाएक इक़बाल का तराना गूँजने लगा–

–ऐ आब-रोदे गंगा, वो दिन है याद तुझको
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा...
यूनानो, मिस्र-रोमा, सब मिट गए जहाँ से
अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा...

और यह तराना अभी खत्म नहीं हुआ था कि अख़्तरुल ईमान बड़ी गहरी, संजीदा और तकलीफदेह आवाज़ में अपनी नज़्म पेश करते हुए आ गए! बोले–यह तो कल की बात है...यहाँ भी सब लोग वैसे ही बैठे हैं!

–कैसे हैं अख्तरुल भाई! अदीब ने उनका स्वागत करते हुए पूछा।

–वैसे ही जैसे अदीब तुम, तुम्हारा अर्दली, दाराशिकोह, वक्त और हमारी तहज़ीब यहाँ मौजूद है!...ऐसे ही...

–ऐसे ही क्या? अदीब ने जानना चाहा।

–ऐसे ही बैठे थे इधर भइया दाहिनी जानिब

उनके नजदीक बड़ी आपा शबाना को लिए
अपनी ससुराल के कुछ किस्से, लतीफ़े, बातें,
यूँ सुनाती थीं, हँसे पड़ते थे सब
सामने अम्माँ वहीं खोले पिटारी अपनी
मुँह भरे पान से समधिन की इन्हीं बातों पर
झुँझलाती थीं, कभी तंज़ से कुछ कहती थीं
हमको घेरे हुए बैठी थीं नईमा, शहनाज
वक्फा-वक्फा से कभी दोनों में चश्मक होती
हस्बे मामूल सँभाले हुए खानादारी
मँझली आपा कभी आती थीं, कभी जाती थीं
हमसे दूर अब्बा उसी कमरे के इक कोने में
कागज़ात अपनी आराज़ी के लिए बैठे थे
यक-ब-यक शोर हुआ–इक नया मुल्क बना
और इक आन में महफ़िल हुई दरहम बरहम
आँख जो खोली तो देखा कि जमीं लाल है सब...

इतना पढ़ते-पढ़ते अख्तरुल ईमान की आँखें भर आईं...वह सिसक पड़े, अगली लाइनें नहीं पढ़ सके...

–रोओ मत अख्तरुल ईमान! वक्त ने उन्हें ढाढ़स दिया—काश! इक नया मुल्क बनने और लाल खून के फव्वारों से धरती के रंग जाने के बजाय यह सचमुच तुम्हारी अम्मा के पान की लाल पीक होती! लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

–और ऐसा ही उस वक्त हुआ जब खून की लकीर दाराशिकोह का पीछा करती हुई देवराई के जंगी मैदान तक पहुँच गई थी!...मैं गवाह हूँ सारे हालात का...इस सच्चाई का, जब विश्वासघाती हिन्दुओं की कमजोरी और साजिश के चलते सन् 1659 में औरंगज़ेब ने खुद अपने बड़े भाई दाराशिकोह को शिकस्त देकर हिन्दुस्तान में ही अपना पाकिस्तान बनाया था! उन दिनों मुल्कों के नाम नहीं, शहंशाहों के नाम बदलते थे और शहंशाह के बदलने के साथ ही बदलता था सत्ता का रवैया और ज़हनियत...और पाकिस्तानों के बनने का सिलसिला शुरू हो जाता था! यह आवाज़ तहज़ीब की थी।

–लेकिन मैं अपनी संतान की दिली और जज़्बाती क़ैफ़ियत नहीं बदलने देती। मैं इंसान की रगों में बहते खून और उसके दिल की धड़कनों को बुझने नहीं देती! तहज़ीब अपनी रौ में बोले जा रही थी–यही वजह है कि मैं 5000 बरसों से आज तक जिन्दा हूँ!...

तहज़ीब की यह बात सुनते ही आसमान में खिड़कियाँ खुलने लगीं...हर खिड़की में एक-एक चेहरा मौजूद था...दुनिया के सारे आला अदीब उन खिड़कियों से झाँक थे!

अदीब ने हैरानी से तहज़ीब की तरफ देखा–

–अदीब ! यह तुम्हारी ही बिरादरी है जिसने मुझे जिन्दा रखा है...सियासत ने तो मेरे दो टुकड़े कर दिए, लेकिन मैं कोई भूखंड तो नहीं कि कोई मेरे टुकड़े कर सके ! तहज़ीब बहुत फ़लसफ़ाना लहजे में अपनी बात कह रही थी–मैं भी तो आत्मा की तरह हूँ जो सिर्फ़ अपना रूप बदलती है...आज मैं जिस रूप में तुम्हारे सामने हूँ, वही तो मेरा रूप नहीं था, मैंने मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में अपना रूप बदला था। वैदिक आर्य यहाँ जब आए थे तो युद्ध के हथियार नहीं, हाथों में अन्न की बालियाँ और अन्न उगाने के औज़ार लेकर आए थे...वे आक्रमणकारी नहीं थे...आक्रमण की ज़रूरत ही क्या थी ? धरती खाली पड़ी थी, कोई कहीं भी बस सकता था...तब भी मैंने अपना रूप बदला था...अदीब ! मैं सतत परिवर्तनशील हूँ इसीलिए सनातन हूँ...यह ठीक है कि इस दौर में जिन्ना ने एक सियासी दीवार खड़ी कर ली, लेकिन कोई दीवार मेरी आवाज़ और साँसों को नहीं रोक सकती !

तभी अर्दली ने अदीब को एक चिट दी, जिसमें लिखा था कि तहज़ीब की आवाज़ सुनकर जोगिंदर पाल और कृष्णा जी वज़ीर आग़ा को लेकर, इस बहस को सुनने के लिए मौजूद हो चुके हैं...अदीब ने आँखों आँखों में ही तीनों को सलाम किया। वे भी ख़ामोशी से बैठ गए...उनकी आत्माओं पर भी तक्सीम से ज़्यादा उन सदियों के दर्द का बोझ था, जिनमें वो अपना कलम देकर शामिल नहीं हो पाए थे।

–हम और वज़ीर आग़ा नहीं थे, तो क्या हुआ ! जोगिंदार पाल ने धीरे से कहा–लेकिन तब भी वह सूफ़ी–संत मौजूद थे जिन्होंने अपने दौर और अपनी सदियों में धर्मयुद्ध का रास्ता बंद करके धर्मों की समरसता और उनकी एकात्म तलाश का रास्ता ईजाद किया था।

–यही तो मैंने किया था ! दाराशिकोह एकाएक उमड़ कर बोल पड़ा–अगर मैंने भी ऐसा किया था तो क्या ग़लत किया था ?

वक्त दाराशिकोह को तकलीफ से देख कर बोला-दाराशिकोह ! तुम्हारी सबसे बड़ी ग़लती यह थी तुमने अपने दौर के स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं को नहीं देखा, तुम हिंदोस्तान के भविष्य को देख रहे थे !

तभी इतिहासकार कानूनगो ने दख़ल दिया–

–लेकिन औरंगजेब को मुल्क के भविष्य से कुछ लेना-देना नहीं था ! वह सिर्फ़ अपने भविष्य को देख रहा था इसीलिए वह दारा का पीछा करता हुआ मुल्तान तक पहुँच गया था, शुजा खुद सल्तनत और ताज हासिल करने के लिए इलाहाबाद तक बढ़ आया था ! औरंगज़ेब तो जैसे शिकार पर निकला था, वह तय कर चुका था कि उसे मुग़लिया सन्तनत का ताज हासिल करना ही है। यह ख़बर पाते ही कि शुजा आगरे की तरफ बढ़ रहा है, औरंगज़ेब मुल्तान से लौट पड़ा, क्योंकि दाराशिकोह दरिया सिंध से होते हुए कच्छ की ओर बढ़ रहा था और औरंगज़ेब जानता था कि दाराशिकोह भागता, पनाह लेता हुआ सिर्फ उस खरगोश की तरह था जो अपनी जान अब नहीं बचा सकता था। इसलिए उसने

दाराशिकोह का पीछा करने के लिए सफ़शिकन खाँ को तैनात किया और वह खुद विद्रोही शुजा का मुकाबला करने के लिए इलाहाबाद की तरफ़ निकल पड़ा!

यह बयान देते हुए कानूनगो ने तब हज़रत शिबली नोमानी से एक कारगर सवाल किया–

–हज़रत शिबली नोमानी साहब! अगर औरंगज़ेब, आपका आलमगीर हिन्दुस्तान की सल्तनत पर कब्ज़ा नहीं करना चाहता था तो वह दारा को छोड़कर शुजा के खून का प्यासा क्यों हो गया था?

जब यह सवाल पूछा गया तो हज़रत शिबली नोमानी अपने चबूतरे पर आराम से बैठे हुक्का पी रहे थे! वो चीखे–

–मुझसे सवालात करने की जुर्रत कौन करता है?

तो उनके सामने वक्त ने हाजिर होकर बताया कि तारीख के हर वर्क और उस वर्क में दर्ज हकीकत के बारे में अगली सदियों को सवाल उठाने और अपना जवाब माँगने का हक़ है!

–यह हक़ उन्हें किसने दिया? शिबली नोमानी ने पूछा।

–यह हक़ तहज़ीब खुद हासिल कर लेती है! वक्त ने जवाब दिया–क्योंकि तहज़ीब हमेशा बदलते हुए वक्त का साथ देती है!

-शिबली नोमानी तुमने हकीक़त का दीदार नहीं किया! तहजीब चीखी–तुम आलमगीर की सारी दिमाग़ी साज़िशों का फलसफ़ा और दस्तावेज़ नहीं बन सकते! तुम जवाब क्यों नही देते कि तुम्हारा आलमगीर मुल्तान से शुजा की बढ़ती फौजों का सामना करने के लिए इलाहाबाद की तरफ क्यों लौट पड़ा था?

–यह तो मुझे नहीं मालूम! इसका खुलासा मैं नहीं कर सकता! शिबली नोमानी खामोश रह गए थे।

तो वक्त ने आगे कहा–अदीबे आलिया! हिंदुस्तान की तवारीख इस बात की गवाह है कि जब हिन्दुस्तान पर किसी ने हमला किया, तभी तक वह विदेशी रहा...हमले के बाद हर हमलावर हिन्दुस्तानी तहज़ीब और तहरीक का हिस्सा बनता गया...यहाँ तक कि हिन्दुस्तान आकर जिन सूफी संतों ने इस्लाम का विकास और प्रचार किया, वह इस्लाम भी भारतीय इस्लाम बनता गया! इस मुल्क की मिट्टी में वह ताकत और तासीर है कि यह सबको जज़्ब कर लेती है...इसलिए मैं इस बात का पैरोकार हूँ कि न तो दाराशिकोह इस मिट्टी से अलग था और न आलमगीर औरंगज़ेब! दोनों यहीं की संतान थे...

–और मैं भी यहीं की संतान हूँ! एक तेज आवाज़ तभी वहाँ गूँजी!

सबकी निगाहें उस तरफ उठ गईं।

–कौन हो तुम? अर्दली ने दरयाफ्त किया।

–मैं हूँ जम्मू का राजा राजरूप!

दाराशिकोह ने उसे तत्काल पहचाना–हाँ अदीब ! यही है राजरूप...जम्मू का राजा। इसी ने मुझे मदद का वचन दिया था कि यह मेरे लिए पहाड़ी राजपूतों की एक सेना खड़ी कर देगा...उस वक्त जब सामूगढ़ में हुई पराजय के बाद मैं दिल्ली से लाहौर की ओर पलायन कर रहा था...

–यह मैंने इसलिए किया था क्योंकि दाराशिकोह हमेशा हिन्दुओं का शरणदाता और समर्थक रहा था! राजरूप ने टिप्पणी की।

दारा ने तब बड़ी तकलीफ से कहा–और इसी बदबख़्त और एहसान फ़रामोश पर यकीन करके मेरी बीवी नादिरा ने अपनी छातियों का दूध उतार कर इस राजरूप के लिए भेजा था ताकि माँ का दूध पीकर यह हिन्दू राजपूत मेरे साथ जुड़ जाए और मुश्किल वक्त पार करके हम इस हिन्दुस्तान का मिला जुला नया इतिहास लिख सकें लेकिन दूध पीकर, दुनिया में यकीन की सबसे बड़ी शपथ उठाकर भी इस...राजपूत ने अपनी मुँहबोली माँ के दूध का अपमान किया! मैंने इसे लाखों मोहरें दीं...लेकिन एक साल बाद ही देवराई के फैसलाकुन युद्ध में इस राजपूत राजरूप ने मेरे साथ विश्वासघात किया और उस निर्णायक युद्ध में इसी राजरूप ने अपनी सौगन्ध को तोड़ कर औरंगज़ेब का साथ दिया!

–शेम! शेम! शेम! शेम! यह आवाजें जोगिंदर पाल, कृष्णा जी और वज़ीर आग़ा की थीं।

–खामोश! राजरूप चीखा–इसमें मेरे लिए शर्मिन्दा होने की कोई बात नहीं है! मैं राजपूत हूँ! मैं हिन्दू हूँ...और मुझे गर्व है कि मेरे दौर के हर हिन्दू ने विश्वासघात को ही अपना जीवन मूल्य बना लिया था...दाराशिकोह के लिए वतन और मुल्क का कोई मतलब और अर्थ रहा होगा, लेकिन हम हिन्दू उस मध्यकाल में सिर्फ अपने लिए जी रहे थे...हमारा कोई देश या मुल्क नहीं था!

-शेम! शेम! फिर जोगिंदरपाल, कृष्णा जी और वज़ीर आग़ा की आवाज़ गूंजी।

–खामोश! राजरूप फिर चीख़ा–तुम अदीब लोग तो धर्म और मज़हब से ऊपर उठ गए हो तुमने अपने ऊपर इंसानी कद्रों की बन्दिशें लगा ली हैं, इसलिए तुम भूखों मरते हो और हमेशा प्रताड़ित और अपमानित रहते हो...हम जैसे ज़हीन राजे-महाराजों और हमारी महत्वाकांक्षाओं के मज़हब को तुम कमनज़र लोग नहीं समझ सकते! मैं फिर पूरी हिम्मत और शिद्दत से कहता हूँ कि इस दौर में हम हिन्दुओं का कोई मुल्क, कोई वतन, कोई हिन्दुस्तान नहीं था। मैंने ही नहीं–जोधपुर का वह महाराजा जसवंत सिंह, जो दारा से अपनी दोस्ती और वतनपरस्ती की कसमें खाता था...उसने भी अन्तिम दिनों में दाराशिकोह के साथ विश्वासघात किया था!...जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह ने तो खुल्लम खुल्ला औरंगज़ेब का साथ दिया था! मेवाड़ का महाराजा जयसिंह, जिसकी रक्षा दारा ने आलावज़ीर सादुल्ला और औरंगज़ेब से की थी–वह भी बांसवाड़ा, डूंगरपुर, बसावर के साथ पाँच और परगनों की रिश्वत लेकर दाराशिकोह के खिलाफ हो गया था!

–राजरूप सही फरमा रहा है ! इतिहासकार कांस्टेबल ने तभी दखल दिया–मैं सैलानी यात्री बर्ने के यात्रा वृत्तान्त के हवाले से यह दस्तावेज आपकी अदालत में पेश करना चाहता हूँ !

अदीब ने इतिहासकार कांस्टेबल को देखा और पूछा–कैसा दस्तावेज !

–हुजूर ! यह औरंगज़ेब समर्थक और दाराविरोधी जयपुर रिसायत के मिर्जा राजा जयसिंह का वह खत है जो उन्होंने जोधपुर के महाराज जसवंत सिंह को डराने, धमकाने और फुसलाने के लिए लिखा था ताकि वह दाराशिकोह का साथ छोड़ दे !

–इस दस्तावेज का वाचन किया जाए ! अदीब ने कहा तो अर्दली ने वह खत लेकर पढ़ना शुरू किया–

–जोधपुर महाराज जसवंतसिंह के नाम जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह का खत– आपको इसमें क्या लाभ हो सकता है कि इस मंद भाग्य शहज़ादे दाराशिकोह को आप सहायता देने का प्रयास करें ! इस कार्य में लगने से आपका और आपके परिवार का नाश अवश्यंभावी है और इससे दुष्ट दारा के हितों को भी कोई लाभ नहीं होगा ! शहज़ादा औरंगज़ेब कभी आपको क्षमा नहीं करेगा। मैं स्वयं राजा हूँ और आपसे शपथपूर्वक विनय करता हूँ कि राजपूतों का रक्त न बहाएँ। आप इस आशा में प्रवाहित न हो जाएँ कि दूसरे राजाओं को आप अपने दल में मिला लेंगे, क्योंकि ऐसे किसी प्रयास का प्रतिकार करने के साधन मेरे पास हैं। इस कार्य से समस्त हिन्दुओं का सम्बन्ध है तथा आपको मैं यह आग लगाने की अनुमति नहीं दे सकता, जो फौरन ही सारे साम्राज्य में फैल जाएगी और जो फिर किसी तरह शान्त नहीं होगी ! इसके विपरीत यदि शहज़ादे दाराशिकोह को आप उसके भाग्य पर छोड़ दें तो शहज़ादा औरंगज़ेब सारी पिछली बातों को भुला देगा और वह आपसे वह धन भी नहीं माँगेगा जो आपने खजवा में हस्तगत कर लिया है, साथ ही वह तुरंत आपको गुजरात के शासन पर नियुक्त कर देगा !

–रुको ! रुको ! कानूनगो की आवाज़ ने टोका–गुजरात का सूबेदार तो शहज़ादा मुराद बख़्श था...उसके इलाके का हक़ मिर्जा राजा जयसिंह जोधपुर के महाराज जसवंत को सौंपने की पेशकश कैसे कर सकता था ? यह ख़त औरंगज़ेब की सहमति और सरपरस्ती के बिना नहीं लिखा जा सकता था !

–इसका वाजिब जवाब तो हज़रत शिबली नोमानी ही दे सकते हैं ! अदीब ने कहा।

–इस मामले में मेरी मालूमात पुख्ता नहीं हैं ! शिबली नोमानी ने एक सच्चे दानिशवर की तरह जवाब दिया।

तब तक सुभाष पंत ने अर्दली के हाथ से वह दस्तावेज ले लिया था जो देहरादून से चल कर अदीब से मिलने आये थे। और वह बोले–

–मुझे इस ख़त की अगली लाइनें पढ़ने का मौका दिया जाए क्योंकि हमारे बुजुर्ग शायर रघुपति सहाय फ़िराक़ के मुताबिक सच तक पहुँचने के लिए अतीत, वर्तमान और

भविष्य के पलों को तोड़कर खंडित नहीं करना चाहिए...

–जी हाँ! अदब के सिलसिले और तहरीक को जब-जब तोड़ा जाएगा, तब-तब तहज़ीब और संस्कृति का विखंडन होगा...और तहज़ीब अगर टूटती और फिरकावाराना टुकड़ों में बँटती गई तो फिर वह एक दिन आएगा, तब हर अकेले आदमी की एक निजी हिंसक तहज़ीब होगी...तब अकेला पड़ गया इन्सान अपने आदिम राग और रिश्तों की ग़ैर मौजूदगी के लिए तरसेगा और आठ-आठ आँसू रोएगा! आदमी की जिन्दगी तो बरसों में बंधी है, वह तो कभी भी मर जाएगा पर तहज़ीब का आदिम राग, पैदा होने वाले आदमी को उसकी रूहानी शख़्सियत और अपनी कला और लोककला की साँसें देकर मौत की सरहद के पार भी उसका साथ देगा।

खामोश बैठी तहज़ीब की आँखों में आँसू छलछला आए और उसने अपने दुपट्टे से आँसू पोंछ कर वजीर आग़ा और जोगिंदरपाल की तरफ देखा!

जोगिंदर पाल के ओंठ हलके से लरज उठे और तहज़ीब को इतना पिघलता देखकर वो खुद को रोक नहीं पाए। लरजते ओठों से उन्होंने पुकारा–

–माँ! एक माँ हमें अपनी कोख में पाल कर जनम देती है पर तुम हमें धारण करती हो और मौत की सरहद के पार भी तुम हमारा साथ देती हो! तुम इंसानपरस्त सोच की सबसे बड़ी ताकत हो...अगर ऐसा न होता तो तुम तहज़ीबों की सरहदों को तोड़कर खुद उस दार्शनिक हेगेल को पैदा न करतीं, जिसकी थीसिस को मार्क्स का चिंतन एक एंटी-थीसिस के रूप में स्वीकार करता है और उससे आगे बढ़कर विश्व की तहज़ीब का सबसे बड़ा रहनुमा महात्मा गाँधी उसकी एंटी थीसिस में से सिंथेसिस का फलसफ़ा पेश करता है !

–यही फलसफ़ा दाराशिकोह ने पेश किया था...वक्त ने उठकर अर्ज़ किया–इसीलिए औरंगज़ेब दाराशिकोह को काफ़िर-अविश्वासी और मुल्हिद–अनेकेश्वरवादी पुकारता था!

अदीब इस बहस का जैसे जुज़ निकाल रहा था। अपनी भौंहों को चढ़ाते हुए उसने ऐलान किया–

–तहज़ीब के तहत इंसान फिर भी एक दूसरे के लिए सहिष्णु और एक होने की कोशिश में कामयाब हो सकता है, लेकिन इंसान का ईश्वर कभी एक नहीं हो सकता! इंसान का ईश्वर तब एक होगा, जब इंसान का दुःख एक होगा! यह शोषण, अन्याय और विषमता की दुनिया, जो हर पल हज़ारों तरह के दुःख पैदा करती है, यह न तो मनुष्य के सुख को सन्तुलित और हमवार होने देगी और न कभी उसके दुःख को एकात्म होने देगी!...जिस दिन इंसानियत का दुःख एकात्म हो जाएगा, उस दिन पूरी दुनिया के बाशिंदों का ईश्वर भी एक हो जाएगा!...और तब वह ईश्वर शिकायतों की अदालत का अमूर्त निर्णायक नहीं, वह मानवता के सुख का अंतिम केन्द्र बन जाएगा और वह अमूर्तता के दार्शनिक

सिद्धान्तों की उलझी सच्चाइयों से मुक्त होकर खुद एक खुशनुमा और मूर्त सच्चाई में तब्दील हो जाएगा ! तब ईश्वर मशवरा देनेवाले बुजुर्ग की तरह हर घर का हिस्सा बन जायेगा।

–हुज़ूर ! अर्दली ने टोका–आप तो फिर भाषण देने लगे ! आप इस आदत से बाज़ आइए नहीं तो आप अपनी जिरह को किसी ठोस और संतोषपूर्ण इंसानी मंजिल तक नहीं पहुँचा पाएँगे !

–तुम कहना क्या चाहते हो ? अदीब ने अपने अर्दली से जवाब तलब किया।

– यही हुज़ूर कि सदियाँ रुकी खड़ी हैं। वक्त और तहज़ीब आपकी अदालत में आपकी मदद करने के लिए मौजूद हैं, लेकिन आप लहूलुहान सदियों से नतीजा निकालने और अगली आनेवाली सदियों की मदद करने के बजाय अपना फलसफ़ा बघारने लगे...

–अर्दली ! हम आपसे माफ़ी चाहते हैं ! अदीब ने कहा–हम अदीब ही नहीं, सभी सिद्धान्त और जमातें सामान्य-जन का वसीला और वास्ता देकर हमेशा कला के नाम पर आपको लाँघ कर निकल जाने की साज़िश करते रहे हैं...

–तो फिर मेरे आला हुज़ूर...अदीबे आलिया ! सामान्य-जन के खिलाफ चल रही इस साज़िश का पर्दाफाश कीजिए और यह बताइए, कि मामूली आदमी के हितों के ख़िलाफ कब और कहाँ बलात्कार किया गया है, ताकि सत्ता और व्यवस्था की जकड़बंद ताकतों को ललकारा जा सके और उनकी ज्यादतियों और जुल्म से आने वाली सदियों को बचाया जा सके ! अर्दली एक जख़्मी इंसान की तरह पैरवी कर रहा था–आख़िर हमें यह सारे ज़ख़म इन्हीं ख़ूनी सदियों ने दिए हैं...औरंगज़ेब और दाराशिकोह के इस बर्बर और खूनी संघर्ष की कीमत हमने और हमारी पीढ़ियों ने चुकाई है !

–अर्दली साहब ! अब तो तुम भी मेरी तरह भाषण झाड़ने के शिकार हो गए ! अदीब ने कहा और फिर पूछा–इतिहास इस वक्त कहाँ रुका हुआ है !

–वहीं ! सुभाष पंत ने मिर्जा राजा जयसिंह के ख़त को सामने करते हुए कहा–वही सत्रहवीं सदी है और वही बरस !

–तो जोधपुर महाराज जसवंत सिंह के नाम लिखे गए जयपुर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह के ख़त को आगे पढ़ा जाए ! अदीब ने हुक्म दिया।

सुभाष पंत ने ख़त आगे पढ़ने से पहले एक टिप्पणी की–हुज़ूरे आलिया ! हालाँकि औरंगज़ेब गुजरात का सूबेदार नहीं था, लेकिन फिर भी मिर्जा राजा जयसिंह की मार्फत उसने जोधपुर महाराज जसवंत सिंह को यह आश्वासन दिया था कि वह शहज़ादा मुरादबख़्श के गुजरात का इलाका उसके अधीन कर देगा, यह औरंगज़ेब की एक कूटनीतिक और कमीनी चाल थी, जिसे हिन्दुस्तान के विश्वासघाती हिन्दुओं के ज़रिए उसने कारगर किया था !

–वह कैसे ? अदीब ने सवाल किया।

–यह सुनिए...हिन्दुस्तान का राजपूत हिन्दू मिर्जा राजा जयसिंह दूसरे राजपूत जोधपुर के हिन्दू राजा जसवंत सिंह को ख़त में लिखता है कि–'गुजरात का इलाका हस्तगत करके आप औरंगज़ेब की छत्रछाया में गुजरात प्रान्त पर शासन करने के लाभ को आसानी से समझ सकते हैं!' यह शब्द हैं मिर्जा राजा जयसिंह के! सुभाष पंत ने कहा– और आगे सुनिए, इस पेशकश के अलावा औरंगज़ेब के हवाले से मिर्जा राजा जयसिंह यह आश्वासन भी देता है कि–'वहाँ पर आपको संपूर्ण सुरक्षा तथा शांति प्राप्त होगी। और यहीं पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि जो कुछ मैंने कहा है, उसका पूर्ण पालन होगा!'

सब लोग अवाक् थे! अदीब ने बर्ने के वृतान्त वाला वह दस्तावेज़ सुभाष पंत से लिया और सोचते हुए बोला–

–हिन्दुओं ने चाहे जितनी कायरता दिखाई हो और कितना भी विश्वासघात किया हो, लेकिन इससे एक बात तो साफ ज़ाहिर है कि सत्ता और सिंहासन के लिए चल रहे इस संघर्ष में न औरंगज़ेब अछूत है और न दाराशिकोह...और यह भी साफ ज़ाहिर है कि क्षत्रिय धर्म और राजपूती वीरता की चाहे जितनी शौर्य गाथाएँ गाई जाएँ–शिवाजी और राणा प्रताप के अलावा क्षत्रिय शौर्य हमेशा निर्वीर्य और नपुंसक रहा है...शिवाजी–प्रताप के सिवा क्षत्रिय धर्म की सौगन्ध खाने वाला क्या ऐसा एक भी राजा या तथाकथित राणा या महाराणा है, जिसने एक भी युद्ध जीता हो! महाराणा प्रताप की वीरता और शूरता रेखांकित की जा सकती है कि इस रणबांकुरे ने सतत् प्रतिरोध किया और अपनी प्रतिज्ञा को अन्तिम साँस तक निभाया...राणा प्रताप निर्भीक और बलिदानी था...उन्होंने अन्य राजपूतों की तरह अवसरवादी बन कर राज्य लिप्सा के प्रति आसक्ति नहीं दिखाई...और इतिहास के इस दौर तक आते-आते मुग़लिया सल्तनत के वारिस मुसलमान हिन्दुओं के लिए विधर्मी जरूर थे, पर वे विदेशी नहीं थे!

–और हुज़ूर! यहीं यह सच्चाई भी सामने आती है कि हिन्दुस्तान में हिन्दू बहुसंख्या में थे, उनके राज्य भी थे, लेकिन हिन्दुस्तान कभी भी हिन्दू राष्ट्र नहीं था! तब हिन्दू राष्ट्र नाम का कोई दर्शनिक प्राणबिन्दु और धार्मिक केन्द्र–बिन्दु मौजूद नहीं था। हिन्दुस्तान का हिन्दू धर्म राजसत्ता का प्रतीक नहीं था, इसीलिए यहाँ की सरज़मीं पर कोई केन्द्रीय धार्मिक सत्ता मौजूद नहीं थी और हिन्दू अपने धर्म को मानते और स्वीकारते हुए भी धर्म की सत्ता से आज़ाद थे!–अर्दली ने एक विवेचक की तरह अपना निष्कर्ष रखा, तो सब मौजूद लोग उसे हैरत से देखते रह गए...

यह देखकर अर्दली की हिम्मत और बढ़ गई और वह बोला–हुजूर! हिन्दुस्तान का पौराणिक और ज़मीनी इतिहास गवाह है कि यहाँ हमेशा सत्य और सभ्यता के लिए धर्मयुद्ध लड़े गए लेकिन किसी धर्म विशेष की केन्द्रीयता और वर्चस्व के लिए कोई महायुद्ध नहीं लड़ा गया। यह 'धर्म–युद्धों' की धरती नहीं है...यहाँ तक कि राम-रावण का युद्ध भी

धार्मिक वर्चस्वता और सत्ता का युद्ध नहीं था, वह अनाचार, अनैतिकता, अपसंस्कृति और अत्याचार के विरुद्ध लड़ा गया एक महान नैतिक युद्ध था!

–ब्रेवो! ब्रेवो! सुभाष पंत, जोगिंदर पाल, वज़ीर आग़ा और कृष्णा जी ने जोरदार तालियों से अर्दली के विश्लेषण का स्वागत किया।

अर्दली का हौसला और बुलंद हो गया और वह बोलता चला गया–महाभारत का युद्ध भी धार्मिक विश्वासों के लिए लड़ा गया युद्ध नहीं था...वह अधर्म, स्त्री–दमन, असत्य और निरंकुशता के विरुद्ध लड़ा गया एक महायुद्ध था! अशोक का कलिंग युद्ध भी किसी धर्म सत्ता का युद्ध नहीं–वह निरंकुश हो गई राज्य सत्ता और लिप्सा के विरुद्ध एक और महायुद्ध था और सिकन्दर के खिलाफ़ लड़ा गया पोरस का युद्ध विधर्मी के धर्म को धवस्त करने का युद्ध नहीं, वह विदेशी आक्रमणकारी की साम्राज्य लिप्सा को परास्त करने का एक गौरवशाली युद्ध था!

–तुम निष्कर्ष क्या निकालना चाहते हो? अदीब ने सीधा सवाल किया।

–यही हुजूरे आलिया कि हिन्दुस्तान की यह धरती कभी भी धार्मिक युद्धों की रण-स्थली नहीं रही है! लेकिन हमारे शिबली नोमानी साहब ने दाराशिकोह के खिलाफ औरंगज़ेब के युद्ध को एक काफिर के खिलाफ़ एक नमाज़ी के युद्ध के रूप में पेश करके हिन्दुस्तान के इतिहास को धर्म की बैसाखियों पर खड़ा करना चाहा है...इतना ही नहीं शिबली नोमानी ने दाराशिकोह को मुल्हिद यानी अनेकेश्वरवादी साबित करके हिन्दू से भी बड़ा हिन्दू बनाकर औरंगज़ेब को इस्लाम के रक्षक के रूप में खड़ा किया है...जब कि इतिहास गवाह है कि शाहजहाँ अपनी इस्लाम-परस्ती

–में अपने बेटे औरंगज़ेब से ज्यादा कट्टर और धर्मान्ध था, पर वही शाहजहाँ उत्तराधिकार युद्ध में अपनी मज़हब-परस्ती के बावजूद औरंगज़ेब का नहीं, बल्कि उदारवादी दाराशिकोह का साथ देता है!

–यह सवाल मैं शिबली नोमानी साहब से पहले भी पूछ चुका हूँ और इसका कोई उत्तर उनके पास नहीं है! अदीब ने कहा और जम्मू के राजपूत राजा राजरूप की ओर देखा–राजा राजरूप! तुम कोई बयान दे रहे थे...उसे जारी रखा जाए!

–मैं वही बात दोहराना चाहूँगा अदीबे आलिया कि उस दौर में हम हिन्दुओं का न कोई मुल्क था, न वतन और न ही कोई हिन्दुस्तान! कुछ था तो हमारे अपने राज्य, सता और सेना थी! हिन्दू किसी से नहीं डरता था, वह सिर्फ ताकतवर की ताक़त से डरता था और उसी के सामने दुम हिलाता था। नहीं तो क्या वजह थी कि कच्छ का वह राव, जिसने दारा के बेटे सिपिहर शिकोह से अपनी बेटी की सगाई की थी, वह भी औरंगज़ेब की ताकत से डर गया और दाराशिकोह का विरोधी हो गया था! जब दारा सामूगढ़ में हुई पराजय के बाद दर-दर भटक रहा था तब उसी के समधी कच्छ के राव ने उसके साथ विश्वासघात और कृतघ्नता का व्यवहार किया था।

–लेकिन तुमने खुद नादिरा का दूध पीने की प्रतिज्ञा से बद्ध होने के बावजूद मेरे साथ क्या किया था? दाराशिकोह ने तल्खी से पूछा था।

–मैंने देवराई के निर्णायक युद्ध में तुम्हारा विश्वास तोड़ कर गोकला की कठिन पहाड़ियों पर चढ़ कर, पीछे से तुम्हारी सेना पर आकस्मिक हमला किया था...तुम्हारे सिपहसालार शाहनवाज़ खाँ के पैर उखाड़ दिए थे और वह युद्ध में मारा गया था! राजरूप ने बड़ी शान से अपना बयान पूरा किया–तुमसे मुझे क्या मिलता? सत्ता और ताकत औरंगज़ेब के हाथों में आती जा रही थी, इसलिए मैंने उसका साथ दिया था!

तभी कच्छ के नमकीले कछार से आँधियों का उठता गुबार दिखाई दिया...और दलदल की एक गीली दीवार उन्मत्त लहर की तरह आकाश की ओर उठने लगी दीवार के छेदों में कँटीली झाड़ियाँ ऐसे उलझी थीं जैसे उन्हें वहाँ टाँग दिया गया हो...

फिर उन कँटीली झाड़ियों की टहनियाँ खुद-ब-खुद टूट कर पंख हिलाते परिंदों की तरह परवाज़ करने लगीं...आसमान छिप गया और धरती पर काली छायाएँ मंडराने लगीं।

घबरा कर अदीब ने पूछा–यह क्या है?

–यह कलियुग है जनाब! अर्दली ने उलझते हुए उत्तर दिया।

•

27

–जी हाँ हुज़ूर! मैं कलियुग हूँ!

अदीब एकदम चौंका। उसे देखकर बोला–तुम कलियुग हो! लेकिन तुम तो वक्त हो–वक्त! समय!

–मेरा नाम मनीषियों ने बदला है...अपनी सुविधा के लिए...आजकल मेरा नाम कलियुग है...और मैं अब तक आपकी अदालत में हिन्दुस्तान और दाराशिकोह की बदनसीबी से भरी कहानी सुनाने और बताने के लिए रुका हुआ हूँ क्योंकि इस कहानी से ज़्यादा नृशंस और बर्बर कहानी और कहीं नहीं है! अगर इजाज़त हो तो सदियों पहले दिलो-दिमाग़ में जो पाकिस्तान बना था, मैं उसकी कहानी बयान करूँ!

–इजाज़त है!

और तब कलियुग ने गहरी साँस लेकर कहानी शुरू की–

–देवराई के युद्ध में पराजित होकर दारा अपने एकमात्र जीवित सेनापति फीरोज़ मेवाती और अपने बेटे सिपिहर शिकोह को लेकर 14 मार्च 1659 की शाम को गुजरात-कच्छ की ओर भागा! आपदाग्रस्त सारी महिलाएँ पहले ही हाथियों पर बैठ चुकी थीं और अन्ना सागर झील के तट पर वे दारा के विश्वस्त खोजा मक़बूल की देखरेख में भागने के लिए तैयार थीं!...

दारा ने उदास आँखों से वक्त को देखा।

वक्त ने फिर गहरी साँस ली–हुज़ूरे आलिया, अब मुझे सब साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है! रात हुई है...दारा का सिर्फ़ दो हजार सैनिकों का लश्कर फीरोज़ मेवाती की कमान में बीवियों-बच्चों को लिए हुए मेड़ता की ओर कूच कर रहा है...पूरी रात और पूरा दिन गुज़रता है और मेड़ता से दारा गुजरात के लिए दक्षिण का रास्ता पकड़ता है...

–जी हुज़ूर! मुझे उम्मीद थी कि मेरा समधी कच्छ का राव मुझे हर हालत में पनाह देगा...तभी मेरे एक ऐलची ने आकर ख़बर दी कि औरंगज़ेब के फरमान के मुताबिक मिर्जा राजा जयसिंह 20 हज़ार का लश्कर लेकर निकल पड़ा है और उसे यह हुक्म भी दिया गया है कि वह मुझे जिन्दा या मुर्दा औरंगज़ेब के हुज़ूर में हाज़िर करे! साथ ही जोधपुर के महाराजा और मेरे पुराने दोस्त जसवंत सिंह को यह हुक्म मिला है कि वह मिर्जा राजा जयसिंह का साथ दे...अदीबे आलिया! मैं इल्ज़ाम नहीं लगाना चाहता, लेकिन आज इतना ज़रूर कहूँगा कि मैंने जिस मुश्तरका संस्कृति के लिए अपने दादाजान अकबर के बाद कोशिश की थी, उसमें मुझे औरंगज़ेब की ताक़त ने नहीं, मेरे मुल्क और वतन के हिन्दू

राजे-महाराजों ने शिकस्त दी थी...एहसान फ़रामोशी और भितरघात का इतना शर्मनाक रवैया ही हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक बरबादी और तबाही की दर्दनाक दास्तान है!

जब दाराशिकोह ने यह कहा तो, अब तक चुपचाप बैठी हुई तहज़ीब कराह उठी और गहरी साँस लेकर बोली–मेरे टुकड़े तो नहीं किए जा सके, लेकिन मेरे आँचल की पुरसुकून छाँह में जो करोड़ों लोग साँस ले रहे थे, वे सत्ता और महत्वाकांक्षा की आलमगीरी तलवार से काट डाले गए...हर शख़्स अपना कटा हुआ सिर हथेली पर लेकर घूम रहा था और उसकी निकाल ली गई आँखों की पुतलियों के कोटर में कपास की बत्तियों की लौ काँप रही थी!

अदीब ने तहज़ीब की ओर देखा।

–और मेरे आला हुजूर! वह दौर ऐसा था, जब कपास की बत्तियों की लौ रोशनी से ज्यादा अंधेरा पैदा कर रही थी और सोती हुई बदकार सदी के सिर का हल्का-सा गड्ढा सियासत के तकिए पर मौजूद था...सियासत के अलाव में हिन्दुस्तान की यह दोग़ली सदी अपना जिस्म गरमा रही थी और शाही बिस्तरों पर ऐंड़ती हुई शहबत और एय्याशी की अंगड़ाइयाँ ले रही थी! हर हिन्दू राजा और महाराजा अपनी लड़की को एक महकते गुलदस्ते की तरह सियासत के बाज़ार में नीलाम कर रहा था और अपनी लड़कियों के बदले में, अपनी आराम और आराइश के लिए खिलवतों और जागीरों का सौदा कर रहा था! हिन्दू लड़कियों की बिक्री और तिजारत के लिए खुद हिन्दू सौदागर बाज़ार में मोल-भाव के लिए मौजूद था!

अदीब ने गहरी नज़र से तहज़ीब की तरफ देखा।

–तो हुजूर! तहज़ीब ने कहा–ऐसे बाज़ारू और दोग़ले वक्त में हारे हुए दाराशिकोह की तरफ कौन देखता! अगली सदियों की तरफ कौन नज़र डालता! इसीलिए औरंगज़ेब से ठीक पहले का यह वह दौर है जब हिन्दुस्तान का आदमी अपनी ग़ैरत और अज़मत की गरिमा से शून्य हो चुका था...तब इस मुल्क में परछाइयाँ थीं...मनुष्य नहीं था...

–जी हाँ आला हुजूर! दारा ने बीच से बात को पकड़ा–जब मैं अपनी जान और ग़ैरत के लिए जगह-जगह भागा तो मुझे मेरे दोस्त या जीते-जागते अज़मत पसन्द लोग नहीं मिले...मुझे सिर्फ़ उनकी परछाइयाँ मिलीं! वह परछाइयाँ जिनकी पिछली परछाइयाँ नदारद थीं।

–हुजूर! लेकिन एहसानों और यादों की वह पिछली परछाइयाँ दारा का बहुत दूर तक साथ नहीं दे सकीं...क्योंकि परछाइयाँ स्वतंत्र तो नहीं होतीं, वे व्यक्ति के साथ बदल जाती हैं! वक्त ने फिर इतिहास का सिलसिला पकड़ा–

–हुजूर! मैं देख रहा हूँ कि अब दारा के दो हज़ार सैनिकों का लश्कर भी तितर–बितर हो चुका है–दारा पतली मलमल की बंडी और दो छदाम की चप्पल पहने वीरमगाँव से कच्छ के छोटे रन्न की निर्जल मरुभूमि की ओर बढ़ रहा है...और अब उसके बचे हुए

सैनिकों के पैरों में चप्पलें भी नहीं हैं और वे भूख और प्यास से पस्त हैं...कच्छ के रन्न में कोईं जानवर भी नहीं, जिसे मार कर वे खा सकें, वहाँ कंटीली झाड़ियों की सिर्फ़ ज़हरीली सेंगड़ियाँ हैं जो उन्हें जिन्दगी नहीं, मौत दे सकती हैं...पानी है नहीं...वे सिर्फ मिट्टी के बर्तनों के भीगे और टूटे टुकड़ों को चूसते हुए कच्छ का रन्न पार करते हुए सिन्ध की ओर बढ़ रहे हैं !

–वह इसलिए आला हुूजूर कि मिर्जा राजा जयसिंह ने मेरे ख़िलाफ पूरी नाकेबंदी कर दी है...उसने एक कूटनीतिक जाल बिछा दिया है। उसने मेरे अग्रसर होने के सारे रास्तों को रोक कर सिर्फ मेरे लिए समर्पण और मौत का रास्ता खुला छोड़ा है ! दारा बोल रहा था–मिर्जा राजा जयसिंह ने मेरे पलायन के सारे रास्ते बंद कर दिए हैं–दक्षिण में सिरोही और पालनपुर, दक्षिण पूर्व में देरवाड़ा और उत्तर में काठियावाड़ तथा कच्छ का रास्ता बंद है...

–अब इस समय हुजूर ! कलियुगी वक्त ने बयान शुरू किया-दाराशिकोह के पास सिर्फ चार सौ सैनिकों की कुमुक रह गई है, जिसका पीछा नमक के दलदलों को पार करती मिर्जा राजा जयसिंह की सेना के बीस हज़ार सैनिक कर रहे हैं ! और अब हाल यह है हुजूर की दाराशिकोह पलायन करता हुआ सिन्ध नदी पार करके जान बचाने के लिए कंधार के रास्ते से ईरान को भागने की योजना बनाता है...पर यह भी खतरे से खाली नहीं है इसलिए दाराशिकोह अब अफगानिस्तान की ओर सीमावर्ती कबीलों की शरण में पहुँच जाना चाहता है...क्योंकि अफगानिस्तान में दादर रियासत का वह अधिपति मलिक जीवन मौजूद है–जिसे उसने अपने अब्बा शहंशाह शाहजहाँ के कोप और मौत की सज़ा से बचाया था। हिन्दुस्तान के बोलन दर्रे की सीमा से नौ मील दूर दादर का यह गढ़ मौजूद था। अफगानिस्तान के इस दादर इलाके का यह सरदार मलिक जीवन है तो वर्ण-संकर, पर यह हिंदू पिता की सन्तान है ! दारा को हिन्दू-पठान मलिक जीवन पर बहुत विश्वास है कि वह उसकी जान बचाने का उपकार भूला नहीं होगा !

अदालत में मौजूद सारे लोग वक्त की यह तहरीर बहुत ग़ौर से सुन रहे थे। वक्त ने अपना बयान जारी रखा–हुजूरे आला ! जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह 'तारीखे शुजाई' में भी तहरीरबंद है...अपनी रक्षा के लिए तब पुरानी परछाइयों को पकड़ता हुआ शहज़ादा दाराशिकोह मलिक जीवन के सुरक्षित इलाके की ओर बढ़ता है...और बदनसीबी के हालात यह हैं कि मलिक जीवन के इलाके में पहुँचने के दो कोस पहले ही 6 जून 1659 को दाराशिकोह की बीवी नादिरा आख़िरी सांस लेती है...और दारा अपनी बीवी के ग़म में पागल हो जाता है। मरते-मरते नादिरा ने आखिरी इच्छा यही ज़ाहिर की है कि उसे विदेश में न दफ़नाया जाए, उसकी मैयत को वापस हिन्दुस्तान भेज दिया जाए !

–शोक का यह दारुण समय था...मेरा तो सर्वस्व लुट गया था ! दारा बोला– मेरी अर्धागिनी, मेरी परामर्शदात्री, मेरी शरीके हयात, मेरी शिष्या–वह सब कुछ थी...मेरा जिस्म

सुन्न हो गया था और मैं अपने जिस्म की कब्र में सिर्फ़ साँसें ले रहा था...कहते हुए दारा बेतरह बिलख के रो पड़ा था। लेकिन ताज्जुब की बात यह थी कि उसके आँसू पलकों तक लहरों की तरह आते और फिर वापस लौट जाते थे!

–अपने इन आँसुओं की हिफाज़त इसी तरह करो दारा क्योंकि सदियाँ तुम्हारे लिए रोएँगी...तुम्हारी आँखों के आँसू वीरान हो गए तो सदियों के दिल बंजर हो जाएँगे...तहज़ीब ने दारा के कंधे पर हाथ रख के थपथपाया–हिंदुस्तानी सभ्यता तुम्हें हमेशा गीली आँखों से याद करेगी...शहंशाहों और आलमगीरों को नहीं...

वक्त ने हाथ हिलाकर जैसे धुंधलका साफ़ किया–

–इस वक्त हिन्दुस्तान के शहज़ादे–आलम दाराशिकोह के पास सिर्फ़ सत्तर सिपाही हैं, सिपिहर शिकोह है, चार खोजे हैं और है अपनी बीवी का शव! वह भी परदेस में। बदन पर पतली मलमल की वही बंडी और पैरों में दो छदाम की वही चप्पलें! इसी समय मलिक जीवन अपने गढ़ से निकल कर आता है और दारा के प्रति अपनी अक़ीदत पेश करता है और नादिरा के लिए संवेदना...

मलिक जीवन दारा की हालत और दुःख देखकर जैसे पिघल उठता है–आला हुज़ूर! मैं तो आपके एहसानों तले दबा हूँ! मेरी एक मामूली-सी ग़लती की वजह से जब मुल्तान के सूबेदार ने मुझे पकड़ लिया था और गिरफ्तार करके मुझे दरबार में भेज दिया था, तब आप ही ने मुझे शहंशाह के क्रोध से बचाया था, नहीं तो मुझे हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया जाता...आप ही ने तब मेरे प्राणों की रक्षा की थी...

दारा की नम आँखों ने तब मलिक जीवन को अपनत्व से देखा था।

–आज आप दर-ब-दर भटक रहे हैं! अपना देस छोड़कर परदेस में हैं और आप पर इतनी बड़ी विपत्ति टूट पड़ी है...मलिक जीवन ने अपनी आँखों के आँसुओं को सुखाते हुए कहा था–इसे आप परदेस न मानें! मलिक जीवन का यह देस अब आपका देस है...

–मैं नादिरा की मैयत को बाइज्ज़त लाहौर भेज देना चाहता हूँ! नादिरा की यही आख़िरी ख़्वाहिश थी कि उसे परदेस में नहीं, अपने वतन में दफ़नाया जाए! और मैं चाहता हूँ कि नादिरा को लाहौर में मियां मीर की क़ब्र के पवित्र सामीप्य में ही सुलाया जाए!

–तो इसमें दिक़्कत क्या है! सारा इंतज़ाम हो जाएगा...आप तो हिन्दुस्तान लौट नहीं सकते, क्योंकि वहाँ आपके लिए ख़तरा है...और यह मुझे मालूम है कि आपको गिरफ़्तार करने के लिए औरंगज़ेब का वह ज़रखरीद गुलाम बहादुर खाँ फ़ौज के साथ सरहद की ओर तूफान की तरह बढ़ा आ रहा है...इसलिए यह मुनासिब नहीं कि आप खतरा उठाएँ! मलिक जीवन ने कहा।

–मैं नादिरा की आख़िरी ख़्वाहिश पूरी करके खुद कंधार की तरफ निकल जाना चाहता हूँ...ताकि मैं वहाँ से ईरान पहुँच सकूँ! दारा ने अपनी इच्छा प्रकट की।

–सारा इन्तजाम वैसा ही होगा, जैसा आप चाहते हैं, लेकिन नादिरा आपा का शव यहाँ बेक़द्री से पड़ा रहे, यह मेरे दिल को मंजूर नहीं...मैं चाहूँगा कि जब तक नादिरा आपा की मैयत को लाहौर भेजने का प्रबंध नहीं होता, तब तक आप सब दादरगढ़ में हमारे साथ विश्राम करें! मलिक जीवन बोला।

–ठीक है मलिक जीवन! नमाज़ का वक्त हो रहा है, नमाज़ अता करने के बाद हम नादिरा की मैयत के साथ तुम्हारे गढ़ में पहुँचने का सरंजाम करेंगे! दारा बोला और नादिरा के मृत शरीर के पास पहुँच कर उसने नमाज़ पढ़ने की तैयारी की तो उसके एकमात्र वफादार गुल मुहम्मद ने टोका–

–हुज़ूर! क्या आप पूरब की तरफ मुँह करके नमाज़ अदा करने जा रहे हैं?

दारा ने गुल मुहम्मद को देखा और उसे आगाह किया–गुलमोहम्मद! इन बेकार की बातों में मत पड़ो...यह नमाज़े जनाज़ा है और इस तरफ से मैं नादिरा का चेहरा बखूबी देख सकता हूँ...पूरब पच्छिम का भेद मत करो और याद करो कि जब अल्लाह के पाक रसूल, अपने पवित्र पैग़म्बर मुहम्मद ने बैतुल मुकद्दस जेरुसलम के बदले, काबे की तरफ मुँह करके नमाज़ पढ़नी शुरू की थी, तो यह बात यहूदियों और ईसाइयों को बहुत नागवार गुज़री थी, क्योंकि वह इन्हीं ग़ैर ज़रूरी बातों पर मज़हब का दारोमदार समझते थे और इन्हीं मामूली मसलों को सच और झूठ की कसौटी मानते थे। जब उन लोगों ने एतराज़ किया और पाक रसूल से पूछा कि आपने अपनी पूजा की दिशा क्यों बदल दी, तो पाक रसूल ने सूरे-बकर की याद दिलाई और कहा–पूरब और पच्छिम दोनों अल्लाह के हैं, इसलिए जिधर भी तुम मुड़ो, उधर ही अल्लाह है!...और आगे पाक पैग़म्बर ने कहा है–कि धर्म या नेकी इसमें नहीं कि नमाज़ के वक्त तुमने अपने मुँह पूरब की तरफ कर लिए या पचिछम की तरफ! मज़हब यह है कि आदमी अल्लाह को माने! आख़रत यानी अपने कर्मों के फल को माने, फरिश्तों को माने, सब मज़हबी किताबों और सब नबियों को माने! यही पाक रसूल का संदेश है...

और दारा नमाज़ अदा करने में मशगूल हो गया!

वक्त ने इसके आगे का बयान जारी रखा–

–हुजूरे आलिया! दारा ने जब तक नमाज़ अदा की, तब तक पूरे इंतज़ाम और सम्मान के साथ मलिक जीवन नादिरा के शव को दादरगढ़ में ले जाने के लिए वापस आ गया। दारा हो राहत मिली कि उसकी शरीके हयात की लाश को परदेस में लावारिसी का सदमा नहीं उठाना पड़ा और न किसी तरह की ज़िल्लत सहनी पड़ी। दारा ने मन ही मन मलिक जीवन का शुक्रिया अदा किया और शोक और मुसीबत के उस मौक़े पर पनाह देने के लिए दुआएँ दीं...

दारा ने उदासी से वक्त की तरफ देखा और चुपचाप बैठा रहा...उसने सिर्फ़ एक गहरी साँस ली!

अदीब ने उस गहरी साँस की मायूसी को पहचाना और वक्त से निवेदन किया कि वह अपना बयान जारी रखे। वक्त ने अगली घटनाओं का छोर पकड़ा–

–अदीबे आलिया! दारा अब तक बिल्कुल टूट चुका था। दो दिन बाद दादरगढ़ से जब नादिरा बेगम के जनाज़े को लाहौर ले जाने का संरजाम हुआ तो दारा ने अपने बचे हुए वफ़ादारों को जमा किया, जो गिनती में बहुत ज्यादा नहीं थे, और ऐलान किया–मैं हिन्दुस्तान नहीं लौट सकता! लेकिन मैं किसी को अपना वतन छोड़ने के लिए बेज़ार और लाचार भी नहीं कर सकता...जब मैं अपनी रूह नादिरा बेग़म को खुद लाहौर भेज रहा हूँ तो आप सब भी वतन लौट जाने के लिए आज़ाद हैं! मैयत के साथ रहेंगे ख़्वाजा मक़बूल जिन्होंने नादिरा की परवरिश और सेवा की है...और ख़्वाजा मक़बूल के साथ मैयत की सुरक्षा के लिए गुल मोहम्मद लाहौर जाएँगे...इसलिए जो लौटना चाहते हैं, वह जनाज़े के साथ चले जाएँ और जो रुकना चाहते हों वह मेरे साथ ईरान की तरफ कूच करने के लिए रुक जाएँ!

–मैं इस बयान की ताईद करता हूँ! दाराशिकोह ने कहा–और सब लोग, सिपिहर शिकोह और पाँच-सात खोजों और नौकरों को छोड़कर, वापस हिन्दुस्तान लौट गए! नादिरा बेग़म का जनाज़ा लेकर गुलमुहम्मद लाहौर चला गया।

–और...और...अगले दिन सुबह तारीख थी–9 जून 1659! जब मलिक जीवन के दादरगढ़ से दारा ने सिपिहर शिकोह और आठ–दस विश्वस्त नौकरों के साथ बोलन दर्रे की तरफ प्रयाण किया...

तभी एक ज़लज़ला-सा आया! एकाएक बोलन दर्रे की पथरीली घाटी घड़घड़ाने लगी और उसकी चट्टाने छर्रों की तरह टूट-टूट कर आसमान की तरफ उड़ने लगीं! और जून के जलते महीने में बर्फीले तूफान की ऐसी आँधियाँ चलीं कि जमींदोज़ चट्टानें भी ठिठुरने लगीं!

–वक्त! यह कैसा नज़ारा है जो मैं देख रहा हूँ! अदीब चीखा!

–हुज़ूरे आलिया! पथरीली चट्टानों की रगों में दौड़ता हुआ खून एकाएक साज़िशी इरादों को देखकर सर्द हो गया है...वक्त ने उत्तर दिया।

–वजह! अदीब ने तल्ख़ी से पूछा!

–हुज़ूर! जैसे ही हिन्दुस्तान का शहज़ादा दाराशिकोह बोलन दर्रे से कंधार की ओर चला और पथरीली सड़क पर पहुँचा तो मलिक जीवन और उसकी बर्बर फ़ौज ने दारा को घेर लिया! दारा के साथ यह सबसे बड़ा और घिनौना विश्वासघात था! दो दिन सत्कार करने के बाद मलिक जीवन ने ईरान की तरफ पलायन करते दाराशिकोह को सिर्फ घेर ही नहीं लिया, बल्कि उसे गिरफ्तार कर लिया! और उसने दारा की गिरफ्तारी की खबर दो तेज़ घुसवारों के ज़रिए औरंगज़ेब के उन दोनों सिपहसालारों को भेज दी, जो अब तक

दरिया सिन्ध पार कर चुके थे! औरंगज़ेब के यह सिपहसालार थे–जयपुर के महाराजा मिर्जा राजा जयसिंह और बहादुर खाँ!...

हाहाकार करती सत्रहवीं सदी पछाड़ें खाने लगी...बोलन दर्रे की सर्द चट्टानों ने शर्मसार होकर अपनी निगाहें नीचे झुका लीं। आसमान पीला पड़ गया और हजारों परिन्दों ने बोलन दर्रे से दिल्ली तक के फ़ासले को अपनी लाशों से पाट दिया...

–और...और...वक्त का बयान जारी था–23 जून 1659 को मलिक जीवन ने बन्दी बनाए दाराशिकोह और सिपिहर शिकोह को औरंगज़ेब के सिपहसालार बहादुर खाँ के सुपुर्द कर दिया! इस विश्वासघात के लिए औरंगज़ेब ने मलिक जीवन को जागीरें दीं, खिलवत और ओहदा दिया...

–जी हाँ हुज़ूरे आलिया! दाराशिकोह ने टिप्पणी की–उस नामुराद और एहसान फरामोश मलिक जीवन ने सिर्फ जागीरें, आराम और आराइशें ही हासिल नहीं कि बल्कि मुझे धोखा देने के साथ-साथ उस हिन्दू-पठान ने अपने ज़मीर को भी धोखा दिया। अपना धर्म-परिवर्तन करके वह हिन्दू मलिक जीवन से बदल कर मुसलमान बख़्तियार खाँ बन गया!

–यहाँ से आगे याद रखिए कि वह मलिक जीवन ही अब बख़्तियार खाँ है!...वक्त ने कहा।

–मलिक जीवन उर्फ बख्तियार खाँ को हाज़िर किया जाए! अदीब ने अपने अर्दली को हुक्म दिया।

अर्दली ने आवाज़ लगाई–मलिक जीवन उर्फ़ बख़्तियार खाँ हाजिर हो।

वह हाज़िर हुआ तो दारा ने उसे हिकारत की नज़र से देखा और नफ़रत से अपना मुँह मोड़ लिया!

–तुम्हारी धोखेबाज़ी की वजह से हिन्दुस्तान के इतिहास को एक निहायत आत्मघाती मोड़ लेना पड़ा। तुम्हें अपनी इस धोखेबाज़ी के बारे में क्या कहना है? अदीब ने मलिक जीवन को अपना बयान देने का मौक़ा दिया।

–हुजूरे आलिया! जिसे आप आज धोखेबाज़ी कहते हैं, हमारे दौर में यह धोखेबाज़ी नहीं बल्कि अपनी महत्वाकांक्षाओं को परवान चढ़ाने का एक दस्तूर था...तब आदमी मजहब के लिए नहीं, अपनी सल्तनत और जागीर के लिए जीता था और जद्दोजेहद करता था। धर्म-परिवर्तन तो तब एक सुविधा की बात थी...जैसे हम जंग में अपने घायल घोड़े बदलते हैं, वैसे ही हम धर्म बदलने में देर नहीं लगाते थे...हमें तो दौलत और सल्तनत की जंग जीतनी होती थी।

दारा ने उसे एक बार फिर हिकारत से देखा, पर कोई दख़ल नहीं दिया।

–जब मुझे पता चल गया कि मुग़लिया सल्तनत की जंग में दारा परास्त होकर कंधार की तरफ पलायन कर रहा है, तभी मैंने समझ लिया था कि इससे ज़्यादा कारगर

मौका मेरे हाथ फिर नहीं आने वाला है, इसीलिए मैं इस ताक में था कि दारा कब मेरे इलाक़े में क़दम रखता है...यह 'वक्त', जो आज आपके सामने बड़ी दिलेरी से बयान दे रहा है, इससे बड़ी और खूंखार मौका परस्ती की मिसाल आपको दूसरी नहीं मिलेगी...उस दौर में यही वक्त मेरा दोस्त था और इसने मेरा साथ दिया था। नादिरा बेग़म की मौत ने मुझे नायाब मौक़ा दिया और मैंने दाराशिकोह और सिपिहर शिकोह को अपनी भलमनसाहत की गिरफ्त में ले लिया!

अदीब जैसे एकाएक विचलित हुआ...और चीखा–

–कौनसी जगह है यह...जहाँ से दिल दहला देने वाले ख़ामोश विलाप की आवाजें आ रही हैं...और यह कैसी है आँसुओं की नदी जो मेरी तरफ बढ़ती आ रही है और मैं देख रहा हूँ कि उस इलाके के सारे दरख्तों की पत्तियाँ सूख कर झड़ रही हैं! कौन सी है यह जगह? और यहाँ यह अनहोनी कैसे हो रही है?

तो कलियुग ने आदर से दख़ल दिया–अदीबे आलिया! ख़ामोश विलाप की आवाजें तभी दिल पर दस्तक देती हैं जब इंसानी उसूलों की हत्या होती है और आँसुओं की नदी तभी उमड़ती है जब कोई संस्कृति सूखने वाली होती है–तब आदमी की लाचारी के आँसू उसकी आँखों से बहते नहीं दिखाई देते, बल्कि वे ज़मीन में जज़्ब होकर उस दिशा में बह निकलते हैं जहाँ कोई नई संस्कृति जन्म ले रही होती है। हुजूरे आलिया! आदमी के आँसू ही नई संस्कृतियों को पैदा करके उसे सींचते हैं...जिस संस्कृति के आँसू सूख जाते हैं, वह उजड़ जाती है...

–लेकिन मुझे मेरी बात का जवाब नहीं मिला! यह जगह कौन सी है जहाँ से आँसुओं की नदी एकाएक बह निकली है और सारे दरख़्तों की पत्तियाँ सूख कर झड़ रही हैं? अदीब ने पूछा!

–हुजूर! वक्त ने बताया–यह जगह दिल्ली है और यहाँ एक उजड़ती तहज़ीब का यह मंजर इसलिए मौजूद हुआ है कि एहसान फरामोश, विश्वासघाती पठान मलिक जीवन दाराशिकोह और सिपिहर शिकोह को बंदी बनाकर मिर्जा राजा जयसिंह और बहादुर खाँ के साथ दिल्ली पहुँच चुका है! इसीलिए दिल्ली बिलख रही है...और इस वक्त दिल्ली का नजारा यह है...

–दारा और उसके बेटे सिपिहर शिकोह को नज़र बेग की सख़्त निगरानी में रख दिया गया है—तारीखवार यह दिन 23 अगस्त सन् 1659 का है। नज़रबेग अपने आक़ा औरंगज़ेब का बहुत ही विश्वस्त गुलाम है। नज़रबेग ने दारा और सिपिहर शिकोह को दिल्ली-शाहजहाँनाबाद वाली सड़क के मुहल्ले खवासपुरा की एक हवेली में बंदी बनाकर रख दिया है...यह हवेली तीन मील दक्षिण में है...

दो दिन बाद नज़रबेग औरंगज़ेब के समाने हाजिर हुआ और उसने बंदियों की हालत का पूरा ब्यौरा पेश किया...यह दिन है 25 अगस्त 1659 का।

इसके चार दिन बाद औरंगज़ेब हुक्म देता है कि काफ़िर दारा और उसके बेटे का सार्वजनिक अपमान किया जाए...यह 29 अगस्त 1659 की बात है।

यह उसी दिन की बात है। विशाल शाही सेना की पहरेदारी में दारा का यह 'अपमान–जुलूस' शाहजहाँनाबाद की मुख्य सड़कों से निकाला जाता है और दिल्ली की प्रजा के सामने यह सबूत पेश किया जाता है कि असली दाराशिकोह यही है। बंदियों को ख़ासतौर से मोटे और गंदे कपड़े पहनाए गए हैं...उन्हें शाही पगड़ियों की जगह मामूली पगड़ियाँ दी गई हैं और ऊपर लपेटने के लिए फटी हुई सूती कश्मीरी शालें दी गई हैं–वह शालें महल के नौकर चाकरों और दासों को पहनने के लिए दी जाती हैं। दो बूढ़ी हथनियों को बदबूदार गंदगी और मैले से 'सजाया' गया है। एक पर सिपिहर शिकोह है और उसके हौदे के पीछे नजरबेग नंगी तलवार लिए मौजूद है...

दारा की हथिनी के साथ-साथ मलिक जीवन उर्फ़ बख्तियार खाँ खुद घोड़े पर तैनात है और अश्वारोही सैनिकों का एक दस्ता उसके साथ चल रहा है! सबसे आगे हाथी पर सवार है बहादुर खाँ, जो दाराशिकोह के इस ज़िल्लत भरे जुलूस का नेतृत्व कर रहा है! और अब ज़िल्लत का यह जुलूस लाहौरी दरवाजे से होता हुआ उन जगहों से गुज़र रहा है–जो दाराशिकोह से बाबस्ता रही हैं। अपमान के इस तूफान को बर्दाश्त करता दारा सिर झुकाए हाथी के हौदे में बैठा है और जुलूस आगे बढ़ता जा रहा है!

सड़कों पर दोनों ओर ग़मग़ीन भीड़ है! वे अपने चहेते शहज़ादे को इस हाल में देखकर बेहद दुःखी, निराश और बेबस हैं! उनकी आँखों के आँसू ज़मींदोज़ हो गए हैं...

तभी लाहौरी दरवाजे के पास भीड़ में खड़ा एक भिखारी चिल्ला उठता है–शहज़ादे दाराशिकोह...आपने हमें हमेशा भीख दी है, लेकिन हम बदनसीबों के पास आज आपकी मेहरबानियों के बदले में देने के लिए कुछ भी नहीं है!

दारा ने उस भिखारी को आँख उठाकर देखा और उसकी आँखों से आँसू बह पड़े हैं! दारा ने बुदबुदा कर कहा–मेरे पास और तो कुछ नहीं लेकिन कुछ आँसू अभी भी बाकी बचे हैं...और यह उन हिंदुस्तानियों के लिए हैं, जो मेरी ही तरह बदनसीब हैं...लो! मेरे इन आँसुओं को संभालो...अगर तुमने इन आँसुओं को सूखने न दिया तो किसी और दाराशिकोह को तुम फिर जनम दे सकोगे...

–दारा की खामोश आँसू भरी आँखें जब यह पैग़ाम दे रही थीं, उस वक्त

–दारा की खामोश आँसू भरी आँखें जब यह पैग़ाम दे रही थीं, उस वक्त का चश्मदीद गवाह मैं हूँ! एक फिरंगी से लगते आदमी ने बीच में दख़ल दिया।

–तुम कौन हो? अर्दली ने दरयाफ्त किया।

–मैं बर्ने हूँ! मैं एक यात्री भी हूँ और दाराशिकोह का दोस्त और उसका वैद्य भी। दारा के उन कठिनतम दिनों में मैं इसके साथ रहा हूँ! जब दारा को अपमानित करने के लिए उसका जुलूस निकाला गया, तो चांदनी चौक से सादुल्ला खाँ बाजार तक शोक संतप्त

लोगों की बेपनाह भीड़ थी और वे सब विलाप कर रहे थे...विलाप की आवाजों का एक चंदोवा तन गया था–क्रंदन करती आवाजों का चंदोवा मैंने अपने जीवन में पहली बार देखा था...आखिर क़िले की दीवारों से होता हुआ वह लज्जा-जुलूस ख़िजराबाद वापस पहुँचा और खवासपुरा की उसी हवेली में दारा और सिपिहर शिकोह को फिर क़ैद कर दिया गया...

–जुलूस जब गुज़र रहा था तब दिल्ली की आम प्रजा का गुस्सा आँखों के कड़ाहों में उबल रहा था और उनकी शोक संतप्त साँसों की झुलसाने वाली आँधियों ने राजधानी के पूरे इलाके को अपनी चपेट में ले लिया था...जब प्रजा के दारा-प्रेम के इस अंधड़ ने औरंगज़ेब को घेरा और खामोश प्रतिवाद के इस तूफ़ान की ख़बर उसे मिली, तो वह भीतर ही भीतर थर्रा उठा था! यह बयान कलियुग का था–औरंगज़ेब को लगा था कि प्रजा विद्रोह कर सकती है और दाराशिकोह की ज़िन्दगी और आज़ादी के लिए जान भी दे सकती है तो वह चिन्ताग्रस्त हो गया था...चिंताग्रस्त ही नहीं, वह विक्षिप्त होने की हालत तक पहुँच गया था। उसका पूरा शरीर पसीने-पसीने था और उसकी अंगुलियाँ और पसलियाँ कांप रही थीं...वह भयग्रस्त था...वह पूरी रात सो नहीं पाया था। वह शंका की उसी अवसन्न अवस्था में अपने कक्ष की दीवारों और सामने फैली काली रात की घनघोर स्याही को देख रहा था! इस स्याह रात के अंधेरे में उसे अपना भविष्य दिखाई ही नहीं पड़ रहा था। उसे लग रहा था जैसे कि उसका वर्तमान जगह-जगह से दरक कर टूट गया हो और वह अपनी करनी के मलबे में दब गया हो!

–या अल्लाह! चीखते हुए औरंगज़ेब अपनी पेशानी का पसीना पोंछता हुआ कक्ष की दीवार से टकराया तो रोशनआरा ने आकर उसे सँभाला।

–ए मेरे सौभाग्यशाली भाई! यह वक्त ऊहापोह और संभ्रम का नहीं, यह समय निर्णायक आघात का है! तुम्हें तारीख़ ने यह मौक़ा दिया है जो दुनिया में इस वक्त किसी को हासिल नहीं है! इसलिए अपनी आत्मा के रिसते इस पसीने को पोंछो और दाराशिकोह पर फ़ैसलाकुन वार करो!

–आपा! औरंगज़ेब ने आहत होते हुए कहा–आपा! मैं क्या करूं...भाईजान दाराशिकोह को कोई भी सज़ा देते मेरी आत्मा काँपती है...हिन्दुस्तान की सारी प्रजा उसे चाहती है...आज के मौजूदा माहौल की जो अंदरूनी खबरें मुझे मिली हैं वो हौलनाक हैं और हिन्दुस्तान–खासतौर से दिल्ली की प्रजा कभी भी मेरे ख़िलाफ विद्रोह कर सकती है...

–तो इस विद्रोह को दबाने का एक ही तरीक़ा है! रोशनआरा ने कहा।

–क्या?

–यही कि हिंदुस्तानी प्रजा की मज़हब परस्ती और मज़हब के लिए उसकी आधारभूत कमज़ोरी का तुम इस नाज़ुक वक्त में फायदा उठाओ...रोशनआरा ने उसे गहरा सुझाव दिया!

–कैसे...कैसे ? औरंगज़ेब ने अपनी पतली और लगभग खामोश आवाज़ में पूछा।

–वो ऐसे कि तुम दाराशिकोह के खिलाफ काफ़िर और अनेकेश्वरवादी होने का इल्ज़ाम लगा कर उलेमाओं से उसकी सज़ाए-मौत का फतवा जारी करवा दो ! रोशनआरा ने राय दी।

–लेकिन ऐसा फ़तवा जारी करवाना कैसे मुमकिन होगा ? औरंगज़ेब ने जानना चाहा।

–मैं इन मुल्ला, मौलवियों और उलेमाओं की नस-नस पहचानती हूँ ! यह अरब और ईरान नहीं है–यह हिन्दुस्तान है और यहाँ शाही सत्ता के सामने इन्होंने हमेशा दुम हिलाई है ! रोशनआरा ने कहा–तुम अभी इनकी सभा बुलाओ और अपना इरादा ज़ाहिर करते हुए, दारा की जिन्दगी के बारे में, बहुत शाइस्तगी से फ़ैसले का हक़ उन्हें सौंप दो ! और तुम देखना उनका फ़ैसला वही होगा–जो तुम्हारा और मेरा फ़ैसला है !

भयभीत औरंगज़ेब ने सभा बुलाई। सब लोग शाम को किले के दीवाने खास में जमा हुए । रोशनआरा ने धीरे से औरंगज़ेब के कान में कहा–तुम खामोश रहना और कूटनीति से काम लेते हुए सिर्फ़ इस बात की कोशिश करना कि दारा को प्राणदंड दिए जाने का मेरा और तुम्हारा फैसला सबका फैसला बन जाए, ताकि तारीख़ हमें दोषी न ठहराए और आने वाली सदियों में यही कहा जाए कि यह फ़ैसला आम राय से हुआ था–और यह कि औरंगज़ेब अपने मुल्लाओं और खासुलख़ास दरबारियों का यह फैसला मानने और मंजूर करने के लिए मजबूर था, क्योंकि आम और आला दिमागों की राय की अवज्ञा नहीं की जा सकती।

उस शाम दीवाने ख़ास में चल रही इस कूटनीतिक सभा में उत्साह या न्याय का माहौल नहीं बल्कि मातम का माहौल था। अहम और खास दरबारी जैसे राजकाज का कोई संगीन मसला सुलझाने या उस पर फैसला लेने के लिए मौजूद नहीं थे बल्कि फ़ातिहा पढ़ने आए थे। यह कूटनीतिक सभा ज्यादा देर तक नहीं चली क्योंकि फैसला तो पहले ही हो चुका था, उलेमाओं को तो उस पर सिर्फ मुहर लगानी थी। दरबारी दानिशमंद दारा का घोर विरोधी था, लेकिन इसके बावजूद उसने सभा के पूर्व-निर्णय को जानते हुए भी दाराशिकोह को प्राणदंड दिए जाने का विरोध किया, उसने कहा–शहज़ादे दारा को प्राणदंड दिए जाने का कोई कारण या औचित्य नहीं है...बेहतर यही होगा कि शहज़ादे दाराशिकोह और उसके बेटे सिपिहर शिकोह को ग्वालियर के क़िले में कैद कर दिया जाए और उन्हें उम्र क़ैद देकर वहाँ सख्त पहरा लगा दिया जाए !

सभा में इस बात से कुछ सुनगुन हुई और दानिशमंद जैसे ख़ास दरबारी की राय से जब रोशनआरा को बाज़ी पलट जाने का अंदेशा हुआ तो उसने फिर औरंगज़ेब के कान में कहा–अगर यही फ़ैसला होता है तो दारा को उम्र क़ैद में डाल कर अरहर की दाल के साथ अफ़ीम का पानी दे-देकर उसे धीरे-धीरे मरने के लिए मजबूर कर दिया जाए !

–नहीं, मैं इस राय से सहमत नहीं हूँ! औरंगज़ेब ने धीरे से रोशनआरा से कहा। और उसी वक्त उसके ज़ेहन में आया कि दारा से निपटने के बाद उसे एय्याश मुरादबख़्श से भी निपटना है...उस एय्याश के खात्मे के लिए रोशनआरा वाला नुस्खा खासा कारगर रहेगा। इस नुस्खे को मुराद पर लागू करने के लिए उसने मन-ही-मन गाँठ बाँध ली।

तब तक घोर दारा विरोधी दरबारी खलीलुल्लाखाँ, शाइस्ता खाँ और हकीम तबर्रुकखाँ ने दानिशमंद की राय की बाज़ी पलट दी थी! यह करिश्मा होना ही था। उलेमा, मुल्ला, मौलवी तो शुरू से ही 'विधर्मी' दारा के खिलाफ़ थे। शरीयत और मज़हब के विद्वानों-धर्मशास्त्रियों को दारा से तरह-तरह के ख़तरे थे...उनका खून पहले से ही उबल रहा था और उन्होंने दरबारी दानिशमंद के हस्तक्षेप को अस्वीकार करके दाराशिकोह के विरुद्ध मौत का फ़तवा जारी कर दिया!

कलियुग बोला–रोशनआरा और औरंगज़ेब ने राहत की साँस ली...कि दाराशिकोह को इस्लाम विरोधी घोषित करके मौत देने की सज़ा धर्मशास्त्रियों ने तज़बीज कर दी है...मुग़लिया सल्तनत का ताज हासिल करने और शहंशाह बनने की उसकी छुपी हवस को इस धर्माज्ञा ने ज़ाहिर होने के ख़तरे से बचा लिया था...क्योंकि अगर औरंगज़ेब के छिपे हुए इरादे खुलेआम सामने आ जाते तो पूरा हिंदुस्तान गृह-युद्ध का खूनी मैदान बन जाता। और करीब-करीब हुआ भी वही, लेकिन छोटे पैमाने पर! उसने यही ज़ाहिर किया कि वह मज़हबी फतवे के सामने बेबस है!

कहते हुए कलियुग ने हज़रत शिबली नोमानी की तरफ नज़र डाली। वे सुस्त और पशेमान से बैठे थे। अदीब को उनकी इस पशेमानी से तकलीफ हुई और उसे खुद भी बुरा लगा। आखिर शिबली नोमानी उसके बुज़ुर्ग ही नहीं, उसकी बिरादरी के आलातरीन विद्वान भी थे। उनकी खामोशी से आहत होकर अदीब ने कहा–ऐ आला हुजूर! आपकी पशेमानी हमें विचलित करती है, लेकिन क्या करें, हर सदी को अपना सच तलाशने की आज़ादी है...और हुजूरे आला! आप भी जानते हैं–सच तो इन्सान की उदात्त आकांक्षाओं का एक सपना है इसलिए हर सदी में सच इंसानी शुभ के लिए तहज़ीब की भट्टी में तपा कर फिर शुद्ध कर लिया जाता है...सच कभी अशुद्ध रह ही नहीं सकता...

शिबली नोमानी ने अदीब को गहरी नज़रों से देखा–जैसे वे उसकी बात से बहुत हद तक सहमत से हो रहे हों, पर कुछ सोच कर उन्होंने टिप्पणी की–अदीबे आलिया! मैंने जो कुछ भी आलमगीर के बारे में लिखा है, वह उस व्यक्ति का सच है और उस सच ने सत्रहवीं सदी की तक़दीर का फैसला किया है!

कि तभी अपने पैजामे का नाड़ा घुड़सते और दूसरे हाथ में छड़ी और सिगरेट थामे रघुपति सहाय फ़िराक़ अपनी बड़ी-बड़ी पानीदार आँखों से अदालत की मजलिस को देखते हुए उपस्थित हुए और सिगरेट का एक गहरा कश लेकर धुआँ उगलते हुए बोले–हज़रात! कोई भी इन्सान कितना ही बड़ा हो, उसका सच किसी क़ौम की तक़दीर का फ़ैसला नहीं

कर सकता...यह हक़ शहंशाहों और तानाशाहों को भी नहीं क्योंकि–'तक़दीर तो क़ौमों की हुआ करती है, इक इन्सान की तक़दीर कोई तक़दीर नहीं!' और शिबली नोमानी साहब! आपका आलमगीर सिर्फ़ एक शख़्स था...शहज़ादा था...वह अपने दौर का रहनुमा नहीं था!

कहते, सिगरेट का एक और कश लेते अपनी रौ में फ़िराक़ जैसे आए थे, वैसे ही लौट गए। तहज़ीब ने उन्हें रोका भी लेकिन फ़िराक़ साहब नहीं रुके! मजलिस देखती रह गई।

आख़िर अर्दली ने कलियुग को बयान जारी रखने का इशारा किया।

कलियुग ने आगे का हवाल बताया–अदीबे आलिया! दाराशिकोह को मौत दी जाए, यह फ़तवा जारी करने के बाद षड़यंत्रकारियों का दरबार बर्ख़ास्त हुआ और दूसरे ही दिन सुबह दीवाने आम में एक ख़ास जलसा हुआ। यह सन् 1659 के अगस्त की तारीख 30 थी! यह जलसा मलिक जीवन को सम्मानित करने के लिए आयोजित था। दाराशिकोह के साथ बरती गई घोर गद्दारी और औरंगज़ेब के लिए की गई वफादारी के इनाम के तौर पर मलिक जीवन को बख़्तियार खाँ का नाम दिया गया और उसे मुग़ल सामंतवर्ग में मलिक हज़ारी बनाया गया!...दारा के साथ किए गए विश्वासघात का इनाम लेकर जब मलिक हजारी बख़्तियार खाँ सीना ताने अपने अफ़गान सैनिकों के साथ चाँदनी चौक से गुज़रा तो दिल्ली की आम जनता अपना खौलता क्रोध नहीं रोक पाई और उसने मलिक हज़ारी बख़्तियार खाँ और उसके सैनिक दस्ते पर हमला कर दिया! और विप्लव शुरू हो गया! भयानक मार काट हुई। औरतों ने उस पर गालियों, कूड़े-कचरे और मल-मूत्र के कूजों की बौछार की! मुर्दा जानवरों की अंतड़ियाँ उस पर फेंकी गईं और चूल्हों की जलती लकड़ियों और अंगारों से उस पर वार किया गया! उस विद्रोह में मलिक हज़ारी बख़्तियार खाँ के कई सौ अफ़ग़ान सैनिक मारे गए। इस भड़के विद्रोह को अगर दिल्ली का कोतवाल वक्त रहते न दबाता तो मलिक हज़ारी बख़्तियार खाँ जिन्दा नहीं बच सकता था! शाम होते-होते दिल्ली में मौत का सन्नाटा छा गया! आम आदमी के इस विद्रोह ने दाराशिकोह के अंत-समय को और पास ला दिया!

–मैं इसकी ताईद करता हूँ! बर्ने ने सिर हिला कर कहा–मैं उस वक्त हुई भयानक मारकाट का चश्मदीद गवाह हूँ और आलमगीरनामा नामक इतिहास की उस पुस्तक को भी मैं उधेड़ना चाहूँगा जो कहती है कि दाराशिकोह को सिर्फ धार्मिक फ़तवे के तहत क़त्ल किया गया! धार्मिक फ़तवा तो एक बहाना था क्योंकि औरंगज़ेब दाराशिकोह की हत्या करने की बात पहले ही तय कर चुका था। अगर दारा की हत्या पहले से तय नहीं थी, तो फिर मलिक जीवन को बख़्तियार खाँ की पदवी देने और मलिक हज़ारी बनाने की क्या वजह और ज़रूरत थी? दाराशिकोह के साथ विश्वासघात करने का ही यह इनाम उसे दिया गया था। उस रात दिल्ली वीरान थी और चारों तरफ मौत मंडरा रही थी!

–और उस ख़ौफनाक रात के अंधेरे में औरंगज़ेब ने अपने सबसे विश्वस्त वधिक नज़र कुलीबेग को बुलाया। उस कुबड़े ने आकर कोर्निस की तो औरंगजेब ने हुक्म दिया–खवासपुरा की हवेली में जाओ। सिपिहर शिकोह को उसके बाप से अलग करो और उस क़ाफ़िर दाराशिकोह का सिर धड़ से अलग करके मेरे सामने पेश करो ! इस काम को अंजाम देने में शफ़ी खाँ तुम्हारे साथ रहेगा !

–वह भयानक रात थी...30 अगस्त 1659 ! खवासपुरा की वह हवेली...उसमें दाराशिकोह का अंधेरा कक्ष। साथ में सिपिहर शिकोह ! कुबड़े नज़रबेग और शफ़ी खाँ ने जिस समय दारा के कक्ष में कदम रखा, उस समय शहज़ादा दाराशिकोह मसूर की दाल पका रहा था। उन दोनों को देखते ही दारा को अनिष्ट की आशंका हुई ! वधिक नज़रबेग की ओर देखकर दारा ने सवाल किया–तुम इस वक्त ? क्यों और किसलिए ?

–आदेश है कि सिपिहर शिकोह को आपसे अलग कर दिया जाए ! नज़रबेग ने कहा।

सिपिहर शिकोह यह सुन कर चौकन्ना हुआ।

–क्या तुम्हें हमारी हत्या के लिए भेजा गया है ? दारा ने सख़्ती से पूछा।

–इसके बारे में हम कुछ नहीं कह सकते ! कुबड़े नज़रबेग ने ही जवाब दिया, और सिपिहर शिकोह से बोला–उठो !

सिपिहर शिकोह भयाक्रांत हुआ और वह दारा के घुटने से अपना घुटना सटा कर बैठ गया। तभी शफ़ी खाँ और नज़रबेग ने उसे अलग करने के लिए पकड़ कर खींचा ! दारा यह बर्दाश्त नहीं कर पाया, वह चीखा–शाही ख़ून की तौहीन की तुम्हें क़ीमत चुकानी पड़ेगी !

लेकिन दारा की नाराज़गी और सिपिहर शिकोह के चीखने चिल्लाने पर उन दोनों वधिकों ने कोई ध्यान नहीं दिया, उन्हें तो अपने शहंशाह औरंगज़ेब के हुक्म को तामील करना था !...काल-कक्ष में दारा के पास अपनी हिफाजत के लिए कोई हथियार नहीं था...उसने कलम तराशनेवाला सिर्फ एक छोटा-सा चाकू तकिए में छुपा रखा था, उसे निकाल कर दारा ने खुद को बचाते और सिपिहर शिकोह को अपनी ओर खींचते हुए उन दोनों पर वार किया...इसी बीच जल्लाद नज़रबेग ने खंजर निकाल कर सिपिहर शिकोह की बांह चीर दी। सिपहिर दर्द से चीख पड़ा...

–दारा ने फिर भी अपनी ताकत भर उन दोनों जल्लादों का मुक़ाबला किया और किसी तरह सिपिहर शिकोह को उनकी गिरफ़्त से छुड़ा लिया और चीखा–जाओ और मेरे उस ज़ालिम भाई से कहो...इस मासूम ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा है...इसे मुझसे जुदा न करे !

–हम किसी के संदेश वाहक नहीं हैं ! हमें तो सिर्फ आलमगीर के हुक्म का पालन करना है ! कुबड़ा कसाई नज़रबेग बोला।

–और हम वही कर रहे हैं! कहते हुए शफ़ी खाँ ने जख़्मी सिपिहर को फिर अपनी गिरफ़्त में ले लिया!

दारा को अब कोई सन्देह नहीं रह गया था। वह अंतिम रूप से जान गया था कि उसकी मौत का हुक्म जारी हो चुका है...और जब शफी खाँ और नज़रबेग सिपिहर को घसीटते उस काल कोठरी से बाहर ले जा रहे थे तो दारा ने उसी छोटे कलम-तराश चाकू से शफी खाँ पर वार किया था। वह चाकू शफी खाँ की एक पसली में जकड़ कर रह गया था।

उन दोनों जल्लादों ने सिपिहर शिकोह को कक्ष के बाहर इंतजार करते सैनिकों के हवाले करके दारा के कक्ष का दरवाजा बंद कर लिया। सिपिहर की बाँह से टपके हुए खून की अंदर आती काली लकीर देखकर दारा दहल गया था। पर अब कोई चारा नहीं था...दीवार के उस पार वाले कक्ष से अब सिपिहर शिकोह की भयावनी चीखें आ रही थीं...कि जैसे उसकी बोटी बोटी काटी जा रही हो...

–मेरे बेटे पर यह ज़ुल्म मत करो!...जाकर उस जालिम आलमगीर को बताओ कि वह नमाज़ी नहीं ढोंगी है...वह इबादती होने के साथ-साथ गुनहगार भी है...मैंने इबादत न की हो, लेकिन मैंने खुद को हमेशा गुनाह से बचाया है...उससे कहो, याद करे–पाक जाबिर ने क्या कहा है–इबादत करने वाला उसके बराबर नहीं हो सकता, जो गुनाह से ख़ुद को बचाता है...उसे जाके बताओ...कि उसके मुल्लाओं का फ़तवा सिर्फ गुनाह है...कुफ़्र है...

तभी सिपिहर की चीखों ने उसे परास्त कर दिया, वह बोला...सिपिहर को बख़्श दो और तुम्हें जो भी हुक्म लागू करना हो, उसकी तामील मुझ पर करो!

तभी अदालत के ऊपर अंधेरा छाने लगा। अदीब ने हैरत से चारों ओर देखा–वह अजीब माहौल था...

आसमान के आधे सितारे बुझते चले जा रहे थे और आधे फूट-फूट कर चमकीली किरचों की तरह ज़मीन की ओर आ रहे थे। चांद के ऊपर जमा बादल धज्जियों की तरह फट गए थे और चाँद एक भयानक आवाज़ के साथ शीशे की तरह जगह-जगह से दरक गया था...

अदीब यह दृश्य देखकर घबरा उठा। उसने अर्दली से पूछा–यह क्या है? यह क्या हो रहा है?

–हुज़ूर! वक्त पीछे लौट गया है...यह 30 अगस्त 1659 की रात का आखिरी पहर है...31 अगस्त 1659 की सुबह होने वाली है लेकिन सुबह हो नहीं पा रही है क्योंकि सूरज काला लबादा ओढ़ कर शोक मना रहा है!

–सूरज शोक मना रहा है? अदीब ने हैरत से पूछा।

–जी हुज़ूर! खवासपुरा की उस हवेली में मसूर की दाल की खदकती बटलोई अब सिर्फ़ गर्म साँसें ले रही है...क्योंकि दाराशिकोह का क़त्ल किया जा रहा है...

–क़त्ल किया जा रहा है? लेकिन यह कलमे की कैसी आवाज़ आ रही है?

–यह दाराशिकोह की आवाज़ है हुज़ूर! अब वह कलमा-ए-शहादत पढ़ चुका है और अब...अब उसकी गर्दन धड़ से अलग हो चुकी है!

अंधेरा और सन्नाटा छा गया था...सूरज काला शोक-वस्त्र पहने धरती की कोर से झाँक रहा था।

–अदीबे आलिया! जब सूरज ने काला लबादा पहन कर झाँका, उसी वक्त दारा का कटा हुआ सिर औरंगज़ेब के पास लाया गया! कलियुग ने आगे बताया–औरंगज़ेब एकाएक इतनी ताब नहीं ला पाया कि वह उस कटे हुए सिर को देखे, लेकिन देखना तो था ही...ताकि यह यक़ीन करके निश्चिंत हो सके कि वह सिर दारा का ही है। जब उसे यक़ीन हो गया तो वह अपनी आदत के खिलाफ़ जोर से चीखा–ऐ बदबख़्त! मुझे तुझ काफ़िर का मुँह देखना गवारा नहीं है...कहते हुए औरंगज़ेब ने मुँह फेर लिया और हुक्म दिया–इसका खून साफ कर दिया जाए और इसे एक बड़ी रकाबी में रख दिया जाए!

तभी रोशनआरा बेगम औरंगज़ेब के कक्ष में आई और उसने अगला हुक्म दिया–दाराशिकोह के सिर को सुगंधित करके एक संदूक में बन्द करो और इस सिर को आलमगीर की तरफ से अब्बा हुज़ूर के पास तोहफे के तौर पर भिजवा दो...

हुक्म की तामील करने के लिए दारा का रक्त से सना सिर लेकर नज़रबेग और शफी खाँ चले गए।

दाराशिकोह के क़त्ल की खबर जंगल की आग की तरह चारों तरफ फैल गई।

और तब एक अजीब नजारा पेश आया। अदीब ने सामने देखा–चाँदी से चमकते चार पंख धरती पर पड़े थे। चौंक कर अदीब ने अर्दली से पूछा–यह पंख! यह किसके हैं?

–हुज़ूर यह पंख उन फरिश्तों के हैं जो दाराशिकोह की रूह को बाइज़्ज़त साथ ले जाने आए थे...वे फ़रिश्ते दारा के क़त्ल का सदमा सह नहीं पाए और उनके यह ख़ूबसूरत पंख खुद ही झड़ पड़े हैं...

अदीब ने भी एक अजीब-सा सदमा महसूस किया और उसने दारा की तरफ देखा। दारा की नजरें उससे मिलीं और वह धीरे धीरे बुदबुदाया–

–मुझे तो वहीं तक का हादसा याद है जहाँ तक मैंने कलमा पढ़ा था, उसके बाद मुझ पर एक अजीब-सी रूहानी बेहोशी तारी हो गई थी...दारा ने कहा–लेकिन मेरा सिर कलम किए जाने के बाद क्या-क्या हुआ...यह जानना मेरे लिए एक हौलनाक अनुभव है...

–सबसे ज़्यादा हौलनाक मंजर तो यह है कि जिस दिन दाराशिकोह का सिर कलम हुआ, उसी दिन हिंदुस्तान की बनती एक सहिष्णु और नई तहज़ीब का सिर भी क़लम हो गया...तहज़ीब बहुत दुःखी स्वर में बोली–क्योंकि हिन्दुस्तान की बनती नई तहज़ीब के लिए

दाराशिकोह ने जो कुछ कहा और सोचा था, वह दारा ने नहीं, वही तो सदियों पहले नबी ने कहा था! इतना कहकर तहज़ीब ने अपने आँसू पोंछे और वह उदास-सी पीछे सरक कर बैठ गई...फिर धीरे से बुदबुदाई–तभी से मैं अधूरी हूँ!

उसी वक्त चाँदनी चौक की दोनों दिशाओं से दो जुलूस निकलने लगे। एक जुलूस का नज़ारा तो बहुत ही हैरतअंगेज़ था। उस जुलूस में हजारों की तादाद में मुंड रहित रुण्ड थे, जो अपनी छातियाँ धुनते चले आ रहे थे। उनकी कटी हुई गर्दनों से ताज़ा रक्त फ़व्वारे की तरह निकल रहा था। दूसरी ओर से नंगी तलवारे लिए शहंशाह के सैनिकों की पलटन चली आ रही थी।

अदीब और दारा ने साथ-साथ उन दोनों जुलूसों को देखा और अदीब ने कलियुग से दरयाफ्त किया–ये कैसे जुलूस हैं?

तो कलियुग ने खुलासा किया–हुजूरे आलिया! यह सरकटे लोगों का मातमी जुलूस अवाम और उन मामूली लोगों का है जो दाराशिकोह को प्यार करते हैं...और नंगी तलवारें लिए जो जुलूस आ रहा है, वह औरंगज़ेब के सैनिकों का है!

–मातमी जुलूस तो समझ में आता है पर सैनिकों का जुलूस किसलिए?

–मेरी समझ में सब आ रहा है और मैं सब कुछ देख सकता हूँ! दारा बीच में बोला–सैनिकों के जुलूस के बीचोंबीच देखिए–एक हाथी चला आ रहा है!

सबने देखा–हाथी की पीठ पर एक बिना सिर का आदमी बँधा हुआ था, जिसे दिल्ली की सड़कों और गलियों में घुमाकर अब चाँदनी चौक लाया गया था!

–दाराशिकोह! तुम इस सिर कटी लाश को पहचानते हो? अदीब ने पूछा।

–जी हुजूर! यह सिर कटी लाश मेरी है!

•

28

और तब सिर कटी लाश के साथ-साथ अदीब ने हिंदुस्तान में एक और हैबतनाक नज़ारा देखा...वह नज़ारा जो सदियों की सरहदों में फैला था।

हिन्दुस्तान नाम का एक ऐसा मुल्क उसके सामने था, जिसके बाशिंदों की गर्दनों पर सिर नहीं थे। हर तरफ रुण्ड की रुण्ड दिखाई दे रहे थे। बाजार खुले थे, मंदिरो-मस्जिदों के दरवाजे भी खुले थे। चाँदनी चौक की दूकानें भी खुली थीं और बिना सिर वाले रुण्ड जगह-जगह आ जा रहे थे। वे केवल धड़ ही धड़ थे। वे बात करते थे, मोल-भाव करते, चीज़ें खरीदते, मंदिर-मस्जिदों में पूजा-इबादत के लिए जाते भी दिखाई देते थे। उनकी आवाज भी सुनाई पड़ती थी पर धड़ पर सिर न होने के कारण उनके बोलते हुए ओंठ नहीं दिखाई देते थे। झपकती हुई आँखें नज़र नहीं आती थीं।

और यह ख़ौफनाक नज़ारा सिर्फ़ हिंदुस्तान में ही नहीं, पूरे मध्य एशिया से लेकर तुर्की तक फैला हुआ था। पूरी इंसानी नस्ल की शक्ल ही बदली हुई थी। इतना ही नहीं, कुदरत भी नासाज़ थी। फूल तो थे पर उनकी खुशबू नदारद थी। खजूर भी थे पर वे सीठे हो गए थे। मधुमक्खियाँ आती तो थीं पर खजूरों से परहेज कर रही थीं। चिड़ियाँ उड़ती थीं, मुंडेरों-कंगूरों पर जाकर बैठ जाती थीं, लेकिन उनकी परवाज़ की कमी के कारण आसमान खाली था। रात भी होती थी पर निकलते ही सारे सितारे बुझ जाते थे। चाँद पतझड़ के पत्ते की तरह कुम्हला जाता था। नदियाँ बह रही थीं लेकिन उनमें लहरें नहीं थीं।

सूरज भी काला मातमी लबादा ओढ़ कर निकलता था। अबाबीलें परेशान थीं कि दिन क्यों नहीं होता। गौरइयाँ सहमी हुई फसीलों पर बैठी हुई थीं। जमुना नदी की मछलियों ने तैरना बंद कर दिया था, क्योंकि लहरें नहीं थीं। खवासपुरा की तारीखी हवेली अभी भी काँप रही थी...

तभी अदीब की नजरें शाहजहाँनाबाद के लाल किले की और उठीं। वहाँ क़िले की फसील, कंगूरो, फाटकों पर भी जो पहरेदार तैनात थे, उनके हाथों में हथियार थे, लेनिक धड़ पर सिर नहीं थे। अजीब से इस महौल को अदीब समझ ही नहीं पा रहा था। वह चीखा–अर्दली!

अर्दली हाज़िर हुआ–हुज़ूर!

–देखो मेरे धड़ पर सिर है? अदीब ने पूछा।

–मौजूद है सरकार!

–तुम्हारे धड़ पर रखा हुआ सिर भी मुझे नज़र आ रहा है, लेकिन ऐसा क्यों है कि बाकी लोगों के सिर नहीं हैं? अदीब ने पूछा।

–हुज़ूर! अर्दली ने कहा–इतिहास में ऐसे दौर बहुत बार आते हैं, जब उस दौर के लोगों के सिर गायब हो जाते हैं...सोचना समझना और सच की तहक़ीकात का सिलसिला ख़त्म हो जाता है...अदीबे आलिया! हम उसी दौर से गुज़र रहे हैं!

–तो क्या...तो क्या ऐसे दौर में आँखें देखना भी बंद कर देती हैं? अदीब ने सवाल किया।

–नहीं हुजूर! जो भी घटित होता है, उसे आँखें बराबर देखती हैं!

–तो फिर इन रुंडों, इन धड़ों की आँखें कहाँ हैं?

–हुजूर! वे लाखों-करोड़ों आँखें एक दूसरा ग़मगीन और शर्मनाक नज़ारा देखने के लिए एक जगह जमा हो गई हैं...आंखों के उन पहाड़ों को देखिए...

और तब ज़िंदा आँखों के पहाड़ देखकर अदीब का दिल दहल गया...आँखे ही आँखें...और तब वो फिर चीख पड़ा–

–यें लाखों करोड़ों आँखें कौन सा नज़ारा देखने के लिए उत्सुक हैं?

–हुजूरे आलिया! औरंगज़ेब और रोशनआरा ने अपना फ़ैसला बदल दिया है...अब दाराशिकोह के धड़ को लाहौरी दरवाजे और उसके सिर को चाँदनी चौक के चौराहे पर लटकाया जा रहा है...वह देखिए–नज़रबेग इस काम को अंजाम दे रहा है...

और अदीब ने लाखों करोड़ों आँखों की निस्बत से देखा–लाहौरी दरवाज़े पर दाराशिकोह का धड़ झूल रहा था और चांदनी चौक के चौराहे पर एक लंबे नेज़े की नोंक पर दारा का सिर टँगा हुआ था।

वहाँ भी देखने वाली आँखों के अम्बार का पहाड़ मौजूद था।

तभी दाराशिकोह का वह कटा हुआ सिर तेज़ आवाज़ में हँसने लगा। हँसता ही गया...एक भयानक ज़लज़ला-सा आ गया! दारा के शीराज़ी कबूतरों ने उदासी से आवाज़ की तरफ देखा। वो दोनों पालतू अफ्रीकी शेर जो उसके दाएँ-बाएँ रहते थे, जैसे आवाज़ को पहचान कर एक दूसरे को देखने लगे, इस आश्चर्य के साथ कि उनका मालिक वली-अहदे सल्तनत, दूदमाने तैमूरी व चंगेजी, बुलंद इक़बाल युवराज दाराशिकोह तो कभी इतनी जोर से हँसता नहीं था...

चाँदनी चौक के चौराहे पर लटका हुआ दारा का सिर अभी भी ज़ोर-ज़ोर से हँस रहा था। आँखों के पहाड़ हैरत से उसे ताक रहे थे।

दीवानख़ाना-ए-इल्म में संस्कृत के विद्वान कुबतराय, कवि रंजन दास, वेदों के फारसी अनुवादक काशीनाथ, उपनिषदों का फारसी में तर्जुमा करने वाले द्वारकानंदन आदि सभी ख़ामोश और उदास बैठे थे। चाँदनी-खाना के आतिशी फूलों के झाड़ कुम्हलाए हुए थे। वो फानूस जिनमें हजारों शम्में एक साथ जलतीं और रात के अंधेरों में भी जो दिन

की दोपहर को क़ैद कर लिया करती थीं, आज जलने और रोशनी देने से इन्कार कर रही थीं। वे तमाम कमसिन कनीजें जो तश्तरियों में भारी-भारी काफ़ूरी-शम्में लेकर हमेशा हाज़िर रहती थीं, वे भी अपने तश्त और तश्तरियाँ फेंक कर काले मातमी लबादे पहने खामोश खड़ी थीं। सल्तनत की सारी तोपें शर्मसार थीं। दाराशिकोह का घोड़ा 'फलकपैमा' लाहौरी दरवाजे के पास अकेला खड़ा, ग़मगीन और आँसू भरी आँखों से अपने मालिक शहज़ादे का लटका हुआ धड़ देख रहा था। उसके हाथी 'फतहजंग' की आँखें नम थीं। जमुना नदी में खड़ा बेड़ा 'उक़ाबे सुर्ख' के शाही परचम मुर्दों की तरह लटके हुए थे, क्योंकि हवा बन्द थी।

तभी चाँदनी चौक के चौराहे पर दाराशिकोह का लटका हुआ सिर फिर एक बार ज़ोर से हँसा। फिर एक ज़लज़ला आया। वह सिर बुलन्द आवाज़ में बोला–वतन की ख़िदमत दुनिया की सबसे बड़ी सआदत और दीन की सबसे बड़ी इबादत है! वही हमने की है...

वह बुलन्द आवाज़ ब्रह्मांड में गूँजती रही...

जमुना किनारे के पोखरों में उगे कमल फूलों ने यह आवाज़ सुनकर धीरे से आँखें खोलीं। जलमंजरी ने कान खोलकर इस आवाज़ को सुनना चाहा...

तभी जैसे लाखों लोगों की नारे लगाती आवाज़ें गूंजने लगीं–'महीन पूरे खिलाफ़त, वली अहदे सल्तनत, चिराग़े दूदमाने तैमूरी व चंगेज़ी, शाहे बुलंद इक़बाल सुल्तान दाराशिकोहे आज़म! जिन्दाबाद!

–जिन्दाबाद!

–जिन्दाबाद ।

चाँदनी चौक में दारा समर्थकों की कुछ लाशें अभी भी पड़ी सड़ रही थीं। उनके घावों में रेंगते कीड़े सहम के थम गए थे। साधुओं, फकीरों और दरवेशों के रूप में घूमते औरंगज़ेब के जासूस सकते में आ गए। आख़िर यह कैसी आवाजें थीं और किन की थीं?

चाँदनी चौक के चौराहे पर लटका दारा का सिर तो अकेला था। वहाँ कोई था ही नहीं, पर आवाजें का शोर थम ही नहीं रहा था। इन आवाजों की आवाज़ औरंगज़ेब तक पहुँची तो वह सोच में डूबा हुआ रोशनआरा के महल की ओर चल पड़ा। शहज़ादी रोशनआरा से निगाह मिलते ही औरंगज़ेब ने झुक कर सलाम किया और परेशानी भरी बातें बयान कीं।

–यह कैसे मुमकिन हो सकता है...लोगों के कान बज रहे होंगे...परवरदिगार तुम्हारे इक़बाल की रोशनी पूरी सल्तनत में फैला चुका है । रोशनआरा ने कहा।

–लेकिन आपा, हमारे जासूस ग़लत खबरें नहीं ला सकते...

–तो फिर नजूमियों, ज्योतिषियों को बुलाकर फौरन इन आवाजों का सबब दरयाफ़्त किया जाए...

और नजूमियों-ज्योतिषियों के आने में देर नहीं लगी। घनानंद ज्योतिषी ने बहुत सोच-विचार करने के बाद बताया–बात यह है हुजूरे आलिया कि दाराशिकोह के समर्थकों के दिलों में जो बातें मौजूद थीं, वे उसके क़त्ल के बाद भी मरी नहीं हैं। उनकी जख़्मी उम्मीदें अभी भी उसके सिर के इर्द-गिर्द मँडराती हुई शोर मचा रही हैं...

इसी में मंजम शफ़ीउल्ला ने टीप जोड़ दी–विद्वान घनानंद बज़ा फरमा रहे हैं हुजूरे आलिया...इतना ही नहीं, दाराशिकोह की मुर्दा खोपड़ी अपना दरबार सजा रही है, उसमें उसके सिरकटे वज़ीर, मंसबदार और उमरा हाज़िर हो रहे हैं...नज़र न आने वाले दरबार लगातार लग रहे हैं...

–यह तो ख़तरनाक है ! औरंगज़ेब बिफर उठा–मुर्दों की इस बदअमनी को फौरन से पेश्तर ख़त्म करना होगा...

–इसका एक ही तरीका है जहाँपनाह ! नजूमी अशफ़ाक़ कुछ कहते-कहते रुक गया।

–क्या ? क्या...?

–यही कि सल्तनत के आम और औसत मुसलमान को बताया जाए कि शहज़ादा दाराशिकोह हिन्दू परस्त हो गया था...उलेमाओं-मुफ्तियों से उसी तरह फतवा जारी करवाया जाए जैसा कि आपने उस रात फैसला लिया था, जिस रात दाराशिकोह और सिपिहर शिकोह को खवासपुरा की हवेली में क़ैद कर दिया गया था और आप सामने फैली घनघोर रात की स्याही को देख रहे थे...

–नजूमी अशफ़ाक़ ठीक कह रहे हैं...

–लेकिन कोई दानिशमंद जैसा दरबारी मुखालफ़त में उठ खड़ा हुआ, तो ? औरंगज़ेब ने रोशनआरा से पूछा।

–आलमगीर ! रोशनआरा बोली–दानिशमंद जैसे दानिशमंद दरबारी बहुत कम होते हैं...उनकी बात और राय का तख्ता पलटने वाले तबर्रुक खाँ हकीम जैसे लोगों की कोई कमी किसी भी सल्तनत और सत्ता के पास नहीं होती...बहुत मिल जाएँगे जो लगातार हमारे इरादों को अंजाम देंगे...

रात बेहद अंधेरी थी। सितारे बुझे हुए थे।

चाँदनी चौक के चौराहे के पासवाले पीपल के पेड़ के नीचे आकर अदीब बैठ गया। नज़ारा वही था। नेज़े पर लटका दाराशिकोह का सर अकेला था, लेकिन लाखों आवाजों का शोर जारी था। वे आवाजें कभी थम जाती थीं, कभी और तेज हो जाती थीं।

तभी अदीब ने देखा–ख़ामोश रात के अंधेरे में एक शाही सुतवाँ जिस्म, शेरवानी पहने उस चौराहे के पास आकर रुक गया। वह रुका, फिर चहलकदमी-सी करने लगा। वह

शाही शख़्स चलता तो जैसे उसकी शान में जागीर का पुराना पीतल का घंटा बजता था। वैसे वहाँ न कोई घंटा था और न कोई बजानेवाला। वहाँ तो सिर्फ़ नेज़े की नोंक पर लटका हुआ दाराशिकोह का सिर था...

वह शाही शख़्स कुछ देर गमग़ीन सा टहलता रहा, फिर वहीं पास पड़े एक पत्थर पर माथा पकड़ कर बैठ गया।

अदीब पीपल के पेड़ की मुंडेर से उठकर उसके पास गया और हैरत से देखा, वह तो उसी के समकालीन अफसानानिगार काज़ी अब्दुस्सत्तार साहब थे!

–काज़ी भाई आप? अदीब हैरत से बोला।

–अरे भाई जान आप? काज़ी भाई ने भी उतने ही हैरत भरे अंदाज में कहा।

फिर दोनों अदीबों ने एकाएक दारा के सिर की तरफ साथ-साथ देखा। निगाहें नीचे उतरीं तो काज़ी अब्दुस्सत्तार ने कहा–

–भाईजान! यहाँ कोई इतिहासकार कभी लौट कर नहीं आएगा लेकिन अपनी बिरादरी के हर सदी के अदीब को तो यहाँ आना ही पड़ेगा क्योंकि इस दाराशिकोह ने एक तहज़ीब, एक इंसानी पद्धति, एक संस्कृति को ज़िन्दा करने का बीड़ा उठाया था, लेकिन तक़दीर ने इसके हाथों से क़लम छीन लिया और एक खूनी तलवार ने बनती हुई क़ौम की जन्म कुंडली पर रक्त की स्याही फेर दी...

दारा का सिर एकाएक ज़ोर से हँस पड़ा...दिशाएँ काँपने लगीं। फिर हँसी थमी तो चाँदनी चौक की सड़क पर टप-टप पानी की बूँदें गिरने लगीं। लगा बादल रोने लगे, लेकिन नहीं, वह पानी की बूंदे नहीं, दाराशिकोह की आँखों से गिरते हुए आँसू थे...

उन आँसुओं के साथ तभी आँखों के अलग-अलग पहाड़ों से आँसुओं का एक सैलाब आया...और एक ग़ैब आवाज़ आई–

–आनेवाली सदियो सुनो! बनती हुई इंसानी तहजीबें ज़ुल्मों तले इसी तरह रोती और सिसकती रहेंगी और दाराशिकोह की तरह कोई न कोई भविष्यदृष्टा इसी तरह हर सदी में सूली पर लटकाया जाएगा...और...और उसकी आँखों के आँसू ओस बनके धरती की घास पर छलकते रहेंगे...जो घास पर पड़ी इस आँसूभरी ओस को नहीं पहचान पाएँगे वह अपने मुस्तकबिल, अपने भविष्य को कभी बदल नहीं पाएँगे...

दोनों अदीबों ने चौंक-चौंक कर चारों तरफ देखा, लेकिन आवाज़ का मालिक कहीं नज़र नहीं आया, कि एकाएक अर्दली ने हाज़िर होकर उन्हें आगाह किया–

–हुजूरे आलिया! भविष्य खुद अपने भविष्य को लेकर परेशान है...यह उसी की आवाज़ है!

आवाज़ फिर गूंजने लगी–

–तुम देखना...बदलती दुनिया के दौर में कोई ज़ालिम, कोई तास्सुबी, कोई धर्मांध शहंशाह अपनी कोशिशों में क़ामयाब नहीं होने पाएगा...लेकिन अत्याचारियों और इन्सान

परस्त ताकतों के बीच यह संघर्ष हमेशा चलता रहेगा...हर सदी में एक दाराशिकोह के साथ एक औरंगज़ेब भी पैदा होगा...इस दस्तूर को बदलना होगा, नहीं तो मेरे साथ-साथ तुम सबका भविष्य भी डूब जाएगा...अगर मैं मर गया तो तुम्हारे सारे सपने समाप्त हो जाएँगे!

–नहीं भविष्य! हम दूब पर पड़ी आँसुओं की ओस को पहचानेंगे...हम अपने सपनों और तुम्हें मरने नहीं देंगे! दोनों अदीब चीख पड़े।

लेकिन भविष्य तिरोहित हो गया।

और बजते ढोल और नगाड़ों की आवाज़ के साथ औरंगज़ेब के इस्लामी उलेमाओं के फतवों का ऐलान होने लगा।

–बिरादराने इस्लाम! जो ख़तरा हिंदोस्तान की खिलाफते इस्लामिया के सिर पर मंडरा रहा था, वह खत्म हो चुका है...हिंदू परस्त दाराशिकोह, जिसको नमाज़ से नफरत, रोज़े से अदावत, हज से परहेज और जक़ात से नफरत थी, वह तख्ते ताऊस पर नापाक कदम रखके शहंशाही के मंसूबे बना रहा था! वह ख़ुदा का मुनकिर था...वह हिंदू प्रभु के नाम की आरसी, अंगूठी और मुकुट पहनता था...वह मुनकिर हिंदू योगियों, संतों की दुआ और राजपूतों की तलवारों का सहारा लेकर इस जन्नत निशान हिंदोस्तान से इस्लाम को खारिज करने का मंसूबा बना चुका था...बिरादराने इस्लाम! ऐसे शख़्स के बारे में सब काज़िओं और मुफ्तिओं का फ़तवा है कि उसके ख़िलाफ उठाई गई तलवार एक जेहाद था...जेहादे अकबर था...

फ़तवा सुनकर नेज़े पर टँगा दारा का सिर हँसा...फिर कायनात में ज़लज़ला आया...

उसी के साथ-साथ जामा मस्जिद के पास मुनादी सुनाई दी। वही शाही ऐलान जारी था।

दारा का सिर फिर हँसा...

मगरिब की नमाज़ हो चुकी थी। चाँदनी चौक का वह बाज़ार जो चिराग़ों, मशालों, शम्मों, झाड़ों से आबाद रहता था, ख़ामोश और बेनूर था। जो सड़कें और गलियाँ इत्र लगे कपड़े पहने, फूलों के गजरों से सजे-धजे लोगों की भीड़ संभाल नहीं पाती थीं, वे वीरान थीं। भड़कीली वर्दियाँ पहने जिन कहारों के मज़बूत कंधों के सहारे पालकियाँ गुज़रती थीं, वे कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। जामा मस्जिद के आस- पास की दुकानों में, जहाँ बादामी कागज़ की किताबों से लोग दास्तानें पढ़ा करते थे, वे आँख बंद किए बैठी थीं। दूकानों के आस-पास चाँदनी बिछे तख्तों पर गाव तकियों के सहारे बैठे जो बुजुर्ग हुक्के गुड़गुड़ाते थे,

उनका खुशबूदार धुँआ नदारद था, फालूदे और शर्बत के जो चाँदीवाले गिलास रक्स किया करते थे, वो कहीं नज़र नहीं आ रहे थे।

तभी दो तीन शाही सैनिकों के साथ दूसरा मुनादी वाला नगाड़ा पीट-पीट कर ऐलान करने लगा–खल्क खुदा का, हुक्म शहंशाह का ! बहुक्म शहंशाहे हिन्दोस्तान आलमगीर औरंगज़ेब साहिबे आलम...रियाया को आगाह किया जाता है कि कोई सिरकटा शख़्स बख़्शा नहीं जाएगा। सारे धड़ों को अपने सिर गर्दनों पर लगाने होंगे ! कोई बाज़ार, कोई दूकान बंद नहीं रहेगी। सारे काम बदस्तूर जारी रखे जाएँगे...

खबर देता मुनादी वाला आगे बढ़ गया, तो बावर्ची जुम्मन के नेमतकदे में हलचल शुरू हो गई। बड़ी अंगीठियों के दहाने दहकने लगे। देंगें चढ़ा दी गईं और पकते गोश्त की महक चारों तरफ फैलने लगी। खरीदारों की भीड़ जमा होने लगी। बतकही होने लगी।

शीरीं रकाबदार की दूकान खुशबूदार हलवों, मुरब्बों और मिठाइयों से दुल्हन की तरह सज गई। लम्बी चौड़ी सिलें गुलाबजल से धो डाली गईं, उन पर पहलवान आदमी बाँहों में चाँदी के तीन-तीन घुँघरू बाँधे भंग पीसने लगे। बजते घुँघरूओं की आवाज़ लोगों को बुलाने लगी। हुक्के ताज़े हो गए। मुरादाबादी तम्बाकू की खुशबू उड़ने लगी। जगह-जगह आकर कुछ लोग बतकही का बाज़ार गर्म करने लगे।

–शुक्र है अल्लाह का...आलमगीर औरंगज़ेब ने सल्तनत की बागडोर सम्भाल ली, वरना कहीं दाराजी महाराज तख़्तनशीन हो जाते तो सात सौ बरसों की इस्लामी हुकूमत देखते देखते ग़ारत हो जाती...

दूसरे मजमें में किसी और ने पहुँच कर बावर्ची जुम्मन की दुकान पर बहस छेड़ दी–

–अरे मियाँ ! गनीमत है कि यहाँ खड़े हरीसा खा रहे हो, दाराशिकोह अगर ताज पहनने में क़ामयाब हो जाता तो हिन्दोस्तान में तुम गोश्त खाने के लिए तरस जाते।

–और क्या...ज़िल्ले सुबहानी तो आखिरी घड़ियाँ गिन रहे थे। तीनों शहज़ादे सैकड़ों मील दूर अपने-अपने सूबों में बेख़बर बैठे थे। दाराजी महाराज ने बादशाहत का इंतजाम पुख़्ता कर लिया था...वह तो शाही जुलूस किया चाहता था...

–ऐसा !

तीसरे और चौथे-पाँचवे मजमे में भी लोग बहसों में उलझे हुए थे। जगह-जगह पहुँच कर बहस की शुरुआत कुछ खास लोग ही कर रहे थे। वे चिनगारी लगाकर अगले मजमे के लिए कहीं और बढ़ जाते थे। चलती बातों की मजलिसें जारी थीं–

–अरे यह तो खुली बात है कि दारा के दरबार में वेद-उपनिषदों के विद्वान हमेशा मौजूद रहते थे...मीर मुंशी चंद्रभान तो उनमें ख़ास था। वेदों का फारसी में तर्जुमा करनेवाला काशीनाथ, उपनिषदों का तर्जुमाकार द्वारिका नंदन, संस्कृत का पंडित कुबतराय, और कविराज रंजनदास तो थे ही उसके ख़ासुलख़ास...

–सुना है कि उसके सिरहाने कद्दे आदम शमादान के साये में सुनहरी-रुपहली तिपाइयों पर वेदों-उपनिषदों और तसव्वुफ़ पर अरबी-ईरानी किताबों की, सोने के पानी से लिखी, जिल्दें सजी रहती थीं...

–कुफ्र! कुफ्र...

–अरे जब वह कंधार की जंग में गया था, तो जंगी हाथियों, हजारों घुड़सवारों, तोपों, तीरंदाजों, पैदल बंदूकचियों, तोपचियों, बेलदारों, संगतराशों, भिश्तियों, खादिमों के पूरे कारखाने के साथ-साथ पाँच ऊंटों पर हिन्दू धर्मग्रंथ और सूफी संतों की किताबें लादकर ले गया था। पाँच हाथियों पर संस्कृत, अरबी और फारसी के पंडित, आलिम, कवि, भाष्यकार, ज्योतिषी, संन्यासी और योगी सवार थे!

–वैसे भी उसके निजी दीवानखाना-ए-इल्म में मौजूद तख़्त पर हिंदू भगवान शंकर की तस्वीर साया किए रहती थी। ख़ुद उसके सीने पर पड़ी अलमास की आरसी में शिव की तस्वीर खुदी थी...दाहिने हाथ की अंगूठी में संस्कृत भाषा में प्रभु लफ्ज़ लिखा था कौन नहीं जानता कि वह हिन्दू हो गया था...

–नहीं, नहीं...था तो वह मुसलमान ही, लेकिन जरूरत से ज़्यादा वह हिंदू-परस्त हो गया था...अगर वह तख़्ते ताऊस पर काबिज़ हो जाता, शहंशाही ताज पहन लेता तो वह हिंदूगर्दी होती...मुग़लिया सल्तनत का ख़ात्मा हो जाता।

दारा का लटका हुआ सिर बहुत ज़ोर से हँसा...इतनी ज़ोर से कि किले की फसील और बुर्ज़ों पर बैठे कबूतर घबरा के उड़ गए।

आलमगीर औरंगज़ेब के महल में जब हँसी की तेज आवाज़ धमक के साथ गूंजने लगी तो वह घबराया। उसके माथे पर बल पड़ गए...आँखें सिकुड गईं । वह तेज़ी से उठकर खड़ा हुआ।

और रोशनआरा के महल की ड्योढ़ी में शोर हुआ । महल का रखवाला ख्वाजासरा फहीम चौंका। दौड़कर एक ख़वास ने इत्तला दी–

–आलमपनाह आलमगीर इधर ही तशरीफ ला रहे हैं।

भरे जिस्मों, शरबती आँखों और सुनहरे बालों वाली उजबेकी पहरेदार औरतें सतर्क हो गईं । सफेद लिबास पहने हब्शी कनीज़ें हुक्म बजा लाने के लिए सचेत हो गईं । खबर पाते ही रौशनआरा दौलतखाने से बहती पतली संगमरमरी नहर के बाजू आकर रुकी और अपने भाई का इंतजार करने लगी। औरंगज़ेब आया। सारे खवासों खादिमों को इशारा किया गया। एकान्त में दोनों की बातचीत होने लगी।

मशवरे के बाद तय पाया गया कि दारा की मैयत को दफ़्न कर दिया जाए, ताकि उसका कटा हुआ सिर हँसने की गुस्ताखी न करे।

और मशवरे के मुताबिक मैयत को गुसल और कफ़न दिए बग़ैर हुमायूँ के मकबरे में ज़मीदोज़ कर दिया गया। लेकिन हैरत की बात थी कि चाँदनी चौक के चौराहे पर लोग अब भी दारा का टँगा हुआ सिर देखते थे और उन्हें उसका हँसना भी सुनाई पड़ता था, बल्कि अब तो वहीं खड़ा पीपल का पेड़ उसके साथ-साथ हाथ हिला-हिला कर हँसता था। उस पीपल के साथ ही सल्तनत के सारे पीपल के दरख्त एक साथ हँसते थे और दहशत-सा छा जाता था।

दहशत भरे इस माहौल में सभी एक ग़मगीन तराना उभरा–

'ऐसे जन बिरले जंग अंदर परख खजाने पाइया,
जाति बरन ते भये अतीता ममता लोभ चुकाइया...'

यह ग़मगीन तराना चारों दिशाओं से गूँजने लगा। और एक सूत्रधार सामने आया। उसने ऐलान किया–दुनिया के दर्शको ! मैं सदियों का नुमाइंदा और एक नाटक का सूत्रधार हूँ ! जो कुछ तुम आज देख रहे हो...उसके कारण मेरी सदी में मौजूद हैं...हिन्दू जाति पराभव के कगार पर है हिन्दुओं के चारों वर्ण छोटी-छोटी जातियों-उपजातियों में बँट चुके हैं। हर जाति खुद को दूसरे से ऊँचा समझती है...जाति-पाँति का भेदभाव चरम पर है। हिन्दू मिथ्या अहंकार का शिकार है। इसीलिए गुरु नानक का वचन बंजारे की तरह भटक-भटक कर कह रहा है–इस दौर में जात-पाँत और वर्ण के झूठे अभिमान से ऊपर उठा हुआ और मोह-लोभ से मुक्त कोई व्यक्ति नहीं है...ब्राह्मण तो कर्मकांड का सहारा लेकर बाकी जनता पर अत्याचार कर रहा है...

•

29

पीपल के पेड़ लगातार हँस रहे थे, लेकिन कुछ विलक्षण-सी स्थिति थी। वह यह कि ढाई हज़ार साल बूढ़े, उन्हीं की बिरादरी के बोधिवृक्ष नारे लगा रहे थे! अजीब था यह दृश्य। प्रौढ़ पेड़ हँस रहे थे, बूढ़े पेड़ नारे लगा रहे थे और पीपल के नौजवान पेड़ तालियाँ बजा रहे थे। बूढ़ों का साथ नौजवान दे रहे थे।

अदीब ने ग़ौर से सुना। उनकी भाषा समझने में थोड़ी दिक्कत तो हो रही थी पर फिर समझ में आने लगी। ढाई हज़ार वर्ष बूढ़े बोधिवृक्षों के नारे थे–

–वैदिक सभ्यता!

–मुर्दाबाद ।

–अत्याचारी वर्णवाद!

–मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!

–वैदिक ब्राह्मणवाद!

–मुर्दाबाद! मुर्दाबाद!

–दुःख का कारण!

–वर्णवाद! वर्णवाद!

अदीब चकित-सा सब देख-सुन रहा था। उसने अर्दली को आवाज़ लगाई। इससे पहले कि अर्दली आता, एक नौजवान पेड़ उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

–आप कुछ जानना चाहते हैं?

–हाँ, यही कि यह दृश्य...यह कैसा विद्रोह है? बूढ़े पेड़ नारे लगा रहे हैं और तुम नौजवान पेड़ तालियाँ बजा रहे हो...

–जनाब! हुआ यह है कि वैदिक आर्यों ने अपने स्वार्थों के लिए समाज को विभाजित कर दिया है। हमारे बुजुर्ग बोधिवृक्ष आर्यों द्वारा किए गए इस विभाजन को स्वीकार नहीं करते...हम ब्रह्मा के पैरों से पैदा नहीं हुए हैं...आर्यों का यह दैवी विधान अनर्गल है....

और तभी एक वयोवृद्ध बोधिवृक्ष आकर बोलने लगा-आर्यों का वर्णवाद एक अप्राकृतिक सिद्धान्त है, क्योंकि ब्राह्मणों की पत्नियों को भी मासिक धर्म के चक्र से गुज़रना पड़ता है। वे भी गर्भवती होती हैं। वे भी बच्चों को जन्म देती हैं, उन्हें दूध पिलाती और उनका पालन पोषण करती हैं....इतने पर भी यह आर्य ब्राह्मण, जिनका जन्म स्त्रियों

की कोख से होता है, यह दावा करते हैं कि वे ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए हैं...ब्रह्मा के मुख में गर्भाशय नहीं है...

तभी बोधगया से गौतम बुद्ध की आवाज़ आने लगी–तोड़ो! तोड़ो! वैदिक आर्यों के वर्णवाद को तोड़ो...मैं खुद आर्य हूँ...पर वैदिक आर्यों के वर्णवाद और ब्राह्मणवाद ने हमें अपनी सभ्यता में शरणार्थी बना दिया है। हम शरणार्थी होने से इनकार करते हैं....हम ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करते हैं। पुनर्जन्म के मनुष्य विरोधी आकर्षक सिद्धान्त को नामंजूर करते हैं। हम आर्यों के उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म की परिकल्पना को बेकार और व्यर्थ समझते हैं। यह उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद लिखे गए आर्य-अहंकार के ग्रंथ हैं...हम घोषणा करते हैं कि कोई परासत्ता नहीं है, इसलिए यह कर्मकांडी पुरोहित हमारे लिए आवश्यक नहीं हैं....पुनर्जन्म मिथ्या है...तुम स्वयं अपने दीपक हो। तुम स्वयं को सांसारिक यथार्थ से मुक्त कर सकते हो। किसी के भीतर से कोई देवता नहीं बोल सकता। देवता का अस्तित्व नहीं है। देवता और उनके ग्रंथ दासता के परिसूचक हैं....जो बुद्धि और मन को सन्तुष्ट न करे वह त्याज्य है। नये को अंगीकार करो। नया कभी भी पुराने की पुनरावृत्ति नहीं होता। पुराने का नए में रूपान्तरण ही बुद्धि संगत पुराने को प्रश्रय देता है। कोई अलौकिक शक्ति नहीं है। कहा जाता है कि किसी परमशक्ति ने हमारी सृष्टि की है। तो सुनो, जो परम और अनित्य है वह सृजन से हीन है। सृजन वही कर सकता है जो मृत्यु को अंगीकार करता है।....तब तक, जब तक पाताल की गहराइयों से मृत्यु पर विजय प्राप्ति की औषधि लेकर सुमेरी सभ्यता का गिलगमेश लौटता नहीं, तब तक तुम मृत्यु को स्वीकार करके मृत्यु भय से मुक्त हो जाओ...यही निर्वाण है! इस निर्वाण को इसी जन्म और इसी लोक में प्राप्त किया जा सकता है। इस निर्वाण का रास्ता व्यक्ति-व्यक्ति में मौजूद है...इसी लिए वह सबका है...वह सार्वजनिक है....दुःख और मृत्यु से समवेत निराकरण का रास्ता...तुम मृत्यु पैदा मत करो, यही करुणा का शिखर और अहिंसा है....

–लेकिन इतनी सदियों के बाद भी दिल्ली में मृत्यु का ताण्डव जारी है...देखो अदीब! इन आँधियों को देखो! गुरु तेग बहादुर ने मृत्यु-भय को त्याग दिया है...काज़ी अब्दुस्सत्तार चाँदनी चौक से भागते और हाँफते आए–चाँदनी चौक में अब सिर्फ़ नेज़े पर टँगा दाराशिकोह का सिर ही नहीं हँस रहा है बल्कि गुरु तेग बहादुर का सिर कटने के बावजूद झुकने और धरती पर गिरने से इंकार कर रहा है...उनका खून बारूद में बदल गया है और वह एक आतिशी गोले की तरह तेज़ी से घूम रहा है...जिसकी वजह से आंधियों के जत्थे निकल पड़े हैं....

–तो क्या औरंगज़ेब ने फिर कोई क़त्ल किया है? अदीब ने अपने दोस्त से पूछा।

–हाँ! अब उसके ऊपर जबरिया धर्म परिवर्तन का भूत सवार है....दमन और धर्म परिवर्तन का केन्द्र कश्मीर को बनाया गया है, क्योंकि वहाँ ही सबसे आला दिमाग़ कश्मीरी पंडित मौजूद हैं...इन जाहिलों को यह नहीं मालूम कि कश्मीर में जिन्हें इस्लाम मंजूर करना

था, वे इनसे पहले ही कर चुके हैं। वहाँ पहले ही मध्य एशिया से मुस्लिम प्रचारक और पर्शिया से सूफ़ी संत सैयद अली हमदानी आ चुके हैं...

–लेकिन हुजूर वे तो सूफ़ी थे। बहावी नहीं। इसीलिए कश्मीर के सूबेदार शेर अफगन और शहंशाह औरंगज़ेब को यह मंजूर नहीं कि कश्मीर में इस्लाम समन्वयवादी बन जाए! अर्दली ने अदब से कहा।

–अदीब! आपके अर्दली साहब की यह बात एकदम दुरुस्त है, क्योंकि सूफ़ी मत अपने और अल्लाह के बीच किसी सुल्तान या ख़लीफ़ा की मौजूदगी को मंजूर नहीं करता। यही सच वहाँ के शैवों के बीच भी मौजूद है। भगवान शंकर की अमरनाथ गुफा का मुतवल्ली आज भी एक मुसलमान है...वह सिर्फ मुतवल्ली है...मौलवी, मुल्ला या पुरोहित नहीं! यही बात कश्मीर के बौद्धों को भी रास आती है! काज़ी अब्दुस्सत्तार साहब ने ताईद की और आगे बताया–और यही कश्मीरियत की पहचान है। शैवों के तंत्र-मंत्र ने भी सूफ़ियों को बहुत आकर्षित किया था। कश्मीरियों की एक ख़ासियत यह भी है कि उनका शैव मत मैदानी हिन्दुओं के शैव सम्प्रदाय से बहुत अलग-थलग है। उनका बौद्धधर्म भी अन्य देशों या तिब्बत तक के बौद्धों से भिन्न है और उनका इस्लाम भी बाकी मुल्कों के इस्लाम से ज़्यादा उदार और सहनशील है....इसीलिए तो वहाँ झेलम पर पुराने बौद्ध विहार में शाह हमदानी मस्जिद आबाद है। खानयार में दस्तगीर साहब की जियारत और चरारे-शरीफ में नंद ऋषि नूरुद्दीन की जियारत मौजूद है, जहाँ सभी मज़हबों को माननेवाले लोग पूजा और इबादत करते हैं। जब कोई नाव या शिकारा पानी में उतारा जाता है तो ऋषियों को याद किया जाता है। इसी परम्परा को कश्मीर का सूबेदार शेर अफगन और शहंशाह औरंगज़ेब तोड़ देना चाहता था।

–इसीलिए हुजूर! जब कश्मीरी पंडितों से जुल्म बर्दाश्त नहीं हुए तो पंडित कृपाराम एक जत्था लेकर गुरुजी तेगबहादुर साहब के पास पहुँचे थे। उन्हें गुरुदेव की शक्ति में पूरा भरोसा था। जुल्म और जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन की दास्तान सुनकर गुरुदेव ने कहा कि जब तक कोई महान पुरुष धर्म की रक्षा के लिए आत्म बलिदान नहीं करता, तब तक धर्म को बचा पाना मुमकिन नहीं है....अभी संगत में बैठे लोग इस समस्या पर सोच ही रहे थे कि पास बैठे नौ बरस के गुरुपुत्र गोविंदराय ने कहा–पिता महाराज! भारत भूमि पर इस समय आपसे बढ़कर महान पुरुष और कौन है? आप ही धर्म की रक्षा कर सकते हैं...

–फिर? फिर गुरुजी ने क्या फैसला लिया?

–उन्होंने पंडित कृपाराम से कहा, तुम लोग बादशाह औरंगज़ेब के पास जाओ और कहो कि इस समय हमारे नेता गुरु तेगबहादुर हैं, जो गुरु नानक की गद्दी पर आसीन हैं। अगर वो इस्लाम धर्म अंगीकार कर लेते हैं, तो सभी हिन्दू इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेंगे...यह ख़बर मिलते ही औरंगज़ेब बहुत खुश हुआ....अर्दली बताने लगा–उसने फौरन

गुरु महाराज की गिरफ्तारी का फ़रमान जारी किया और कश्मीर में चल रहे धर्म परिवर्तन और अत्याचार को फ़िलवक्त रोक देने का आदेश दिया।

–फिर ?

–फिर शहंशाह औरंगज़ेब के फ़रमान के मुताबिक दिल्ली के काज़ी अब्दुल वहाबी को गुरु महाराज के धर्म परिवर्तन के लिए तैनात किया गया!

–नहीं ! यह ग़लत है...बिल्कुल ग़लत है ! एक बेहद बुज़ुर्ग शख्स ने अदीब के सामने हाज़िर होकर चीखते हुए कहा–जो ऐरा-ग़ैरा नत्थू ख़ैरा आता है, वह आलमगीर पर इल्ज़ाम लगाकर मुग़लिया सल्तनत के हमारे सबसे सुर्ख़रू आख़िरी बादशाह पर कीचड़ उछालने की कोशिश करता है । हिन्दुस्तान की तारीख़ ग़लत इल्जामों की इस बदअमनी को बर्दाश्त नहीं करेगी!

–आपकी तारीफ ? अदीब ने पूछा।

–मैं ही दिल्ली का वह काज़ी अब्दुल वहाबी हूँ, जिसका ज़िक्र आपके इस काफ़िर अर्दली ने अभी अभी आपकी मजलिस में किया है...

–काज़ी साहब ! मैं काफ़िर नहीं, मैं पाँच वक्त का पक्का नमाज़ी हिन्दुस्तानी मुसलमान हूँ....कुफ़्र तो आप जैसे तंगनज़र वहाबी मुल्लाओं ने ढाया था...वरना जनाब मुईनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो जैसे बड़े दिमाग़ और खुले दिल वाले औलियाओं ने आप जैसों और आलमगीर औरंगज़ेब से सदियों पहले इस्लाम को एक आलमी मज़हब बना दिया था...लेकिन आप जैसे कट्टरपंथी वहाबियों ने धर्म को जब से तलवार के सुपुर्द कर दिया, तब से आज तक हमें आप जैसे कठमुल्लाओं के जुल्मों के जवाब देने पड़ रहे हैं ! जुर्म आप लोगों ने किए हैं, लेकिन उसकी सज़ा हम हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी, अफ़गानी, दाग़िस्तानी, सिक्यिांगी, चेचन्यायी, तुर्केमिस्तानी मुसलमान भुगत रहे हैं...

–खामोश ! काज़ी अब्दुल वहाबी चीख पड़े–मैं आख़िरत के दिन के लिए सोया पड़ा था, लेकिन तुम जैसे काफ़िर मुसलमानों ने मेरी रूह की नींद हराम कर दी, इसलिए मुझे तुम्हारी इस नामुराद मजलिस में आना पड़ा....

–काज़ी साहब ! यह मजलिस नहीं, वक्त की अदालत है....तमाम सदियों के उस वक्त की अदालत, जो इन्सान की रूह पर भारी पड़ता है....सदियों की इसी तहक़ीकात के मुकदमे इस अदालत में चल रहे हैं ताकि अपने मन की अदालत में सच के फ़ैसलों को हासिल करके, दुनिया की हर रूह, खुद को विस्थापित होने से बचा सके और दुनिया की इस सराय में भयमुक्त होकर सुकून से अपना वक्त गुज़ार सके ! अर्दली ने आगे आकर कहा।

–अदीबे आलिया ! अगर यह मजलिस नहीं,अदालत है तो मैं दरख्वास्त करूंगा कि मेरे दौर के इतिहास को तलब किया जाये ! काज़ी अब्दुल वहाबी ने कहा।

–इतिहास को हुक्म दो कि वह अदालत में हाज़िर हो! अदीब ने कहा।

सत्रहवीं सदी का लहूलुहान इतिहास तत्काल हाज़िर हुआ।

–हुजूरे आलिया! आपने मुझे तलब किया!

–जी हाँ...लेकिन आप तो इतने लहूलुहान हैं कि अपने खून को चाटने में ही आपको सदियाँ लग जाएँगी....

–यह तो मेरे साथ हमेशा होता रहा है....जब-जब मनुष्य को मारा गया तो मेरा ही रक्त बहा है....हर सभ्यता के साथ मैं ही मरा हूँ। और हर अगली सभ्यता मेरे इसी बहते रक्त-बीज से जन्मी है....जैसे प्रकृति की जड़ें पर्वत, सागर, अन्तरिक्ष और धरती के वृक्षों में मौजूद हैं, उसी तरह मेरी जड़ें मनुष्य के सन्ताप, आकाश, सपनों और सुख की नींव में मौजूद हैं! और मैं कह सकता हूँ अदीबे आलिया कि अतिरिक्त स्वार्थ, सुख, अतिरिक्त धार्मिकता, अतिरिक्त सत्ता की हवस ने ही हमें बर्बर और असहनशील बनाया है....ख़ैर छोड़िए....यह बताइए कि आपने मुझे क्यों तलब किया है?

–इस असलियत की तसदीक करने के लिए कि गुरुदेव तेगबहादुर की हत्या क्यों और किन हालात में हुई है? अदीब ने पूछा।

–हालात तो स्पष्ट हैं जनाब! जिन फ़तवों और मुनादियों के जरिए औरंगज़ेब ने दाराशिकोह को हिन्दू-परस्त घोषित किया था, उस मानसिक माहौल से अवाम को वापस लाना मुमकिन नहीं था...इसीलिए औरंगज़ेब को खुद उन फ़तवों की क़ैद मंजूर करनी पड़ी, जो उसने जारी करवाए थे....वह शहंशाह तो ज़रूर था, पर उन फ़तवों का गुलाम था। इसलिए गुरु तेगबहादुर की शहादत एक गुलाम बादशाह की मानसिक गुलामी का नतीजा थी...

–नहीं! इतिहास ग़लतबयानी कर रहा है! बीच में काज़ी अब्दुल वहाबी ने दख़ल दिया–आलमगीर किसी कमजोरी का गुलाम नहीं, वह सिर्फ इस्लाम का गुलाम था!

–तो क्या बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर वग़ैरह इस्लाम-परस्त नहीं थे?...इतिहास ने हस्तक्षेप किया–अदीबे आलिया! दिल्ली के तख़्त को पाने के लिए औरंगज़ेब ने धर्म को तलवार बनाया था। दाराशिकोह को मारने के बाद वह कुंठाग्रस्त हो गया था...इसकी इसी कुंठा का नतीजा था कि उसने भारत में रच-बस गए मुसलमानों को मानसिक रूप से विस्थापित बना दिया था। वही मानसिक विस्थापन लगभग दो सदियों के बाद विभाजन का कारण बना!....इसी विस्थापन के शिकार अल्लामा इक़बाल हुए, जिनके कश्मीरी पंडित पुरखे–कौल, इसी दौर में मुसलमान बने....शुरू-शुरू में उनकी शायरी अपनी जड़ों की बात करती रही, लेकिन बाद में उनकी शायरी ने इस्लाम जैसे बड़े और इन्सान-परस्त मज़हब को सिर्फ़ मुसलमानों के लिए महदूद कर दिया। इसी मानसिकता ने भारतीय मुसलमान को अपने ही मुल्क में अपना अजनबी बना दिया....

–न मालूम क्यों, आज के दौर में हरेक भाषण देने की आदत का शिकार हो गया है....अर्दली काज़ी अब्दुस्सत्तार के कान में फुसफुसाया।

इतिहास ने यह बात सुन ली और अपनी रविश पर लौट आया–मैं माफ़ी चाहता हूँ अदीब हुजूर! आप जानना चाहते थे कि गुरु तेग बहादुर की हत्या क्यों और किन हालात में हुई....तो हुआ यह था हुजूरे आलिया कि गुरुजी की गिरफ्तारी का फ़रमान जब तक आनंदपुर साहिब पहुँचता, तब तक गुरुजी गुरु-गद्दी का दायित्व गोविंदराय को सौंप कर अलख जगाते निकल पड़े थे। वे रोपड़, सैफ़ाबाद, समाना, कैथल, रोहतक और पलवल होते हुए आगरा पहुँच गये थे। वहीं उन्हें हिरासत में ले लिया गया और दिल्ली लाया गया। और दिल्ली में इन्हीं काज़ी अब्दुल वहाबी साहब के ज़रिए उनके सामने इस्लाम क़बूल करने की पेशकश की गई। गुरु साहब ने दृढ़ता से इनकी पेशकश को नामंजूर कर दिया। तब औरंगज़ेब ने गुरु साहिब को मृत्युदण्ड देने का फ़ैसला लिया और समाना से जल्लाद जलालुद्दीन को बुला लिया गया।

–यह ग़लत है। शहंशाह औरंगज़ेब ने ऐसा कोई फ़ैसला नहीं लिया था। वे तो उस वक्त दिल्ली में तशरीफ-याफ़्ता भी नहीं थे। वे हसन अब्दाल में थे! काज़ी अब्दुल वहाबी ने ज़ोर देकर कहा।

–तो क्या आपने उनकी मौत का फ़ैसला लिया था?

–नहीं...मैं दिल्ली का काज़ी ज़रूर था, लेकिन ऐसा कोई फ़ैसला ले सकने का हक़ मुझे हासिल नहीं था।

–तो फिर तुम शहंशाह को बचाने की कोशिश मत करो! मैं सारे हादसों का चश्मदीद गवाह हूँ...यह सही है कि फ़रमान जारी करके कायर की तरह औरंगज़ेब दिल्ली से हसन अब्दाल चला गया था....लेकिन भरी भीड़ के सामने, चाँदनी चौक में, उस पीपल के पेड़ के नीचे गुरु जी को मौत देने का जो फ़तवा पढ़ा गया था, वह औरंगज़ेब के नाम और शाही मुहर से ही जारी हुआ था...और काज़ी अब्दुल वहाबी! तुम तो उस भीड़ में ख़ास शाही नुमाइंदे की तरह सबसे आगे खड़े थे!

इतिहास की यह गवाही सुन कर दिल्ली के काज़ी ने गर्दन झुका ली।

–लेकिन गुरु महाराज की गर्दन तुम्हारी तरह झुकी हुई नहीं थी। उनकी गर्दन गर्व से तनी हुई थी....अदीबे आलिया! सूरज की सुइयाँ सुबह के दस बजा रही थीं। जगह वही–चाँदनी चौक! दिन बृहस्पतिवार, तारीख 11 नवम्बर सन् 1675! तब इसी काज़ी ने जल्लाद जलालुद्दीन को उनका तना हुआ सर क़लम करने का इशारा किया था। जल्लाद के सामने मुश्किल पेश थी। झुके हुए बहुत से सरों को उसने तराशा था....लेनिक इतना बेख़ौफ सर तो उसकी तलवार ने आज तक नहीं देखा था। उसकी मुश्किल भाँप कर तब इसी काज़ी ने उसे बताया था कि ऊपर से मुमकिन नहीं है तो नीचे ठोढ़ी की तरफ से सर

क़लम कर दिया जाए। और तब जल्लाद जलालुद्दीन ने उलटे हाथ से तलवार का वार करके उनका सर धड़ से अलग कर दिया....

–और तब एक नज़ारा फिर हाज़िर हुआ। चाँदनी चौक में गुरु तेग बहादुर का धड़ पेड़ के तने की तरह खड़ा था। और कटा हुआ सिर नीचे नहीं गिरा था। वह आतिशी चकरी की तरह तेजी से चकरा रहा था। खून की सुर्ख़ बूंदों की जगह उसमें से चिनगारियाँ छिटक रही थीं। भयानक काली आँधी चल पड़ी थी। उसमें वे चिनगारियाँ टूटे हुए सितारों की तरह झिलमिल झिलमिल कर रही थीं। काली आँधी के साथ ही एक जबरदस्त भूचाल आया....इमारतें बजने लगीं, चारों तरफ दिन में अँधेरा छा गया।

इस आँधी, भूचाल, धूल और गुबार का फायदा उठाकर भाई जैता ने अपनी जान दाँव पर लगाई। गुरुजी का शीश उसने बीच हवा से थामा और जमुना नदी पार करके बागपत से होता हुआ वह आनंदपुर साहिब की ओर चल पड़ा।

फिर उसी भगदड़, आँधी, धूल-धक्कड़ के दौरान लाल किले में चूना मिट्टी पहुँचाने की रोज़नदारी पर लगे बुग्गीवाले लक्खीशाह ने जैसे-तैसे गुरु महाराज के खड़े हुए धड़ को बुग्गी में लिटाया और मिट्टी-चूने के बोरों से ढक कर वह उसे अपनी झोपड़ी में ले आया। अपनी झोपड़ी में ही उसने गुरु जी की चिता तैयार की। घर का सारा सामान चिता पर लगाकर उसने गुरु जी का दाह-संस्कार कर दिया।

आखिर भूचाल थमा। आँधी रुकी। अंधेरा छंटा तब मुग़ल सिपाही गुरु जी का शरीर उठाने आए, पर वहाँ न तो उनका शीश था, न धड़। भाई जैता रंगरेटा गुरु साहिब का शीश लेकर आनंदपुर साहिब पहुँच चुका था। माता गूजरी ने पति-गुरु साहिब का शीश हाथों में लिया और शिष्यों सहित कीरतपुर जाकर उसका संस्कार कर दिया....

मुग़ल सिपाहियों का दूसरा दस्ता आया, मगर उसे भी गुरु जी के बदन का कोई हिस्सा नहीं मिला ।

और तब एकाएक अर्दली ने आश्चर्य से देखा। अदालत तो भरी हुई थी लेकिन अदीब गायब था! वह फरार हो गया था।

•

30

अर्दली परेशान था।

फरार अदीब कहीं नज़र नहीं आ रहा था।

सिर्फ़ उसकी आवाज़ अलग-अलग जगहों और दिशाओं से आ रही थी। अर्दली परेशानी से एक आवाज़ का पीछा करता, तो दूसरी दिशा से आवाज़ आने लगती। तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी दिशा से। अर्दली हैरान था। आखिर दिशाएँ कितनी हैं ? आख़िर उसने आवाज़ लगाई–अदीबे आलिया !....अदीबे आलिया !....आप कहाँ हैं ?....कहाँ हैं आप ?

–मैं अपनी ज़िन्दगी की पनाह में हूँ....

–लेकिन कहाँ ? किस जगह ?

–तमाम जगहें हैं जहाँ मैं एक साथ मौजूद हूँ....अभी मैं जेनिब और बूटासिंह के पास राजस्थान के रेगिस्तान में था....और अभी ही मैं क्वेटा शहर में मौजूद हूँ...यहाँ मैं सलमा को तलाशने आया हूँ....उसे तलाश ही रहा था कि कानपुर स्टेशन पर विद्या का रूमाल फिर गिरा....और मैं विद्या की तलाश में निकल पड़ा....

–विद्या से मुलाक़ात हुई ?

–नहीं....लेकिन उसके बारे में काफ़ी कुछ मालूम हुआ....

–क्या ? क्या-क्या पता चला ?

–यही कि पढ़ाई छोड़ने से पहले उसने जिस बात की तरफ इशारा किया था, वह सही थी। उसके पिता बाबू रामनरायन ने उसकी शादी की बात चला रखी थी। लड़के वाले दिल्ली के रामनगर इलाके में रहते थे। सदर के पास। वही इलाक़ा, जहाँ नई दिल्ली स्टेशन के पास शहर भर का कचरा जमा होता था और कूड़े की गाड़ियाँ जहाँ से रवाना होती थीं। लड़के वालों ने कहा था कि बाबू रामनरायन लड़की को लाकर वहीं दिखा दें। इसलिए वे विद्या को साथ लेकर फतेहगढ़ से दिल्ली के लिए रवाना हो गए थे।

ब्याह-शादी की तारीखें, लड़की-दिखाई, टिपना मिलवाई, साइत निकलवाई आदि की रस्मों के लिए खानदान के सभी लोग खड़े होते थे। वे चाहे बरसों-बरस न मिलते हों, पर शुभ कारज के समय सब मिलते थे–मय बाल-बच्चों के। बड़े-बूढ़े भी आते थे। पर अभी शादी तो थी नहीं, सिर्फ़ विद्या की मुँह दिखाई थी। परिवार ही कितना-सा था। विद्या के पिता बाबू रामनरायन, उसकी माँ और एक छोटा भाई। करोलबाग़ में उनके दूर के एक बहनोई रहते थे। उन्हीं के घर पर विद्या का परिवार उतरा था। पहले तो यह तय हुआ था कि

रामनगर के एक मन्दिर के अहाते में विद्या की मुँह दिखाई होगी, पर बाद में लड़केवालों ने उन्हें घर पर ही निमंत्रित किया था।

विद्या को मुँह दिखाई के लिए तैयार किया गया। बहनोई साहब की तबियत ठीक नहीं थी। वे साथ नहीं जा सके। उन्होंने रोहतक रोड वाले मोड़ तक पहुँचा कर रामनगर जाने के लिए ताँगा पकड़वा दिया।...फिर ताँगा कहाँ गया, यह नहीं मालूम...

–क्यों?

–क्योंकि यह तारीख 3 जून 1947 थी!

–मतलब?

–मतलब यह कि जब रोहतक रोड के मोड़ से विद्या का छोटा-सा परिवार तांगे में रामनगर के लिए रवाना हुआ, उसी वक्त वायसराय हाउस में वह अहम मीटिंग खत्म हुई जिसमें वायसराय माउंटबेटन के साथ नेहरू, जिन्ना, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी, सरदार बलदेव सिंह, लियाकत अली खान और अब्दुल-रब-निश्तर शामिल थे...और भारत का अंग्रेज़ वायसराय माउंटबेटन एक फ़ैसला ले चुका था...असल में वह फ़ैसला बहुत पहले ले चुका था!

–कौन सा फ़ैसला?

–भारत के विभाजन का!

–यह आप कैसे कह सकते हैं? अर्दली ने शून्य आँखों से देखते हुए पूछा।

–अर्दली साहब! अदीब की आवाज़ ने कहा–किताबों में जो इतिहास लिखा या लिखवाया जाता है....और साक्षातकारों में जो दर्ज कराया जाता है....पेशेवर कलम-घिस्सुओं द्वारा जिस तरह तथ्यों के सहारे दस्तावेजी इतिहास बनाया जाता है, वह इतिहास नहीं होता....इतिहास वह होता है जो दिलो-दिमाग़ की तख़्ती पर लिखा जाता है....और उस इबारत को कोई पढ़ न ले, इसलिए उसे फौरन मिटाया जाता है....उस मिटी हुई इबारत को सिर्फ़ वही अदीब पढ़ सकता है जो सुकरात, गौतम बुद्ध, ईसा या गाँधी की भाषा पढ़ सकता है....

–तो फिर आप इस इबारत को पढ़ने से कतरा क्यों रहे हैं...? सामने आइए और उस इबारत को बेपर्दा कीजिए! अर्दली ने अदीब को जैसे चुनौती दी।

–अर्दली साहब! अदीब की गूंजती हुई आवाज़ आई–मुझे अपनी ज़िन्दगी की पनाह में रहने की मोहलत दीजिए....मेरी ज़िन्दगी की सारी कहानियाँ अधूरी हैं...मुझे मोहलत चाहिए कि मैं अपनी कहानियों से मुलाक़ात कर सकूँ। मुझे मालूम करना है कि विद्या के तांगे का घोड़ा पंख लगाकर उसे कहाँ उड़ा ले गया...? ख़ुदा हाफिज़ कह कर सलमा मुझे ख़ुदा के हवाले कर गई थी, लेकिन वह ख़ुद हिफ़ाज़त से है या नहीं, यह मालूम किए बग़ैर मेरा जीना मुहाल है। कोई माउंटबेटन, एटली, क्रिप्स, चर्चिल, नेहरू या जिन्ना मुझे अगली सदियों में इन्सान की तरह जी सकने का रास्ता नहीं दिखाता....वह रास्ता मुझे

सिर्फ़ सलमा दिखाती है....क्योंकि सलमा एक कहानी है....शाहीन एक कहानी है....बूटा सिंह और जेनिब एक जीवित कहानी है....मुलतान से भागकर अमृतसर आने वाली सुरजीत कौर एक ज़िन्दा दास्तान है....वह जो पंजा साहिब से भागकर बम्बई के माउन्ट मेरी चर्च में भीख माँगता हुआ कबीर नाम का भिखमंगा आया है, वह एक जीती-जागती इन्सानी कहानी है....अर्दली साहब! मुझे अपनी इन कहानियों के साथ जीने दीजिए....

–वक्त ने व्यक्तिगत एय्याशी करने का यह अधिकार आपको नहीं दिया है। पर्दे से बाहर आइए और इतिहास के इन सवालों का मुकाबला कीजिए! क्योंकि इतिहास के ग़लत मंसूबों ने आपकी सारी कहानियों के इन्सानी अन्जाम अपनी गिरफ्त में ले लिए हैं....अगर आने वाली सदियों को इन्सानी और रूहानी राहत देनी है तो आपको अपनी कहानियों के लिए इतिहास के ग़लत मन्सूबों से लड़ना ही पड़ेगा!

–तो तुम मुझे किसी तरह चैन नहीं लेने दोगे! अदीब की शिकस्ता आवाज़ ने कहा–तुम मुझे अपनी कहानियों, अपनी ज़िन्दगी के साथ जीने का मौका और वक्त नहीं दोगे?

–नहीं, यह इस दौर में मुमकिन नहीं है! यह दौर राजस्थान में जाकर बूटा सिंह और जेनिब की कहानी मुकम्मिल करने का दौर नहीं है....यह वक्त क्वेटा में जाकर सलमा को आवाज़ देने का वक्त नहीं है। और यह लम्हा विद्या के तांगे को तलाश कर पंख लगे घोड़े की शिनाख्त का लमहा भी नहीं है....अदीबे आलिया! अपनी कहानियों से निकल कर बाहर आइए!

कुछ देर असमंजस भरी खामोशी छाई रही। फिर एकाएक न जाने किस जगह से निकल कर अदीब अपने अर्दली के सामने हाज़िर हुआ।

–अर्दली साहब! मैं आपकी अदालत में हाज़िर हूँ! आप जो कहिए मैं करूँगा....लेकिन मैं उस भिखमंगे कबीर का क्या करूँ जो पंजा साहिब से चलकर माउंट मेरी के चर्च तक पहुँच चुका है। अपने अज़ीम शायर निदा फ़ाज़ली ने मुझे बताया है कि भिखारी कबीर जैसे पाकिस्तान में भीख माँगता था, वैसे ही हिन्दुस्तान में भी माउंट मेरी चर्च पर भीख माँगने चला आया है...फिर जब पाकिस्तान में रमज़ान का महीना आएगा, तो वह वहाँ लौट जाएगा। हमेशा की तरह भीख माँगेगा। कमाएगा। ज़रूरत पड़ ही गई तो बार्डर क्रास करने के लिए, कश्मीर में मौत बरपा करने वाले मुजाहिदीनों के लिए चन्दा भी देगा और भारत आ जाएगा। फिर यहाँ कमाएगा। माउंट मेरी चर्च पर मेले में भीख माँगेगा या महालक्ष्मी मन्दिर पर भिखमंगों की कतार में बैठ जाएगा। और ज़रूरत पड़ गई तो कारगिल में शहीद हुए जवानों के लिए भी चन्दा देगा। अर्दली साहब! विभाजन के बाद बचा क्या है–भूख और भीख के सिवा? यही तो दो हिस्सों में बँट गए भिखमंगे कबीर की विरासत है और तकसीम हो गए मुल्कों का नसीब।

अर्दली ने गौर से अदीब को देखा।

–कैसे मैं भूल जाऊँ मुलतान की उस बेहद खूबसूरत औरत सुरजीत कौर को ! अदीब ने बड़ी तकलीफ से कहा।

–कौन सुरजीत कौर ?

–वही सुरजीत कौर जिसका बेटा विभाजन के दिन से आज तक बेहोश है ! वह बूढ़ी सुरजीत कौर आज़ादी की नहीं, अपने बेहोश बेटे की देखभाल आज तक कर रही है...

–यह तो अजीब-सी पहेली है 1

–यह पहेली नहीं, हक़ीक़त है....जिस वक्त दिल्ली के वायसराय हाउस के कक्ष में माउंटबेटन ने विभाजन को आज़ादी की शर्त बना दिया था, उस वक्त उसी कक्ष में लगी क्लाइव की तस्वीर मुस्कराई थी और लन्दन की अपनी हवेली में सोते हुए चर्चिल ने जाग कर सिगार सुलगाया था और उसका एक भरपूर कश लिया था ! यह वही 3 जून 1947 की शाम थी, जब माउंटबेटन ने आल इंडिया रेडियो से आज़ादी में मौजूद विभाजन का ऐलान किया था। नेहरू और जिन्ना की आवाज़ों ने उस ऐलान की ताईद की थी....

–यह तो इतिहास को पता है !

–लेकिन इतिहास को नहीं पता कि औरंगाबाद में अपनी क़ब्र से उठकर तब औरंगज़ेब ने अपने बेटे आज़म को क्या चिट्ठी भेजी थी ?....मेरे बेटे....यह चिट्ठी मैंने अपनी मौत से कुछ दिन पहले लिखी थी। लेकिन मैं इसे तीन सदियों के बाद कुछ और बातों के साथ आज तुम्हें भेज रहा हूँ। मैं इस जहानेफ़ानी में अकेला आया था और अजनबी की तरह चला जाऊँगा....आज आसमान में आवाजों की कुछ लहरें उठीं, तो मेरी रूह जाग गई। आज मालूम हुआ कि जो ज्यादतियाँ मुझसे हो गई थीं, उनका क्या नतीजा निकला है। मैं बहुत से गुनाहों का कसूरवार हूँ....तब तो लगा था कि मैं अजनबी की तरह चला जाऊँगा, लेकिन अब इन आवाजों को सुनने और इनके फैसले जानने के बाद लग रहा है कि मुझे अपने गुनाहों के बोझ से अब छुटकारा नहीं मिलेगा....न मालूम, आखिरत के दिन मुझे क्या सज़ा मिलेगी....मैंने दीन की खातिर जो कुछ किया, वह यही सोच कर किया था कि इससे एकता बढ़ेगी....मेरा वह कदम ग़लत साबित हुआ....लेकिन देश की एकता मैंने कभी टूटने नहीं दी। मैंने खुद को कभी परदेसी या विदेशी नहीं समझा....मैंने मज़हब को ज़रूर अलग माना, लेनिक क़ौमियत का कभी बँटवारा नहीं किया....

–लेकिन वह बँटवारा अंग्रेजों ने कर दिया ? राजघाट से मद्धिम-सी आवाज़ आई– यह तो 3 जून की बात है....मैंने तो 1 मई 1947 को ही प्रार्थना सभा में कहा था, अगर अंग्रेज़ नहीं चाहेगा तो जिन्ना साहब को कभी पाकिस्तान नहीं मिल सकता....मैंने तो कहा था, मिन्नत करके कहा था....अंग्रेजों ! तुम हमें हमारे हाल पर छोड़ दो....भगवान भरोसे छोड़ दो। बदअमनी होगी, दंगे फसाद होंगे, गृहयुद्ध होगा, हम देख लेंगे....जो हत्याकांड और अग्निकांड होगा, उसमें से हम तप कर निकलेंगे....हमारी सभ्यता महाभारत का युद्ध झेल चुकी है । उस महायुद्ध की असमंजसता में से ही गीता का निष्काम कर्मवाद निकला

है। इस कर्मवाद ने ही ब्राह्मणवादी वर्णवाद को अपदस्थ करने का प्रयास किया था। एकलव्य के तिरस्कार और अपमान का बदला द्रोणाचार्य की रक्त-रंजित मृत्यु से लिया था....मैं तो फिर मिन्नत करता हूँ कि अंग्रेजों! तुम हमारी आज़ादी की शर्तों को तय करने का कोई हक़ नहीं रखते....तुम हमें आज़ादी देने का यह जो नाटक कर रहे हो, यह तुम्हारी कृपा नहीं, यह भारतीय जनता की कृपा है कि वह तुम्हें सुसंस्कृत तरीके से विदा कर रही है....यदि वह विदा नहीं करेगी तो गृहयुद्ध तो बाद में होगा, आपका क़त्लेआम पहले हो जाएगा! अहिंसा के तहत यह क़त्लेआम मुझे मंजूर नहीं है...

कहते-कहते राजघाट की आवाज़ डूब गई, लेकिन उसी वक्त एक हादसा हुआ–भंगी कॉलोनी में खड़े गाँधीजी पर तलवार का एक वार हुआ। उनका बदन दो हिस्सों में विभाजित हो गया...लेकिन उम्मीदें दोनों हिस्सों को सम्भाले रहीं....गाँधी जी अपने कटे हुए शरीर को लेकर ज़िन्दा रहे....उनके विभाजित शरीर से रक्त बहता रहा....लेकिन वह निष्प्राण नहीं हुआ।

सलीब पर लटके ईसा मसीह ने देखा। पाक पैग़म्बर मुहम्मद ने भी देखा। गांधी जी का विभाजित शरीर ज्यों का त्यों भंगी कॉलनी में खड़ा था...

और प्रायोजित इतिहास खड़ा था....जो महात्मा गाँधी के सपनों को तोड़कर माउंटबेटन की साजिशी कोशिशों को सच बनाना चाहता था...उसने अदीब को देखा।

–माउंटबेटन को अदालत में हाजिर करो! अपनी कहानियों को पीछे छोड़ कर अदीब ने हुक्म दिया।

•

31

माउंटबेटन अदीब की अदालत में मौजूद हुआ।

अदालत खचाखच भरी थी। दुनिया के हर उस इलाके के लोग मौजूद थे, जिनमें ब्रिटिश साम्राज्य फैला था। वह साम्राज्य जिसमें सूरज कभी नहीं डूबता था। एक उपनिवेश, आरक्षित राज्य, अधीनस्थ राज्य, अधिकृत राज्य या इलाके में सूरज डूबता था, तो कहीं दूसरे ब्रिटिश इलाके में उग रहा होता था....एक चौथाई दुनिया इस साम्राज्य के कब्ज़े में थी। इनमें भारतीय थे, नेपाल के गोरखा थे, अफगानी पठान थे, अफ्रीका के हुस्सास, सूडान के अफ्रीकी, साइप्रस, जमाइका, मलेशिया, चीन, हांगकांग, बोर्नियो, कनाडा के बाशिन्दों के साथ-साथ न्यूजीलैंडर्स और आस्ट्रेलियन भी थे। ब्रिटिश साम्राज्य तो समाप्त हो चुका था, पर उसका आखिरी शाही प्रतिनिधि माउंटबेटन आज अदीब की अदालत में मौजूद था।

चारों तरफ सवाल ही सवाल थे। जिरह करने के लिए घूर-घूर कर देखती आँखें थीं।

अर्दली ने निकट इतिहास के कुछ पन्ने खोले–हुजूरे आलिया! फिासज्म पर विजय पाने के बाद ब्रिटेन और उसके मित्र देशों ने राहत की साँस ली है, लेकिन सन् 1946 के क्रिसमस और सन् 1947 के न्यू ईयर की अगवानी के लिए अंग्रेज़ निवासियों के मन में कोई ख़ास उत्साह नहीं है। तानाशाह हिटलर ने पूरे लन्दन शहर को ध्वस्त कर दिया है। बिजली नहीं है, दूध नहीं है, सुबह की चाय नहीं है; लेकिन इसके बावजूद लन्दन के गर्वीले, अनुशासित और साहसी नागरिक अपनी विजय, अंधकार से सिक्त क्रिसमस और उदास नये वर्ष का स्वागत कर रहे हैं! आम अंग्रेज़ नागरिक के मन में केवल युद्ध-विरोधी प्रार्थनाएँ हैं....वे अँधेरे चर्चों में जाकर मनुष्य जाति की रक्षा और शुभ का आशीर्वाद माँग रहे हैं....दूसरे विश्वयुद्ध से पहले जिन गिरजाघरों में लाखों मोमबत्तियाँ जलती थीं, वहाँ अब केवल एक मोमबत्ती जलकर बचे हुए जीवन का उजास दे रही है।

लेकिन इसके बावजूद महारानी विक्टोरिया के वंशजों की गर्वीली साम्राज्यवादी मानसिकता और परम्परा में कोई फ़र्क नहीं आया है। बकिंघम पैलेस और अंग्रेज़ सामन्तों की हवेलियों में विजय के उल्लास और नये वर्ष के स्वागत में बेहद महँगी और अप्राप्य टर्की का गोश्त पक रहा है। टर्की नस्ल की यह बतखें फिनलैंड और ईजिप्ट से आयातित की गई हैं।

अदीब जैसे बकिंघम पैलेस की ओर देखने लगा।

–हुजूर आलिया! अर्दली महमूद ने अदीब को मुखातिब किया–अभी लंदन में मरे लोगों की लाशों का कफ़न और दफ़न का मौक़ा नहीं मिला है। ट्रैफलगर स्क्वायर में नेलसन की ध्वस्त प्रतिमा के नीचे सैकड़ों लाशें और मरे हुए हजारों कबूतर अभी भी अपनी मौत का मातम मना रहे हैं....लेकिन अंग्रेज़ सामन्तों के महलों और हवेलियों में अभी भी टर्की को ज़िबह करके नये साल के स्वागत का जश्न चल रहा है! कहते-कहते अर्दली महमूद ने अपने सवालों की सूची सँभाल ली।

तभी कांगो के एक हब्शी ने बीच में टोका–अदीबे आलिया! ये अंग्रेज़ और बेल्जियम के गोरे हमें हब्शी कहते हैं, लेकिन जब इन्हें एटम बम विकसित करने के लिए यूरेनियम की ज़रूरत पड़ी थी, तो यही लोग हमें अपना सहोदर भाई कहते हुए कांगो आए थे....अमरीकन इनके साथ थे और इन्होंने ही तब हमारी इस सदी के सबसे बड़े भौतिक विज्ञानी आइंस्टीन से बेल्जियम की महारानी को ख़त लिखवाया था कि किसी भी कीमत पर कांगो का यूरेनियम जर्मनों के हाथ न बेचा जाए! यहीं से, आपके सामने इस अदालत में मौजूद माउंटबेटन की नस्ल ने अपनी परम्परागत साजिशों की शुरुआत की थी....

–तुम कहना क्या चाहते हो? अदीब ने दख़ल दिया।

–यही कि इन अंग्रेजों के बयानों पर बहुत भरोसा करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि ये राज-वंशी नहीं हैं, लुटेरे और डकैत हैं! इनके डकैत पुरुखों ने राजवंश की परम्परा यूरोप में शुरू की है! पूछिए इस माउंटबेटन से कि इसका यह नीला खून कहाँ से आया है?

माउंटबेटन ने अपने इतिहास से उत्तर पाने के लिए लार्ड इज़्मे और अपने राजनीतिक सलाहकार कोनार्ड कोरफ़ील्ड की और देखा। लार्ड इज़्मे खामोश था। मिशनरी का बेटा कोनार्ड कोरफ़ील्ड बग़लें झाँक रहा था। माउंटबेटन को अपने नीले खून का पता तो था, पर वह हिचक रहा था।

उसे खामोश देखकर अर्दली महमूद ने उसका सजरा पेश किया–अदीबे आलिया! माउंटबेटन भगोड़े राजवंशों का आखिरी नुमाइन्दा है....इसके वंशज रूस से निकाले गए तो वे जर्मनी में बस गए। वहाँ जब इन्हें बर्दाश्त नहीं किया गया तो यह आकर इंग्लैंड के मासूम बाशिन्दों में घुल मिल गए...पूछिए इनसे कि इंग्लैंड में बसने से पहले इनके वंशजों का वजूद और नाम क्या था?

–मेरे पिता का जर्मन नाम तब बेटनवर्ग था! माउंटबेटन ने कहा।

–तो उन्हें अपना यह जर्मन नाम बदलने की ज़रूरत क्यों पड़ी?

–क्योंकि पहला विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था। उस समय ब्रिटेन में जर्मन-विरोधी भावनाएँ भड़क चुकी थीं ओर जर्मन मूल के होने के नाते मेरे पिता को ब्रिटेन के पहले सी-लार्ड के पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा था। अपनी देशभक्ति को प्रदर्शित करने के लिए तब उन्हें अपना जर्मन नाम बेटनवर्ग से बदलकर माउंटबेटन करना पड़ा था....

–क्योंकि यह तथाकथित नीले खून वाले मूलतः एय्याश,लुटेरे और साम्राज्यवादी थे....इन्हीं के वंशजों ने पूरे योरुप को अपनी खानदानी जागीर बना लिया था। जागीर की खातिर ये अपना नाम और पहचान बदलने में देर नहीं लगाते थे....योरुप के सारे राजशाही खानदान खून, रिश्तों या शादियों के जरिए जुड़े हुए थे....फिर चाहे वह क़ैसर हो, रूस का ज़ार निकोलस, स्पेन का अलफांसो या ग्रीस का कॉन्स्टेनटाइन, रोमानिया का फर्डीनण्ड, स्वीडन का गुस्ताव, नार्वे का हक्कून हो या युगोस्लाविया का अलक्ज़ेंडर....अपनी विलासिता और एय्याशी के लिए इन खानदानों ने हर राज्य में प्रजा का नृशंस शोषण किया और उन्हें दबाये रखने के लिए उन्हीं की औरतों से संसर्ग करके सामंत-श्रीमंतों का वर्ग पैदा किया....इन राजघरानों ने सामन्तों को सुविधाओं के उदार अंकुश में रखा पर जन-सामान्य को लूटने और सताने के लिए उन वर्गों को निरंकुश छोड़ दिया....

–अर्दली महमूद ठीक फरमा रहे हैं! एक तेजस्वी से लगते व्यक्ति ने आकर दख़ल दिया।

–आपकी तारीफ?

–मैं शहंशाह अकबर का वित्तमंत्री टोडरमल हूँ!

अदालत में मौजूद सभी लोगों ने उस भव्य शख़्सियत को आश्चर्य से देखा–अकबर के नवरत्नों में से ख़ास रत्न–टोडरमल!

–आप कुछ कहना चाहते हैं? अदीब ने पूछा।

–जी हाँ....मैं अंग्रेजी सत्ता के इन आखिरी वंशज महोदय से सिर्फ़ इतना पूछना चाहता हूँ कि इनके पुरखों ने भूमि-राजस्व के मुग़लिया ढाँचे को बदल कर जमींदारी और रैयतवारी पद्धति की शुरुआत क्यों की थी?

–इसके बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम! माउंटबेटन ने कहा।

–लेकिन आपको इतना तो मालूम होगा कि आपके देश के पहाड़ों में खनिज पदार्थ नहीं थे....धरती के पास कच्चा माल नहीं था....आपके देश में निपट गरीबी थी। आपका किसान भूखा मरता था....उसे उसके श्रम का पैसा नहीं मिलता था....इसी के खिलाफ़ आपके गरीब किसानों ने विद्रोह किया था....किसानों के 'दि डिगर्ज़' आन्दोलन ने आपके भूस्वामियों का चैन हराम कर दिया था...तब किसानों पर आपके शाही घराने और भूस्वामियों ने बर्बर अत्याचार किए थे....तो बताइए, क्या यह सच नहीं है कि किसानों को कुचलने के लिए ही आपने जमींदारी बन्दोबस्त को ईजाद किया था? वही आप लोगों ने भारत में लागू किया!

–इसका उत्तर मेरे पास नहीं है....मैं अर्थशास्त्री नहीं हूँ....मैं रॉयल इम्पीरियल नेवी का एडमिरल हूँ....मैं बर्मा का विसकाउंट हूँ! माउंटबेटन ने थोड़ी तुर्शी और गर्व से कहा।

–लेकिन अपने पुरखों की कारगुजारियों के उत्तर तो तुम्हें देने होंगे! तुम शाही बेड़े के एक एडमिरल हो...इसलिए तुमने अपने पुरखे विलियम हॉकिंस जहाज़ी का नाम तो

सुना होगा!

–मुझे याद नहीं....शायद मैंने यह नाम नहीं सुना है....माउंटबेटन ने कहा।

–तुम तो खुद को शाही जहाज़ी कहते हो फिर भी तुम्हें अपने जहाज़ी पुरखे का नाम नहीं मालूम?

माउंटबेटन ने राजा टोडरमल के सामने खामोश रहना ही मुनासिब समझा।

–अदीबे आलिया! राजा टोडरमल के साथ-साथ मैं भी कुछ ज़रूरी सवाल माउंटबेटन से करना चाहूँगा! अर्दली ने अदीब से कहा। अदीब ने उसे देखा।

–याद कीजिए हुजूरे आलिया! जब आप मॉरीशस के पश्चिमी किनारे वाले टुशरॉक होटल में सलमा के साथ थे, तब मैं आपको तलाशता हुआ वहाँ पहुँचा था।

–हाँ, मुझे याद है अर्दली साहब! तुमने बार-बार मेरी ज़ाती ज़िन्दगी में दख़ल दिया है....तुमने मुझसे मेरा और मेरी खूबसूरत कहानियों का सुकून छीना है....तुमने मुझे बार-बार शहंशाहों और सल्तनतों की घटिया साजिशों, बेहूदे बर्बर षड़यंत्रों की दुनिया में ला पटका है....अदीब ने कड़वे अन्दाज़ में कहा।

–हुजूरे आलिया! मैं आपकी तकलीफ और नाराज़गी को समझता हूँ...लेकिन जब एक इंसानी सभ्यता का भविष्य सौदागरी सभ्यता में बदला जा रहा हो, जब मनुष्य के सुकून, सुख, सपनों और अरमानों को मुनाफे की तिजोरियों में क़ैद किया जा रहा हो....जब एक बड़ी इन्सानी सभ्यता को फरेबी सौदागरों के जाल में फँसाया जा रहा हो, वह वक्त बहुत नाजुक होता है....ऐसे वक्त में सिर्फ़ बाज़ार की क़द्रें ही नहीं बदलतीं, रिश्तों के मयार और मूल्य भी बदलते हैं....दिलों के एहसास भी बदलते हैं....और तब अनकहे तरीकों से कहानियों के आदि और अन्त भी बदलते हैं....सोचिए हुजूरे आलिया! यह जो पार्टीशन हुआ है....क्या इसने सारी कहानियों के अन्त नहीं बदल दिये हैं?

अर्दली महमूद की इस दलील ने सबको सोचने पर मजबूर कर दिया। अदालत में मौजूद हर शख़्स अपने दिल में झाँक कर खुद से उत्तर माँग रहा था।

यह माहौल माउंटबेटन को रास नहीं आ रहा था। वह कसमसा रहा था, लेकिन उसने सहजता से कहा–मैं अपना क़ीमती वक्त बरबाद नहीं कर सकता। मैं सिर्फ़ आधा घंटा और आपको दे सकता हूँ....इससे ज्यादा नहीं। कहते हुए माउंटबेटन ने अपनी घड़ी देखी।

तभी राजा टोडरमल आगे आए और बोले–अदीबे ख़ास! मैं कोई भी सवाल पूछने से पहले हिन्दोस्तान के इतिहास का एक पन्ना नहीं, सारे पन्ने पलटना चाहता हूँ....एक-एक पन्ना पलट कर देखिए....इस भारतवर्ष का पूरा इतिहास पलट जाइए और बताइए कि क्या कभी, किसी भी सदी में इसका विभाजन हुआ है? आर्यों ने इसे कभी भी सिन्धु देश, सरस्वती देश या गंगदेश के रूप में विभाजित नहीं किया। उनके ग्रंथों में हमेशा इस प्रायःद्वीप को जम्बूद्वीप ही पुकारा गया....उन्होंने हमेशा इस महादेश के दिशांचलों को इसकी समग्रता में स्वीकार किया....रामायण काल में राक्षस रावण से युद्ध हुआ तो केवल

आर्य नहीं, इस महादेश के एक-एक अंचल का व्यक्ति लड़ा। महाभारत के युद्ध के बाद भी विजयी पाण्डवों ने अपने विरुद्ध लड़ने वाले किसी भी पराजित महारथी के राज्य को इस महादेश से पृथक नहीं किया....भारत महादेश भारत ही रहा....शत्रु और मित्र इसी एकात्म भूखण्ड का हिस्सा रहे। ईसा पूर्व तीसरी सदी में मेसोपोटामिया का सिकन्दर आया, महाराजा पुरु को पराजित कर लेने के बाद भी उसने इस देश को विभाजित नहीं किया। शक और हूण आक्रमणकारी थे, वे भी इस महादेश के टुकड़े नहीं कर सके....मोहम्मद बिन कासिम आया तो उसने इसी महादेश के सिन्ध क्षेत्र पर राज्य किया। उसने इस देश को नहीं तोड़ा। दूसरा देश ईजाद नहीं किया। गौरी, नादिरशाह, अब्दाली तक ने इस देश के नक्शे को नहीं बदला....तुर्क आये, अफगान आये....वे चाहते तो इसी देश को तोड़कर तुर्किस्तान या कोई दूसरा अफगानिस्तान बना लेते....मुग़लिया सल्तनत ने हमेशा इस देश की अखण्डता को पहचाना और मंजूर किया। उन्होंने इस महादेश में अपने किसी देश की तामीर नहीं की....यहाँ तक कि औरंगज़ेब चाहता तो अपनी सल्तनत से ग़ैर मुस्लिमों को, अपनी ताकत और तलवार से खारिज करके एक इस्लामी देश को अलग कर लेता....उसे इस्लामिस्तान का नाम दे देता, लेकिन वह ता-ज़िन्दगी इसी एक हिन्दोस्तान के लिए लड़ता, जीता और हारता रहा....कहते हुए राजा टोडरमल ने अदालत में मौजूद एक-एक व्यक्ति को देखा और सन्नाटे को तोड़ते हुए अपना सवाल पेश किया–तो फिर अदीबे आलिया ! ऐसा क्यों हुआ कि अंग्रेजों की सौदागर क़ौम के हाथों, पाँच हजार साल पुराना यह महादेश अपने इतिहास में पहली बार विभाजन का शिकार हुआ ! इसका कोई उत्तर है इस जहाज़ी माउंटबेटन के पास ?

–इन और ऐसे सवालों का कोई उत्तर नहीं है मेरे पास ! माउंटबेटन ने खीजते हुए कहा।

–क्यों ? कोई उत्तर क्यों नहीं है तुम्हारे पास ? आखिर इस देश को विभाजित करने तो तुम्हीं आए थे ? अर्दली ने टिप्पणी की।

माउंटबेटन का पारा एकदम चढ़ गया। फिर भी खुद पर काबू रखते हुए उसने कहा–मैं इंडिया को आज़ादी देने आया था !

–आज़ादी ! अर्दली ने व्यंग्य से हँसते हुए कहा–तुम कौन थे हमें आज़ादी देने वाले ? तुमने हमारे देश को जीता नहीं था। दुरभिसन्धियों और षड़यंत्रों से अपने अधीन किया था....अपने पुरखे विलियम हाकिंस जहाज़ी को तो तुम पहचानते नहीं....उसके साथ आए अन्य जहाज़ियों को भी तुम कैसे पहचानोगे !....तब तुम्हारा देश उतना ही गरीब था, जितना गरीब आज हमारा देश है। तब तुम्हारा खानदान शाही नहीं, लुटेरों और समुद्री डाकुओं को पालने और शरण देने वाला अपराधी खानदान था !

–यू शटअप ! सारी शालीनता के बावजूद माउंटबेटन तिलमिला उठा था।

तब अदीब ने टोका था–अर्दली साहब ! हमें अपनी शालीनता नहीं छोड़नी चाहिए....समझ में नहीं आता कि तुम यह किस दौर की बातें कर रहे हो ?

–अदीबे आलिया ! यह उसी दौर की बातें हैं जिस दौर में महाकवि बिहारी अपनी सतसई के शृंगारिक दोहे लिख रहे थे और आप खुद मॉरीशस के टुशरॉक होटल में सलमा की बाँहों में मदहोश पड़े थे....आप तो सलमा के बदन पर खिले हुए चुम्बन के नीले फूलों की गिनती कर रहे थे....तब मैं आपको तलाशता हुआ वहाँ अपनी नाव से पहुँचा था....

अदीब को जैसे वह नज़ारा याद आया....अर्दली होटल की जेटी से नाव लगाकर उतरा था।

–याद आया ? अर्दली ने पूछा–और मैंने आपको सलमा की मौजूदगी के बावजूद आगाह किया था कि जिस अदीब ने तहज़ीब के जिस्म पर लगे जख़्मों को जानने की जिम्मेदारी उठा ली है, वह अपनी ज़ाती ज़िन्दगी में खिले हुए नीले फूलों की गिनती करने के लिए आज़ाद नहीं है !

–हाँ अर्दली साहब....मुझे वह लमहा याद है !

–तभी मैंने आपको ख़बर दी थी कि स्पेनिश, अंग्रेज, फ्रांसीसी और पुर्तगाली समुद्री लुटेरों के जहाज़ पूरब की तरफ बढ़ गए हैं...उन बेड़ों ने कौन-सा इतिहास लिखा है, यह पूरब जानता है....मैं इसी इतिहास लेखन के वारिस इन माउंटबेटन साहब को, जो साबुत इंडिया के आखिरी वायसराय और विभाजित इंडिया के आखिरी और शाही गवर्नर जनरल होने की अकड़ में जकड़े हुए हैं, मैं इन्हें इनके लुटेरे पुरखों विलियम हॉकिंस और थामस रो जैसों की असलियत दिखाना चाहता हूँ। अर्दली ने माउंटबेटन को मुखातिब किया–जानते हैं आप ! तब भारत के शहंशाह जहाँगीर के साम्राज्य के सामने आपके शाही खानदान की हैसियत एक गाँव के लम्बरदार से भी बड़ी नहीं थी ! डच सौदागरों ने जब एक पाउण्ड काली मिर्च का भाव पाँच शिलिंग बढ़ा दिया था, तो तुम्हारी क़ौम के बनिए तिलमिला उठे थे....तब तुम्हारे बनियों ने सन् 1599 में ईस्ट इंडिया ट्रेडिंग कम्पनी बनाई थी। और तुम्हारा वह लुटेरा जहाज़ी विलियम हॉकिंस तुम्हारी तथाकथित महारानी एलिजाबेथ प्रथम से लूटमार करने की इजाज़त लेकर चल पड़ा था....

–मैं यह बातें नहीं सुनना चाहता ! माउंटबेटन ने खीझते हुए कहा। अदीब कुछ कहता, इससे पहले ही अर्दली चीख पड़ा–तुम्हें सुननी होंगी क्योंकि संसार के सबसे बड़े और रक्त रंजित विस्थापन के लिए तुम जिम्मेदार हो....भारत महादेश के जन सामान्य को आँसुओं के महासागर में जल समाधि तुमने दी है....इस देश की जातीय स्मृतियों को खंडित करने के अपराधी तुम हो ! जानते हो तुम्हारा वह जहाज़ी पूर्वज हॉकिंस, जब सन् 1600 में सूरत के बन्दरगाह पर उतरा था, तो उसकी जेब में एक लिस्ट थी। उन चीजों की, जो वह भारत से लेने आया था, उसमें काली मिर्च तो थी ही, नील, ज़ीरा, लौंग और अदरक के

अलावा मुर्गी के अण्डों जितने बड़े पन्ना-पुखराज और अक्षत यौवन के लिए हाथी के अण्डकोष का वीर्य भी शामिल था!

माउंटबेटन का चेहरा गुस्से से तमतमाने लगा था। तब राजा टोडरमल ने अर्दली को रोका–महमूद साहब! इन्हें इनके पुरखों का सजरा मत सुनाइए....इससे इन्हें तकलीफ होती है....ग़लतियाँ और कमजोरियाँ तो अपनी भी थीं....बेहतर होगा कि इनसे आप लोग इस बात का जवाब मांगिए कि बंटवारे का जो काम औरंगज़ेब नहीं कर सका, वह इन्होंने कैसे कर दिखाया ?....मैं आगे दख़ल नहीं दूँगा । मैं एक कोने में बैठकर इस जिरह को सुनना चाहूँगा क्योंकि मुझे लौटकर अपने शहंशाहे आलम अकबर को इसकी रपट देनी है!

–तो माउंटबेटन साहब! आप खुद जहाज़ी हैं। आपने अपने जहाज़ी पुरखों का इतिहास सुन लिया। आप अपने इस इतिहास को मिटा नहीं सकते। ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन और पुर्तगाल के सारे जहाज़ी नई दुनिया की खोज में निकले कोई अन्वेषक या खोजकर्त्ता वैज्ञानिक नहीं थे, वे मूलतः समुद्री लुटेरे थे जो दुनिया की दौलत की तलाश में निकले थे ।

माउंटबेटन कुछ शर्मसार तो हुआ लेकिन उसे ज़ाहिर न करते हुए उसने अदीब को देखा।

–मिस्टर एडमिरल माउंटबेटन! अदीब ने कहा–जब आप इस अदालत से वापस जाएँ तो इस सच्चाई की तलाश कर लीजिएगा कि जिस वक्त हिन्दुस्तान का मुग़लिया निज़ाम अपने किसानों और काश्तकारों को राजा टोडरमल की चली आती आर्थिक नीतियों के तहत मालिकाना हक़ और आज़ादी बख़्श रहा था, उस वक्त आपकी तथाकथित, महारानी एलिजाबेथ प्रथम, पुर्तगाली तस्करों की कम्पनियों में पैसा लगाकर, अफ्रीकी हब्शियों को दासों की तरह बेचकर खरीद-फरोख़्त के बाज़ार में मुनाफ़ा कमा रही थीं!

माउंटबेटन का गला सूख रहा था। उसे फौरन कोक का एक टिन दिया गया।

–तो ख़ैर....बातचीत शुरू करें। आप वायसराय बन कर कब इंडिया पहुँचे ?

–मार्च 1947 में ।

–आपका ब्रीफ क्या था ?

–यही कि इंडिया को आज़ादी देनी है।

–आज़ादी देने के लिए चलने से पहले आप किस-किस से मिले थे ?

–जाहिर है कि मैं प्रधानमंत्री एटली से मिला था।

–और ?

–मैं अपने कज़िन और भारत के बादशाह जार्ज सिक्स्थ से मिला था।

–और ?

–और....कुछ सोचते हुए माउंटबेटन ने कहा–मैं दूसरे विश्वयुद्ध को जीतनेवाले ब्रिटिश साम्राज्य के हीरो और पूर्व-प्रधानमंत्री विंसटन चर्चिल से मिला था।

–इन सबने कोई और ब्रीफ आपको दिया था ?

–नहीं...10 डाउनिंग स्ट्रीट में निमंत्रित करके तत्कालीन प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने मुझसे गुज़ारिश की थी कि मैं इंडिया जाऊँ और उसे आज़ादी देकर वापस लौट आऊँ!

–आपकी साम्राज्यवादी सरकार ने यह फ़ैसला किन हालात में लिया था?

–हालात तो मैं बयान नहीं कर सकता, लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध में विजय के बावजूद यह स्पष्ट हो गया था कि हम अपने उपनिवेशों को अब ज़्यादा देर तक ग़ुलाम नहीं रख सकते!

–इसीलिए आपने इंडिया को छोड़ने से पहले उसे सबक सिखाने का फ़ैसला लिया। क्योंकि इंडिया के आज़ाद होते ही अन्य तमाम उपनिवेशों में हर दिन उगने वाला सूरज डूबने वाला था....और आपने चर्चिल के साथ मिलकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विखण्डन का जिम्मेदार महात्मा गाँधी और इंडिया के आज़ादी के आन्दोलन को ठहराया था....महात्मा गाँधी को अपने घटिया साम्राज्यशाही अहंकार का शिकार बनाया था....आपके बकिंघम पैलेस में तो नंगे फकीर महात्मा गाँधी को आदर सहित बुलाया गया था, लेकिन आपके अहंमन्य और विश्वयुद्ध के बाद चुनाव में हारे हुए भूतपूर्व प्रधानमंत्री विंसटन चर्चिल ने इंडिया के 'नंगे फ़कीर' से मिलने से इनकार कर दिया था! क्या आप चर्चिल की उसी अहंमन्यता-पूर्ण मानसिकता को लेकर इण्डिया नहीं आये थे?

–नहीं!

–तो फिर वह लार्ड इज़्मे, जो दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान लगातार चर्चिल का सहायक रहा था, यह भारत को आज़ादी देने के अभियान में आपका सहायक बन कर क्यों आया था?

–यह लेबर सरकार का सरकारी फ़ैसला था। इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं था।

–झूठ मत बोलिए एडमिरल माउंटबेटन! अगर आप तत्कालीन लेबर प्रधानमंत्री एटली से अपनी सारी शर्तें मनवा सके थे और मनवा सकते थे तो क्या आप लार्ड इज़्मे की जगह अपने मन का सहायक नहीं चुन सकते थे?....यह आपकी कैसी मजबूरी थी कि भारत की आज़ादी का विरोध करने और भारत को सबक सिखाने का ऐलान करने वाले चर्चिल के सहायक को आप अपना सहायक बनाकर साथ लाए थे?

–यह प्रशासनिक फैसले के सवाल हैं। यह दुनिया के सबसे बड़े साम्राज्य के सवाल हैं! बेहतर यही होगा कि आपकी अदालत इनमें दख़ल न दे! माउंटबेटन ने कहा।

–माउंटबेटन! यह तो मनुष्य के ज़मीर और उसकी आत्मा की अदालत है...इससे बच के कोई कहाँ जाएगा? आप जिन सवालों के जवाब नहीं देंगे, वे भी यहाँ हल हो जाएँगे...आपकी जुबान ख़ामोशी साध सकती है लेकिन यह ऐसी अदालत है जो खामोशी की आवाज़ और भाषा को सुन व समझ सकती है!

तभी तेज़ दस्तकें पड़ने लगीं। अदालत में मौजूद सभी लोगों ने परेशानी से दस्तकों की ओर देखा। वे दस्तकें अपने सूखे खून को चाट रही थीं। कुछ दस्तकें हड्डियाँ टूट जाने की वजह से लड़खड़ा रही थीं। कुछ दस्तकें कन्धों पर बच्चों की लाशें उठाए हुए थीं।

अर्दली ने आगे बढ़कर उन्हें सँभाला और दरयाफ्त किया कि वे कहाँ की दस्तकें हैं, तो एक लाश ने बताया–हम ईस्ट तिमोर की दस्तकें हैं। इंडोनेशिया के ईस्ट-तिमोर की! सुन रहे हैं आप ?....हम दशकों से आज़ादी का हक़ माँग रहे थे....वह हमें रायशुमारी के साथ मिला भी तो मौत और विस्थापन के साथ। इंडोनेशिया की फौज और प्राइवेट मुस्लिम मिलीशिया हम पर टूट पड़ी....हमें बेरहमी से मारा जा रहा है....घरों में आग लगाई जा रही है। बस्तियाँ फूंक दी गईं । हजारों लोग अपना देश छोड़कर वेस्ट तिमोर में शरण ले रहे हैं....राजधानी दिली तो भुतहा शहर बन चुका है....

–अगर ऐसा ही होना था तो फिर इंडोनेशिया से आज़ादी हासिल करने की ज़रूरत क्या थी ? अगर ईस्ट तिमोर के सभी बाशिन्दों को आज़ाद होकर फिर इंडोनेशिया के वेस्ट तिमोर में ही शरणार्थी की तरह शरण लेनी थी, तो फिर तुम्हें आज़ादी किसलिए चाहिए थी ?

–यह आज़ादी हमें अपने धर्म के लिए चाहिए थी!

–धर्म के लिए ?

–जी हाँ अदीबे आला, क्योंकि हम मुसलमान नहीं, ईसाई हैं!

–यानी तुम भी उपनिवेशवादियों की साजिश के शिकार हुए हो! तुम्हें भी धर्म के नाम पर पुर्तगाली उपनिवेशवादियों ने राजनीति का मोहरा बनाया है! उसी तरह जैसे ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने भारत में हिन्दू-मुसलमानों को मोहरा बनाया था! अदीब ने तल्ख़ी से कहा–मैं तुम ईसाइयों से पूछना चाहूँगा कि क्या तुम इंडोनेशियाई नहीं हो ?

तब तक अर्दली ने ईस्ट तिमोर की राजधानी दिली पहुँच कर वहाँ का हाल बयान करना शुरू कर दिया–हुजूरे आला! सुनिए....मैं ईस्ट तिमोर की राजधानी दिली से बोल रहा हूँ....वैसे तो यह दिली बहुत बड़े और खुले दिलवालों की बस्ती थी....यहाँ ईस्टर, बड़ा दिन, नया साल तो मनाया ही जाता था, साथ में मोहम्मद साहब के जन्मदिन के जशन में सब शामिल होते थे। रमज़ान तो मनाया ही जाता है....इतना ही नहीं, यहाँ महाभारत के प्रसंगों को लेकर नाटक भी खेले जाते थे....लेकिन इस वक्त यह शहर वीरान पड़ा है....यहाँ मारकाट के बाद प्रेसीडेंट हबीबी ने मार्शल लॉ घोषित कर दिया है....इंडोनेशिया के मुसलमान नहीं चाहते कि ईस्ट तिमोर के ईसाई अपना स्वतंत्र देश बना सकें....सैकड़ों लोगों की लाशें राजधानी की सड़कों पर पड़ी सड़ रही हैं। मार्शल लॉ के साथ ही आर्मी भी मुस्लिम मिलीशिया के साथ शामिल होकर ईसाइयों को खदेड़ रही है। मुस्लिम मिलीशिया के रजाकारों को मैं चीखते हुए सुन रहा हूँ–ईसाई कुत्तो! ईस्ट तिमोर खाली करो! आज़ाद

मुल्क बनाना है तो जाके पेसेफिक ओशन में बनाओ! वह समुन्दर ही तुम्हें पनाह दे सकता है!

अदालत में मौजूद सभी लोग परेशानी से एक दूसरे को देखने लगे। अर्दली महमूद की आवाज़ आ रही थी–

–कल यहाँ बिशप की कोठी फूँक दी गई। आज अभी-अभी आस्ट्रेलिया के राजदूत जॉन मैकार्थी पर उन्हीं के काउंसेलेट में जानलेवा हमला हुआ है। उनके तीन गोलियाँ लगी हैं पर वे खतरे से बाहर बताए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की इमारत पर मुस्लिम मिलीशिया ने कब्ज़ा कर रखा है। विदेशी अपनी सुरक्षा के लिए तिमोर छोड़कर भाग रहे हैं। बिशप कार्लोफेलो के चर्च कंपाउण्ड में 7000 भयभीत ईसाई शरण लिए हुए हैं। रेड क्रास के अहाते में 2000 से ऊपर लोग जान बचाने के लिए इकट्ठा हैं। इस्लामी अईतराक मिलीशिया के रज़ाकारों ने शहर पर पूरा कब्ज़ा कर रखा है। कुछ लोग ईस्ट तिमोर बन्दरगाह की ओर पलायन कर रहे हैं....यह रास्ता जो मुस्लिम बहुल वैस्ट तिमोर की ओर जाता है, इस सड़क के खंभों पर मीलों तक ईसाईयों की खोपड़ियाँ उलटे घड़ों की तरह टंगी हुई हैं....उनकी खुली हुई मुर्दा आँखें अपने आज़ाद इलाके के सन्नाटे को देख रही हैं। सागर किनारे के गाँवों में लाशों के सिवा कुछ नज़र नहीं आ रहा है....हर लाश दूसरी लाश के जनाज़े में शामिल है....यह समझना यहाँ मुश्किल हो रहा है कि कौन सी लाश किस लाश को दफ़नाने ले जा रही है...जो हालात मैं यहाँ देख रहा हूँ,उनसे लगता है कि पुर्तगाली उपनिवेशवाद ने आज़ाद देश के नाम पर दुनिया के सबसे बड़े कब्रिस्तान को बनाने में सफलता हासिल की है....ईस्ट तिमोर दुनिया का ऐसा आज़ाद देश होगा, जिसमें सिर्फ़ मुर्दे रहा करेंगे....इनकी क़ब्रों पर जलती मोमबत्तियों की रोशनी आने वाली तमाम सदियों को मौत और हत्याओं का शाश्वत अँधेरा देती रहेगी!

अदालत में माउंटबेटन अब और उलझन से कुलबुला रहा था। लेकिन भीड़ बढ़ती जा रही थी। अदीब ने देखा, उसकी चारों कहानियाँ मौजूद थीं। यह दूसरी बात है कि वे कहानियाँ एक दूसरे को नहीं पहचानती थीं। अदीब उन्हें देखता तो अजीब से संवेगों से ग्रस्त हो जाता।

सलमा की आँखें बार-बार जैसे ख़ुदा हाफिज़ कह रही थीं। विद्या रोहतक रोड से तांगे पर आई थी। उसी तांगे पर, जिसके घोड़े के पंख लग गये थे और आज़ादी के साथ-साथ विभाजन का ऐलान होते ही वह विद्या को लेकर न जाने कहाँ उड़ गया था! ताज्जुब कि बूटा सिंह अकेला आया था। न मालूम जेनिब क्यों नहीं आई थी। और सुरजीत कौर जो मुलतान वाले घर से सारे गहने पहन कर, सज सँवर कर, अपने मासूम बेटे को अफ़ीम चटा कर निकली थी, वह अपने पचास साला बेहोश बेटे को तहदार चादर की तरह कंधे पर डाले

अदालत में मौजूद थी। भिखमंगा कबीर भी एक कोने में चुपचाप खड़ा था। और पशोपेश में डालने वाला नज़ारा तो यह था कि बूटा सिंह, चिथड़े-चिथड़े हो गई अपनी लाश को फ़र्श पर लिटाये, भिनभिनाती मक्खियों को अपने ही हाथ से उड़ा रहा था।

अदीब सोचने लगा कि आख़िर उसकी यह कहानियाँ यहाँ क्यों चली आई हैं? इन कहानियों को साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का आखिरी प्रतिनिधि माउंटबेटन तो नहीं लिखेगा। वक्त मिला तो या तो वह खुद लिखेगा या कोई और अदीब इन उदास कहानियों को उठाएगा....

तभी माउंटबेटन की करख़्त आवाज़ आई–

–आख़िर आपने मुझे क्यों रोक रखा है?

–यह पूछने के लिए कि इंडिया के पार्टीशन की बात आपने कब तय की थी?

–यह बात और इल्ज़ाम ग़लत है! मैंने लगातार इंडिया को यूनाइटेड रखने की पेशकश की थी! माउंटबेटन ने अपने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा।

–क्या आपको मालूम और याद है कि लन्दन के एक होटल में सन् 1933 में रहमत अली ने जब पहली बार पाकिस्तान की परिकल्पना पेश की थी, तब जिन्ना साहब ने क्या कहा था?

–मुझे नहीं मालूम!

–तो मैं आपको बताता हूँ....जिन्ना साहब ने कहा था कि यह एक नामुमकिन और ग़लत सपना है....

माउंटबेटन ने इतिहास के उस नौजवान विद्यार्थी को ग़ौर से देखा जो उससे जिरह कर रहा था।

विद्यार्थी ने जिरह जारी रखते हुए पूछा–शायद आपको मालूम हो कि सन् 1934 के आसपास जिन्ना साहब राजनीति से इतने ख़फ़ा और निराश हो गए थे कि वे बम्बई हाईकोर्ट की लाखों की प्रैक्टिस छोड़कर लन्दन चले गए थे....उन्होंने घोषित किया था कि वे राजनीति से संन्यास ले रहे हैं और बम्बई में लाखों रुपए का अपना फलता-फूलता अदालती पेशा छोड़कर वे लंदन में रहने और वहीं वकालत करने के लिए इंग्लैंड जा रहे हैं!

–मुझे मि. जिन्ना के इस फैसले की जानकारी नहीं है। माउंटबेटन ने कहा।

–तो फिर आपकी संसदीय और प्रशासनिक योगयताएँ और जानकारियाँ क्या हैं, जिसके बलबूते पर आप इंडिया जैसे महासंस्कृति वाले, विविधता भरे देश के वायसराय बनकर उसे आज़ादी देने आए थे? क्या आपको मालूम था कि इंडिया में मेढ़ता या बलसार जैसी मामूली-सी रियासत कहाँ थीं? और आपकी साम्राज्यवादी सरकार ने भारत की 565 रियासतों के साथ किस-किस तरह की संधियाँ कर रखी थीं? क्या आपने भारत आगमन और भारत को आज़ादी देने से पहले संधियों के उन दस्तवेजों को पढ़ा था?

–नहीं!

–क्या आपको इंडिया में अपने पुरखों के द्वारा पैदा की गई हिन्दू-मुस्लिम समस्या की जानकारी थी?

–नहीं!

–तब तो आपको यह भी नहीं मालूम होगा कि राजनीति से निराश होकर जब जिन्ना साहब ने सन् 1934 में इंडिया छोड़ा था, तब वे इंग्लैंड में क्या करते रहे थे और उनकी राजनीतिक, सामाजिक और प्रोफेशनल सरगर्मियाँ क्या थीं?

–मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं है!

और यह जवाब पाते ही विद्यार्थी भाषण देने लगा–दुनिया के हाज़रीन सुनो! शहंशाह बाबर के बाबरनामा में से बीस पन्ने गायब हैं....वह बीस पन्ने जो इस बात का सबूत देते कि बाबर अयोध्या तक कभी नहीं गया था। वह अफगान विद्रोहियों का पीछा करते हुए घाघरा नदी तक गया था और उन्हें खदेड़ कर वह घाघरा नदी के जंगलों में शिकार खेलता हुआ, यह ख़बर पाकर कि काबुल से उसकी बेगम और बिटिया हिन्दुस्तान में पहुँच चुकी हैं, फौरन अलीगढ़ शहर की तरफ लौट पड़ा था....बाबर के इस दौर तक बर्बरता के बावजूद, जज्बात और संवेदना की वह धड़कने बाकी थीं, जो शहंशाहों को इन्सान बनाती थीं। बाबर घाघरा नदी के पश्चिमी कछारों और जंगलों से लौट पड़ा था–अपनी बेगम और बिटिया से मिलने के लिए....वह घाघरा नदी के पूर्वी किनारे के पार अयोध्या कभी गया ही नहीं था।

–यह सही या ग़लत जानकारी देकर आप मुझे बताना क्या चाहते हैं?

–यही कि आपके चर्चिल जैसे राजनीतिज्ञों ने भारत के विभाजन की भूमिका तैयार कर रखी थी और उसी को अंजाम देने के लिए आपको भारत का वायसराय बनाकर भेजा गया था।

–यह सरासर ग़लत इल्ज़ाम है!

–तो क्या आप इस संगीन स्थिति के बारे में कुछ बता सकेंगे कि राजनीति से संन्यास लेकर इंग्लैंड प्रवास के तीन वर्षों के दौरान, जिन्ना साहब किन ख़ास ख़ास हस्तियों, राजनीतिज्ञों और राजनेताओं से मिलते रहे, उनके और जिन्ना साहब के बीच क्या गोपनीय बातें हुईं?

–गोपनीय बातें?

–हाँ! विद्यार्थी ने सख्ती से पूछा–सुनिए मि. माउंटबेटन! जिस तरह आपके कारिन्दों ने बाबरनामा के बीस पन्ने नदारद किए हैं, उसी तरह आपकी क़ौम और इतिहासकारों ने जिन्ना साहब के तीन वर्षीय इंग्लैंड प्रवास को साजिशी गुमनामी को चादर में लपेट रखा है....क्या आप यह बता सकेंगे कि गांधीजी के आन्दोलनों और भगतसिंह की

शहादत से घबराई और लगभग पराजित सरकार तब क्या सोच रही थी और क्या साजिशें कर रही थी ?....

–मैं इन हालात के बारे में कुछ नहीं कह सकता !

–क्या सन् 1933 में पाकिस्तान की परिकल्पना पेश करनेवाला रहमत अली अपनी योजना को रद्दी की टोकरी में फेंक कर चुप हो गया था ? याद कीजिए उस वक्त के हिन्दुस्तान के माहौल को....याद कीजिए हिन्दुस्तान के क्रांतिकारी इतिहास की भूमिका को....सन् 1930, जुलाई के अन्तिम रविवार के दिन गूँजते क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह के उन शब्दों को–वे सोचते हैं कि मेरे पार्थिव शरीर को नष्ट करके वे इस देश में सुरक्षित रह जाएँगे। यह उनकी भूल है। वे मुझे मार सकते हैं, लेकिन मेरे विचारों को नहीं मार सकते। वे मेरे शरीर को कुचल सकते हैं, पर मेरी भावनाओं को नहीं कुचल सकते। ब्रिटिश हुकूमत के सिर पर मेरे विचार उस समय तक अभिशाप की तरह मंडराते रहेंगे, जब तक वे यहाँ से भागने के लिए मजबूर नहीं हो जाएँगे ! ....

–मेरा शहीद भगतसिंह से कभी कोई वास्ता नहीं पड़ा ! माउंटबेटन ने कहा|

–पर उन दिनों तुम थे तो ब्रिटेन में ही....और तुम शाही खानदान के वंशज भी हो....तुम्हें कुछ जानकारी तो होनी चाहिए कि तब ब्रिटेन में इंडिया सम्बन्धी क्या गतिविधियाँ चल रही थीं ? ज़ाहिरा तौर पर तो जिन्ना साहब लन्दन में प्रैक्टिस करने गए थे....लेकिन कहीं भी इस बात का कोई सबूत या जानकारी नहीं है कि उन्होंने लन्दन प्रवास के दौरान एक भी मुकदमा लड़ा हो !....क्या वजह थी कि उन्हीं बरसों के दौरान इंडियन मुसिलम लीग के कुछ ख़ास नेता और बड़े-बड़े जमींदार, छोटे-छोटे, नवाब और ताल्लुकेदार लन्दन आ-जा रहे थे....

–इंडियन लोगों के लन्दन आने-जाने या घूमने-फिरने पर कोई पाबन्दी नहीं थी। माउंटबेटन ने कहा।

–वह तो ठीक है पर यह इंडियन ख़ास तौर से टोरी दल के सभासदों से मिल रहे थे और इनकी गुप्त मुलाकातें और वार्ताएँ चल रही थीं....

–यह हवाई बातें हैं। ब्रिटेन के अभिलेखागारों में इनका कोई ज़िक्र नहीं है ! माउंटबेटन ने तेज़ लहजे में कहा।

–तब तो तुम्हारे देश के अभिलेखागारों या गुप्तचर विभाग के कागज़ों में जिन्ना साहब और चर्चिल की तीन मुलाक़ातों का कोई जिक्र हो, इसका तो सवाल ही नहीं उठता !....

–मैं इस तरह की बेबुनियाद बातों का जवाब देना ज़रूरी नहीं समझता...वैसे भी बजाते-ख़ुद मुझे इन बातों या मुलाकातों की जानकारी नहीं है।

–तुम्हारी इस बात पर यकीन किया जा सकता है....लेकिन यहाँ तुम्हें यह बता देना ज़रूरी है कि भारत में चल रहे क्रान्तिकारी और अहिंसावादी आन्दोलनों ने यह ऐलान कर

दिया था कि भारत को अब ज़्यादा दिनों तक ग़ुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता....इसलिए सन् 1934 से 1937 तक ब्रिटेन की राज्यसत्ता ने जो साजिश भरे कार्यक्रम तैयार किए, वे दूसरे विश्वयुद्ध के कारण एकाएक तो लागू नहीं किए जा सके, लेकिन युद्ध समाप्त होते ही, इन कूटनीतिक दुरभिसंधियों को अमली जामा पहनाने के लिए जनरल बैवेल को अकस्मात हटा कर तुम्हें भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। तुम्हें एक सोचे-समझे और तयशुदा कार्यक्रम के तहत भेजा गया। वह कार्यक्रम था, जब तक और जहाँ तक सम्भव हो, भारत की आज़ादी को स्थगित करना और स्थगित न हो सके, तो भारत को विभाजित करके उसे कई टुकड़ों में बाँट देना....

–यह इल्ज़ाम है....यह बात सरासर ग़लत है! मैंने लगातार इंडिया की एकता को बनाए रखने की भरपूर कोशिश की....लेकिन मैं उसमें मि. मोहम्मद अली जिन्ना की ज़िद के कारण नाक़ामयाब रहा....

–जिन्ना साहब ही तो तुम्हारी सत्ता के तुरुप के पत्ते बन गए....सीधे-सीधे कहें तो उन्हें जानबूझ कर तुम अंग्रेजों ने तुरुप का पत्ता बनाया!

–मतलब?

–मतलब यही कि जिन्ना साहब को तुम्हारे देश की साजिश के तहत मुसलमानों का नेता बनाया गया....नहीं तो भारत का मज़हबी-नमाज़ी मुसलमान जिन्ना जैसे ग़ैर मज़हबी, बेनमाज़ी, पोर्क से परहेज न करनेवाले मुसलमान को कभी अपना लीडर मंजूर नहीं करता....यही वह साम्राज्यवादी करामाती करिश्मा है, जो तुम लोगों ने कर दिखाया....हैरत की बात है कि मज़हब के नाम पर एक ग़ैर-मज़हबी और एक ऐसे मुसलमान को लीडर बनाया गया जो कुरान शरीफ़ नहीं पढ़ सकता था, क्योंकि उसे अरबी या उर्दू तक नहीं आती थी। जो नमाज़ी नहीं था क्योंकि वह नमाज़ पढ़ना नहीं जानता था....बल्कि उसके बारे में तो यहाँ तक कहा जा सकता है जिन्ना साहब मुसलमान होते हुए भी मुसलमान नहीं थे....उत्तर भारत के तमाम ताल्लुकेदारों, छोटे-मोटे नवाबों और जमींदारों के सामने पाकिस्तान नामक देश बना देने का लुकमा फेंक कर अन्दर ही अन्दर जिन्ना साहब की लीडरी को मनवा लिया गया था!

–आप लोग कुछ भी सोचने के लिए आज़ाद हैं! मैं इस मसले पर ज़्यादा बात नहीं करना चाहूँगा....मैं अपनी सच्चाई जानता हूँ....मेरा ज़मीर मेरा गवाह है। माउंटबेटन ने बेरुख़ी से कहा–और यह भी ग़लत बात है कि मैं इंडिया की आज़ादी स्थगित करने आया था!

–सुनिए....सुनिए! माउंटबेटन साहब! यह ठीक है कि युद्ध के बाद टोरी हार गए थे....लेकिन सरकार की नकेल तब भी चर्चिल के हाथों में थी। आपके चर्चिल लेबर सरकार के फैसले को हाउस आफ लॉर्डस में लटकाए रख सकते थे....क्योंकि उसमें आपके सामन्तों की मेजोरिटी थी....और आपका ब्रिटेन उस वक्त, युद्ध के बाद, ध्वस्त था और

भूखा मर रहा था 1 हिन्दुस्तान की आज़ादी स्थगित करके आप कुछ और बरसों तक शोषण करने का अधिकार पा सकते थे!

–नहीं! माउंटबेटन चीख पड़ा–हमारे पास आइल अॉफ वाइट में उस वक्त भी इतनी दौलत थी कि हमारी दस पीढ़ियाँ आराम से खा सकती थीं और जीवित रह सकती थीं!

–आपके आइल अॉफ वाइट में आपके पसीने की दौलत नहीं, दुनिया के उपनिवेशों की शोषित दौलत मौजूद थी....वह दौलत आपकी नहीं थी!

यह कोने से उठकर आया भिखारी कबीर बोल रहा था और लगातार माउंटबेटन से जिरह कर रहा था।

–मैं भिखमंगों से बहस करने के लिए तैयार नहीं हूँ मिस्टर अदीब! माउंटबेटन ने शाही ठसके के अन्दाज़ में कहा, और इससे पहले कि अदीब हस्तक्षेप करे, भिखारी कबीर भड़क उठा।

–माउंटबेटन! हम भिखमंगों की नस्ल तुम लुटेरों ने पैदा की है....हम जैसे भिखारियों की नस्ल तुम्हारे इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन से पहले दुनिया के किसी देश में मौजूद नहीं थी। अमीर और गरीब पहले भी थे लेकिन भिखारियों का जन्म उपनिवेशी बन्दोबस्त के साथ हुआ....जब आर्थिक और जीवनगत न्याय के मूल्यों का अन्त और मुनाफा केन्द्रित अन्ध शोषण और स्पर्धा का जन्म हुआ....नहीं तो इससे पहले ग़रीब तो थे, पर भिखारी नहीं थे। विश्व का न्यायगत आर्थिक सन्तुलन तुम साम्राज्यवादियों– उपनिवेशवादियों ने खंडित किया है....नहीं तो मुझ जैसा लाचार आदमी भारत और पाकिस्तान में भीख माँगने के लिए मजबूर नहीं होता, जो एक दूसरे के खिलाफ़ दुआ माँगते हैं! तुम उपनिवेशवादियों ने हमारी दुआएँ भी दोग़ली बना दीं....

अदालत में मौजूद मुर्दे भी भिखमंगे कबीर की बातें बहुत ग़ौर और सहमति से सुन रहे थे।

–ख़ैर छोड़िए इन गम्भीर बातों को, क्योंकि माउंटबेटन साहब...मुझ जैसे भिखमंगे के सवालों का जवाब देने में आप अपनी तौहीन समझते हैं, लेनिक मैं सिर्फ़ भिखमंगा ही नहीं, अपने देश का नागरिक भी हूँ! और एक नागरिक के सवालों का जवाब देने से तुम्हें गुरेज़ नहीं करना चाहिए। तुम इंडिया के आख़िरी वायसराय थे, लेकिन मैं तो तुम्हारी सल्तनत का आखिरी भिखमंगा नहीं हूँ....मेरी नस्ल तो तुम्हारे जाने के बाद भी फल-फूल रही है। और मुझे खुशी है कि अब मेरे जैसा एक मजलूम आदमी ही भिखमंगा नहीं है, बल्कि अब अफ्रीका, लैटिन अमरीका, कम्बोदिया, इंदोनेशिया जैसे पचासों मुल्क भी हमारी जमात में आ मिले हैं....हमारी नागरिकता अब अंतराष्ट्रीय हो गई है....ये देश अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से भीख माँगते हैं, मैं लाहौर पाकिस्तान की जामिया मस्जिद के बाहर भीख माँगता हुआ भारत के माउंट मेरी चर्च और महालक्ष्मी मन्दिर की भिखारियों की

कतार में भी भीख माँग सकता हूँ और साउथ अमरीका के ब्युनेस आयर्स के चर्च के सामने खड़ा होकर भी लोगों की धार्मिक करुणा को जगा सकता हूँ....लेकिन तुम लोगों ने अपनी मुनाफा केन्द्रित स्पर्धा के चलते करुणा को एक बेकार मूल्य बना दिया है....सुनो माउंटबेटन ! करुणा में ही मानवीय न्याय का महामंत्र मौजूद है। जो सभ्यताएँ करुणा रहित हो गईं, वे समाप्त हो गईं....

अदालत में मौजूद सभी लोगों ने अपने दुःख-दर्द, यातना और विषाद को भूलकर भिखमंगे कबीर की ओर देखा। वह कुछ ऐसी बातें कर रहा था, जिनसे सदियों के जख्मों की टीस कुछ कम हो रही थी।

–बस मुझे आखिरी सवाल का जवाब दे दीजिए! कबीर ने कहा–क्या जिन्ना साहब की मरणान्तक बीमारी के बारे में तुम्हें कुछ नहीं मालूम था?

–नहीं! माउंटबेटन ने कहा।

–इस सवाल का क्या औचित्य है? किसी ने भीड़ में से पूछा।

–है! औचित्य भी है और विभाजन की त्रासदी से भी उसका गहरा लेना देना है....माउंटबेटन ने विभाजन की ज़िद के लिए जिन्ना को बार-बार ज़िम्मेदार ठहराया है। सारा इल्ज़ाम उन पर डाल कर खुद को बरी किया है....अब कहा यह जाता है कि जिन्ना साहब की घातक और मरणान्तक बीमारी का यदि पता चल गया होता तो कांग्रेस के आन्दोलनकारी नेता आज़ादी की जल्दबाजी को टाल सकते थे! जिन्ना साहब के बाद मुस्लिम लीग का कोई ऐसा कद्दावर नेता नहीं था, जो धर्म के आधार पर दो राष्ट्रों के सिद्धान्त की पैरवी करके पाकिस्तान हासिल कर पाता!....सच्चाई यही थी न माउंटबेटन साहब? उनकी बीमारी का पता होता तो इंडिया विभाजन की त्रासदी से बच जाता!

–यस! माउंटबेटन ने कहा।

–क्योंकि बम्बई के डॉ. जाल पटेल के पास जिन्ना साहब के एक्सरे मौजूद थे। डॉ. पटेल ने उन्हें जीने के लिए साल-डेढ़ साल से ज़्यादा का वक्त नहीं बख़्शा था!

–यस! और डॉ. पटेल ने मि. जिन्ना की इस घातक बीमारी का राज़ छिपा के रखा था!

–लेकिन क्यों? डॉ. पटेल राजनीतिज्ञ तो नहीं थे....क्या आप यह कहना चाहते हैं कि यह रहस्य पूरे देश को पता चल गया होता तो पार्टीशन से बचा जा सकता था!

–यस!

–यानी डॉ. पटेल इंडिया का पार्टीशन चाहते थे!

–मैं इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता!

–क्या आपकी वे सरकारी गुप्तचर एजेन्सियाँ जो हिटलर और मुसोलिनी जैसे फौलादी तानशाहों के अंदरूनी राज़ खोद लाती थीं, वे जिन्ना साहब की बीमारी की जानकारी से महरूम थीं? वैसे भी जिन्ना साहब तन्दुरुस्त आदमी नहीं दिखाई पड़ते थे।

देखने से ही वे बीमार लगते थे। उम्र में भी वे सत्तर पार कर चुके थे....तब उनकी तपेदिक की बीमारी को रहस्य की तरह क्यों छिपाया गया?

–यह मुस्लिम लीग की दाँव-पेंच भरी कूटनीतिक चाल भी हो सकती थी, क्योंकि लीग जानती थी कि मि. जिन्ना के अलावा उनके पास और कोई नेता नहीं है, जो जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे बड़े दिमाग़ों का मुकाबला कर सके....दो राष्ट्रों के सिद्धान्त से धर्म, सांस्कृतिक साक्ष्य और तर्क के आधार पर लड़ सके! माउंटबेटन ने कहा–इसी के साथ यह भी सही है कि मि. जिन्ना की इस टर्मिनल बीमारी के बारे में खुद मुझे या मेरी सरकार को कुछ भी पता नहीं था!

–यह तो बड़े ताज्जुब की बात है! जिन्ना साहब को प्लूरिसी हो चुकी थी। ब्रोंकोइटिस के प्रकोप से वे हमेशा ग्रस्त रहते थे, साँस की बीमारियाँ उन्हें थीं ही...और जब मई 1946 में वे शिमला से लौट रहे थे, तो ट्रेन में इतने बीमार पड़े थे कि फातिमा जिन्ना, उनकी बहन को, बीच रास्ते में डॉ. पटेल को बुलाना पड़ा था....तब भी आपकी सरकार को जिन्ना साहब की बीमारी की गम्भीरता का अन्दाज़ नहीं हुआ?

–नहीं! मुझे इसका कोई इल्म नहीं है! माउंटबेटन ने कहा।

–हम आपकी सर्वशक्तिशाली चालबाज़ सरकार और आपकी इस मासूमियत पर दिलो-जान से फिदा हैं! कबीर ने व्यंग्य से कहा–हालाँकि जिन्ना साहब की प्राणघातक बीमारी को राजनीति की बिसात पर हार जीत का मोहरा बनाना एक घोर अमानवीय नज़रिया है; लेकिन क्या यह सही नहीं है कि उनकी बीमारी के चलते आपकी साम्राज्यवादी सत्ता, औपनिवेशिक राजनीति और खुद आपने भारत की आज़ादी को लेकर निर्णायक फ़ैसले पहले ही ले लिए थे?

–मैं कहता हूँ कि इतिहास के साथ यह तर्कहीन बेहूदा खिलवाड़ खेलना बन्द कीजिए! माउंटबेटन ने तिलमिला कर कहा।

–माउंटबेटन साहब! सच्चा इतिहास सिर्फ़ वह नहीं है जो साम्राज्यवादी नस्लों ने लिखा है....सच्चा इतिहास वह है जिसकी इबारत शोषित और दलित देशों की आत्मा पर आज भी उत्कीर्ण है! कबीर ने दहकते हुए शब्दों में कहा–हमारे पास इतिहास की नदियाँ मौजूद हैं, तुम्हारे पास वे नहरें हैं, जो तुमने तर्कों और स्वार्थों की कुदाल से खोद-खोद कर निकाली हैं, इसलिए इतिहास का वास्ता हमें मत दो। तुमने अपना इतिहास लिखा है, हमने तुम्हारा इतिहास जिया है!

अदालत में खलबली मच गई। कुछ लोगों ने जय-जयकार के नारे लगाते हुए कबीर को कन्धों पर उठा लिया। माउंटबेटन ने घबराहट से इस नज़ारे को देखा।

अदीब ने हस्तक्षेप करके अदालत में अनुशासन क़ायम किया–यह अदालत सिर्फ़ सच्चाई की पैरोकार है! और सारी सच्चाइयाँ यहाँ कहानियाँ बन के खड़ी हैं! सलमा किसी भी देश में अपनी दिली सच्चाई को लेकर नहीं रह सकती....सुरजीत कौर पार्टीशन के दिन

से अपने बेहोश बेटे को कन्धे पर उठाए घूम रही है....अब इसका यह बेटा पचास-बावन साल का हो गया....बूटासिंह अपनी चिथिड़े-चिथड़े लाश लिए खड़ा है....विद्या का तांगा उड़ते-उड़ते कहाँ पहुँचा है....और पंख लगा घोड़ा उसे कहाँ ले गया है, इसका भी कुछ पता नहीं। ये अकेले तो नहीं....लाखों हैं और यह कबीर दोनों मुल्कों का जीता जागता नुमाइन्दा है....इसे हक़ है कि....

–इसीलिए अदीबे आलिया मैं माउंटबेटन साहब से कुछ ख़ास जवाबों का तलबगार हूँ! कबीर ने अदीब की बात को काटते हुए बीच में कहा–मैं पूछना चाहता हूँ कि माउंटबेटन के सामने ऐसी कौन सी अड़चन पेश थी कि ये भारत को तूफ़ानी जल्दबाजी और ताबड़तोड़ तरीके से आज़ादी देना चाहते थे?

–यह फ़ैसला मेरा नहीं, ग्रेट ब्रिटेन के लेबरदलीय प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली साहब का था। वे भारत की आज़ादी के पक्षधर थे! यह फ़ैसला उन्हीं का था।

–यह ठीक है कि ऐटली साहब ने भारत को आज़ादी देने का फ़ैसला लिया था, लेकिन इतिहास बताता है कि भारत को कैसी आज़ादी दी जाए, यह फ़ैसला आपके शाही खानदान और चर्चिल ने लिया था!....क्या आप भारत रवाना होने से पहले चर्चिल और अपने सम्राट से नहीं मिले थे?

–वह रस्मी मुलाकातें थीं!

–और युद्धकाल में चर्चिल के सहायक रहे लार्ड इज़्मे और शाही हितों, साजिशों के लिए विख्यात, धुरन्धर साम्रज्यवादी षड़यंत्रकारी सर कोनराड कोरफ़ील्ड को रस्मी तौर पर आप अपना ख़ास सहायक और सलाहकार बना कर लाये थे! है न?

माउंटबेटन ने खामोश रहना ही मुनासिब समझा। पर वो भीतर ही भीतर गुस्से से दहक रहा था।

–एक आख़िरी सवाल! कबीर ने कहा तो सबने उसे गहरी उत्सुकता से देखा।

–आपकी पार्लियामेंट के हाउस आफ कॉमंस ने तो आज़ादी जून 1948 में हस्तान्तरित करने का फ़ैसला किया था, लेकिन आपने ताबड़-तोड़ जल्दबाजी दिखाते हुए अगस्त 1947 में ही आज़ादी हस्तान्तरित करने का फ़ैसला क्यों लिया?

माउंटबेटन खामोश नहीं रह सका–

–इसलिए कि भारत में गृहयुद्ध भड़कने के सारे हालात मौजूद थे! मुस्लिम लीग की कॉल पर बंगाल डायरेक्ट एक्शन डे के नतीजे देख चुका था।

–यह हौवा आप हमें बहुत बार दिखा चुके थे....इसीलिए आजिज़ आकर गाँधी जी ने कहा था, आप हमें भगवान भरोसे छोड़ दो। जो कुछ होगा, हम भुगत लेंगे...लेकिन आप तो यह तय करके आए थे कि भारत को आज़ादी देनी ही पड़े, तो कैसी आज़ादी दी जाए!...नेहरू और पटेल को लँगड़ा भारत सौंप दिया जाए और जिन्ना को दीमक लगा पाकिस्तान थमा दिया जाए! इस महादेश का विभाजन कर दिया जाए!

–नहीं....नहीं! यह सरासर ग़लत है....माउंटबेटन चीखा।

–नहीं! यह ग़लत नहीं है, क्योंकि तुम और तुम्हारी साम्राज्यवादी सत्ता, हमसे, हमारी 1857 की क़ौमी एकता का बदला लेना चाहती थी!....आवाज़ तो जैसे ब्रह्माण्ड से आई थी। आवाज़ का मालिक तो अमूर्त था, पर आवाज़ गूँज रही थी। उस की खनक को कबीर ने पहचाना। उसने बताया–यह आवाज़ शहीदे आज़म भगतसिंह की है!

•

32

सन् 1857! लेकिन इससे पहले सन् 1757!

एक गूँजती आवाज़ फिर पूरे ब्रह्माण्ड में छा जाती है–
लमहों ने ख़ता की थी
सदियों ने सज़ा पाई...

–यह ख़ता जहाँगीर ने की थी! अर्दली पागलों की तरह चीख रहा था–जब हमने इन अंग्रेज़ व्यापारियों को सूरत के बंदरगाह पर लंगर डालने और गोदाम बनाने की इजाज़त दी थी! याद कीजिए अदीब! जब अफ्रीका के दक्षिणी छोर से इन समुद्री लुटेरों के जहाज़ पूरब की ओर बढ़े थे, तब मैं आपको तलाशता हुआ होटल टुशरॉक पहुँचा था...लेकिन तब तो आप अपने निजी सुख और सौन्दर्य की तलाश में व्यस्त थे...उसी का नुकसान अब यह 1857 उठा रहा है...हुजूरे आलिया! सुख और सौन्दर्य उसे ही हासिल है जिसे अपनी, और अपने समय की आज़ादी हासिल है...नहीं तो अधूरे सुख और बीमार सौन्दर्य को ही पराजित नस्लें अपना सम्पूर्ण सुख और परम सौन्दर्य स्वीकार कर लेती हैं!...वह देखिए अदीबे आलिया! इन अंग्रेज़ ईस्ट इण्डिया ट्रेडिंग कम्पनी के व्यापारियों ने हुगली के मुहाने पर क्या किया है? नील, अफ़ीम, काली मिर्च, लौंग, इलायची, अदरक और दालचीनी के बदले में इन्होंने अपनी सैकड़ों वेश्याएँ बंगाल के तट पर उतारी हैं...यह बीमार सौन्दर्य है जो भारत के तटों पर उतरा है और राबर्ट क्लाइव ने बीमार सौन्दर्यवाली इन पन्द्रह विदेशी वेश्याओं को बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के सिपहसालार मीरजाफर के हरम में अभी-अभी भिजवाया है...क्लाइव के षड्यंत्र जारी हैं...अपना भाषण जारी रखते हुए अर्दली ने जैसे एक बृहद इतिहास-मंच निर्मित कर लिया था। पर्दे की डोरियाँ उसके हाथों में थीं और वह ख़ुद ही उद्घोषक भी बना हुआ था। पर्दा उठाते हुए वह उद्घोषणा करने लगा–

–मलिका नूरजहाँ के ज़रिए शहंशाह जहाँगीर का इजाज़तनामा पाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने एक तरफ तो अपनी जड़ें मजबूत करनी शुरू कर दीं, दूसरी तरफ वे हिंदुस्तानी हुकूमत की जड़ें खोदने के तरीके तलाशने लगे। मुग़ल सल्तनत बिखरने लगी थी। छोटे-छोटे रजवाड़े-नवाब आपस में लड़ने-भिड़ने लगे थे...सौदागर बनकर आई ईस्ट इण्डिया कम्पनी इन हालात का फायदा उठाकर जमींदारी और सूबेदारी के सपने देखनी लगी। बंगाल में पैर जमाने के साथ-साथ अंग्रेजों ने मालगोदामों के नाम पर क़िले बना लिए। मालगोदामों की चौकीदारी के नाम पर फौज खड़ी कर ली। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यह गैरकानूनी हरकतें बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को मंजूर नहीं थीं...

उद्घोषक अर्दली के शब्दों के साथ मंच का पर्दा उठा और बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला क्रोध से धधकता हुआ सामने आया–

–नहीं ! हमें यह कतई मंजूर नहीं ! हम नहीं चाहते कि यह सौदागर फिरंगी कम्पनी हमारी सरज़मीं पर किले तामीर करें और फौज रखें। हम जानते हैं, वह शाही इजाज़तनामे के बारे में झूठ बोल रहे हैं...ऐसा कोई फरमान शहंशाह ने जारी नहीं किया है, जो इन्हें गोदामों की जगह क़िले तामीर करने की इजाज़त देता हो ! हम अंग्रेजों की ग़लतबयानी और जालसाज़ी का पर्दाफाश करेंगे। हम बंगाल में शहंशाह के नुमाइंदे हैं। हम फिरंगियों की कोठियों और नाजायज़ किलेबंदियों पर हमला करेंगे...इस नाजायज़ कब्ज़े को ख़त्म करेंगे !

पटाक्षेप !

उद्घोषक फिर मुखातिब हुआ–

–ईस्ट इण्डिया कम्पनी का वह मामूली-सा कारिंदा राबर्ट क्लाइव अब कत्र्ता-धत्र्ता बना बैठा है। उसने धूर्तताभरी साजिशें शुरू कर दी हैं। गोरी वेश्याओं के ज़रिए उसने नवाब सिराजुद्दौला के सेनापति मीरजाफर को अपना गुलाम बना लिया है। मीर जाफर को क्लाइव ने सिराजुद्दौला की गद्दी का लालच भी दिया है...और वह देखिए–सामने खड़ा है सन् 1757 और प्लासी का रक्तरंजित युद्ध-मैदान ! मीरजाफर गद्दारी कर रहा है। वह सेना की अपनी विश्वस्त टुकड़ी सहित क्लाइव से मिल गया है...

तभी अर्दली डोरियाँ खींचता है।

पर्दा उठता है...

सामने मौजूद है प्लासी का युद्ध-मैदान। गरजती तोपें। बारूद के विस्फोट। धुआँ। हाहाकार। युद्ध घोष। सनसनाती गोलियाँ। दौड़ते घोड़ों की टापों की आवाज। चीत्कार।

पटाक्षेप !

और उद्घोषक अपना अगला बयान देता है–

–नवाब सिराजुद्दौला षड्यन्त्र और गद्दारी का शिकार हो गया...वह युद्ध हार गया...और सात बरस बाद सन् 1764 में बक्सर की लड़ाई जीत कर अंग्रेजों ने अपनी उपनिवेशवादी जड़ें हिन्दुस्तान में जमा लीं और भारत के स्वतन्त्र राज्यों के खिलाफ दुरभिसन्धियाँ और साजिशें शुरू कीं...दूर दकन के मैसूर राज्य के शासक हैदर अली ने अंग्रेजों के इरादों और साजिशों को मंजूर करने से इनकार कर दिया है।

पर्दा उठता है।

हैदर अली और उसकी बेगम बातों में मशगूल हैं।

–नहीं बेगम, आप नहीं जानतीं, इन फिरंगियों की साजिशों ने शुमाली हिन्दुस्तान में क्या-क्या किया है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपहसालार क्लाइव ने बंगाल के नवाब

सिराजुद्दौला के आला वजीर और सिपहसालार मीरजाफर को खरीद कर उन्हें धोखे से हरा लिया है। प्लासी की जंग जीतने के बाद उन्होंने बक्सर की लड़ाई भी जीत ली है!

–लेकिन मेरे सरताज! यहाँ पांडिचेरी में फिरंगी फ्रांसीसी भी तो डेरा डाले हुए हैं। वह अंग्रेजों के दुश्मन हैं, इसलिए वह हमारे दोस्त हो सकते हैं!

–नहीं बेगम, नहीं, ग़ैरमुल्की कभी भी हमारे दोस्त नहीं हो सकते–वे चाहे फ्रांसीसी हों या अंग्रेज़। दोनों हमारी आजादी के दुश्मन हैं। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि मुल्क के जनूब में फ्रांसीसी हैं तो शुमाल में फिरंगी अंग्रेज...

–ख़ुदा मेरे सरताज को सलामत रखे...

–बेगम! हमारी सलामती से ज़्यादा मुल्क की सलामती और आज़ादी ज़रूरी है...इंशा अल्लाह, जब तक हिन्दुस्तान में हैदर अली ज़िन्दा है, अपना मुल्क गुलाम नहीं हो सकता!

पटाक्षेप!

उद्घोषक का बयान शुरू होता है–

–हैदर अली ने लड़ते-लड़ते ईस्ट इण्डिया कम्पनी का नातका बन्द कर दिया, लेकिन 7 दिसम्बर 1782 को अर्काट से सोलह मील दूर चित्तूर के फौजी मैदान में उसकी ज़िन्दगी का चिराग़ बुझ गया...तब हैदर अली के बेटे टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के खिलाफ जंग की कमान सँभाली!

पर्दा उठता है।

–सुनो! सुनो! आज अल्लाह का यह बन्दा और मादरे-वतन का यह खादिम टीपू सुल्तान जानता है कि मुल्क के कुछ हिस्सों में फिरंगियों की साजिशें क़ामयाब हो गई हैं। वह गंगा-यमुना की वादी को अपने पैरों तले रौंद रहे हैं...हम गंगा-यमुना की घाटी तक तो नहीं जा सकते, लेकिन हम वादा करते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नापाक क़दम अपनी पाक-पवित्र कावेरी नदी के इलाके में नहीं पड़ने देंगे! हमें हैरत और अफ़सोस है कि हमारे देशवासी ही, चाहे वे पेशवा मराठे हों या हैदराबाद के नवाब या दूसरी रियासतों के वली, वे फिरंगियों की कठपुतली बनकर अपने ही लोगों का गला काट रहे हैं...और घर की इस फूट का फायदा उठा रहे हैं–फिरंगी लुटेरे!

पटाक्षेप!

उद्घोषक ने फिर बयान शुरू किया–

–फिरंगी लुटेरों की लूट जारी थी लेकिन इस लूट और गुलामी के खिलाफ संघर्ष भी जारी था। कित्तूर की रानी चेनम्नमा, त्रावनकोर के वेलू थम्पी, सन्थाल परगना के आदिवासी सरदार तिलका माँझी और मठों के संन्यासी लगातार ईस्ट इण्डिया कम्पनी से लोहा ले रहे थे...

–अर्दली महमूद अली!

झंझावात की तरह हरहराती, गूँजती, पुकारती तभी एक आवाज़ हिमालय की ऊँचाइयों को लाँघती वहाँ आई। अर्दली ने आवाज़ को पहचाना। यह तो उसके अदीब की आवाज़ थी।

–अदीबे आलिया! आप कहाँ से पुकार रहे हैं?

–मैं चीन देश के दक्षिणी बन्दरगाह कैन्टन से तुम्हें पुकार रहा हूँ...

–आप वहाँ कैसे पहुँच गए?

–क्यों? तुम्हीं ने तो मेरी कहानियों के एकान्त में खलल डालकर बताया था कि दक्षिणी अफ्रीका के तटों को पार करते हुए फिरंगी लुटेरों के जहाज़ी बेड़े पूरब की ओर बढ़ गए हैं...तुम्हारी इस इत्तला की वजह से ख़ुद को गुनहगार समझते हुए सलमा अलविदा कह कर चली गई थी। रुकी हुई शाहीन की दर्दनाक कहानी कहीं अधूरी छूट गई थी। विद्या के ताँगे के उड़नेवाले घोड़े की दास्तान रुकी रह गई थी...सुरजीत कौर अपने बेहोश बेटे को कन्धे पर लादे उसकी शाश्वत बेहोशी का कारण पूछ रही थी और बूटा सिंह रेल से कटी अपनी लाश को लिए कहानी लिखे जाने का इन्तजार कर रहा था...अर्दली महमूद अली! तब तुम्हीं ने मेरी कहानियों को ग़ैर-ज़रूरी बताया था और मुझे लानत भेजी थी...तभी से मैं तुम्हारी लानत और धिक्कार को लादे हुए भटक रहा हूँ...देश-देश में खानाबदोशी की ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ। यह अभिशाप तुमने मुझे दिया है, नहीं तो मैं अपनी संवेदना, करुणा और सौन्दर्य को लेकर अपने दौर की वह कहानियाँ लिख रहा होता, जो लिखनी चाहिए थीं ! तुम मेरी संवेदनाओं, करुणा और सौन्दर्य के हत्यारे हो...तुम्हीं ने मुझे खानाबदोश बनाया है!

–लेकिन आप चीन देश के बन्दरगाह कैन्टन पर कब और कैसे पहुँच गए? वहाँ जाने की आपको क्या ज़रूरत थी?

–अर्दली महमूद अली! यह सवाल और बहस मुझ से मत करो...क्योंकि दुनिया के हर देश में मेरा एक देश है! मेरा एक देश पाकिस्तान में है, कोसोवो में, अल्बानिया में, रूस, दागिस्तान, अफगानिस्तान, ईस्ट तिमोर में भी है। दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं है जिसमें मेरा देश नहीं है...इसीलिए चीन में भी मेरा एक देश है...और मैं यहाँ मौजूद हूँ!

–लेकिन किसलिए?

–इसलिए कि सौदागरों की जिस जमात ने अपना साम्राज्य स्थापित करके हिन्दुस्तान को जकड़ लिया है...वे ही उपनिवेशवादी फिरंगी अब चीन में बाज़ार बनाने के रास्ते तलाश रहे हैं इसलिए मुझे यहाँ आना पड़ा...और सुनो–बाज़ारों के लिए ही बनते हैं साम्राज्य! और साम्राज्यों को जीवित रखने के लिए ही बनाए जाते हैं बाज़ार! साम्राज्यों की नाभि बाज़ार से जुड़ी है। साम्राज्यों के रूप बदल सकते हैं...वे प्रजातांत्रिक आर्थिक साम्राज्य का रूप ले सकते हैं परन्तु, इन पूँजीवादी प्रजातन्त्रों को जीने के लिए मुनाफ़े के बाजारों की ज़रूरत है...बाज़ार! बाज़ार!! बाज़ार!!! यही है औद्योगिक क्रान्ति का सतत्

जीवित रहने की मजबूरी भरा सिद्धान्त ! यही है पूँजीवाद। इसी का दूसरा नाम है साम्राज्यवाद। तीसरा नाम है उपनिवेशवाद। और आज दस्तक देती हुई नई सदी में इसका नाम है बाज़ारवाद। यह व्यवस्था कच्चे माल की प्राप्ति और नित नए बाज़ारों के निर्माण के बिना जी नहीं सकती। यातना, विषमता और अवसाद के बीच यह देते हैं कृत्रिम उत्सव और उल्लास। सड़ती लाशों के अम्बार पर ये छिड़कते हैं क्रिश्चियन डियोर, शैनल और अमुआगे क्रिस्टल के इत्र। कटी हुई लहूलुहान गर्दनों में ये पहनाते हैं लानविन की नेकटाइयाँ और मेजोरिका के नेकलेस। टूटी हुई कलाइयों में ये बाँधते हैं राडो और रेमण्डवील की घड़ियाँ और चकनाचूर उँगलियों को ये पकड़ाते हैं मोंटब्लैंक और वाटरमैन के क़लम !

अदीब ने लगभग भाषण-सा दे डाला। सुनकर सभी सकते में थे। आखिर खामोशी को तोड़ते हुए अर्दली बोला–आप ठीक फरमा रहे हैं अदीबे आलिया ! आज भी इण्डिया के हजारों गाँवों में जहाँ पीने का साफ़ पानी नहीं पहुँच पाया है, वहाँ पेप्सी और कोक पहुँच चुका है...

–तो इसमें ग़लत क्या है ? कुतुब कॉलनी के तामारिंद कोर्ट से बीना रमानी की आवाज़ आई। 'इमली के आँगन' में मॉडल जेसिका लाल की लाश अभी पड़ी थी, उसे प्यार और आभार से थपथपाते हुए बीना रमानी ने कहा–यह हमारी नाचती-गाती कल्चर की पहली शहीद है...पैदा होने के फौरन बाद इसने माँ का दूध ज़रूर पिया था। फिर नहीं पिया। यह लगातार लिकॅर या बीयर पीती रही, क्योंकि दूध से ज्यादा प्रोटीन है बीयर में। सेब के रस से कम कैलोरीज़ हैं बीयर में...यही जेसिका लाल के दिलकश और खूबसूरत होने का राज़ था। वह तूफानी ख़ूबसूरती, जिसे देखकर मनु शर्मा पागल हो गया था...

–बन्द करो यह फिजूल बातें ! हमारी दुःख और सुख की दास्तानें रुकी पड़ी हैं और तुम बीना रमानी से उलझे हुए हो ! एक कहानी ने अर्दली को डाँटा–बुलाओ अदीबे आलिया को वापस। हमें उनकी ज़रूरत है ताकि हमारी ज़िन्दगी मुकम्मिल हो जाए !

–अदीबे आलिया इस वक्त चीन देश के कैन्टन बन्दरगाह में मौजूद और व्यस्त हैं मुझे नहीं मालूम वह वहाँ क्यों गये हैं। उन्हें कैंटन से बुला सकना मुमकिन नहीं है। अर्दली ने बताया।

–नहीं ! मैं इस वक्त सेंट्रल इण्डिया के मन्दसौर-झाबुआ इलाक़े में अफ़ीम के खेतों के बीच टहल रहा हूँ। यहाँ बहार आई हुई है...अफ़ीम के सफ़ेद, रेशमी, उन्नावी, शरबती फूलों का समुन्दर यहाँ लहरा रहा है...और लू-सुन मेरे साथ हैं।

–लू-सुन कौन ?

–चीन के सबसे बड़े अदीब !

•

33

लु-सुन अफ़ीम के फूलों का वैभव देख कर चकित और चिन्तित थे। वे धीरे से बोले–

–यह फूल जितने नाज़ुक और खूबसूरत हैं, इनका द्रव्य उतना ही मादक और हिंसक है...तुम्हें शायद नहीं मालूम अदीब, हिन्दुस्तान में पैर जमाने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जहाज़ियों ने चीन में अफ़ीम की तस्करी शुरू कर दी है...ये समुद्री लुटेरे हैं जो कलकत्ता के अफ़ीम के कारखानों से अपने स्टीमरों में अफ़ीम की पेटियाँ लेकर हमारे मकाओ द्वीप की खाड़ियों में छिप जाते हैं। वहीं से वांगसिया या कुआँचा के ज़रिए ये लुटेरे अफ़ीम की तस्करी करते हैं। चोरी छिपे इनके स्टीमर पर्ल नदी के मुहाने से घुस कर कैन्टन तक पहुँच जाते हैं...या फिर इनके स्टीमर चोरी छिपे लिंगतिंग या वाह्मपोआ में लंगर डालते हैं। और वहाँ से इस मादक द्रव्य की तस्करी करते हैं!

–आला अदीब! पहले भी तो हिन्दुस्तान से अफ़ीम का निर्यात आपके देश में होता था! अदीब ने लू-सुन से कहा।

–जी हाँ! चिंग राजवंश उसका आयात दवाइयों के लिए करता था। वह भी साल भर में कुल 200 पेटियाँ। लेकिन अब तो ब्रिटेन की सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इस अवैध व्यापार के लिए खुली छूट दे दी है। वे अब 200 नहीं 2000 पेटियों का धन्धा करते हैं। यह अफ़ीम कलकत्ते में ही दस गुने दामों पर नीलाम हो जाती है। इसके बाद यह हिन्दुस्तान से चीन के बन्दरगाहों पर तस्करी से उतारकर हमारे देश के अन्दर भेजी जाती है...

–चीन के अदीबे आलिया लू-सुन साहब! यह तो आपके देश और चिंग राजवंश की नपुंसकता का सबूत है कि आप इस तस्करी को रोक नहीं पा रहे हैं!

–वो इसलिए कि अफ़ीम का नशा अब हमारे चीन में कुलीनता और बड़ी ओहदेदारी का प्रतीक बन चुका है...देखिए हमारे देश को...

और अदीब ने देखा–प्राची की एक बड़ी सभ्यता अफ़ीम की अर्ध-बेहोशी में डूबी हुई थी। उनकी आँखों और नाक से काला धुआँ निकल रहा था। पर्ल नदी की धार काली पड़ गई थी। शंघाई, कैन्टन, नानकिंग, अमोय, फूचो, निंगपो बन्दरगाहों की सड़कों और गलियों में करोड़ों लोग चल फिर रहे थे, लेकिन उनकी छायाएँ नहीं थीं...वे एक दूसरे से पूछ रहे थे–हम किस शहर में हैं? हम कहाँ हैं?...

–यह तो बहुत भयावह है! अदीब ने लू-सुन से कहा–आप की इतनी बड़ी सभ्यता अर्ध बेहोश पड़ी है...इनकी परछाइयाँ भी न जाने कहाँ गुम हो गई हैं...

–परछाइयाँ गुम नहीं हुई हैं...हमारी जाति को अकर्मण्य बनाकर वे परछाइयाँ इन लुटेरों ने छीन ली हैं...हमें इन्होंने संस्कृति विहीन करना चाहा है...संस्कृति ही पूर्वजों की जीवित परछाइयों का संसार है। उनकी उपस्थिति हमेशा परछाईं की तरह मनुष्य के साथ रहती है...बड़ी सभ्यताओं को निस्तेज करने का यही तरीका इन विदेशी लुटेरों ने निकाला है...यह पहले पूर्वजों की परछाइयाँ छीनते हैं...अभी लू-सुन बोल ही रहे थे कि अर्दली ने दख़ल दिया–

–आप बिल्कुल ठीक फरमा रहे हैं हुजूर! सबसे पहले ये पूर्वजों की परछाइयों को क़त्ल करते हैं...संस्कृतियों का विनाश करते हैं, फिर पुरानी और पुख़्ता सभ्यताओं को बदलते हैं!...योरूप के सारे देश–स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड, इंग्लैण्ड, फ्रांस सत्ता लोलुपता, भौतिक सुख और मुनाफे की तलाश में हिंसक धर्मयुद्धों को जन्म देते रहे हैं...धर्म को इन्होंने सत्ता का हथियार बनाया है।

–मैं गवाह हूँ इसका! ओत्तोमन साम्राज्य का शहंशाह सलीम प्रथम चीखा–जीसस क्राइस्ट की करुणा, अहिंसा, पश्चाताप और दया के मानवीय महामन्त्रों के बावजूद उन्हीं को लेकर करुणा की जगह जितनी बर्बरता, अहिंसा की जगह जितनी हिंसा, पश्चाताप की जगह जितना श्रेष्ठताग्रस्त नस्लवाद और दया की जगह दयाहीनता और हत्या का जितना अमानवीय इतिहास इनके पास मौजूद है, वह तो दुनिया के किसी धर्म के नाम पर दर्ज नहीं है।

–तुम्हारे इस्लाम का इतिहास हम कैथलिक ईसाइयों से कहीं ज़्यादा बर्बर है! ख़ुद तुमने अपने धर्म भाइयों, शियाओं के साथ जो राक्षसी अत्याचार किए हैं, उन पर तुम पर्दा नहीं डाल सकते! फ्रांस के युवा राजा फ्रांसिस प्रथम ने शहंशाह सलीम को ललकारा–तुमने पर्शिया की जमीनों पर कब्ज़ा किया। तबरेज, कुर्दिस्तान को रौंद डाला। मेसोपोटामिया और मिस्र पर तुमने दरिन्दगी का क़हर ढहा कर उन्हें अपने अधिकार में ले लिया और इस्लाम की परम्परा को नकार कर तुम ख़ुद ख़लीफ़ा बन बैठे...तुमने सभ्यताओं का विनाश किया...ईसाइयों ने नहीं...

–तो क्या तुम्हारा स्पेनिश हेरनाण्डो कोर्टेस ईसाई नहीं था, जिसने मैक्सिको की फलती-फूलती माया सभ्यता को ध्वस्त किया था? अज़टेक साम्राज्य के बादशाह मोंतेज़ुमा को धोखा दे कर किसने मारा था ? तुमने किस बेरहमी से अमरीका के आदिवासी इण्डियन्स को खदेड़ा और उनकी हत्याएँ की थीं...उन्हें याद करो...तुम्हारा अनपढ़ निरक्षर सरदार पिजेरो लैटिन अमरीका के देश पेरू में घुस पड़ा था और पोटोसी पर्वत शृंखला के चाँदी के पहाड़ों को तोड़-तोड़ कर उसने स्पेन पहुँचा दिया था, जो तीन-तीन सदियों तक पूरे योरूप का भरण-पोषण कर सकते थे! तुम ईसाई डकैत हो! तुम लुटेरे हो...तुर्की से सलीम ने प्रतिवाद किया–तुमने धर्मरक्षकों के नाम पर क्रूसेडर्स पैदा किए!

–तुमने जेहादी पैदा किए!

–तुमने ईसाइयत के नाम पर अपना धर्मयोद्धा इग्नेशियस लोयला पैदा किया!

–तुमने इस्लामी जेहादी के नाम पर हसन-बिन-सबाह जैसा हत्यारा पैदा किया!

–तुम्हारे इग्नेशियस लोयला ने लाखों मुसलमानों को क़त्ल किया!

–तुम्हारे हसन-बिन-सबाह ने करोड़ों ईसाइयों को मौत के घाट उतारा!

–बन्द कीजिए आरोप-प्रत्यारोप की यह गन्दी और ज़लील बहस! लू-सुन ने अपनी धीर गम्भीर आवाज़ में कहा–सच्चाई यह है कि एशिया ने सारे धर्म और सभ्यताएँ पैदा की हैं और योरूप ने अपनी औद्योगिक क्रान्ति के बाद अपने मुनाफे के विदेशी बाज़ार तलाशने शुरू किए हैं...इसीलिए तुम पश्चिमवासी भौतिकतावादियों ने प्राच्य की सभ्यताओं पर आक्रमण शुरू किए हैं...तुम्हें नहीं मालूम था कि तुम्हारे समुद्री तटों के उस पार कोई और दुनिया भी है...तुमने सिर्फ सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान का नाम सुना था...जिसे खोजते हुए तुम्हारे समुद्री डकैत हिन्दुस्तान के मलाबार तट तक पहुँचे थे...और भारत की तलाश करते-करते तुम्हारा कोलम्बस अमरीका की अछूती धरती तक पहुँचा था। इस सत्य को मत भूलो कि भारत की तलाश में ही नई दुनिया तुम्हारे हाथ आई थी! तुम्हारे पास धर्म नहीं, धर्म का मुखौटा था। आत्मा की मुक्ति का तुम्हारा अभियान एक पाखण्ड था...तुम अपने जहाज़ों पर घोड़े और बारूद लेकर आत्मा को मुक्त करने नहीं, आत्माओं को गुलाम बनाने निकले थे.. .तुम्हारी भौतिक हवस ने पुरातन सभ्यताओं को ध्वस्त किया था। देखो इतिहास के पन्नों को! आखिर बौद्ध धर्म भी भारत से निकल कर समस्त एशिया में फैला था, लेकिन कहीं, किसी भी देश में रक्त की एक बूँद तक नहीं गिरी थी। बौद्ध साधु घोड़ों पर चढ़ कर बारूदी आक्रमण करने वाले धर्म-योद्धा नहीं थे...वे हिमालय जैसा पर्वत पैदल पार करके आए थे। वे समुद्री रास्तों से चले थे तो साथ में अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित युद्धपोत लेकर नहीं निकले थे। उनके हाथों में भाले, तलवार और बन्दूकें नहीं थीं। उनके बेड़ों पर तोपें नहीं थीं। उनके पास था शान्ति, अहिंसा और करुणा का सन्देश और उनके हाथों में था–बोधिवृक्ष! तब बड़े से बड़े पर्वत धर्म के पैरों तले झुक जाया करते थे। अगाध जलवाले सागरों की लहरें तब स्वयं मानवीय धर्म के सिद्धान्तों और शान्ति के सन्देश को एक सभ्यता के तट से दूसरी सभ्यता के तट पर पहुँचाया करती थीं...व्यापार और बाज़ार तब भी था। जिसे जितनी ज़रूरत थी, उतना ही आयात या निर्यात करता था। हमारी प्राची की सभ्यताएँ एक दूसरे की अर्थ-व्यवस्था की पोषक और पूरक थीं। उनमें मुनाफे की स्पर्धा और शोषण शामिल नहीं था...इसका सबूत हैं वे 3000 वर्षों की समस्त सदियाँ...जिन में कभी भारत-चीन युद्ध नहीं हुआ...

–लेकिन 1962 में तो युद्ध हुआ! एक तल्ख आवाज़ ने कहा।

–वह अंग्रेज़ साम्राज्यवादियों की छोड़ी हुई ग़लत सरहदी विरासत का नतीजा था! लू-सुन ने कहा।

तभी आसमान काला पड़ गया। सूरज छिप गया। आवाज़ें तिरोहित हो गईं और तोप के गोलों और बारूदी विस्फोटों की दहला देनेवाली आवाजें आने लगीं,

अदीब ने घबराकर पूछा–

–अर्दली महमूद अली! सूरज कहाँ गया? आवाज़ें कहाँ चली गईं? यह आसमान क्यों काला पड़ गया?

–अदीबे आलिया! वास्कोडिगामा ने कालीकट के बन्दरगाह पर तोपों से हमला किया है। उधर कोलम्बस ने जिस नई दुनिया को खोज निकाला है, वहाँ जो आदिम सभ्यताएँ मौजूद हैं, उन पर पुर्तगाली-स्पेनी लुटेरों ने हमला किया है। इस लूट में अनपढ़-निरक्षर, समाज बहिष्कृत, अपराधी, हत्यारे और बर्बर लोग ही शामिल हैं जो अपनी लूट का पाँचवा हिस्सा अपनी सरकारों को देकर वीर योद्धा और राष्ट्रभक्त होने की पदवियाँ पा रहे हैं। अपने देशों के सामन्तों, जमींदारों, राजे-महाराजों से भी ज़्यादा धनी और एय्याश सन्त-महन्तों का पूरा समर्थन इन हत्यारे-लुटेरों को प्राप्त है। ईसा मसीह ने पाप और पश्चाताप का जो मानवीय महामन्त्र दिया है, उसकी इन्होंने अपनी व्याख्या कर ली है...पाप इनके लिए अब पश्चाताप का कारण नहीं, पश्चाताप की कीमत अब चाँदी सोने में चुका कर पाप मुक्त हुआ जा सकता है...हरनांदो कोर्टेस ने माया सभ्यता को कुचल डाला है...अज़टेक कबीले के हज़ारों नौजवानों को मौत के घाट उतार दिया है...जंगलों को जला दिया है...अमरीका, त्रिनिडाड, कनाडा, मेक्सिको, क्यूबा, पनामा, ब्राजील, पेरू आदि भूखण्डों में उपनिवेश स्थापित किए जा रहे हैं...यहाँ के इण्डियन कबीलों का सफाया करके अफ्रीका के नीग्रो मजदूरी के लिए लाए जा रहे हैं...इन नीग्रो स्लेव्ज़ का व्यापार ठेकेदारों ने ले लिया है, उन्हें यहाँ जानवरों की तरह नीलाम किया जा रहा है...जलते जंगलों के कारण यहाँ के पंछी अपने देश छोड़ रहे हैं...इसीलिए सूरज को इन भागते-उड़ते पंछियों ने ढक लिया है...आसमान काला पड़ गया है...

तभी एक कराहती आवाज़ आई–

–अब आप सुन ही रहे हैं तो हमसे सुनिए हमारी सभ्यता की तबाही और बरबादी की कहानी!

–आप कौन हैं? अदीब ने पूछा।

–मैं मोंतेज़ुमा हूँ...अज़टेक साम्राज्य का सम्राट! मैंने हत्यारे कोर्टेस का मेहमान की तरह मेक्सिको में स्वागत किया था, लेकिन उसने जो क़हर हमारे कबीलों पर बरपा किया, उसका नतीजा था कि जिन्दा बची प्रजा और राज्य-परिषद मेरे विरुद्ध हो गई। मुझे सिंहासन से बेदख़ल कर दिया गया...फिर भी मैंने नए चुने गए सम्राट कुआहेतोमेक के आक्रमण से स्पेनी आक्रान्ताओं की जान बचाने का प्रयत्न किया...क्योंकि मैं जानता और मानता था कि हिंसा से हिंसा ही पनपेगी...मैं अपने कबीलों और नए सम्राट कुआहेतोमेक का विरोधी नहीं था...लेकिन मैं खून-ख़राबा नहीं चाहता था इसलिए मैंने ख़ुद कोर्टेस को

बताया था कि सम्राट कुआहेतोमेक के हमले से बचने के लिए वह अपने सैनिकों को लेकर पश्चिमी राजपथ से सुरक्षित निकल कर अपने देश स्पेन लोट जाए!

–मैं ज़रूरी तो नहीं समझता लेकिन फिर भी मैं अज़टेक सम्राट मोंतेज़ुमा के बयान में हस्तक्षेप करना चाहता हूँ! एक शाही ठण्डी आवाज़ ने कहा।

अदीब ने आवाज़ से पूछा–आपकी तारीफ?

–मैं स्पेन देश का शाही इतिहासकार हूँ–बर्नेल डियाज़! अब तुम दलित जातियों ने आज़ाद होकर अपनी अदालतें बना ही ली हैं तो मैं यही कहने, बताने और आगाह करने आया हूँ कि तुम लोग हमारे लिखित इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश मत करो! इतिहासकार बर्नेल डियाज़ ने बड़े सामन्ती अन्दाज़ में गर्वीली-तीखी चेतावनी दी।

–जनाब बर्नेल डियाज़...हम आपके इतिहास के शब्दों का विखण्डन करके मानवता के इतिहास के असली अर्थ पहचानना चाहते हैं...इसमें तो आपको आज़ाद हुई दलित जातियों से नाराज़ नहीं होना चाहिए! क्योंकि सत्य अखण्ड है...उसे आपके शाही शब्दों ने ढक रखा है...शब्दों से बहते रक्त और पसीने को पोंछकर आपने उन्हें कुलीन बना लिया है...आपने सड़ती लाशों, रक्त और पसीने की गन्ध को दुर्गन्ध बताकर शब्दों के परफ्यूम से, हत्याकाण्डों और सभ्यताओं के विनाश को अपने इतिहास की किताबों के लिए खुशबूदार बना लिया है। सारी उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादी सत्ताएँ खोखले नगाड़ों पर इन्सानी खाल के पल्ले मढ़ कर नगाड़चियों की तरह घोषणा कर रही हैं कि उन्होंने असभ्य दुनिया को सभ्य बनाया है! लू-सुन ने गुस्से के कारण माथे पर छलक आए गर्म पसीने को पोंछते हुए कहा ।

–लू-सुन साहब ! पसीना मत पोंछिए...मुझे आपके पसीने की तहक़ीक़ात और परीक्षण करना है ! कहता हुआ एक अजनबी खाली शीशियाँ लेकर उनकी तरफ बढ़ने लगा।

अदालत की खण्डपीठ में उपस्थित सभी लोगों ने उस अजनबी आदमी को आश्चर्य से देखा।

तभी अदीब ने उसे पहचाना–अरे, तुम शायद वही अश्रुवैद्य हो जो पिछली सदियों में हमें मिले थे...शायद तुम्हीं थे जो अपनी प्रयोगशाला में आँसुओं का परीक्षण करके मनुष्य के भौतिक और आत्मिक सन्ताप के कारणों का अनुसन्धान करने और उसके निराकरण के उपाय खोज रहे थे!

–हाँ, मैं वही अश्रुवैद्य हूँ अदीबे आलिया! लेकिन तब से अब तक दुनिया बहुत बदल गई है...अब तो हत्या, हत्यारों और ग़ुलामों का दौर चल रहा है। अपनी ही धरती पर कबीलों के कबीले मुर्दा पड़े हैं...और आप तो जानते हैं–आक्रान्ताओं और मुर्दों के पास आँसू नहीं होते...इसलिए अब मैं पसीने की तासीर पर अनुसन्धान कर रहा हूँ...कबीलों के बाद कबीले नष्ट कर देने के कारण इन उपनिवेशवादियों को मज़दूर नहीं मिल रहे हैं,

इसलिए ये लोग अफ्रीका-एशिया से अपने जहाज़ों में मेहनतकश कुलियों को भर कर लाते हैं। देखिए चलकर मेरे साथ...जरखरीद गुलामों का बाजार जो इन उपनिवेशवादियों ने डकार इलाक़े के समुद्रीतट के पासवाले टापू गोरी पर स्थापित कर लिये हैं। गोरी टापू से कोलम्बस के अमरीका तक सीधा समुद्री रास्ता जाता है...इसी पर बनाए हैं इन्होंने अपने आलीशान घर। इन्हीं घरों के नीचे हैं वे तबेले और बाड़े, जिनमें सेनेगल और मध्य अफ्रीका से लाए गए नीग्रोज़ को नंगा करके पशुओं की तरह जंजीरों से बाँध दिया जाता है। कीमत के लिए आदमी का धड़, बच्चों के दाँत और औरतों की छातियाँ देखी और मसली जाती हैं। पशु- आसन में औरतों के साथ संभोग किया जाता है। फिर इन्हें गोरी टापू से नावों में भरकर उन जहाज़ों तक पहुँचाया जाता है, जो इन गुलामों को अमरीका ले जाते हैं, और वापसी में यही जहाज़ लूटी हुई धन-सम्पदा अपने देशों को पहुँचाते हैं...शायद मालूम हो आपको कि पिछले एक वर्ष में इन आक्रान्ताओं ने अपने देशों को 16000 टन चाँदी और 180 टन सोने से भर दिया है...यह धातुएँ धरती की खदानों या पहाड़ों से नहीं निकली हैं बल्कि कबीलों के खजानों और मुर्दों के आभूषणों को भट्टियों में गलाकर इकट्ठी की गई हैं...अब इन्हें शहद की कमी पड़ने लगी है, इसलिए यह शकर के शौकीन हो गए हैं...मुर्दे तो खेती कर नहीं सकते, इसलिए यह अफ्रीका, इण्डिया, चीन, सुमात्रा, सीलोन से मजदूरों की नहीं, स्लेव्ज़ गुलामों की भरती कर रहे हैं ! वेस्टइण्डीज, क्यूबा, ब्राज़ील, जावा, फीजी, मारिशस में यह गन्ने की खेती करके योरूप के बाजारों में मनमाने मुनाफे पर शुगर सप्लाई कर रहे हैं...अफ़ीम की तस्करी करके, बदले में यह चीन से रेशम और चाय ले जा रहे हैं...चीन के रेशम के करघे बेकार हो गए हैं...तस्करी की अफ़ीम का मुनाफा सौ गुना ज़्यादा है क्योंकि तस्कर कोई कर या महसूल नहीं देते...

–यह अश्रुवैद्य जो कुछ बता रहे हैं, बिल्कुल सही है। इन अंग्रेज़ तस्करों का सरगना है–विलियम जार्डीन ! लू-सुन ने बताया–यही तस्कर अपने काले धन के बल पर सन् 1841 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का मेम्बर बना। दूसरा तस्कर है जेम्स माथेसन, जिसने उसी वर्ष वापस लौट कर तस्करी के काले धन से स्काटलैण्ड के पश्चिमी तट पर हजारों एकड़ का एक टापू खरीदा था...उस टापू के सिर्फ़ तटबन्धों की मरम्मत पर जेम्स ने तीन लाख उनतीस हजार पाउण्ड खर्च किया था ! इसी से आप उसकी अकूत सम्पदा का अन्दाज़ लगा सकते हैं ! और मैं इसे हैरत की बात नहीं मानता कि इस तस्कर और समुद्री लुटेरे को साम्राज्ञी विक्टोरिया ने अपने साम्राज्य का नाइटहुड दिया था...स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, ब्रिटेन और डचों के राजघरानों और इनके इतिहासकारों ने इन समुद्री लुटेरों और तस्करों को महान समुद्री यात्रियों, नई दुनिया के खोजियों और अन्वेषकों के खिताब दिए हैं...क्योंकि उन राजघरानों को इस लूट के धन में से पाँचवा हिस्सा बतौर नज़राना मिलता है और अपने उपनिवेश स्थापित करने के लिए धरती का एकाधिकार ! लू-सुन उत्तेजित होकर बताने लगे– इसी व्यापार में शामिल थीं ब्रिटिश-अमरीका की कम्पनियाँ पर्किंस और रसल, जो

तस्करी के लिए अपराधी गुण्डों की गन-बोट्स भी लाती थीं। साथ में आते थे इनके धर्म-प्रचारक, जो हमें परम्परागत आस्था से वंचित करके, हमारी सांस्कृतिक श्रद्धा को विस्थापित कर देते थे। हम अपनी आत्मा को लेकर अपने ही समाज और देश में शरणार्थी बन जाते थे...तब हमारी परछाइयाँ हमसे विद्रोह करती थीं...

–बिल्कुल यही हमारी सभ्यताओं के साथ हुआ था...हमारे साथ तो इससे भी अधिक घातक खेल खेला गया ! अज़टेक सभ्यता का सम्राट मोंतेज़ुमा चीख पड़ा–आला अदीबो ! हर सभ्यता, हर जाति, हर समुदाय हर सदी में अपने परम पुरुष ईश्वर के आने की प्रतीक्षा करता है...यह प्रतीक्षा ही सभ्यताओं और संस्कृतियों को जीवित रखती है...हमारी दुनिया के सारे कबीले भी इसी सनातन विश्वास को लेकर जी रहे थे कि हमारा ईश्वर एक दिन अवश्य आएगा...इन्होंने हमारे इस सनातन विश्वास का फायदा उठाया। इनके धर्म प्रचारकों ने हमारी भाषा, धार्मिक विश्वासों, रीति-रिवाजों का अध्ययन किया...वे हम जैसे बन गए हैं, यह भ्रम पैदा किया...और तब उनके वरिष्ठ धर्मप्रचारक अलवारेज़ ने हमें हमारी ही भाषा में चमत्कारी सूचना दी कि हमारा प्रतीक्षित ईश्वर आ गया है...हमारे गणचिह्न वाले परम पुरुष ने अवतार ले लिया है...तो हमने सहज ही विश्वास कर लिया...तब उस धर्मप्रचारक ने हमें बताया कि हमारा ईश्वर हरनांदो कोर्टेस है, जो घोड़े पर चढ़ कर अवतरित हुआ है...घोड़ा हमारे अनुभव के लिए विचित्र वाहन था क्योंकि हमारे कबीलों ने ऐसा पराजन्तु कभी देखा नहीं था। हमारे लिए वह विचित्र स्वर्गिक जीव था...जब घोड़े पर सवार अपने ईश्वर कोर्टेस को हमने देखा तो विश्वास नहीं हुआ...वह ईश्वर हमें अपने गणचिह्न और परिकल्पना से बहुत भिन्न लग रहा था। अश्व और पुरुष को हमने एक ही समझा था। लेकिन ईश्वर तो ईश्वर है, वह कोई भी रूप धारण कर सकता है...हमारे कबीले ने यही सोचकर यक़ीन कर लिया था...

शाही स्पेनिश इतिहासकार बर्नेल डियाज़ ने गुस्से और हिकारत से सम्राट मोंतेज़ुमा को देखा। तभी खण्डपीठ के न्यायाधिपति लू-सुन ने बर्नेल डियाज़ को घूरा और अदीब को अर्थभरी नजरों से देखा, फिर मोंतेज़ुमा को। मोंतेजुमा ने अपना बयान जारी रखा–

–अज़टेक की राज्य परिषद मुझे अपदस्थ कर ही चुकी थी। हमारे नए सम्राट कुआहेतोमेक ने कोर्टेस को दैवी अवतार मानने से इनकार कर दिया। इसलिए, हमारे कबीले को सबक सिखाने के लिए कोर्टेस ने मुझे पहले तो बन्धक बनाया, फिर बन्दी बना लिया। मैं शान्ति के पक्ष में था। हम माया संस्कृति के लोगों ने जम्बू महाद्वीप के किसी महापुरुष का महाकथन सुना था–कि जब पंछी तुम्हारे देश का बसेरा छोड़ दें, तब तुम अपनी आत्मा की ओर देखो...उसे प्रतिबन्धहीन स्वतन्त्रता दो...और जैसे पंछी आकाश में अपनी यात्रा की कोई छाया नहीं छोड़ता, वैसे ही तुम भी छायामुक्त हो जाओ !

अदालत में मोंतेज़ुमा की इतनी अगाध, गम्भीर और बोध सम्पन्न बात सुनकर सभी चमत्कृत थे।

–कोर्टेस चाहता था कि मैं उसकी ओर से नए सम्राट से सन्धि की बात करूँ लेकिन यह सम्भव नहीं था। मैं जानता था कि कोर्टेस फौजी तैयारी के लिए समय चाहता है। मैं कोर्टेस को धोखा नहीं देना चाहता था। मैं अपने नए सम्राट को भी धोखा नहीं देना चाहता था। कोर्टेस अब मेरा ईश्वर नहीं, मित्र था। मैं मित्रद्रोही नहीं हो सकता था। मैं देशद्रोही भी नहीं हो सकता था। मैंने सन्धिवात्र्ता के प्रस्ताव से इनकार कर दिया। इसी बात पर कोर्टेस ने मेरी हत्या कर दी। उसने मुझे मित्रता का यह सिला दिया...तभी से मैं मित्रता के मूल्यों की तलाश में भटक रहा हूँ...क्या महत्वाकांक्षी वक्त में मित्रता–शान्ति और सहअस्तित्व का आधार नहीं बन सकती ?

खण्डपीठ ने शाही इतिहासकार बर्नेल डियाज़ की ओर देखा। तो उसने कहा–

–इन्हें जो कहना है कह लेने दीजिए, इतिहास का सच क्या है, मैं बाद में बताऊँगा।

मोंतेज़ुमा ने अपना बयान जारी रखा–

–आला अदीबो ! अगर कोर्टेस सभ्य और ईश्वर की तरह दयालु होता तो हमारे कबीले इसके साथ भी रह लेते...हमारे पास धरती थी। जंगल थे। पहाड़ थे। नदियाँ और सागर थे। आकाश था। मैदान थे। खेत थे...अन्न था। पंछी थे। क्या नहीं था हमारे पास ? धरती ने हमें सब कुछ दिया था। खाली धरती की कमी नहीं थी...मेरी हत्या करके उसने मुझे एक उथली घाटी में फेंक दिया और जान बचाने के लिए सेना सहित पलायन करने लगा...तभी हज़ारों शंखध्वनियों के युद्धघोष ने उसे चौंका दिया। कोर्टेस घिर गया था। हमारे सम्राट के योद्धाओं ने तीर कमानों से शत्रु पर आक्रमण किया। जान बचाने के लिए कोर्टेस के सैनिक खाड़ी के पानी में कूद पड़े, लेकिन न वे तैर सके, न निकल सके...क्योंकि उनकी जेबों में लूट का सोना-चाँदी और कीमती पत्थर भरे थे...वे उन्हीं के बोझ से डूबे तो फिर जीवित निकल नहीं पाए।

–क्या यह वृत्तान्त सही है ? अदीब ने बर्नेल डियाज़ से पूछा।

–हाँ, यह सही है ! उसने ठण्डी आवाज़ में उत्तर दिया।

अदीब को गार्सिया लोर्का की याद आ रही थी, जो पैदा तो उन्नीसवीं सदी के अन्त में हुआ था, पर उसकी आनेवाली जनवाणी अदीब को इस समय भी सुनाई पड़ रही थी। आगे अदीब ने पूछा–

–फिर ?

मोंतेज़ुमा ने आगे कहा–हुजूरे आलिया ! तब से मित्रता भटक रही है...जंगल जल रहे हैं...पंछी पलायन कर रहे हैं...पंछियों ने शाप दिया है और प्रतिज्ञा की कि वे इन आततायी आक्रान्ता नस्लों के उपनिवेशों, इनके नगरों, महानगरों और घरों में कभी नहीं

आएँगे...देखिए योरूप, अमरीका, न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया के आकाश, नगर और महानगर...इनमें पंछी नहीं आते...

कुछ पलों के लिए खामोशी छा गई। उसे मोंतेज़ुमा की आवाज़ ने तोड़ा–

–आला अदीबो ! और एक था फ्रांसिसको पिजारो ! अनपढ़, निरक्षर और नाजायज़ सन्तान...अपने समाज से बहिष्कृत...उसने भी कोर्टेस की तरह दक्षिण अमरीका के आदिवासियों को ईश्वर बन कर छला था। वह भी धर्म-प्रचारकों के साथ घोड़े पर अवतरित हुआ था। उसने ध्वस्त किया था सूर्योपासक सूर्यवंशी 'इन्का' सभ्यता का अप्रतिम संसार! नृशंस पिजारो ने इन्का कबीलों का अस्तित्व मिटा दिया था...ब्राजील और पेरू की नदियाँ और खाड़ियों का पानी रक्त से बोझिल हो गया था। उसने बहने से इनकार कर दिया। डेल्टाओं और खाड़ियों के मुहानों पर फूली हुई लाशें अटक गईं...थका पानी जिन लाशों को ठेल पाया, उन्हें भी समुन्दर ने लेने से इनकार कर दिया। इससे जलचरों की सृष्टि विनष्ट होती थी...महीनों तक इनकी इतनी दुर्गंध फैली रही कि उसके विष से आहत होकर वृक्षों ने फल और पौधों ने फूल देने बन्द कर दिए।

कबीर ने उदासी से मोंतेज़ुमा को देखा।

–इसी पिजारो में...स्पेन के बादशाह चार्ल्स पंचम ने एकबार फिर कोर्टेस का रूप देखा था और इससे पहले कि वह कोई सफलता हासिल करे, फ्रांसिसको पिजारो को उसने पनामा का गवर्नर और कैप्टन जनरल बना दिया था...कभी सुना है आपने कि किसी सभ्य समाज में निरक्षर दाग़ी सन्तान को इतना बड़ा पद मिला हो ? लूट मार, हत्या और ज़मीन पर कब्जा करने के लिए बादशाह सलामत ने उसे लड़ाकू स्टीमर, सैनिक और घोड़े दिए थे...दरिन्दों की इसी फौज ने इन्का-सभ्यता के साम्राज्य को तबाह किया था।

–बहुत हुआ...अब बन्द करो यह बकवास...स्पेन का शाही इतिहासकार बर्नेल डियाज़ आख़िर चीख़ ही पड़ा–जिस इन्का सभ्यता का यहाँ गुणगान किया जा रहा है वह सभ्यता नहीं, असभ्य जंगली कबीलों का जमावड़ा था...इनके पास न भाषा थी न लिपि और न परिवहन के लिए पहिया...यह लोग निरक्षर थे...पशुओं से बदतर थे...

–तुम्हें मालूम है या नहीं कि तुम्हारे आने से पहले यह कबीले बड़े पैमाने पर आलू और मक्का की खेती करते थे! यह कृषि प्रधान समाज था...इनके अपने सहकारी गोदाम थे...अन्दियान पर्वत शृंखला की विशाल घाटी को इन्होंने ही खेती के योग्य बनाया था...इनका एक राजा था। मन्त्रिपरिषद थी। सरकारी कारकुन और सेना थी। किसानों के सहकारी गोदाम अन्न से भरे रहते थे...शाही घराने, अमलदारों और सेना का भरण-पोषण किसानों के अन्न भण्डारों से होता था...हर इन्का नागरिक सुबह उठते ही पहला प्रणाम सूर्य को करता था! मोंतेज़ुमा की आवाज गूँज रही थी–बोलो! यह सही है या नहीं ?

–बहुत हद तक यह ग़लत नहीं है!

–सच्चाइयों को मंजूर करने का बड़ा सोफ़ियाना अन्दाज है आपका! अदीब ने शाही इतिहासकार से कहा।

–लेकिन मैंने कहा न, यह असभ्य जंगली कबीलों का जमावड़ा था। भाषा-हीन...लिपिविहीन...इनके पास यात्रा के लिए पैर, पगडंडियाँ और रास्ते तो थे, लेकिन परिवहन के लिए वाहन नहीं थे...यह असभ्य थे! बर्नेल डियाज़ ने कहा।

–हमें जितनी और जैसी भाषा चाहिए थी, वह हमारे पास थी। प्रकृति के साथ हमने मौन भाषा का आविष्कार किया था और कृषि समाज के लिए पंछियों की भाषा से हमने स्वर और ध्वनियाँ ली थीं। हमारी भाषा संवेदना, उल्लास, विषाद और प्रकृति से संवाद की भाषा थी...हमारे सभी कबीलों ने मकड़ी की तन्तु-लिपि ईजाद की थी...जैसे मकड़ी जाला बुनती है, उसी तरह हम तन्तुओं को जोड़ कर उनमें मकड़ी की तरह गाँठें डालकर अपनी बात कहते थे...सूर्य और सागर की उपासना के तन्तुलिपि के वे सारे ग्रन्थ, तुम आक्रान्ताओं ने मछली पकड़ने के जाल समझ कर अग्नि-चिताओं में झोंक कर नष्ट कर दिए!...क्या यही तुम आक्रमणकारियों की सभ्यता है? कहते कहते मोंतेज़ुमा पसीना पोंछते हुए थक कर बैठ गया–हमें पहियों से ज़्यादा अपने पैरों पर भरोसा था!

अदालत परिसर में सवाल-दर-सवाल गूँजने लगे। उस माहौल को शान्त करते हुए लू-सुन ने शाही इतिहासकार से सवाल किया–

–सभ्य और असभ्य होने का आपका पैमाना क्या है?

शाही इतिहासकार चुप नहीं रह सका, वह गुस्से से बोला–मैं पैमानों, सभ्य समाज और असभ्य समाज की इस बेकार बहस में नहीं पड़ना चाहता...और बात खत्म करने के लिए आखिरी बात कहना चाहता हूँ कि अज़टेक सभ्यता के इस तथाकथित सम्राट मोंतेज़ुमा के कबीलों के सारे लोग नरभक्षी हैं!

अदालत में जैसे सबकी साँसें ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह गईं।

–इसका कोई गवाह और सबूत? लू-सुन ने लोगों की उत्सुकता का उत्तर पाने के लिए पूछा।

–पूछिए इसी सम्राट मोंतेज़ुमा से! यही मुझे और हरनाण्डो कोर्टेस को लेकर गया था–अपने मुख्य मन्दिर में...मन्दिर का रास्ता और फ़र्श ख़ून का दलदल था। प्रांगण की दीवारों को मानव रक्त से पोता गया था...मन्दिर के गर्भ गृह में ताजे मानव रक्त का एक कुण्ड था...चारों तरफ रक्त और सड़ते माँस की सड़ाँध भरी हुई थी...और अन्तिम आवास में हिंस्र दिखती मूर्तियों के चरणों में पाँच इन्सानी हृदयों के ताज़ा गोश्त के लोथड़े पड़े थे...वे उस समय भी धड़क रहे थे और उनसे रक्त बह रहा था...नरभक्षियों का इतना नृशंस और भयानक दृश्य मैंने या कोर्टेस ने कभी नहीं देखा था...स्पेन के शाही इतिहासकार बर्नेल डियाज़ के इस विवरण से अदालत में जुगुप्सा, घृणा, क्रोध से भरी प्रतिक्रियात्मक हलचल शुरू हो गई थी।

तभी एक स्पेनिश नागरिक ने खंजर निकाल कर मोंतेज़ुमा पर फेंका था, वह उसके सीने में समा गया था। मोंतेज़ुमा ने उस खंजर को सीने से निकालते हुए कहा—मेरे दोस्त ! हालाँकि तुमने दुश्मनी का यह खंजर मेरे सीने में मारा है, लेकिन मुर्दे दुबारा नहीं मरा करते...पूछो अपने इतिहासकार से कि वह और कितना झूठ बोलना चाहता है...

—यह झूठ नहीं हकीकत है ! शाही इतिहासकार ने आवाज़ ऊँची करते हुए कहा—मूर्तियों के सामने नशे में धुत जो अज़टेक पुजारी मौजूद थे, उन्होंने उन धड़कते इन्सानी दिलों के कच्चे लोथड़ों को उठा-उठा कर खाया था और अपने देवताओं को प्रसन्न किया था...इनकी सभ्यता के देवता नरबलि मंजूर करते थे और यह लोग ख़ुद नरभक्षी थे !...जितनी बदबू इसके उस मुख्य मन्दिर से आ रही थी, उतनी तो हमारे स्पेन के समस्त बूचड़खानों से नहीं आती थी...

—सुनो शाही इतिहासकार बर्नेल डियाज़ ! तुम्हारी जाति भी माँसाहारी है, हमारे कबीले भी। तुम अपने जानवरों को बूचड़खाने में काटते हो क्योंकि तुम्हें जीने के लिए जीव हत्या का कोई हिसाब अपने ईश्वर को नहीं देना है...हम अज़टेक और इन्का सभ्यता के नागरिक अपने गणचिह्नों और देवताओं को बताने के लिए प्रतिबद्ध थे कि हमने जीवित रहने के लिए कितनी पशु हत्या की है...इसीलिए हम पशुओं की बलि अपने देवताओं के सामने देते थे...जिसे तुम नरबलि कह रहे हो वह पशुबलि थी...तुम बूचड़खाने में जानवरों को काटते थे, हम अपने मन्दिरों में बलि देकर माँस को देवताओं के अनुग्रह के रूप में ग्रहण करते थे ! हमारी और तुम्हारी सभ्यता में यही मौलिक अन्तर था...मोंतेज़ुमा ने निर्णायक अन्दाज़ में कहा।

—लेकिन नरभक्षी होने के इल्जाम से यह अज़टेक और इन्का सभ्यता अभी बरी नहीं हुई है...यह मनुष्यता के विरुद्ध जघन्यतम आरोप है...इसकी तफ्तीश ज़रूरी है ! लू-सुन ने कहा तो अदीब ने स्पेन के शाही इतिहासकार से पूछा—

—महाशय ! नरभक्षी होने का जो इल्जाम और मन्दिर में नरबलि का जो विवरण तुमने दिया है, उसमें तुमने मंदिर के फ़र्श पर पड़े दिलों के जीवित लोथड़ों का ज़िक्र किया और यह भी कि पुजारियों ने उन्हें उठाकर खाया और अपने देवता को प्रसन्न किया...उसका कोई और गवाह ?

—मैं अकेला गवाह काफ़ी हूँ ! शाही इतिहासकार बर्नेल ने कहा।

—नहीं ! दो-दो बड़ी सभ्यताओं के खिलाफ एक व्यक्ति का अकेला साक्ष्य काफी नहीं है !

—और फिर उन सभ्यताओं के खिलाफ जो, अपने आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धान्त विकसित कर चुकी हों ! लू-सुन ने कहा—अभी कुछ देर पहले मैंने उस विकसित सभ्यता के सम्राट मोंतेज़ुमा के बयान सुने हैं...इन्होंने अभी कहा था कि यह हिंसा के विरुद्ध थे। इन्हें मालूम था कि हिंसा से हिंसा पनपती है...रक्तपात रोकने के लिए ही इन्होंने कोर्टेस

को सुरक्षित वापस निकल जाने का रास्ता बताया था। यह कबीले अगर असभ्य और नरभक्षी होते, तो कभी अपने ईश्वर की प्रतीक्षा नहीं करते ! सुना था आप ने इनका वह बयान कि जब पंछी तुम्हारे देश का बसेरा छोड़ दें, तब तुम अपनी आत्मा की ओर देखो, उसे प्रतिबन्धहीन स्वतन्त्रता दो...और जैसे पंछी आकाश में अपनी यात्रा की कोई छाया नहीं छोड़ता, वैसे ही तुम भी छायामुक्त हो जाओ !...और अपनी हत्या के बाद से यही मोंतेज़ुमा मित्रता के मूल्यों की तलाश में भटक रहे हैं...

–ठीक उसी तरह जैसे यूनानी सभ्यता का प्रमथ्यु अग्नि के लिए, सुमेरी सभ्यता का गिलगमेश जीवन-औषधि के लिए भटक रहा है...अदीब ने कहा–ठीक उसी तरह जैसे कबीर भारत और पाकिस्तान में ख़ैरियत की दुआओं के लिए और सुरजीत कौर अपने बेहोश बेटे की चेतना के लिए भटक रही है...महाशय बर्नेल डियाज़ ! यह विस्थापन आपकी गोरी नस्लों ने किया है...आप के अभियान सभ्यता के नहीं, हत्या के अभियान थे...आपने कबीलाई संस्कृतियों पर नरभक्षी होने का कलंक लगाकर अपने मुँह उजले करने चाहे हैं...सच्चाई तक पहुँचने के लिए हमें और गवाहों की ज़रूरत है। कहते हुए अदीब ने अर्दली महमूद अली को आवाज़ दी।

–हाजिर हूँ हुजूर ! अर्दली ने अदब से कहा।

–मेक्सिको के विजेता हरनांदो कोर्टेस को पेश करो ! और उन तमाम लोगों को भी पेश किया जाए जो अज़टेक के मन्दिरों में नरबलि के चश्मदीद गवाह हो सकते हैं !

अर्दली ने सम्भावित गवाहों को पुकारा–

सामने से जैसे पर्दा हटा। सदियों पुराने कब्रिस्तान की सारी क़ब्रों के कपाट खुले और उनमें से रतिक्रिया में आबद्ध नग्न युगलों का जुलूस अदालत की ओर आता दिखाई दिया। वह दृश्य उत्तेजक और पतित रूप से मनोरम था। वधिक वासना के वन्य वामाचार का वृत्तचित्र। पशु-आसनों का अनावृत अधम-लोक। गौर वर्ण पाण्डव पुरुषों का कबीले की कृष्णवर्णी औरतों के साथ कामनृत्य। सबसे आगे था हरनांदो कोर्टेस, अपनी कृष्णवर्णी मरीना के साथ रतिबद्ध।

न्यायाधिपतियों के साथ ही मोंतेज़ुमा और अन्य लोगों ने आँखें मींच लीं। लगभग सभी चीख पड़े–

–यह क्या हो रहा है ?

–हम इन्हें सभ्य बना रहे हैं ! यह करख़्त आवाज़ कोर्टेस की थी।

–लेकिन तुम्हारी किताबों के मुताबिक यह तो नरभक्षी कबीलों की औरते हैं ! और तुम इनके साथ...अदीब ने आँखें बन्द किए हुए ही आधा सवाल पूछा।

–किताबों की बातें किताबों में रहने दो। अर्ध सत्य ही सबसे बड़ा सत्य है...सत्य से साम्राज्य नहीं बनते...हमें रति विरत मत करो...कोर्टेस ने कहा और वह भृंगी के साथ

रतिमग्न हो गया, जिसका ईसाई नाम उसने मरीना रख लिया था। वे एक दूसरे को नखों से क्षत-विक्षत करने लगे।

तभी धरती में जैसे ज़लज़ला आया। भूगर्भ की चट्टानें एक दूसरे से टकराने लगीं। खुले मैदानों में विवर पड़ गए...वृक्ष बुरी तरह काँपने लगे। भयग्रस्त आँखों से अदीब ने देखा–हिरोशिमा हाँफता-भागता चला आ रहा था। चमड़ी जली हुई। कोटरों से आँखें झींगे की तरह निकली हुईं। नाखून जले हुए और बदन के हर हिस्से से पीव रिसता हुआ...सारे ही लोग उसे देख कर स्तब्ध थे।

–क्या हुआ हिरोशिमा? तुम इतने बदहवास क्यों हो? अदीब ने घबराते हुए पूछा।

–फिर वही दुर्घटना!

–कहाँ?

–तोकियामूरा में! तोकियो से सौ किलोमीटर दूर!

–कौन सी और कैसी दुर्घटना? मोंतेज़ुमा ने चिन्ता से पूछा।

–वही नाभिकीय ऊर्जा के विस्फोट की दुर्घटना...मेरे ऊपर जो परमाणु बम गिराया गया था, वह दुर्घटना नहीं, युद्ध समाप्त करने के नाम पर सोचा समझा परीक्षण था...मानव जाति पर किया गया जघन्यतम आक्रमण...अरे दरिन्दो! देखो मेरे इस क्षार-क्षार हुए शरीर को! नागासाकी के क्षत-विक्षत भूगोल को। माँओं की कोख में विकलांग हो गई अजन्मी सन्तानों को...प्रचण्ड तापमान में पिघल कर वाष्प की तरह उड़ जाने वाले लाखों मनुष्यों को...जल-जल कर खण्ड-खण्डों में टूट-टूट कर गिरनेवाले शरीरों को...मुँह तक आकर न निकल सकनेवाली मृत्यु की चीत्कारों को...घुटती साँसों में दम तोड़ती बेबस उसाँसों को...हिचकी लेती हिचक-हिचक कर मरती ज़िन्दगी को!...देखो मुझे! अगर तुम में साँस लेने का साहस है तो देखो मुझे! मैं हिरोशिमा हूँ!...हिरोशिमा! मेरे रक्तहीन शरीर से फूटती मवाद की इन गाढ़ी धाराओं को...रिसते हुए इसी चिपचिपे मवाद ने जोड़ रखा है मेरी जली हुई त्वचा को...मैंने ख़ुद झेला है मानव विनाश को। मृत्यु को। साँस लेने का साहस है तो देखो मुझे। मैं और नागासाकी, तब सन् 1945 में शहर थे, पर आज मैं एक प्रतिरोधी प्रतिवाद हूँ!

–हिरोशिमा! हम सब तुम्हारे साथ हैं! मोंतेज़ुमा ने उसके रिसते मवाद को गंगाजल की तरह अँजुरी में लेते हुए शपथ ली–हिरोशिमा! जो पाँच लाख मारे गए, जो माँओं की कोख में पिघल कर अजन्मे रह गए...हम अपने आँसुओं से उनका तर्पण करते हैं...पर हमें सन्ताप है उन बीस लाख लोगों का जो नाभिकीय विकिरण से विकलांग होकर, जीवन की इच्छा छोड़कर मृत्यु माँगने लगे!...

–सदियों पहले यही हुआ था कुरुक्षेत्र के मैदान में! अदीब ने सदियों के पार देखा–महाभारत युद्ध का काल वैदिक सभ्यता के चरम उत्कर्ष और पतन की पराकाष्ठा का

उच्चतम और निम्नतम बिन्दु है! इसी युग में कृष्ण के कर्म और जीवन सिद्धान्त के साथ सत्य के उच्चतम क्षण का उदय हुआ था और अट्ठारह दिनों के युद्ध के बीच बार-बार और तरह-तरह से उसी सत्य की हत्या हुई थी...युद्ध के पहले दिन जब महाधनुर्धर अर्जुन अपने नन्दिघोष रथ पर युद्ध भूमि में आया था, तब उसके सारथी कृष्ण ने उसे दिया था जीवित रहने के कारणों के परम सत्य का संज्ञान। तब कृष्ण ने किया था–मृत्यु से मृत्यु को जीतने का अभिनव आविष्कार। मौत कौरवों ने पैदा की थी, उसे जीतना ज़रूरी था। मौत को जीतने के लिए, युद्ध के पहले ही दिन हुई थी सम्बन्धों की मौत! दूसरे दिन हुई थी सम्मान और संवेदना की हत्या। तीसरे दिन हुआ था करुणा का अन्त। चौथे दिन सारी नैतिकताओं और धर्म के प्रतिमानों का पराभव और फिर बचा क्या था? युद्ध के लिए युद्ध का वरण! इसीलिए पाँचवे दिन हुआ था युद्ध उन्माद का उदय। और छठवें दिन शक्ति और साहस की जगह हिंसा और क्रूरता का अवतरण। सातवें दिन पैदा हुई थी घृणा! आठवें दिन हुआ था मृत्यु देने की वधिक स्पर्धा का जन्म और नौंवे दिन सारे मानवीय मान-मूल्यों का दमन और पतन–जब भीष्म पितामह ने विकराल रूप धारण करके पाण्डव वीरों को बुरी तरह घायल किया था, तब गीता के महाप्रणेता और युद्ध में तटस्थ कृष्ण स्वयं क्रोधातुर होकर भीष्म पर दौड़ पड़े थे, एक टूटे हुए रथ का पहिया उठाकर। युद्ध तो अट्ठारह दिन चला था, परन्तु दसवें दिन तक घायलों और विकलांगों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि उन्होंने जीवित रहने की इच्छा का विसर्जन कर दिया था। उसी तरह जैसे जापान में नाभिकीय विकिरण से विकलांग हुए बीस लाख लोग जीवन की इच्छा छोड़कर मृत्यु माँगने लगे थे!...

सभी लोगों ने आहत होकर मोंतेज़ुमा को उदासी से देखा था।

–तभी यह दृश्य देख कर पाताल सागर में उतरते हुए मुझे गिलगमेश ने आवाज दी थी और कहा था–जब तक मैं संजीवनी लेकर धरती पर पहुँचूँ, तुम मृत्यु से युद्ध करो...हिरोशिमा ने कहा–गिलगमेश ने यह भी कहा कि मृत्यु की इच्छा का निषेध करो...मैं तब से वही कर रहा हूँ!

–आमीन! मोंतेज़ुमा ने कहा–वैदिक आर्यों ने अपने ही वंशजों को मौत दी। क्राइस्ट की करुणा ने गौतम बुद्ध की करुणा की हत्या कर दी...लेकिन उसकी हत्या कोई नहीं कर सकता जो वेदों से पहले का आर्य है, जेहोवा से पहले का यहूदी है। जरथुस्त्र से पहले का पारसी है। गौतम बुद्ध से पहले का बौद्ध, ईसा से पहले का ईसाई और पैग़म्बर मुहम्मद से पहले का मुसलमान है!

–लेकिन मृत्यु हार नहीं मान रही है...हिरोशिमा ने कहा–तोकियामूरा में यूरेनियम क्रान्तिक हो गया। रेडियोधर्मिता सामान्य से बीस हज़ार गुना बढ़ गई है...मेरे ऊपर गिरे बमों के बाद यह पाँचवी खतरनाक दुर्घटना हुई है...

–यह रेडियोधर्मी विषाक्त तरंगें जापान की सरहद को पार करके चीन और कोरिया तक तो नहीं पहुँच जाएँगी? चिन्ताग्रस्त लू-सुन ने पूछा।

–शायद नहीं ! हिरोशिमा ने कहा–अधिकारी कह रहे हैं कि उन्होंने खतरे पर काबू पा लिया है...यही विण्डस्केल यूके में हुआ था। अमरीका के थ्रीमाइल पावर स्टेशन में, तीसरा रूस के प्रोसेसिंग प्लान्ट में और चौथा रूस के ही चेर्नोबिल में हुआ था । और अब पाँचवाँ यह ! खतरे के ख़तरनाक सातवें स्तर की दुर्घटना...हिरोशिमा क्रोधित होकर बोल रहा था–यह परमाणु पिशाच मानेंगे नहीं, इसलिए मैंने भी तय कर लिया है कि मृत्युधर्मी नाभिकीय संकट को जन्म देनेवाले जितने जनक और अपराधी हैं, मैं उन्हें उनकी क़ब्रों में चैन से सोने नहीं दूँगा...ट्रूमैन को तो मैं छोड़ूँगा नहीं। मैनहटन प्रोजेक्ट के वैज्ञानिकों और उसके व्यवस्थापक ब्रिगेडियर जनरल ग्रोव्ज़ को मैं चैन नहीं लेने दूँगा ! आइन्स्टीन को भी माफ़ नहीं किया जा सकता। राबर्ट ओपन- हाइमर, फर्मी, हंसबेथे, एडवर्ड टेलर और इनके साथ के सभी वैज्ञानिक, चाहे वे फ्रांस के हों, जर्मनी, ब्रिटेन या रूस के–वे मानव द्रोही और जघन्य अपराधी हैं। इन्हें क़ब्रों में चैन से सोने की एय्याशी बख़्शी नहीं जा सकती ! नहीं...नहीं...कभी नहीं ! कहता, चीखता, रिसता मवाद पोंछता हिरोशिमा पूरब की ओर चला गया।

•

वक्त हिरोशिमा के पीछे पीछे पूरब की ओर भागा, लेकिन हिरोशिमा उसके हाथ नहीं आया । आख़िर वक्त ने एक दूसरा ही नज़ारा देखा । एक क़ौम अपने मानसिक विस्थापन और धर्मकेन्द्रित विभाजन को नामंजूर करके दुनिया की सबसे बड़ी उपनिवेशवादी शक्ति के खिलाफ उठ खड़ी हुई है !

इस क़ौम ने अपने कटे हुए अंगों को देखा और पहचाना था।

क़लम के शब्द तो पढ़े जाने के मुंतज़िर थे, लेकिन क़लम चलने की बड़ी नाज़ुक सरसराहट की आवाज़ लगातार आ रही थी। यह क़लम दिल्ली के कूचे बल्लीमारान की एक हवेली में चल रहा था...जहाँ क़ौम का तुर्क असद-उल्ला खाँ उर्फ़ मिर्ज़ा नौशा तख़ल्लुस ग़ालिब, जिसके दादा क़ौक़ीन बेग़ खाँ समरकन्द से दिल्ली आए थे और बादशाह शाह आलम के दरबार में पचास घोड़े और नक्कारा निशान से नौकर हुए थे, उन्हीं के अकबराबाद-आगरा के घर में असद-उल्ला खाँ पैदा हुआ था। उसका सगा चाचा नस्रउल्ला बेग़ खाँ उस वक्त मरहठों की तरफ से अकबराबाद का सूबेदार था। यह आपसी वजहदारी और एक हिन्दुस्तानी क़ौम बनाने की तैयारी थी...उन्हीं दिनों असद उल्ला खाँ ग़ालिब दिल्ली पहुँचे, उमराव बेग़म से शादी के बाद। दिन अच्छे थे, बुरे थे। चाचा नस्रउल्ला बेग़ खाँ हिन्दू मराठों के सूबेदार बने और हिन्दू-मुस्लिम रंजिश की जगह आपसी यकीन और दोस्ती के पुलों की तामीर शुरू हुई लेकिन, यह अंग्रेज़ी हुकूमत को पसन्द नहीं था। और फिर फिरंगी फौज के जनरल लेक ने एक नज़ारा देखा तो सकते में आ गया–

दाराशिकोह का वह धड़ जो क़त्ल के बाद लाल किले के लाहौरी दरवाज़े पर लटकाया गया और तीन दिन बाद जिसकी मैयत को गुस्ल और कफ़न दिए बग़ैर, नमाज़े जनाज़ा अदा किए बिना हुमायूँ के मकबरे में दफ़्न कर दिया गया था, वह ज़मींदोज़ धड़ करवट लेता हुआ जागा था। और उधर उसी का वह सिर, जो नेज़े की नोंक पर चाँदनी चौक के चौराहे पर लटकाया गया था, आँखें खोल कर हल्की-सी उम्मीद लिए मुस्कराया था। हुमायूँ के मकबरे से वह धड़, धरती तोड़ कर बस्ती दरियागंज की ओर चल पड़ था। और चाँदनी चौक में लटका वह सिर नेज़े से उतर कर, अपने धड़ से मिलने के लिए उसी दिशा में बढ़ चला था...

यह सन् 1857 की 11 मई का दिन है...

दिल्ली का लाल किला। आखिरी मुग़लिया शहंशाह बहादुरशाह जफर की आवाज़ हवाओं पर तैरती हुई आ रही थी।

–हिन्दोस्तान की आज़ादी की जंग का ऐलान किया जा चुका है। बक्सर की लड़ाई के बाद ग़ुलामी की जो ज़िल्लत मुल्क ने झेली है उससे निजात पाने और ग़ुलामी के खात्मे का वक्त आ गया है...तवारीख ने करवट बदली है...अब फिरंगी हुकूमत को जड़ से उखाड़ फेंकना ही हमारा मकसद है...हमारा यह बयान दरबारी ज़ुबान फारसी में नहीं, आम जनता तक पहुँचाने के लिए हिन्दी और उर्दू में जारी किया जाए!

और जगह-जगह मुनादियाँ पिटने लगीं–

ख़लक ख़ुदा का, मुलक बादशाह का! सुनो, सुनो, इत्तला सुनो! हर ख़ासो-आम सुनो! ढम...ढम...गद्दीनशीं मुगल बादशाह बहादुरशाह के फरमान पर कान धरो...ढम...ढम...ढमढमाढम...हुक्म है कि ग़ैर मुल्की फिरंगियों को अपने मुल्क से खदेड़ दो...ढम...ढम...शहंशाह ने सँभाल ली है हिन्दुस्तान के गाज़ियों की मुश्तरका कमान...खदेड़ दो फिरंगियों को मुल्क से बाहर, यही है शहंशाह का ऐलान और फरमान! ढम...ढम...ढमढमाढम...ढम...ढम...

उधर पूरबी इलाके से आवाजें उठने लगीं–

–लखनऊ और अवध के बाशिन्दो! जंग का ऐलान हो चुका है!...बेग़म हजरतमहल की छाया में खड़ा 14 बरस का नवाब बिरजिस क़दर ऐलान पढ़ रहा है–

–सब हिन्दू और मुसलमान जानते हैं कि हर इन्सान को चार चीज़ें बहुत अजीज़ हैं। पहली–मज़हब और ईमान! दूसरी–इज्जत और शान! तीसरी–अपनी और अपने लोगों की जान! चौथी–अपनी आज़ादी और अपने पुरुखों की जायदाद! यह सभी को अपनी हुकूमत में हासिल थीं। कोई हुकूमत अपने बाशिन्दों के मज़हब और हुकूक में दख़लन्दाजी नहीं करती थी...लेकिन इन फिरंगियों ने हमारी रवायतों को तोड़ा है। सियासी साजिशों से हमारे मुश्तरका वजूद पर हमला किया है इसलिए आप चाहे मुसलमान सैयद, शेख़, मुग़ल या पठान हों या हिन्दू बिरहमन, क्षत्री, कायस्थ या महाजन हों...जंगे आजादी का ऐलान हो चुका है...इन फिरंगियों को अपने मुल्क से हमेशा-हमेशा के लिए बेदख़ल कर दीजिए!

लखनऊ की चिनगारियाँ बरेली पहुँचीं और रुहेलखण्ड के अफगानों ने भी जंग का ऐलान किया। कालपी में नाना साहब और तात्या टोपे ने क्रान्ति के लिए कमर कस ली और उधर झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ी सत्ता के मनमाने फ़ैसलों का विरोध करते हुए क्रान्ति पथ पर कदम बढ़ा दिए।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने घोषणा की–मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी!

और तोपों के दहाने खुल गए।

महारानी लक्ष्मीबाई ने कमान सँभाली–तोपची गुलाम गौस खाँ...आप दक्षिणी बुर्ज पर रहेंगे, कुँवर सागर सिंह खाण्डेराव फाटक को सँभालेंगे। ख़ुदाबख्श रहेंगे सैयद फाटक पर और ओरछा फाटक को सँभालेंगे दुल्हाजू साब। दिन में सारे मोर्चों और तोपखाने की

जिम्मेदारी आप की रहेगी और रात के दौरान इन्हें सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई, बख़्शिन, जूही और मोतीबाई सँभालेंगी!

फिर रणभेरी बजने लगी।

तात्या टोपे और नानासाहब ने अंग्रेज़ी फौजों से लोहा लिया। आरा बिहार में जगदीशपुर के राजा कुँवर सिंह ने युद्ध का घोष किया।

फैजाबाद ने ललकारा–बेदख़ल कर दो इन ज़ालिम फिरंगियों को...आज़ादी की यह जंग सब की है। मैं मौलवी हूँ, लेकिन मैं कहता हूँ–अपने अपने दीन और धरम से ऊपर है अपने मुल्क और अपनी क़ौम की आज़ादी!

और दिल्ली से शहंशाह बहादुरशाह ने आवाज़ दी–अब पूरा हिन्दुस्तान एक जिन्दादिल क़ौम की तरह जाग उठा है। अब न कोई हिन्दू है न मुसलमान! अब इस मुल्क का हर फरजन्द सिर्फ़ हिन्दुस्तानी है! सिर्फ़ हिन्दुस्तानी!

–लेकिन हमें मालूम है...फिरंगियों ने साजिश करके हमारे कुछ गद्दार मुल्ला-मौलवियों, पाखण्डी पंडों-महन्तों, और ख़ुद हमारे शाही खानदान के अमीर-उमरा लोगों को तोड़ लिया है! सैनिक कमाण्डर लारेन्स और फायनेंस कमिश्नर मार्टिन गिवंस ने इन गद्दारों के सामने तख़्तो-ताज, जायदाद और बेशकीमती खिलवतों-जागीरों का लुक्मा फेंका है...

वक्त ने ताईद की–

–ग्वालियर ने लक्ष्मीबाई का साथ देने में गुरेज़ किया। पनाह देने से परहेज किया। कालपी बिठूर के एक कम्पनीपरस्त जागीरदार ने तात्या टोपे के साथ गद्दारी की, उसी तरह जैसे काबुल के मलिक जीवन उर्फ़ बख्तियार खाँ ने दाराशिकोह के साथ की थी। शहंशाह बहादुरशाह के एक सिपहसालार ने दिल्ली का कश्मीरी दरवाजा अंग्रेज़ी फौज के लिए खोल दिया। अवध में पुराने दुश्मनों और नाराज़ खानदानी उमराओं की मीटिंग मार्टिन गिबंस की कोठी पर हुई। उसमें मुअत्तिल नवाब अहमद अली खाँ, पुराने वजीर मुहम्मद इब्राहीम शरफुद्दौला के अलावा बुजुर्ग चचा साहब नवाब मिर्ज़ा हुसैन खाँ भी शामिल रहे हैं...यही हिन्दुस्तान के सामन्तों, नवाबों और रियासतदारों का सबसे पतित रूप है...इन्हीं और इसी तरह के लोगों के चलते शहंशाह बहादुरशाह को हुमायूँ के मकबरे से क़ैद किया गया। उन्हें जलावतनी देकर रंगून भेज दिया गया। बाबू कुँवर सिंह शहीद हुए। तात्या टोपे को फाँसी पर लटका दिया गया। झाँसी की रानी को ग्वालियर में अपना बलिदान देना पड़ा। बेग़म हज़रत महल और नाना साहब को नेपाल में शरण लेनी पड़ी...फिर उनका कुछ पता नहीं चला।

हिन्दुस्तान की 1857 की आजादी की लड़ाई ख़ुद हिन्दुस्तानियों के कारण पराजय में बदल गई। ख़ुद बादशाह बहादुरशाह अपनी जान बचाने के लिए सूफी सन्त हजरत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर पहुँचे। आज़ादी की जिस लड़ाई की कमान उन्होंने

सँभाली थी, उसे लेकर अब वह पछताते नज़र आ रहे थे। असल में बादशाह बहादुरशाह शायर नहीं, कायर था...

–यह आप कैसे कह सकते हैं? अर्दली महमूद अली ने वक्त से पूछा।

–इसके लिए दरगाह निजामुद्दीन औलिया के सूफ़ी सन्त दरवेश ख्वाज़ा हसन निज़ामी साहब से सब दरयाफ़्त कर लो...

–वे तो यहीं हमारे साथ मौजूद हैं। अर्दली ने हसन निज़ामी साहब को पूछती आँखों से देखा।

–मैं बताता हूँ...हसन निज़ामी साहब ने कहा–मेरी स्वर्गीय माँ ने अपने पूज्य पिता हजरतशाह गुलाम हसन साहिब से सुनी यह कहानी बताई थी कि जिस दिन बहादुरशाह दिल्ली के किले से निकले तो सीधे दरगाह हजरत निज़ामुद्दीन औलिया में हाज़िर हुए। मेरे नाना साहिब ने देखा–कि वे मज़ार मुबारक में सिरहाने दरवाजे से टेक लगाए बैठे हैं...शहंशाह तीन वक्त से भूखे थे। उनकी सफेद दाढ़ी धूल और पसीने से अटी हुई थी। वे बोले–

–अब इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं कि मैं हिन्दुस्तान के तख़्त पर तैमूर की आखिरी निशानी हूँ। मैं जानता था कि मेरठ के यह कम्बख़्त बाग़ी सिपाही मुँहजोर हैं और उन पर यकीन करना ग़लती है, वे ख़ुद भी डूबेंगे और मुझको भी ले डूबेंगे। आख़िर वही हुआ...और मैं किला छोड़कर चला आया हूँ...और...

–आप तीन वक्त से भूखे हैं...आप दो निवाला खाना तो खालें!

–ठीक है...आपका एहसान जो आप ऐसा कहते हैं...दर्शन कर चुका, अमानत आपको सौंप दी, अब दो निवाले हज़रत औलिया के लंगर से खा लूँ तो हुमायूँ के मकबरे में चला जाऊँगा। जो किस्मत में लिखा है, वहाँ पूरा हो जाएगा...

घर में सिर्फ़ बेसनी रोटी और सिरके की चटनी थी। बादशाह ने वही खाई। तीन वक्त के बाद पानी पिया। ख़ुदा का शुक्र अदा किया। इसके बाद हुमायूँ के मकबरे में जाकर गिरफ्तार हुए और रंगून भेज दिए गए...

वक्त ने यह कहानी मुकम्मिल की तो अर्दली ने चारों तरफ देखा। उसका अदीब फरार था...अर्दली ने आवाज़ लगाई–

–अदीबे आलिया! आप कहाँ हैं? वक्त आपके इन्तजार में खड़ा है...सन् 1857 की आज़ादी की जंग शर्मनाक पराजय में बदल चुकी है। इतिहास रुका खड़ा है, और आप नदारद हैं। अदीबे आलिया! आप कहाँ गिरफ्तार हैं?

•

35

अदीब सलमा की बाँहों में गिरफ्तार था।

–सुनो अदीब ! यह शरीर एक मन्दिर भी है और श्मशान भी। दोनों में दिए जलते हैं। तुम कौन-सा दिया जलाते हो मेरे शरीर में और मैं कौन-सा दिया जलाती हूँ तुम्हारे शरीर में...उनकी उजास ही बची रहती है...कोई केवल याद बनके रह गया या ज़िन्दगी का मात्र एक अध्याय बनकर समाप्त हो गया, वह बीत जाता है। वह लगातार उजास नहीं दे पाता...अदीब ! मेरा शरीर तो बुझे हुए दियों का घर था, उसमें उजास का अहसास तुमने पैदा किया, पर अब मैं ज़िन्दगी के उस मोड़ पर खड़ी हूँ, जहाँ एक अनवरत जलनेवाला दिया ज़रूरी है...

कहते हुए सलमा ने उसे सँभाला था और सामने था एक उफनता समुद्र...और मँझधार में बनता, लगातार तल के अतल में ले जाता लहरों का एक चक्रवात !...उद्दाम लहरों का झँझावात...खुलती बन्द होती सीपियों का संसार...और फिर थमती लहरों की कोख में रोशनी देता एक दिया...

फिर अपनी श्लथ बाँहों में उसे लेते हुए अदीब ने कहा–क्या था यह सलमा ? हर बार कुछ नया होता है...तुम्हारे शरीर में यह रौशनी देते दिए आज कहाँ से आ गए ?

–अदीब ! जब मन में शुभ की प्रतिज्ञाएँ जन्म लेती हैं तब खुलती बन्द होती सीपियों में से कोई एक मोती रौशनी देनेवाला दिया बन जाता है...और वह दिया ही आसक्ति को पूजा में बदल देता है...शायद वही आरती और आस्था का दिया होता है या जुमे की रात मस्जिद को रौशन करके अल्लाह की मौजूदगी को प्रकाशित करने वाला आदिम चिराग़।

–सलमा ! तुम्हारे भीतर मन्दिरों का मन्त्रोच्चार गूँजता हो या मस्जिद की अज़ान...यह दोनों पवित्र हैं...तुम्हीं ने मेरे लिए अज़ान की इस रूहानी कशिश का रास्ता खोला है। दुनिया के सारे मजलूम और सताए हुए लोग जो समवेत नारे लगाते हैं...कोसोवो, इराक, दाग़िस्तान, चेचन्या, ईस्ट तिमोर या कारगिल में चीखते, कराहते, पुकारते लोगों की आवाजें अज़ान के अलावा क्या हैं ?...वे अपने-अपने अल्लाह को पुकारते हैं...और अल्लाह एक है इसलिए सारे मजलूमों की आवाजें उसी तक पहुँचती हैं...

–अदीब ! यह तो आपने ठीक कहा...लेकिन आज मैं एक फ़ैसला लेने आई हूँ...

–फ़ैसला ! कैसा फ़ैसला ? अदीब ने चिन्ता से पूछा।

–यही कि आज के जलते दिए की रौशनी लेकर मैं आप को आज़ाद कर देना चाहती हूँ! सलमा ने कहा।

–मतलब?

–मतलब यही कि अब मेरा बेटा बड़ा हो रहा है और वह मुझसे आपके बारे में कुछ पूछेगा तो मेरे पास कोई जवाब नहीं होगा, कि आप मेरे कौन हैं?

–यानी?

–यानी यही कि अब मुझे आपके और अपने बेटे के बीच किसी एक को चुनना होगा!

–सलमा! तुमने मुझे तो पूरा कर दिया। मेरे संकुल और विस्थापित होते वजूद को एकांतिक बनने से बचा लिया...लेकिन तुम्हारा बेटा अभी उम्र के लिहाज़ से अधूरा है...उसे अपनी पहचान और वजूद की ज़्यादा ज़रूरत पड़ेगी। इसलिए तुम मुझे मत चुनो...

–अगर मैं आपको चुनना चाहूँ तो?

–तब बेटा कहाँ रहेगा?

–वह नाना-नानी के साथ पटना में रह सकता है या फिर बड़े नाना के साथ क्वेटा-पाकिस्तान में!

–यानी हम अपने बेटे के लिए एक और विभाजन कर दें! नहीं सलमा, यह इतिहास के साथ दोबारा दग़ा करना होगा...तुम्हारा बेटा नाना नानी के साथ हिन्दुस्तान में जिये या बड़े नाना के साथ पाकिस्तान में...वह अपने वजूद की बुलन्दियाँ हासिल कर सके, यही हमारे फैसले का केंद्र होना चाहिए! अब यह तुम पर है कि तुम किसी चुनती हो!

–अदीब! तुमने मुझे रौशन ज़िन्दगी दी है...तुमने मेरी कोख में जलता हुआ दिया देखा है...सोहराब मेरी कोख का जलता हुआ चिराग़ है...लेकिन ज़रूरत पड़ी तो...कहते-कहते सलमा खामोश हो गई।

–तो? अदीब ने पूछा।

–तो मैं आपको नहीं, अपने बेटे सोहराब को चुनूँगी...

एक पल के लिए वह अवाक्-सा सलमा को देखता रह गया। वह उसका दिल रखने के लिए झूठ भी बोल सकती थी। जब औरत झूठ बोलती है, तब वह बहुत खूबसूरत लगती है, जब वह सच बोलती है तो उससे भी ज्यादा खूबसूरत लगती है। उसने सलमा की खूबसूरती को फिर भर-आँख देखा। और सलमा ने उसे।

–आमीन! अदीब ने दुआ की, पर पूछा–मैं तुम्हारे वग़ैर कैसे रह पाऊँगा सलमा?

–उसका मैंने एक आसान-सा रास्ता तलाशा है।

–कौन-सा रास्ता?

–यही कि आप किसी रक़ीब के साथ मुझे उसी तरह देखिए, जिस तरह आपने मुझे अपनी बांहों की नीली झील में पाया है। उन्हीं निहायत निजी लमहों और आसंगों में

मुझे देखने की कल्पना कीजिए, जिनमें मैं आपके साथ बाबस्ता और बा-बिस्तर रही हूँ...मेरी आसक्ति से मुक्ति का यही रास्ता होगा...

–सलमा! यह क्या कह रही हो तुम?

–अदीब! तभी आप मुझसे विरक्त होंगे और जीवन का एक शुभ इसी विपरीत आसक्ति से निकलेगा।

अदीब ने सलमा को देखा।

–अदीब! मेरी ज़िन्दगी के एकमात्र रौशन चिराग़! आखिर मौत ही हमें हमारे फैसले सौंपे, क्या इससे बेहतर यह नहीं होगा कि मौत से पहले हम अपनी जिन्दगियों के अहम फैसले ले लें! यह मसला रूहानी या मज़हबी नहीं, हमारी आस्था का है लेकिन यह मन के मज़हब की शान को और बुलन्द करता है! इसमें कहीं कोई फ़साद नहीं है!

–आमीन! अदीब ने दुआ माँगी।

–अलविदा! सलमा ने भरी-भरी आवाज़ में कहा। उसने अपने आँसू पोंछे और तेज़ी से चली गई। वह समझ ही नहीं पाया कि यह हुआ क्या था...वह सकते में था कि तभी उसे तलाशता हुआ अर्दली महमूद अली हाज़िर हो गया। वह बिगड़ कर बोला–

–मैं आपकी ख़सलत जानता हूँ...जब भी आपको मौक़ा मिलता है, आप अपनी कहानियों के लिए फ़रार हो जाते हैं!

–अर्दली महमूद अली! मुझे जीने दो...जो कहानियाँ बची हैं...प्लीज़, उनके साथ मुझे जी लेने दो...प्लीज़...महमूद अली...एक दिन तो मुझे अपने साथ जी लेने दो...

अर्दली ने अदीब की आँखों की मायूसी और वीरानी को देखा। उसका भी दिल भर आया। फिर उसने धीरे से कहा–हुजूरे आलिया...यह दौर ही नहीं बचेगा तो आपकी कहानियाँ कहाँ बचेंगी...लेकिन आप चाहते ही हैं तो मैं आपके लिए एक दिन की मोहलत माँग कर लाने की कोशिश करता हूँ।

थका हुआ अदीब वहीं बैठा रहा। वह सलमा से बिछुड़ने का सदमा अभी बर्दाश्त नहीं कर पाया था।

कुछ देर बाद अर्दली लौट कर आया। बोला–

–बमुश्किल तमाम मैं आपके लिए एक दिन की मोहलत माँग लाया हूँ। गुज़रते दौर ने आपके लिए एक जलता-बुझता दिन दिया है। इस एक दिन आप दुनिया की सारी हत्याओं, तड़पती आत्माओं की चीखों, युद्धों और आक्रमणों की खून से सनी दास्तानों, मौत की कराहों की दर्द भरी आवाज़ों से बेख़बर हो जाएँगे...आपको कोई आँसू, कोई चीख़, कोई आह परेशान नहीं करेगी...अगर आपका लेखकीय ज़मीर आपको इस बात की इजाज़त देता है तो आप आराम से बैठ कर अपनी कहानियाँ लिखिए! इन्सान-परस्त होने के खोल से बाहर आकर अपने दौर के एय्याशों और पतित लोगों की कहानियों के ताजमहल बनाइए!

अदीब ने उसे देखा।

–लेकिन हुज़ूरे आलिया! आप तो आम आदमी के पैरोकार रहे हैं...

–महमूद अली! बूटा सिंह और जेनिब मामूली, सीधे सच्चे लोग हैं। शाहीन एक औसत गरीब घर की लड़की है। कबीर भिखमंगा है। सुरजीत कौर भी मामूली घराने की है जो अपने बेटे को कन्धे पर लादे अब तक जिन्दा है, वह अपने बेहोश बेटे की सलामती के साथ साथ, अपने हज़रत रुक्ने आलम की दरगाह और अपनी बस्ती मुलतान की सलामती भी माँग रही है!

–यह तो अजीब बात है अदीबे आलिया! अर्दली महमूद अली ने कहा।

–महमूद अली! इस कहानी को जीते और लिखते मेरा दिल फटता है...तुम्हें याद होगा–विभाजन में सुरजीत कौर अपने मासूम बेटे को अफ़ीम चटा कर मुलतान के अपने पुश्तैनी घर से निकली थी...उसने शृंगार किया था। सारे गहने पहने थे। वह जानती थी कि सबसे पहले दंगाई उसके गहने लूटेंगे, बेटा बच जाएगा। उसके बाद जब गहने नहीं होंगे, तो उसकी इज्ज़त लूटी जाएगी, पर बेटा बच जाएगा और शायद तब तक वह नए बने मुल्क पाकिस्तान की सरहद पार कर लेगी और अपने बेटे को बचा सकेगी...इसीलिए सुरजीत कौर ने अपने नवजात बेटे को अफ़ीम चटाई थी कि वह रोए नहीं, बेहोश रहे...लेकिन उसका बेटा अफ़ीम चाट कर तबसे बेहोश है। और जब भी भारत-पाकिस्तान युद्ध होता है तो वह मुझसे यह पूछने आती है कि मुलतान पर तो कोई बम नहीं गिरा?

मैंने उसे बहुत समझाया–मुलतान से अब तुम्हें क्या लेना देना...वह तुम्हारे मुल्क का शहर नहीं, अब पाकिस्तान नाम के नए मुल्क का शहर है...लेकिन वह पागल औरत सुरजीत कौर समझती ही नहीं...1948 में आई। तब भी उसकी गोद में बेहोश बेटा था। पूछने लगी–भारत पाकिस्तान युद्ध हो रहा है...लेकिन मेरे मुलतान पर तो कोई बम नहीं गिरा?

मैंने उसे आश्वस्त किया–जंग कश्मीर में चल रही है। तुम्हारा मुलतान सुरक्षित है...

–फिर वह 1965 में आई...चीख-चीख कर पूछने लगी–अय्यूब खाँ को सबक सिखाने के लिए फौज ने मुलतान पर तो हमला नहीं कर दिया है? मेरे मुलतान पर तो कोई बम नहीं गिरा है?

मैंने उसे बमुश्किल तमाम किसी तरह वापस भेजा।

–वह 1971 में फिर आ गई। उसके कन्धे पर वही बेहोश बेटा लदा हुआ था। वह पूछने लगी–जंग फिर छिड़ गई है...लेकिन मेरे मुलतान पर तो कोई बम नहीं गिरा?

–सुरजीत कौर! मुलतान शहर अब जिस मुल्क में है, वह तुम्हारा मुल्क और शहर नहीं है। अब तुम भारत की राजधानी दिल्ली के राजौरी गार्डन में रहती हो।...अब तुम भारत की नागरिक हो...अब मुलतान नहीं दिल्ली तुम्हारा शहर है...इसे अपना मानो।

–वह तो मैं मानती हूँ...लेकिन मुलतान तो मुलतान है...उस पर तो कोई बम नहीं गिरा ?

–नहीं मुलतान सुरक्षित है और शिमला समझौता हो गया है...

अर्दली ने उसे ग़ौर से देखा।

–महमूद अली ! वह फिर अपने बाबन साला बेहोश बेटे को कन्धे पर लादे सन् 1999 में आई और पूछने लगी–कारगिल में सरहद की जंग चल रही है। सुना है कि यह जंग भारत पाकिस्तान की जंग में तब्दील हो गई है...मेरा दिल बहुत घबड़ा रहा है। मैं सिर्फ यह मालूम करने आई हूँ कि कहीं मेरे मुलतान पर तो कोई बम नहीं गिरा है ?

–और महमूद अली, मैं उस पागल औरत पर चीख उठा था–सुरजीत कौर ! मुलतान अब तुम्हारा शहर नहीं है...

–वह मुझे हैरत से देखती रह गई थी। वह समझ ही नहीं पाई थी कि मैं क्या कह रहा था। यह उसकी समझ से बाहर था। ठीक उसी तरह जैसे सिरिल रेडक्लिफ का किया हुआ सीमा विभाजन मेरी और सब की समझ से बाहर था।

–सिरिल रेडक्लिफ़ ? यह कौन सी बला है ? अर्दली ने पूछा।

–यह वह शख़्स है जिसने हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सरहदें तय की हैं...

यह जुलाई का एक बेहद उमस भरा दिन है। सिरिल रेडक्लिफ माउन्टबेटन की स्टडी में खड़ा है। वह न तो समाजशास्त्री है न भूगोलविद्। लेकिन माउन्टबेटन ने उस वकील को सरहदें खींचने का काम सौंपते हुए कहा था–पंजाब और बंगाल का विभाजन आपको करना है...इण्डिया और पाकिस्तान की अन्तरराष्ट्रीय सीमा आपको तय करनी है...

–लकिन मैं इस काम के योग्य नहीं हूँ ! सिरिल ने कहा–यह पंजाब और बंगाल हैं कहाँ ?

–वह नक्शे में मौजूद हैं ! माउन्टबेटन ने कहा।

–इसके लिए मुझे पंजाब और बंगाल का विधिवत दौरा करना होगा ! ताकि मैं इन सूबों को देख सकूँ...

–वह मुमकिन नहीं है। वक्त बिल्कुल नहीं है। जुलाई चल रहा है और अगले महीने अगस्त की पन्द्रह तारीख तक हर हालत में हमें पार्टीशन का काम पूरा कर देना है ! माउन्टबेटन ने शालीन सख्ती से कहा।

तभी वायसराय की स्टडी में कबीर घुस पड़ा और चीखा–लाट साहब ! जिस बैरिस्टर के हाथ में तुमने कसाई का छुरा पकड़ा दिया है, इसे तो यह तक नहीं मालूम कि जौ और गेहूँ में फ़र्क क्या होता है...यह कसाई पंजाब का बँटवारा करेगा !

अभी माउन्टबेटन और रेडक्लिफ कुछ भी समझ नहीं पाए थे और कबीर उसी साँस में चीखता गया–

–इस कसाई को यह नहीं मालूम कि रोहू और हिल्सा में अन्तर क्या होता है...यह बंगाल का बँटवारा करेगा!

इससे पहले कि माउन्टबेटन के सुरक्षाकर्मी सक्रिय हों, वह भिखारी कबीर न जाने कहाँ गायब हो गया। और उस शाम बहुत उद्विग्न और अशान्त सिरिल रेडक्लिफ धौलाकुआँ की उस रिज पर घूम रहा था, जहाँ से सन् 1857 में अंग्रेजों की फौज ने ब्रिगेडियर जॉन निकलसन की कमान में लाल किले पर धावा करने के लिए कूच किया था। वहीं से उसे तपती और उमस भरी गर्मी में रायसीना पहाड़ी पर खड़ा साम्राज्यशाही का भव्य प्रतीक वायसराय हाउस भी दिखाई दे रहा था जो भारत के टुकड़े करने के लिए कटिबद्ध था। टुकड़े हुए। केवल धरती के ही नहीं, उन तमाम निरपराध मासूम लोगों के, जिनके शव पूरे उत्तर भारत की धरती पर बिखर गये...जिन्हें खाने के लिए संसार भर के मांसभक्षी पक्षी और पशु भारत यात्रा पर आए थे। यह महाभोज संसार के इतिहास में अकेला था।

–हम अपने करोड़ों शवों का कफन-दफ़न नहीं कर पाये थे पर वायसराय का सलाहकार, चर्चिल भक्त कोरफ़ील्ड इण्डिया के नए नौकरशाहों से भारत भर में फैले अपने पूर्वजों के कब्रिस्तानों के सम्मानजनक और शानदार रख-रखाव का आश्वासन ले रहा था...

यह आवाज़ कबीर की थी जो एक हाथ में बाँस की टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी लिए, अदीब और अर्दली के सामने खड़ा था।

–अरे कबीर तुम! अभी-अभी तो तुम वायसराय की स्टडी में खड़े सिरिल रेडक्लिफ को डाँट रहे थे!

–वह तो बहुत दिन हुए। उसे छोड़ो अदीब...मुझे तो तुम उस बूटा सिंह की कहानी बताओ जो जेनिब से शादी करने के बाद बहुत खुश था। पार्टीशन के बाद शायद पहली ख़ुशी जेनिब और बूटासिंह के हिस्से में आई थी।

–हाँ कबीर, शायद तुम ठीक कह रहे हो...हत्या, ज़िना और तबाही की खूनी प्रलय के बाद बूटा सिंह और जेनिब ही पहले आदम और हव्वा थे, जिन्होंने वर्जित फल खाने का पुण्य किया था, नहीं तो प्यार इस दुनिया में जिन्दा नहीं बचता, सिर्फ़ ज़िना और वासना के बिजबिजाते हुए नाले-परनाले यहाँ बह रहे होते! अदीब ने कहा।

–हाँ...उन दिनों मैं पाकिस्तान में था। तब मैंने उसे एक छोटी सी बच्ची के साथ देखा था...पर कोई बात नहीं कर पाया। न मालूम क्यों वह पाकिस्तान आया था...

–तुम्हें नहीं मालूम...मैं बताता हूँ। अदीब ने कहा–हुआ यों था कि बूटा सिंह और जेनिब के सुख को उसके भाई बंद नहीं देख पाए थे। उन दिनों एक समझौते के तहत पाकिस्तान में लूट ली गई हिंदू औरतों और हिन्दुस्तान में अगवा कर ली गई मुसलमान औरतों को तलाशा जा रहा था। बूटा सिंह के सगे भतीजे ने जाकर फौज के तलाशी-दस्ते को ख़बर कर दी...उसी शाम ब्याहता जेनिब को उसके घर से उठा लिया गया। फौज ने उसे

दिल्ली के एक शरणार्थी कैम्प में पहुँचा दिया। बूटा सिंह पर तो पर जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उसने अपनी मासूम बच्ची तनवीर कौर को उठाया और अपनी बीवी और तनवीर की माँ की तलाश में निकल पड़ा।

बीच में अर्दली महमूद अली ने दख़ल दिया–

–अदीबे आलिया ! आपको एक दिन की मोहलत मिली थी...सूरज अब डूबने वाला है...अगर इजाज़त हो तो मैं जल्दी-जल्दी वक्त रहते सूरज डूबने से पहले जेनिब और बूटासिंह की कहानी बता डालूँ ?

–लेकिन मैं तो यह कहानी इसके तमाम बेहद खूबसूरत और तकलीफदेह प्रसंगों के साथ लिखना चाहता हूँ...यह अप्रतिम कहानी रचना बन सकेगी तो सदियों जीवित रहेगी...इसे लिखने के लिए मुझे वक्त चाहिए ! अदीब बोला।

–ज़िद मत कीजिए हुजूर ! यह रचना का दौर नहीं है। जो कहना हो जल्दी-जल्दी कह लीजिए नहीं तो आपकी कहानियाँ घुट-घुट कर दम तोड़ देंगी...

–तो ठीक है। यहाँ एक छोटी-सी क़ब्र खोदो और मेरे कलम को दफ़ना दो। उसके बाद तुम कहानी सुनाने का सिलसिला जारी रखो ! अदीब ने हताश और निराश होते हुए कहा।

–तो कबीर ! हुआ यह कि...अर्दली ने बूटासिंह की कहानी का अगला सिरा पकड़ा-बूटासिंह तो अनपढ़ किसान था, लेकिन तमाम मुश्किलों को पार करता हुआ और जेनिब को तलाशता हुआ वह उस शरणार्थी कैम्प में पहुँच ही गया, जहाँ जेनिब को रखा गया था। उस कैम्प की इंचार्ज मृदुला साराभाई थीं। जब वह उनके दफ़्तर में पहुँचा तो मृदुला साराभाई जेनिब से जिरह कर रही थीं–

–तुम्हारा मज़हब ?

–इस्लाम।

–शादी के बाद ?

–इस्लाम।

–बदला नहीं गया ?

–नहीं।

–तुम्हें बूटा सिंह ने अगवा किया ?

–नहीं।

–तुम्हारे घरवाले सरहद पार पाकिस्तान चले गए ?

–हाँ...आधे लोग चले गए...बाकी लोग यहीं हैं।

–तो तुम आधे लोगों के साथ पाकिस्तान क्यों नहीं गईं ?

–यह ज़रूरी नहीं था। मुझे अपनी पसन्द का मर्द मिल गया था....

–लेकिन तुम तो मुसलमान हो ओर बूटा सिंह सिख....तुम्हें इंडिया में रुकना नहीं चाहिए था।

–क्यों ? इसी इंडिया में करोड़ों मुसलमान अभी भी रुके हुए हैं। क्या यह ज़रूरी है कि हर मुसलमान पाकिस्तान चला ही जाए ? मुझे पाकिस्तान की ज़रूरत नहीं है...जेनिब ने कहा, तब तक आँसूभरी आँखों को बूटासिंह ने पोंछा और अपनी बेटी तनवीर कौर को मृदुला साराभाई के कदमों में डालते हुए कहा–

–यह हमारी औलाद है....हम शादीशुदा हैं। मुझे मेरी बीवी ओर बेटी की माँ वापस दे दीजिए...मैं अपनी बीवी को बेपनाह मुहब्बत करता हूँ ! मेरे साथ इन्साफ़ कीजिए ! कहते-कहते बूटासिंह रो पड़ा।

–नहीं ! तुम मर्दों की मुहब्बत पर यक़ीन नहीं किया जा सकता !

–यहीं पर मुहब्बत की एक और कहानी मौजूद है....अदीब ने दख़ल दिया–मृदुला साराभाई भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की प्रेमिका थीं...वे दुनिया के दुःख दर्द से दूर एक बेहद खूबसूरत मुजस्सिम औरत थीं। लेकिन पार्टीशन के साथ खून का जो सैलाब आया था, उसने तीनमूर्ति भवन में नेहरू के बिस्तर को इस क़दर भिगो दिया था कि उन जैसा जज़्बाती और इन्सान-परस्त इन्सान उस पर सो नहीं सकता था। उस वक्त नेहरू जैसे आदर्शवादी इन्सान को एडविना माउंटबेटन का रूहानी कन्धा मिला था...मृदुला साराभाई जैसी मुजस्सिम मांसल प्यार की पुतली नेहरू जी की इस रूहानी यंत्रणा को ग्रहण नहीं कर पाई थी...उसने एडविना को अपना रक़ीब माना था और नेहरू को एक बेवफा आशिक ! इसीलिए उसने बूटासिंह की मुहब्बत पर यकीन नहीं किया था और मन ही मन मर्दों की बेवफाई से बदला लेने के लिए उसने नेहरू का बदला बूटासिंह से ले लिया था !

–यह सच है ! अर्दली ने कहा–सूरज डूबनेवाला है और कहानी जल्द से जल्द ख़त्म करनी है...

–तो फिर हुआ क्या ? कबीर ने पूछा।

–मुसलमान होने के नाम पर जेनिब को पाकिस्तान में उसके घरवालों के सुपुर्द कर दिया गया। जेनिब को पाने के लिए बूटा सिंह ने कलमा पढ़ा और मुसलमान हो गया। अपना नाम उसने जमील अहमद मंजूर किया और बेटी तनवीर कौर का नया नाम उसने सुलताना रखा और जब उसे पाकिस्तान जाने और अपनी बीबी से मिलने का वीज़ा नहीं मिला, तो वह छिप कर राजस्थान की सरहद से पाकिस्तान में दाख़िल हो गया। इसके बाद यह कहानी मुहब्बत, कुर्बानी, लगन, बिछुड़न, आस्था, अपमान और अर्ध-विक्षिप्त आसक्ति की एक अन्यतम महाकथा है...

–उसे तफसील से बयान करो महमूद अली...मानवीय सन्ताप और प्यार की वही आध्यात्मिक लगन तो मानुष संवेदना और भावना की उदात्ततम गाथा है...अदीब ने टोका।

–अदीबे आलिया ! अब कहानियों का वक्त समाप्त हो रहा है। सूरज डूबने के कगार पर है...इसका अन्त कबीर को बता दूँ, नहीं तो आपकी यह कहानी भी अधबीच में अधूरी छूट जाएगी।

–ठीक है...ठीक है...तुम कहानियों की हत्या कर सकते हो...कहकर अदीब उदासीन हो गया।

और तब अर्दली महमूद अली ने बूटा सिंह उर्फ जमील अहमद की कहानी को समाप्त करते हुए कहा–बूटा सिंह उर्फ जमील अहमद ने हरचंद कोशिश की लेकिन जेनिब उसे हासिल नहीं हो सकी। जेनिब के घरवालों ने बूटासिंह को मुसलमान मंजूर नहीं किया। अदालत में जेनिब को बयान नहीं देने दिया...हुजूर ! विभाजन के साथ मनुष्य की आत्मा के विभाजित हो जाने की यह दारुण कहानी है क्योंकि जमील अहमद उर्फ बूटा सिंह को, मुसलमान होते हुए मुकद्दमा हारने के बाद पाकिस्तान के कब्रिस्तान में जगह नहीं मिली। उसे उसकी क़ब्र से खोद कर बेदख़ल कर दिया गया...जिस स्टेशन की पटरी पर आती ट्रेन के सामने कूद कर उसने अपनी बेटी सुलताना के साथ ख़ुदकुशी की थी, वह स्टेशन और पटरी मौजूद है...लेकिन अपनी लाश की गोद में बेटी सुलताना को उठाए हुए वह बूटा सिंह उर्फ जमील अहमद मंटो के टोबाटेक सिंह की तरह आपकी अदालत में फ़ैसला पाने के लिए मौजूद है !

–चलो ठीक है, महमूद अली तुमने गला घोंटकर बूटा सिंह और जेनिब की कहानी तो बयान कर दी, लेकिन अभी विद्या की कहानी बाकी है। अदीब बोला।

–कौन विद्या ?

–वही विद्या...जो अपने माँ-बाप के साथ सगाई के लिए रोहतक रोड से ताँगे में रामनगर जा रही थी। तभी कस्साबपुरे के पास दंगा भड़का था और ताँगे का घोड़ा पंख लगाकर न मालूम विद्या को कहाँ उड़ा ले गया था...अपनी ज़िन्दगी की उस सबसे खामोश कहानी की तलाश में मैं आज भी भटक रहा हूँ...

–सूरज डूब चुका है और अदीबे आलिया...अब कहानियों को देखने या लिखने का वक्त ख़त्म हो चुका है।

–ऐसा मत करो महमूद अली ! कबीर ने कहा–मुझे अदीब की सारी कहानियाँ सुननी हैं...

–कबीर ! अब कहानियाँ सुनने-सुनाने का दौर नहीं है। तुम कहानियों को देख सकते हो तो देख लो...

–यही तो मुश्किल है...मेरे दोस्त महमूद अली ! कबीर बोला–मेरी आँखों की रोशनी चली गई है। मैं भीख माँगते-माँगते अन्धा हो गया हूँ...इससे मेरी आमदनी तो बढ़ गई है, लेकिन अब मैं कहानियों को सिर्फ़ सुन सकता हूँ...देख नहीं सकता ! दुःख या सुख की आवाजें सुन सकता हूँ, दुःख या सुख को देख नहीं सकता !

36

और भारत ने आज़ादी के दुःख और सुख का जशन और नरसंहार का नज़ारा एक साथ देखा। कई बारातों के पीछे-पीछे कई जनाज़े लगातार चल रहे थे। न विवाह मण्डप आता था, न श्मशान। चारों तरफ जशन था। चारों तरफ़ मातम था। सिरिल रेडक्लिफ़ ने कहाँ से धरती को काटा था, किसी को कुछ पता नहीं था। लेकिन जशन और मातम मनाने वालों को सरहद साफ़ दिखाई दे रही थी। जहाँ हिन्दू और सिखों की लाशें पड़ी थीं, वह पाकिस्तान था। जहाँ मुसलमानों की लाशें पड़ी थीं, वह इण्डिया था। लाशों ने ख़ुद ही सरहदों को तय कर दिया था।

लेकिन अभी जो तय नहीं हुआ था, वह था अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की पाँच सौ पैंसठ अवैध रियासतों का भविष्य। वायसराय का सलाहकार कोरफ़ील्ड लन्दन में बैठा अपने सामन्तों को समझा रहा था कि भारत की सारी रियासतों की सन्धि ब्रिटिश क्राउन से है। इण्डिया इण्डिपेंडेंस एक्ट के अधीन उन्हें इण्डिया या पाकिस्तान के रहमो-करम पर नहीं छोड़ा जा सकता। ब्रिटिश क्राउन इस दायित्व का विसर्जन नहीं कर सकता। उससे सहमत होते हुए ब्रिटेन का पूर्व प्रधानमन्त्री चर्चिल चीखा था–यह राजे-महाराजे, नवाब और निज़ाम हमारे मित्र और ताबेदार रहे हैं। इनकी सन्धियाँ हमारे साथ हैं...इन्हें आज़ाद करना हमारी जिम्मेदारी है!

लेकिन नेहरू, पटेल और जिन्ना ने इस सोच का विरोध किया। वे इन नासूरों को पालने के लिए तैयार नहीं थे। ब्रिटिश सत्ता को इससे सहमत होना पड़ा। लेकिन बँटवारा तो शुरू हो गया था...अंग्रेज़ अफसर वापस जाने की तैयारी कर रहे थे। आर्मी के अफसरों का बँटवारा भी होने लगा था। अदला-बदली का सिलसिला जारी था। दिल्ली छावनी से हिन्दू-सिख अपने मुसलमान साथियों को विदा दे रहे थे...आर्मी मेस में इतनी जगह भी नहीं, इसलिए छावनी के खुले मैदान में बड़ा-खाना हो रहा था। और उधर रावलपिण्डी छावनी में कर्नल इदरीस आँखों में आँसू भरे बिछुड़ने वाले अपने हिन्दू और सिख सिपाहियों से कह रहे थे–

–मेरे अफसर और जवान दोस्तो! दूसरी आलमी जंग में हमने साथ-साथ खून बहाया है...हर मोर्चे पर हमने साथ-साथ फ़तह हासिल की है। हम में से जो शहीद हुए, उन्हें हमने एक साथ सलाम किया है...आप कहीं भी जाएँ पर हमारा यह खून और शहादत का यह रिश्ता टूट नहीं सकता...हम भाई-भाई ही रहेंगे और हमेशा आप सबको याद करेंगे!

सब गले मिले थे और आँसू पोंछते हुए अलविदा कहके चल पड़े थे। लेकिन सबसे ज़्यादा ऊहापोह और असमंजस तो भारत की छावनियों से जाने वाले मुसलमान फौजियों में था। उन्हें किसी भी देश की फौज में रहने और चुनने की आज़ादी दी गई थी, लेकिन पाकिस्तान में हालात दूसरे थे। वह देश ही इस्लाम और मुसलमान क़ौम के नाम पर बना था। वहाँ औरों के रुक सकने का सवाल ही नहीं था। हिन्दुस्तान में ऐसी कोई शर्त नहीं थी। उसे सेक्युलर घोषित किया गया था। पर असमंजस तो अपनी जगह था। पूरी भारतीय फ़ौज धर्म से निरपेक्ष थी। सारे सिपाही सिर्फ हिन्दुस्तानी थे। वे हिन्दू, मुसलमान, सिख या ईसाई, पारसी नहीं थे। पर उन्हें अब फ़ैसला लेना था कि वे कौन हैं, किस मज़हब के हैं और उन्हें कहाँ रहना है।

इसी असमंजस और अनिश्चय ने हरेक छावनी के सिपाही के दिलो-दिमाग़ को जकड़ रखा था। फ़ैसला लेना आसान तो नहीं था। यादें जितनी शिद्दत से सिपाही के दिल में रहती हैं, दुनिया में कहीं नहीं रहतीं। वह जान, आन-बान और यादों के लिए लड़ता है। शान्ति की कामना का वह पहला और आख़िरी मुरीद होता है। उसका एक पैर मोर्चे की तरफ बढ़ रहा होता है, तो दूसरा पैर घर की यादों की तरफ लौट रहा होता है...और ऐसा ही कुछ कर्नल इनायत हबीबुल्ला के मन पर गुज़र रहा था, जब उन्होंने अपने लखनऊ को देखा था। यहीं तो उनके पुरखे सन् 1857 में शहीद हुए थे...शाही इमारतों पर गोलों के बारूदी निशान अभी जल रहे थे। क़त्ले-आम में बहे खून के छींटे अभी सूखे नहीं थे। उन्होंने अपनी यादों के साथ रहने का फ़ैसला ले लिया था।

लेकिन रामपुर रियासत के आला वज़ीर के दो जवान बेटों ने अलग-अलग फ़ैसला लिया था। बड़ा बेटा मेजर याकूब खान, जो वायसराय के अंगरक्षकों का नायब मुखिया था, वह बेहतर मौके और ओहदे की तलाश में पाकिस्तान चला गया था। छोटा बेटा कैप्टन यूनिस खान अपनी यादों को छोड़ नहीं पाया था। उसने हिन्दुस्तान में ही रहना मंजूर किया था।

विभाजित हो चुकी पेशावर छावनी में अपने साथियों को विदा देते कर्नल इदरीस का बयान अब भी गूँज रहा था–मेरे साथी अफसरान और जवान दोस्तो ! यह बँटवारा हमारे दिलों को नहीं बाँट सकता...दूसरी आलमी जंग में हमने साथ-साथ खून बहाया है। अपने शहीदों को हमने साथ-साथ सलाम किया है। फतह के परचम हमने साथ-साथ फहराए हैं...आप कहीं भी जाएँ, हमारा खून और शहादत का रिश्ता नहीं टूट सकता ! क्योंकि हम भाई-भाई हैं और हमेशा रहेंगे !

लेकिन इतिहास ने सन् 1965 की भारत-पाक जंग में विभाजन की त्रासदी का दर्दनाक मंजर देखा था ! कश्मीर में पुंछ की पहाड़ियों पर घमासान युद्ध हुआ था। पाकिस्तान के फौजी दस्तों का कमाण्डर था–वही रामपुर का याकूब खान और हिन्दुस्तान की गोरखा रेजीमेन्ट की कमान सँभाले था–उसी रामपुर का यूनिस खान ! दोनों सगे भाई

एक दूसरे के आमने सामने थे। विभाजन की कीमत दोनों चुका रहे थे...सवाल ज़िन्दगी मौत का था। सवाल अपने-अपने देश का था। भारतीय मेजर यूनिस खान आक्रमण करते हुए चीखा था–

–भाई जान बचिए!

पाकिस्तानी फौज का याकूब खान जिन्दा नहीं बच पाया था। मेजर यूनिस खान ने अपने 'दुश्मन' बड़े भाई को हराने के बाद उसे वहीं दफ्न किया था और फातिहा पढ़कर भारी दिल से बेस कैम्प लौट आया था। तब उसके दिल ने विद्रोह किया था और वह जाँबाज़ भारतीय सिपाही मेजर यूनिस खाँ, प्री-मैच्योर रिटायरमेन्ट लेकर रामपुर लौट गया था।

लेकिन जिन्ना साहब तो वापस दिल्ली लौट नहीं सकते थे। उन्होंने अपना पाकिस्तान बनाया था और वे आखिरी बार बम्बई में अपनी बीबी रति की क़ब्र पर खामोश खड़े रहे थे। लेकिन वे कब तक खड़े रहते। उन्हें बम्बई से वापस दिल्ली जाना था और फिर उन्हें हमेशा-हमेशा के लिए जाना था अपने देश पाकिस्तान!

तय हुआ था कि पाकिस्तान बनने और उसकी आजादी का दिन 14 अगस्त होगा और भारत की आजादी का दिन 15 अगस्त! इन तारीखों को तय करने में कोई सोच या तर्क नहीं था। यह तारीखें तो माउन्टबेटन की जल्दबाज़ी और सनक का नतीजा थीं। किसी पत्रकार ने उससे पूछा था कि इण्डिया को आज़ाद करने की कोई तारीख आपने तय की है ? तो अपनी सनक में माउन्टबेटन ने बिना सोचे समझे वही तारीख 15 अगस्त घोषित कर दी थी, जिस दिन उसकी कमाण्ड के सामने जापानियों ने बर्मा में आत्मसमर्पण किया था।

ऐसे तय हुई थी भारत की आजादी की तारीख!

5000 वर्षों की सभ्यता को माउन्टबेटन, चर्चिल और रेडक्लिफ ने पाँच महीनों में तोड़ दिया था! साजिश के तहत उन्होंने पाकिस्तान बना दिया था।

और अभी धरती पर नहीं, कागज़ के नक्शे पर बने पाकिस्तान की बागडोर सँभालने के लिए जिन्ना साहब दिल्ली से कराँची के लिए चल पड़े थे। अभी अवाम को यह भी पता नहीं था कि सरहद कहाँ है, लेकिन लाशों से पटी पड़ी ज़मीन बता रही थी कि एक देश की सरहद कहाँ खत्म होती है और दूसरे देश की सरहद कहाँ शुरू होती है...

जिन्ना साहब का डीसी-थ्री विमान दिल्ली के पालम हवाई अड्डे से कराँची की ओर उड़ चला था। वे बेहद खामोश बैठे थे। हालाँकि फातिमा जिन्ना उनके साथ थीं, लेकिन वे किसी से बात नहीं कर रहे थे। वे इतने ख़ामोश थे कि पर्सर वग़ैरह आपस में भी बात करने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे। वे थके और उदास थे। फातिमा जिन्ना ने उनकी तरफ देखा था तो उन्होंने गहरी साँस ली थी और इतना ही कहा था–जो होना था वह हो गया...यही होना था...

करॉंची एयरपोर्ट पर उतरते जहाज़ से फ़ातिमा ने लाखों लोगों की भीड़ देखते हुए अपने भाई से कहा–समुन्दर उमड़ आया है आपके इस्तक़बाल के लिए...

जिन्ना साहब फिर भी खामोश रहे। नहीं मालूम वे थके थे, उदास थे या दार्शनिक की तरह वीतराग थे...14 अगस्त को तो राजधानी करॉंची में वैसे भी तमाम सरकारी समरोहों का आयोजन था और फिर ईद तो थी ही। पाकिस्तान बनने का ऐतिहासिक दिन! सलाहकारों ने एक यादगार शाही सरकारी भोज की पेशकश की तो जिन्ना साहब ने दोपहर की दावत की बात मंजूर कर ली, और उन्होंने 13 अगस्त की तारीख तय की। तब उनके विश्वस्त एडीसी ने अदब से बताया था–योर एक्सिलेंसी! 13 अगस्त को रमज़ान के रोज़े का आख़िरी दिन है...दोपहर की दावत शायद मुनासिब नहीं होगी...

आख़िर शाही सरकारी भोज का कार्यक्रम रद्द कर दिया गया।

लेकिन सरहद पर कब्ज़ा करके लेटे मुर्दों ने ईद का जश्न मनाया। उन्होंने नए कपड़े पहने और सरहद पर ही पड़े हिन्दू-सिख मुर्दों से गले मिले!

इस हैरतअंगेज़ करिश्मे को देख कर दुनिया दंग थी। कोई विश्वास ही नहीं कर पा रहा था कि यह हुआ कैसे ? भारत के मनोनीत गवर्नर जनरल माउन्टबेटन की स्टडी से राबर्ट क्लाइव की जो बड़ी तस्वीर इसी सुबह उतार कर कबाड़खाने में पहुँचाई गई थी, वह क्रोध से उबल पड़ी–यह कैसे हो सकता है! हमने सन् 1757 में ही दो क़ौमों के सिद्धान्त की नींव रख दी थी...

गिलक्रिस्ट ने आगे आकर कहा–फोर्ट विलियम कालेज में हमने मुंशी सदासुखलाल और मौलवी मीर अम्मन को बुलाकर इनकी सम्मिलित भाषा की रीढ़ तोड़ दी थी...

मैकॉले ने दख़ल दिया–मैंने अंग्रेज़ी शिक्षा अनिवार्य बनाकर फारसी को बेदख़ल किया था और पूरे हिन्दुस्तान के बुद्धिजीवियों और तहज़ीयाफ्ता तबकों को अनपढ़ और जाहिल बना दिया था।

अपनी क़ब्र से निकल कर मिट्टी झाड़ता हुआ लार्ड कर्ज़न आगे आया था–जो काम आज माउन्टबेटन ने किया है, उसकी शुरुआत मैंने सन् 1905 में ही कर दी थी। मैंने हिन्दू मुसलमानों का बँटवारा करके तभी बंगाल को विभाजित कर दिया था। मुसलमानों के लिए पाकिस्तान बना दिया था! लेकिन बंगाल के मुसलमान अपना भविष्य नहीं देख पा रहे थे। उन्होंने बंगाल के विभाजन को खारिज कर दिया। तब मैंने बंग-भंग वापस लेकर ढाके के नवाब से कहा था कि वह हिन्दू वर्चस्व से बचने के लिए अपनी अलग मुस्लिम पार्टी बनाए...वही पार्टी है मुस्लिम लीग–जिसने आज पाकिस्तान बनाया है!

मैकॉले ने फिर दख़ल दिया–सन् 1857 की हिन्दू-मुस्लिम एकता को तोड़ने के लिए ही मैंने राजे-महाराजों, नवाबों-ताल्लुकेदारों की एय्याश औलादों के लिए उन्हीं की रियासतों में बोर्डिंग स्कूल स्थापित किए थे...और उन कुलीन स्कूलों में मैंने इन्हीं नेटिवों के धर्मों की

शिक्षा अनिवार्य बनाई थी...जिन्हें आज आप अफगानिस्तान के तालिबान कहते हो, वैसे हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई तालिबान हमने हिन्दुस्तानी रियासतों में पैदा कर दिए थे। हिन्दुस्तान की रियासतें क़ौम और धर्म के इस विभाजन को अंजाम देने वाली हमारी साम्राज्यशाही के कारगर केन्द्र बन चुके थे। हिन्दू राज्यों में मुसलमान का उत्पीड़न और मुसलमान रियासतों में हिन्दू के उत्पीड़न की नीति की सफलता हमने हासिल कर ली थी...सन् 1857 की एकता हमें मन्जूर नहीं थी...इसलिए इतिहास को खण्डित करना ज़रूरी था...

मैकॉले अपनी बात कह ही रहा था कि आकाश में स्वर्णजटित उड़नखटोलों के आने की आवाज़ चारों तरफ भर गई। इन सोने के उड़नखटोलों में लन्दन के वे चौबीस वणिक आए थे, जो आयरलैण्ड के अकाल के चलते, मौत से मुनाफ़ा कमाकर मालामाल थे। लेकिन इन्हें डच व्यापारियों से शिकायत थी, जिन्होंने पूरब और भारत के मसालों पर एकाधिकार हासिल करके कालीमिर्च की क़ीमत बढ़ा दी थी। तब यह 24 वणिक 24 सितम्बर 1599 की दोपहर लीडनहाल स्ट्रीट की एक खस्ताहाल इमारत में मिले थे और इन्होंने ही ईस्ट इण्डिया ट्रेडिंग कम्पनी की स्थापना की थी।

और यह आश्चर्य की बात नहीं थी कि भारत का वायसराय तो शाही खानदान की सहमति से चुना जाता था, परन्तु भारत के राज्यों के राज्यपालों को ईस्ट इण्डिया ट्रेडिंग कम्पनी के मालिकों के वंशजों में से ही चुना और नियुक्त किया जाता था।

14 और 15 अगस्त सन् 1947 को भारत के उन्हीं राज्यपालों ने अपने वणिक पुरुखों के स्वर्णजटित उड़नखटोलों का स्वागत किया था।

जब उन 24 वणिकों के उड़नखटोले भारत के आकाश में स्थिर हुए, उस समय मिलिटरी छावनियों, सरकारी इमारतों, नौ सेना के केन्द्रों, साम्राज्यवादी सत्ता के भवनों, क्लाइव की साजिशों का प्रतीक कलकत्ता के फोर्टविलियम, मद्रास के फोर्ट ज्योर्जेस, शिमला के वायसरीगल लॉज, रेजीडेंसी लखनऊ और अन्य हज़ारों जगहों से उनके उपनिवेशवादी साम्राज्य के प्रतीक झण्डे–यूनियन जैक उतारे जा रहे थे। इसे देख कर उनके मन उदास हो रहे थे। वे झण्डे भारत में नहीं बनते थे। अंग्रेज़ दर्जियों के एक ख़ास वणिक परिवार के पास झण्डे बनाने का एकाधिकार था। प्रत्येक उपनिवेश में झण्डे हर तिमाही या छमाही बदले जाते थे...यह लाखों करोड़ों पाउण्ड का धंधा था, इसी को लेकर एक वणिक पूर्वज अपने वंशजों के लिए परेशान था कि दुनिया के उपनिवेशों पर फहरानेवाले लाखों झण्डों के उसके ख़ानदानी व्यवसाय का अन्त हो रहा था...उस मुर्दे को दिल का दौरा पड़ गया...उसे उन वणिकों ने सँभाला ! और तब आरोपों-प्रत्यारोपों का दौर शुरू हो गया। ताज्जुब यह था कि इण्डिया की तरफ से आरोपों का उत्तर अज़टेक सभ्यता का सम्राट मोंतेज़ुमा दे रहा था।

आरोप उछला–

–हम तुम्हें आज़ाद तो कर रहे हैं लेकिन तुम इस लायक नहीं कि अपनी आज़ादी को सँभाल सको!

–तुम कौन हो इण्डिया को आज़ादी देनेवाले ? हर व्यक्ति आज़ाद पैदा होता है...इस भारत ने आज से 5000 साल पहले आत्मा और नैतिकता का आविष्कार किया था...इस सभ्यता ने प्रकृति के साथ भय के कारण सामंजस्य स्थापित किया था और भय से मुक्त होकर आस्था को जन्म दिया था। इसने ही भय को आस्था में बदला था। कभी सुना था तुमने आत्मा, नैतिकता या आस्था का नाम ? यह शब्द ही तुम्हारे पास नहीं हैं। तुम्हारे पास है केवल व्यक्ति, इनके पास है समिष्ट!

–और आजादी के वक्त इन हिन्दुस्तानियों के पास हैं करोड़ों दलित। करोड़ों इस्लामपरस्त मुसलमान, लाखों ईसाई, पारसी और यहूदी! और छह करोड़ से ज्यादा यहाँ के असभ्य, अनपढ़ आदिम निवासी। इन्हीं में शामिल हैं पूर्वोत्तर प्रदेशों के नरभक्षी!

–बकवास मत करो ! यह ग़लत जानकारियाँ हैं...भारत ने सबको जीवन का अधिकार दिया है। तुम तो अपने देश में एक भी विदेशी को आज भी घुसने नहीं देते, लेकिन इस भारत ने सदियों से सबको जीने का वसीला और रहने को पनाह दी है...तुमने तो अपने-अपने पाकिस्तान बनाए हैं और जब हमारी सभ्यताओं ने तुम्हारे आततायी संहारक आक्रमणों को झेला था, तब अपनी विजय को प्रसारित करने के लिए हमने उन आक्रान्ताओं के नरमुण्डों को अपना परचम बनाया था...तब तुमने विश्व की आदिम सभ्यताओं पर नरभक्षी होने का आरोप और कलंक लगाया था...वही कलंक तुम आज भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशों पर लगा रहे हो...वे नरभक्षी नहीं, तुम्हारे नरमुण्डों को काटकर परचम की तरह फहरानेवाले आदिम योद्धा थे...

मोंतेज़ुमा जब सदियों में फैले सवालों का जवाब दे रहा था तो अदीब को अपनी कहानी से मिलने का वक्त मिला था। वह फिर फरार होकर दिल्ली की रोहतक रोड की ओर भागा था, जहाँ से रामनगर जाता हुआ विद्या का ताँगा गायब हुआ था और उसका घोड़ा अपने पंख फैलाकर न जाने कहाँ, उस कमसिन को ले उड़ा था।

हुआ यह था कि जब रामनगर जाता हुआ विद्या का ताँगा कस्साबपुरा के इलाके से गुज़र रहा था, तब तक वहाँ मारकाट शुरू हो चुकी थी। कस्साबपुरा के कसाई अपने गँडासे और छुरियाँ लेकर काफ़िरों के कत्लेआम का सबाब कमा रहे थे! इसी में विद्या का ताँगा फँस गया था। एक धमाका हुआ था और धुएँ के साथ आग फैल गई थी। उसकी चपेट में कई राहगीर आ गए थे। चीख पुकार, मारकाट। तभी विद्या ने एक चमकता हुआ छुरा देखा था...जो बिजली की तरह चमक कर उसके बाबूजी की पसलियों में उतर गया था। उसके बाद उसने कुछ नहीं देखा। उसके माँ-बाप और छोटा भाई मारे गए थे। घोड़ा उसे लेकर उड़ना चाहता था लेकिन बारूदी छर्रों से वह भी घायल था। बदहवास विद्या जलते हुए ताँगे के नीचे फँसी हुई थी कि तब न जाने कितनी देर बाद उसे एक आवाज़ ने पुकारा था–

–बेटी ! मेरा हाथ पकड़ो...घबराओ मत...हिम्मत रखो, इस आग से निकलने की कोशिश करो। कोशिश तो करो...

और नीम बेहोशी के आलम में विद्या ने ख़ुद को एक ऐसे खानदान के बीच पाया था, जो खून की नदियाँ पार करता हुआ पाकिस्तान जा रहा था। उसने विद्या को ज़िन्दा बचा लिया था। कस्साबपुरा के पास उस खानदान ने खून की दूसरी नदी पार की थी और रात होते-होते वे मेवात के नूह नाम के कस्बे में पहुँच गए थे। वहीं उन्होंने किसी दूर के रिश्तेदार के घर पनाह ली थी। नूह का यह कुनबा मेवाती मुसलमान था। राजपूत मुसलमान। वैसे तो विद्या को दिमाग़ी होश नहीं था, पर यह घर उसे कुछ-कुछ अपना लगा था। यहाँ दंगे-फसाद, हिन्दुस्तान पाकिस्तान की कोई बात नहीं थी। बात यही हो रही थी कि पिछले दो सालों से बारिश न होने के कारण सारे जोहड़ और तालाब सूख गए हैं। मटर, जौ, चना पैदा ही नहीं हुआ है। पिछले बरस बैसाख में कुछ उम्मीद बनी थी, पर पानी की एक बूँद नहीं गिरी तो अरहर भी मुठरा गई...

विद्या को यह सब सुनकर राहत मिली थी। घर के लोग वह बातें ही कर रहे थे, जो फतेहगढ़ के पड़ोसी आढ़तिया किया करते थे या उसके बाबूजी के पास आनेवाले मुवक्किल बताया करते थे। वहाँ भी तो ऐसी ही गर्मी होती थी और इन्हीं गर्मियों में होती थीं शादियाँ।

हिन्दुस्तान के किसान का धर्म कुछ भी हो, उसके मौसम एक हैं। बैसाख चल रहा था और मेवात में यह शादियों का मुकद्दस मौसम था। चाँद की चार तारीख थी। यासीन ने पाकिस्तान जाने का रुख़ किए सैयद सिराज से पूछा था–सैयद साहब ! हमने तो जिन्ना साहब से मना कर दिया था, हम नहीं जाएँगे...आखिर पाकिस्तान में ऐसा क्या है, जो यहाँ नहीं है ?

तब सैयद सिराज ने कहा था–भाई जान ! पाकिस्तान एक सपना है...हम उसी सपने को पाने के लिए वहाँ जा रहे हैं...और अब निकल पड़े हैं, तो वापस जाना मुमकिन नहीं है।

उसी वक्त बीच में आकर मुस्तरी ने यासीन को ख़बर दी–अब्बा ! चाक पूजन की रस्म भी अभी अदा होनी है और भात लेकर चारों मामा भी पहुँचने वाले हैं...आप कपड़े बदल लीजिए।

सैयद सिराज ने अपनी बेगम की तरफ देखा, कुछ इस अन्दाज से कि उसके मेवाती यासीन भाई किस तरह के मुसलमान हैं,तो यासीन ने मसला और उलझा दिया–

–यह जो लड़की आप साथ ले आए हैं...यह आपके लिए मुसीबत बन सकती है।

–लेकिन मैं क्या करता...इस ज़िन्दा अनाथ को ताँगे के नीचे आग की चिता में जलने के लिए तो नहीं छोड़ सकता था...

विद्या ने यह सुना तो सोचने लगी–वहीं आग में जल मरती तो बेहतर होता– अपने शहर से तो उसे बहुत डर लगता था। कुछ भी सोचते ही उसे जैसे काठ मार जाता था। उसकी आँखों के सामने वह शाम खड़ी हो जाती थी, जब काली मेम की ईसाई बस्ती से वह बच्चों को पढ़ा के लौट रही थी। कई दिनों से वह देख रही थी कि कुछ हिन्दू लड़के उसका पीछा करते थे...वे लड़के जो सामने के पार्क में सुबह सुबह व्यायाम करने के नाम पर जमा होते थे...एक दिन उन्होंने उसे रोका था और पूछा था–

–तुम हिन्दू हो ?

–हाँ, क्यों ?

–फिर तुम ईसाई बस्ती में रोज़ क्यों जाती हो ?

–मैं वहाँ प्राइमरी स्कूल में पढ़ाती हूँ।

–यह झूठ बोल रही है...यह बताती नहीं, पर यह ईसाई हो चुकी है। यह उनके गिरजाघर में प्रार्थना करने जाती है...

उन लड़कों ने उसे जलती नजरों से देखा था, तो उसने गुस्से से कहा था–काली मेम डाक्टर हैं...वह धर्म परिवर्तन नहीं, मरीजों का इलाज करती हैं।

–कुछ भी हो...अगर तुम हिन्दू हो तो कल से वहाँ जाना बन्द कर दो !

उसे क्या मालूम था कि ऐसा होगा। उसके सामने वही शाम फिर आकर खड़ी हो गई, जब उन्हीं में से दो लड़कों ने उसे पकड़ा था और आलू के एक गोदाम में ले जाकर, उसे अपनी हिन्दू हवस का शिकार बनाया था। डर और शर्म के मारे वह अपने बाबूजी को कुछ नहीं बता सकी थी...एक बार फिर उन्हीं दो ने उसे बेआबरू किया था। तबसे उसे दौरे पड़ने लगे थे...वह अपने शहर से घबराने लगी थी...

–तो इसे ब्याहता बना लीजिए...इसे दूसरी या तीसरी बीबी का दर्जा दे दीजिए, नहीं तो सरहद पार करना मुश्किल होगा। मिलिट्रीवाले भगाई हुई औरतों की तलाश सख़्ती से कर रहे हैं। यासीन मेवाती ने राय दी।

बेगम ने सैयद सिराज को तिरछी नज़रों से देखा था, तो उन्होंने डरते हुए कहा था–यह लड़की हिन्दू है...मैं नहीं चाहता कि यह किसी की हवस या छुरे की शिकार हो जाए...पाकिस्तान पहुँचते ही मैं किसी जायज़ नौजवान से इसकी शादी कर दूँगा...

तभी जल्दी-जल्दी यासीन की बीबी नगमा बी ने उन्हें बुरका और काठ की एक छोटी-सी रंगीन डिब्बी थमा दी थी।

–यह किसलिए भौजी जान ? इसमें है क्या ? सैयद सिराज ने पूछा था।

वे जल्दी में थीं। गउनारियों के बोल घर के दरवाजे पर गूँज रहे थे। नाचती गाती हिन्दुआइनें दूल्हे को दुआ देने और अपना नेग लेने आ चुकी थीं। नगमा बी के सिर पर सौ काम थे। चाक पूजन तो बाकी था ही, उन्हें कुएँ की जगत पर जाकर भी बैठना था, जहाँ से नौशा मियाँ को उन्हें उठाना, मनाना और वचन देना था कि अम्मा तुम्हें कुएँ में कूद कर

ख़ुदकुशी करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मैं हमेशा तुम्हारी बहू को क़ाबू में रखूँगा। वो कभी भी तुम से उल्टे बैन नहीं बोलेगी...इसी तरह के तमाम कामों और दिमाग़ी उलझनों के बीच नगमा बी ने सिराज को राज़ की बात समझा दी थी–यहाँ से इसे बुरका उढ़ा के ले जाओ...मुंह खुला रहेगा तो हिन्दू-मुसलमान का फ़र्क पैदा होगा, यहाँ से मुसलमान के तौर पर जाएगी तो तुम्हारे साथ साथ शायद बच के निकल जाए। राजी-खुशी सरहद पार कर लो तो इस डिबिया में से सिन्दूर लेकर इसकी माँग भर देना। उधर का सिपाही पूछे तो कह देना–हिन्दू ब्याहता है...हम इसे उठा लाए हैं...सिपाही खुश हो जाएँगे...खुशी-खुशी जाने देंगे...

–भौजी! बात तो आपने पते की बताई है! सैयद सिराज ने कहा। तब तक नगमा बी नेग और निछावर की रस्में निपटाने चली गई थीं।

–ऐसा कीजिए न...बेगम सिराज ने गले पड़ी मुसीबत से बचने का रास्ता निकाला था–इसे यहीं नगमा आपा के हवाले छोड़ दीजिए। इसे अपना घर-गाँव तो मालूम होगा...जब हालात सुधरेंगे तो नगमा आपा इसे घर भिजवा देंगी...

–बेगम...यह इतना मुश्किल दौर है कि कहीं किसी का घर नहीं है...सब बेघर हो गए हैं...चल तो हम भी पड़े हैं लेकिन क्या हमें मालूम है कि पाकिस्तान में हमारा घर कहाँ है?

और फिर न जाने विद्या का सफ़र कैसे तय हुआ था। उसे टुकड़े-टुकड़े में कुछ बातें याद थीं। सुबह जब अज़ान की आवाज़ आई तब नूह से सरहद के लिए रवाना होने वाली किराए की लारी खड़ी थी। फतेहगढ़ के बारे में सोचते ही उसे वे हिंदू लड़के याद आते थे...आलू का वह मनहूस गोदाम याद आता था...और अब तो अम्मा-बाबूजी भी नहीं थे...वहाँ के बारे में सोचती थी, तो दिमाग़ सुन्न पड़ने लगता था...और जब उसने सुना–चलो बेटी...तो वह अपने नए खानदान के साथ उस छकड़ा लारी में सवार हो गई थी...अभी कुछ और चलनेवालों का इन्तज़ार था। तब तक सैयद सिराज ने सामने वाली मस्जिद में जाकर हौज़ के पानी से मुँह हाथ धोया। नमाज़ पढ़ी और फिर लम्बे-लम्बे सिज्दे किए थे...

सफ़र शुरू हुआ। काले पहाड़ की परछाईं कुछ-कुछ उजली होने लगी थी। सूरज निकल रहा था। रास्ते में सिवा कीकर के कोई दूसरा पेड़ नज़र ही नहीं आता था। एकाध बेरियों के पेड़ भी मिले थे। उन पर बयों के खाली घोंसले लटक रहे थे। सफ़र जारी था। फिर सरहद आई थी। वहाँ कुछ और लोग भी मौजूद थे। चाय की एक गुमटी भी थी। सिपाहियों ने थोड़ी-बहुत पूछ-गछ और चाय पिलाने के बाद राय दी थी–

–आप लोग लायलपुर निकल जाओ। उधर जमीनें भी हैं और घर-मकान भी खाली पड़े हैं। शायद घरवाले भी मिल जाएँ!

–घरवाले...तब हमें घर-मकान कौन देगा?

–लाशें फेंक देना। कीड़े-मकोड़े साफ़ कर लेना। उधर पानी की कमी नहीं है। सतलज से नई नहर बहुत पहले निकल चुकी है। जड़ाँवाला होते हुए निकल जाओ। वहाँ गल्ला मण्डी भी है, चाहो तो कुछ रसद खरीद लेना। पैसा कम हो तो पल्लेदारी करके कमा लेना। कोई दिक्कत नहीं होगी। मुल्क में सब आराम ही आराम है। सिपाही ने उनकी मुश्किल हल कर दी थी।

आख़िर उनका छोटा-सा खानदान लायलपुर पहुँच ही गया। घर मकान भी मिल गया। उनसे पहले चार पाँच मुहाजिर घराने वहाँ पहुँच कर बस चुके थे। उनके घर में पुराने मालिकों की कुछेक पहचानें ही बाकी थीं। टूटे तन्दूरवाले कोने में कपास की छड़ियाँ। एक कील पर टँगी, तागे में पिरोए हुए शलजम के कतलों की माला।

दो पड़ोसियों ने आकर गर्मजोशी से सैयद सिराज के छोटे से खानदान का स्वागत किया था। तब मालूम हुआ था कि उनके खानदान पुरानी दिल्ली दरियागंज से उठकर आए थे। कूचा सादुल्ला खाँ से। नहरवाली हवेली में उनकी रिहायश थी। वहीं तो अपने प्राइम मिनिस्टर जनाब नवाब लियाकत अली खान साहब की हवेली थी–गुले-राना। सर सैयद अहमद खाँ की हवेली तिराहा बहरामखाँ के पास थी। वे जब भी अलीगढ़ से आते तो उसी में ठहरते थे...

–अल्लाह का लाख-लाख शुक्र...पहले पड़ोसी नदीम साहब ने कहा–हमें तो अलीगढ़ में पढ़ने का मौका मिला नहीं, मैं तो वहीं अजमेरी गेट के एंग्लो-अरेबिक स्कूल में पढ़ा हूँ। यहाँ आते ही फॉरेन आफिस में नौकरी मिल गई। सरकार को ऐसे मुहाजिरों की बड़ी ज़रूरत है जो हिन्दुस्तान जैसी फॉरेन कन्ट्री की मालूमात रखते हों...अपना काम तो बन गया...आप भी कोई नौकरी पकड़ लो...

–हमें तो कोई काम धन्धा ही पकड़ना होगा...हममें इतनी लियाकत नहीं कि नैकरी मिल जाए...सैयद सिराज ने बताया।

–लियाकत के लिए तो अपने वज़ीरे आला लियाकत अली खान साहब ही काफी हैं...उर्दू तो पढ़ी होगी ?

–जी हाँ...उर्दू तो आती है।

–तो भाई जान, आप के घर में जो सिन्दूरवाली लड़की है, उसके बारे में कुछ उर्दू में बताइए ! दूसरे पड़ोसी इनायत अली खान ने दरयाफ्त किया।

यह जुमला सुनते ही बेगम सिराज का माथा ठनका।

आनेवाला तकलीफदेह वक्त रह-रह के कौंधने लगा। न मालूम किस वक्त बिजली टूट पड़े। मरद का नाड़ा टूटते कितनी देर लगती है। कमरे तो कई हैं, पर फिलहाल चारपाई तो एक ही है। कहीं नाड़ा टूट गया तो फिर ज़िन्दगी भर चारपाई नसीब नहीं होगी।

वह तो ख़ुदा का शुक्र। काम धन्धे की तलाश में सैयद सिराज को कई दिनों के लिए पड़ोस की मण्डियों की जानकारी लेने जड़ाँवाला की बड़ी मण्डी तक जाना पड़ा। उसी

बीच बेगम रुकैया सिराज ने मौलवी को बुलाकर कलमा पढ़वाया और विद्या का माथा चूमकर उस का बहुत ही खूबसूरत-सा नाम रख दिया–परी ! परवीन सुलताना ! सैयद सिराज जब लौटे तो इस ख़बर से बहुत ही खुश हुए।

उन्होंने बेग़म की सलवटदार कमर में प्यार से हाथ डाला और कहा–बेग़म ! तुमने यह सबाब का काम किया है...एक आलातरीन काम !

और दूसरी बार सैयद सिराज परदेस गए तो रुकैया बेग़म ने दूसरा आलातरीन काम कर डाला। इसकी तैयारी वे कई हफ्तों से कर रही थीं। ख़ासतौर से उन्होंने अपनी कमर में पड़नेवाली सलवटों की कशिश को एकाएक पहचाना था। इस कशिश की पहचान उन्हें नदीम साहब की नजरों ने दी थी। एक दिन तो इसी खातिर उन्होंने करधनी की तरह, चाँदी की लड़ बाँध कर अपनी सलवटों को सजाया था। नदीम साहब की आँखें बँधी रह गई थीं, तब रुकैया बेगम ने हया का नक़ाब पहन कर बड़ी शोखी से उन्हें बताया था–

–कमर की यह बर्तें मर्द की बेपनाह मुहब्बत और जिस्मानी कूवत की निशानियाँ हैं...यह लहरें तभी पड़ती हैं, जब कोई मर्द मुहब्बत की गहरी झील में उतरता है।

नदीम साहब ने रुकैया को अर्थभरी नजरों से कसमसा के देखा और कुछ सोचने लगे।

–किस सोच में पड़ गए आप ?

नदीम ने फिर उन्हें देखा। उनके भीतर जिस्मानी कूवत का लावा मचलने लगा। उन्होंने अन्दाज़ लेने के अन्दाज़ में रुकैया बेगम को गौर से देखा और धीरे से बुदबुदाए

–लेकिन मसला तो यह है कि...

–आदमी मन में ठान ले तो सारे मसले हल हो जाते हैं...यह मसला तो चुटकी बजाते हल हो जाएगा...परी तो मौजूद है...

परी ! परी !! परी !!! नदीम खाँ का पूरा वजूद इस नाम से नहा गया। और नहाने के मुंतजिर नदीम खाँ हम्माम में अकेले न रह जाएँ, इसलिए रुकैया बेगम ने सैयद सिराज के वापस आने से तीन दिन पहले सारा सरंजाम कर दिया। दो बीबियों के रहते उन्होंने परी और नदीम खाँ को मस्जिद में ले जाकर निकाह पढ़वा दिया। इस शर्त के साथ कि वे अपनी 'बेटी' की बिदा बड़ी धूमधाम से करेंगी, लेकिन अगली जुमेरात की शाम, जब सैयद सिराज लौटेंगे धन्धे की ख़ुशख़बरी के साथ। सारे हड़कम्प और भूचाल के बावजूद नदीम साहब को उसी का शाम इन्तज़ार था।

•

37

वह शाम भी आ ही गई। दोनों घरों में लानत-मलामत, गाली-गलौज के गीत गाए गए। थोड़ी बहुत मारपीट का नाच भी हुआ। फिर जो होना था, वही हुआ। परवीन सुलताना उर्फ़ परी उर्फ़ विद्या, बेगम नदीम खान बन गई। बेगम परी को अपनी ज़िन्दगी से कोई गिला नहीं था। अपने शहर फतेहगढ़ की दहशत और रोहतक रोड पर हो सकने वाली मौत के सामने सब मुनासिब था। और आज जब लायलपुर में ज़िन्दगी सामने थी, तब तो सब कुछ मुनासिब था ही।

पड़ोसिन नादिरा बेग़म तो शादी के जश्न में शामिल होने, बहू की बलाएँ लेने और पंजाब की ज़मीन में नार गाड़े जाने की दुआएँ देने आई थीं। हाथ में फ़ीरोज़े की अँगूठी, कान में फ़ीरोज़े के कुंडल, नाक में फ़ीरोज़े की कील और उसी रंग का रेशमी ग़रारा जिसमें उनके कूल्हे पनचक्की के पाटों की तरह रगड़ खा रहे थे। उन्होंने जूतम-पैजार का नज़ारा देखा तो बिगड़ उठीं–

–अरे यह क्या कर रहे हो तुम लाला लोग...दालिए कहीं के...बहुत हो गया ख़ून-ख़राबा, अब तो चैन से ज़िन्दगी शुरू करो ! मैं तो जशन मनाने और दुआएँ देने आई थी, न सही नूरपुलाव, शीरमाल और कोरमे की दावत...यह औरत को इज्ज़त दिए जाने का दिन है, इसका तो ख़याल करो !

तब नदीम साहब की बड़ी बीबी ने सुबकियों, बद्दुआओं और कोसनों के बीच कहा था–

–यह तो हिन्दुआइन है...नापाक है...

–नहीं...घोड़े का मुँह, आग की लपट और औरत की कोख कभी नापाक नहीं होती।

और बरसों बाद तलक परी उर्फ़ विद्या अपनी कोख के लिए अल्लाह का शुक्र अदा करती रही। हालाँकि उसकी कमर में सलवटें तो नहीं पड़ीं, पर नदीम साहब ने उसे भरपूर मुहब्बत और इज्ज़त दी। परी ने भी उन्हें तीन औलादें दीं। फिर उन्हें फालिज मार गया और सरकार ने इतनी मेहरबानी की कि उनके बड़े बेटे परवेज़ को उसी फॉरेन अॉफिस में उनकी जगह दे दी।

परी का ज्यादातर वक्त तब उनकी खिदमत और देखभाल में बीतने लगा। वह सुबह उनका मुँह हाथ धुलाती, चाय और बिस्कुट देती। दोपहर को मक्के का दलिया या खिचड़ी खिलाती। घर में आये रिसालों से उन्हें शेरो-शायरी और अफ़साने सुनाती। रात को

गोश्त का शोरबा पिला कर सुला देती। इन्हीं किसी एक रिसाले में परी ने अदीब की एक कहानी का तर्जुमा पढ़ा था, तब उसका माथा ठनका था–कहीं यह वही तो नहीं...जिसे उसने बहुत पहले कानपुर स्टेशन पर छोड़ा था...

उसी शाम परवेज़ ने आकर ख़बर दी थी–

–अम्मी ! मेरी पोस्टिंग भारत में हो गई है, अपनी एम्बेसी में। अगले महीने मुझे दिल्ली जाना होगा...

–दिल्ली ! खाट पर पड़े नदीम मियां की आँखों में चमक-सी आ गई थी और वे लड़खड़ाती आवाज़ में बोले थे–दिल्ली...वहीं तो अपने घर हैं, कूचा सादुल्ला खाँ में...नहर वाली हवेली !

–और जब कभी मौका लगे तो एक जगह और देखते आना...

–कौन सी जगह अम्मी ?

–कानपुर स्टेशन !

–कानपुर स्टेशन ! परवेज़ ने ताज्जुब से कहा–यह कौन सी बात हुई अम्मा ?

–बात तो कोई नहीं, भारत की एक कहानी का तर्जुमा पढ़ा था, उसमें कानपुर स्टेशन का ख़ासा जिक्र आया था...तो लगा कुछ ख़ास होगा वहाँ...मैंने तो वैसे ही कह दिया, नहीं तो अपने लाहौर से बेहतर तो कोई शहर नहीं...

–ठीक है अम्मा...हम कूचा सादुल्ला खाँ भी जाएँगे और कानपुर स्टेशन भी देख आएँगे...

–हाँ बेटे...अपने घरों को अच्छी तरह प्यार से देखना...नदीम ने लड़खड़ाती आवाज़ में कहा।

–और सुनो, वहीं अजमेरी गेट के कूचा चेलान में एक हकीम जी हुआ करते थे, हकीम अशरफ अली ख़ैराती साहब...फालिज की अक्सीर रामबाण पुड़िया उनके पास होती थी, वक्त मिले तो उनके दवाखाने से हमारे लिए दवा भिजवा देना। शायद वतन की पुड़िया से मेरा अधरंग ठीक हो जाए...नदीम की जीभ बुरी तरह लड़खड़ा रही थी–वहीं सामने मस्जिद है, वहाँ के दिए में मेरी तरफ से ग्यारह पैसे का तेल डलवा देना। छुट्टियों में आना तो कुतुब नर्सरी से बेर के पौधे की एक पौध लेते आना। यहाँ बेर होता ही नहीं...

–अब्बा, आप हमें लिस्ट बनवा देना...क्या क्या देखना है, किस-किस से मिलना है, क्या-क्या लाना है...मैं सब ले आऊँगा। बस, ताजमहल और औलिया मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह लाने को मत कहना, वह मैं उठा के नहीं ला पाऊँगा...

यह सुन के परी के याकूती ओठों पर मुस्कराहट आ गई थी। नदीम उदास हो गए। तो परी ने उनके माथे पर हाथ फेरते हुए कहा–मेरी तरह अब अपनी यादों को यहीं रोपिए...उधर देखिए...खिड़की के बाहर...कितना खूबसूरत है वह खजूर के पेड़ों का झुण्ड। जिन दिनों खजूर फलते हैं तो कितनी मधुमक्खियाँ गाती-गुनगुनाती आती हैं...

नदीम ने परी को देखा, फिर धीरे से बोले–

–बेगम, शहद के छत्ते तो सीकरी के बुलंद दरवाजे में लगते हैं। कभी जाओ तो देखना। इन दिनों तो वहाँ जमुना और बेतवा के कछार में टेसू फूल रहे होंगे...ढाक के जंगल दहक रहे होंगे...

परी ने उनकी उदास आँखों को देखा।

–बेग़म ! यादों को रोपने में सदियाँ लगती हैं...नदीम की जुबान बेतरह लड़खड़ा रही थी–और जो याद आए वही अपना होता है...बेगम, मेरे आधे जिस्म की यादें खो गई हैं, इसीलिए यह सुन्न पड़ गया है...

परी ने अपनी मरमरी गुदाज़ बाँहों में उन्हें लपेट लिया और सुन्न पड़े ज़िस्म को जगह-जगह चूमते हुए कहा–मेरे सरताज, मैं आपको ठीक कर लूँगी...अल्लाह फिर हमें अच्छी-अच्छी यादें बख़्शेगा...

कुर्रतुल-एन-हैदर का आग की दरिया तब उसे सामने बहता नज़र आया था...

तभी पड़ोस की बस्ती से तेज़ मातमी आवाजें आने लगीं। परी और नदीम ने एक दूसरे को सवालिया निगाहों से देखा...यह मातम...वह तेज़ी से उठी और खिड़की पर आकर खड़ी हो गई। खजूर के पेड़ों के पार से रोने-बिलखने की आवाजें और तेज-तेज़ आने लगीं। उसका दिल किसी गम्भीर आशंका से धड़का...न जाने किस घर पर कौन-सी बिजली टूट पड़ी है...उसने आसमान की तरफ देखा। अबाबीलों का झुंड उड़ता हुआ उसके सामने से गुज़र गया।

गली से गुज़रते एक आदमी ने ख़बर दी–

–बीबी ! जंग छिड़ गई है ! सरहद से अब्दुल गनी के बेटे के मरने की ख़बर आई है...

परी का दिल बैठ-सा गया।

पीछे से नदीम की लड़खड़ाती आवाज़ आई–

–क्या बात है बेगम...क्या फिर कोई पाकिस्तान बन रहा है ?

परी ने सामने देखा। आसमान में अबाबीलें तो नहीं, पर लाखों तितलियाँ उड़ती चली आ रही थीं। कुछ ही पलों में नजारा स्पष्ट हो गया। वे ज़िन्दा तितलियाँ नहीं, तेज़ बारूदी हवा पर उड़कर आए तितलियों के पंख थे। वे खजूर के पेड़ों पर सुस्ताने बैठ गए। जिन्हें जगह नहीं मिली वे तैरते-तैरते पथरीली ज़मीन पर ही लेट गए।

परी ने उन टूटे पंखों को देखा। फिर खजूर के पेड़ों को। फिर टूटे पंख की तरह लाचार पड़े नदीम को और जैसे उसने खुद से ही ख़ामोश सवाल किया–

–क्या पता मधुमक्खियाँ इस बार आएँगी या नहीं ?

–बारूदी मौसम में वे शायद आना पसन्द न करें...ख़ामोशी ने जवाब दिया।

–मालूम करो बेगम...यह जंग क्यों शुरू हुई है ? बिस्तर पर पड़े नदीम ने भारी आवाज़ में कहा।

–अब्बा, आप परेशान मत होइए...परवेज़ ने आकर कहा, तो नदीम को ताज्जुब हुआ।

–तुम तो हिंदुस्तान जा रहे थे, क्या हुआ ?

–जंग की वजह से उड़ानें बन्द हैं। मैं अभी-अभी एयरपोर्ट से लौट कर आया हूँ।

–लेकिन यह जंग...

–बंगाली अपना पाकिस्तान चाहते हैं...

–तो इसमें हिन्दुस्तान क्या कर रहा है ?

–वह बंगालियों को उनका पाकिस्तान बनाने में मदद दे रहा है...

–तो अब कितने पाकिस्तान बनेंगे भई ?...खुद पाकिस्तान में से कितने पाकिस्तान पैदा होंगे ? पंजाब के सरायकी अपना सूबा माँग रहे हैं। पुराने सिंधी अपना सिन्धु देश बनाना चाहते हैं। जैसे यहाँ लोगों ने पंजाबी-उर्दू की लड़ाई छेड़ दी है, वैसे ही वहाँ सिन्धी-उर्दू की लड़ाई चल रही है। और...पख्तून अपना पख़्तूनिस्तान चाहते हैं। अताउल्ला मेंगल आजाद बलूचिस्तान माँग रहा है। और अपने मुहाजिर भाई सिन्ध कराँची में अपना एक और पाकिस्तान बनाना चाहते हैं...सुना है कि वहाँ हिन्दुस्तान में हिन्दू भी हिन्दुस्तानियों से अपना हिन्दुत्ववादी पाकिस्तान माँग रहे हैं...लंका में तमिल अपनी लंका अलग करना चाहते हैं...

–पूरी दुनिया में यही हो रहा है अब्बा जान...इस्रायल की सीमा पर फिलिस्तीनी मारे जा रहे हैं। रवाण्डा में कत्ले आम चल रहा है। हुतू कबीलों ने पाँच लाख तुत्सियों को मार डाला है...हद तो यह है कि सिंधी लोग अपने कायदे आज़म जिन्ना साहब को भी मुहाजिर मानते हैं...उन्होंने कायदे आज़म की तसवीरों तक की बेक़द्री की है...सरहद पर मारकाट चल रही है। छंब-जोरियाँ, खेमकरन की पहाड़ियाँ और मैदान खून से नहा रहे हैं...अभी परवेज़ यह कह ही रहा था कि चारों ओर पटाख़े छूटने लगे।

कराँची के आसपास, बंगला देशियों की बस्ती में चोरी-छिपे जश्न मनाया जाने लगा। बंगला देश बन गया था !

और क़ायदे आज़म की मज़ार की दीवार किसी टोबाटेक सिंह ने यह इबारत लिख दी थी–

–क़ायदे आज़म ! आपका आधा एहसान हमने उतार दिया...

और उधर बंगलादेश के बंकरों से नंगी नौजवान लड़कियों की कतारें निकल रही थीं। उनकी कोखें खून के सूखे चकत्तों से सनी हुई थीं। वे चलती फिरती मुर्दार मूर्तियों में बदल गई थीं।

उन्हें देखकर दूसरा टोबोटेक सिंह, लखनऊ का मुद्राराक्षस चीख़ा था–

–वहशियो! यही हैं तुम्हारी हार और जीत की निशानियाँ! युद्ध कहीं भी हो, किसी ज़मीन पर हो, किसी भी वजह से हो...यही होता है...और उसने अदीब को अपनी कहानी का मसविदा थमा दिया।

–पढ़ो इसे, जोर जोर से पढ़ो, ताकि दुनिया का हर इन्सान इसे सुने...पढ़ो...यही हर सरहद पर होता है...

और अदीब ने आस पास का सामान सरका कर उस मसविदे को पढ़ना शुरू किया–

–पत्नी चुपचाप अपने बाल सँवारती रही, उसके बाद उसने सावधानी से अपने ओठों को रंगा और उँगली में बचा रंग अपने मुलायम गालों पर रगड़ने लगी...

–अचानक तभी एक साथ कई धमाके हुए। कमरे की खिड़की का शीशा टूटकर नीचे आ गिरा...इधर उधर से धमाकों और चीख-पुकार का शोर आता रहा...कभी मोर्टार...कभी गोलियाँ, कभी बम...फिर उसके बाद मौत की खामोशी...बस्ती खाली हो चुकी थी। जिन्हें भागने का मौका नहीं मिला, वे कहीं छिपने की कोशिश में थे।

धमाके फिर हुए। पति ने कहा–

–मेरी समझ में नहीं आता कि जब हमारी तरफ की फ़ौज उनसे मुकाबला नहीं कर रही है, तो फिर वे लोग इस तरह गोलाबारी क्यों कर रहे हैं?

–उनकी मर्ज़ी...पत्नी ने लापरवाही से कहा–यह भी मुमकिन है कि वे लोग सिर्फ़ यह बताने के लिए गोलाबारी कर रहे हों कि वे आ रहे हैं। आखिर वे यहाँ बाजे बजाते हुए तो नहीं आएँगे...

कई घंटे बाद बाहर कुछ आहटें हुईं।

पति ने कहा–वे आ गए...

दरवाजे पर कई छायाएँ दिखाई दीं। वर्दीवाला अफसर अन्दर आया और पति से बोला–डरने या भागने की ज़रूरत नहीं है, अगर तुमने हमारी मदद अच्छी तरह की, तो हम तुम्हें कुछ इनाम भी देंगे।

इसी बीच पीछे के कुछ सैनिकों में हलचल हुई। शायद और ज्यादा लोग आ गए थे। वे चिल्लाए–

–हेई! औरत! औरत!

बीबी थोड़ी विचलित-सी हुई। फिर सँभल गई। सधी आवाज़ में उसने वर्दीवाले अफसर से पूछा–यह तुम्हारे ही सिपाही हैं?

–हाँ...

–क्या तुम इन्हें अनुशासन में नहीं रख सकते? बीबी ने कहा।

सैनिक जैसे उत्तेजित होकर आगे लपके। अफसर उनकी ओर तेजी से पलटा और कड़कती आवाज़ में उसने सैनिकों को नियंत्रित रहने का आदेश दिया। सैनिकों में क्षोभ

उमड़ आया–

–हमने इस इलाक़े को जीता है...यह लूट का माल है। हम इसे लेंगे! वे चिल्लाए।

–बाहर निकल जाओ! अफसर दहाड़ा।

सैनिक धीरे-धीरे पीछे हटते हुए बाहर निकल गए। बाहर निकलकर किसी एक ने उस औरत और अफसर को लेकर भोंड़ी-सी गाली दी। क्षुब्ध अफसर लपक कर बाहर आया, लेकिन तब तक वे सभी कहीं गायब हो चुके थे। अफसर उस औरत की ओर लौटा। अब उसे अचानक लगा कि उस कमरे में कोई औरत है और वह एक विजेता सैनिक अफसर है। औरत की ओर उसने ध्यान से देखा। औरत का चेहरा भावशून्य था। पलकें भी नहीं झपक रही थीं...उसने उसे फिर देखा, उसके बालों और कपड़ों पर गर्द थी, लेकिन औरत कम खूबसूरत नहीं थी...

अफसर उसकी ओर बढ़ा और उसके बालों और कपड़ों पर पड़ी गर्द उसने झाड़नी शुरू कर दी...औरत के चेहरे से लेकर उसके शरीर तक में कोई जुम्बिश नहीं हुई...तभी उसकी निगाह उसके पति पर पड़ी। वह उसके पति पर गरजा–

–अबे गधे! मेरी सूरत क्या देख रहा है! घर में जो भी खाने का सामान हो, लेकर आ!

पति तेजी से अन्दर की ओर लपका। तभी उसने फिर कहा–

–और देखो! भागने की कोशिश मत करना, वरना सारी बस्ती में मेरी फौज मौजूद है। गोली मार दी जाएगी!

पति आदेश सुन कर अन्दर चला गया। उसके जाते ही जैसे वह मूरत की तरह खड़ी औरत हिली...अफसर ने देखा...वह कुछ और ज़्यादा हिली और फिर सहसा बाहर की ओर भागी। पलक मारते ही अफसर उसकी ओर झपटा और उसने उसे कमर से पकड़ लिया। औरत ने अफसर की कलाई में दाँत गड़ा दिए। अफसर ने उसकी कमर पर एक घूँसा मारा। औरत चीखी नहीं, कराही भी नहीं, उसने दोनों हाथों के नाखूनों से उसका चेहरा खरोंच डाला...लेकिन जल्दी ही जैसे-तैसे उस लम्बे-चौड़े अफसर ने उसे काबू में ले लिया...उसके हाथ पीछे जकड़ लिए...इस हालत में औरत की छातियों का उभार और ज्यादा पुरकश हो उठा...अफसर ने उसके सारे कपड़े नोंच डाले...एक-एक धज्जी उसने चीर कर फेंक दी। वह बेहद उत्तेजित हो चुका था...उसने औरत को उठा कर नीचे कर लिया और...और...और फिर अफसर ने औरत के नंगे शरीर को दो-एक बार ज़ोर-ज़ोर से भींचा और झटके से अलग करके उसे नीचे लुढ़का दिया। गिरी हुई औरत धीरे-धीरे उठकर बैठ गई, वहीं। फ़र्श पर, ज्यों की त्यों।

तभी उसका पति, जो दरवाजे के पास ठिठका खड़ा था, खाने की प्लेट लेकर अंदर आ गया। अफसर ने अपनी स्टेनगन उठाकर गोद में रख ली। इसके बाद वह खाने पर

टूट पड़ा।...खाने के बाद वह पानी पी ही रहा था कि दरवाज़े पर फिर शोर उभरा। वही तमाम सैनिक फिर आ धमके थे...वे चीखने लगे–

–सर !...सर...हमें समूची बस्ती में सिर्फ चार औरतें मिलीं, जो इस क़दर बूढ़ी हैं कि कुत्ता भी उन्हें सूंघना नहीं चाहेगा...

–सर ! आपका काम हो चुका...यह औरत हमें दे दीजिए !

और वह अनावृता औरत उसी तरह, बिना किसी झिझक के उठकर खड़ी हो गई थी...वह खूबसूरत औरत पुतली की तरह धीरे-धीरे सैनिकों की भीड़ की ओर बढ़ी...और तब तूफान-सा आ गया। वे सारे के सारे एक साथ उस पर टूट पड़े। कितनी ही बाँहों में होता हुआ औरत का सुनहला-गुलाबी शरीर उनके बीच कभी-कभी इस तरह चमक जाता, जैसे बाढ़ के गंदले पानी में किसी बच्चे का खिलौना डूबता-उतराता-सा बह रहा हो...

दूसरी सुबह वही वर्दीवाला अफसर लौटा। उसके साथ कुछ और ऐसे लोग थे जो बुत की तरह काम कर रहे थे। उन्हीं में दो-तीन पत्रकार थे। अफसर ने औरत को बताया– यह हमारे मुल्क के मोअज्जिज़ अंग्रेज़ी पत्रकार हैं। इनका कहा और लिखा दुनिया पढ़ती है, गुनती है...इन्हें तुम्हारा बयान चाहिए...समझीं...

टेपरिकार्डर चलने लगे। उस औरत का बयान दर्ज होने लगा–हम तो कभी सोच भी नहीं सकते थे कि दुश्मन मुल्क के सिपाही हमारे साथ इतना अच्छा सलूक करेंगे...हम इनका आभार मानते हैं।

टेपरिकार्डर चले गए। अंग्रेज़ी पत्रकार भी चले गए। और वह अफसर भी शुक्रिया कहकर चला गया।

रात अंधेरी थी। सांय सांय कर रही थी। तभी एकाएक फिर धमाके शुरू हुए। बम गिरने लगे। गोले फटने लगे। मशीनगन फायर फिर दीवारों-खिड़कियों से टकराने लगी...फिर एकाएक ऐसा पुरज़ोर धमाका हुआ कि मकान की चूलें हिल गईं। पति ने घबराते हुए भी राहत की साँस ली और कहा–

–लगता है, हमारी फौजें आ गई हैं...अब हम मुक्त हो जाएँगे !

–किससे ?

–दुश्मनों और दुर्भाय से !

एकाएक पास ही मशीनगनों की गोलियाँ चलने लगीं। साथ ही गोले भी फटने लगे। उसी मौत और दहशत के बीच उसके पति ने खिड़की से देखकर वर्दियों को पहचाना, उसी के मुल्क के फौजी थे। वे फतह हासिल करते हुए, दुश्मन का सफाया करते एक-एक मकान में घुस-घुस कर जाँबाज़ी से उसे खदेड़ रहे थे और अपने मुल्क की बस्ती को आज़ाद करा रहे थे।

एकाएक उन्हें यह घर भी मिल गया। एक औरतवाला घर ! मुल्की अफसर ने अपने सिपाहियों को अनुशासन में रखते हुए बाहर जाने का हुक्म दिया और उस औरत के

साथ वही सब कुछ किया और उसके बाद उसके फौजियों ने भी उसके साथ वही कुछ किया, जो दुश्मन फौज का पराजित अफसर और उसके सिपाही उसके साथ करके भाग गए थे।

फिर उसके मुल्क के कई अंग्रेज़ीदाँ पत्रकार आए। औरत मादरज़ाद नंगी खड़ी थी। अपने मुल्की फौजियों की शहबत और वहशी हमलों को सहने के बाद। टेपरिकार्डर चलने लगे और उसका बयान दर्ज होने लगा था–मैं अपने मुल्क की फौज का इस्तक़बाल करती हूँ। इन्होंने बड़ी दिलेरी से हमारी रक्षा की है...हमारी इज्ज़त की हिफाज़त की है...इनका सलूक, इन्सानपरस्ती और इख़लाक क़ाबिले तारीफ है...

बयान दर्ज करके पत्रकार और फौजी अफसर चले गए थे। पर वह रौंदी हुई नंगी औरत बार-बार सोच रही थी–आख़िर हमलावर था कौन ?

•

38

हमलावरों की पहचान मुश्किल है...

सृष्टि की कठिनतम कन्दराओं से निकलता...पीव से सना हिरोशिमा चिल्लाता हुआ आ रहा था–हमलावरों की पहचान मुश्किल है...यह सब मिल कर अब मानव सम्मान को तोड़ देने पर आमादा हैं...इन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जीवनाधिकार के प्रश्न अब यह तय करेंगे...शक्तिशाली टाइटंस को परास्त करने के बाद आर्यों के मृत्यु देवता यमराज ने एक परिषद बुलाई थी। उसमें सुमेरी अक्कादी सभ्यता का हेडीज़ मौजूद था। रोमन सभ्यता का प्लूटन भी इसमें शामिल हुआ था। इस परिषद में जीयस का भाई पॉसायडन भी आया था...

–कौन पॉसायडन ? अर्दली महमूद अली ने पूछा।

–जीयस का तीसरा भाई, जिसे देव सम्राट बनने के बाद जीयस ने सृष्टि का जल-साम्राज्य सौंपा है...यही है आर्य देवता व्यभिचारी इन्द्र का सौतेला भाई...टाइटंस पर विजय प्राप्त करने के बाद सब मदमत्त थे। इस महायुद्ध के बाद भी यही हुआ था...जैसे वर्दीवाले फौजी अफसरों ने उस बीवी के साथ बलात्कार किया था, उसी तरह पॉसायडन के साथ लौटते हुए एज़ैक्स ने, एथीनी की प्रतिमा से लिपटी कज़ैण्ड्रा को घसीट कर उस चिरकन्या का शीलभंग किया था...कजैण्ड्रा के साथ हुआ बलात्कार देवी एथीनी बर्दाश्त नहीं कर पाई थी। बलात्कार सिर्फ कज़ैण्ड्रा के साथ नहीं, उस के साथ भी हुआ था, क्योंकि कजैण्ड्रा मूर्ति से लिपटी हुई थी। आर्यों की अहिल्या तो पाषाण प्रतिमा में पराभूत हो गई थी और एथीनी काष्ठ प्रतिमा में परिवर्तित हो गई थी...

–तभी से दैवी साम्राज्य के सभी देवताओं ने पृथ्वी के शील भंग को अपना शगल बना लिया है...आदिवासी मोंतेज़ुमा ने टिप्पणी की–अपोलो खुद चिरकुमारी कज़ैण्ड्रा का शीलभंग करना चाहता था जिसका उसे अवसर नहीं मिला...युद्धों के साथ लूटपाट और सामूहिक बलात्कार की यह परिपाटी अभी तक चली आ रही है...यही सभ्य कहे जाने वाले स्पेनिशों ने ब्राजील में किया था...यही हमारी सभ्यता की महिलाओं के साथ हुआ था। खुद को सभ्य पुकारनेवाली इन गोरी नस्लों की यही सभ्यता और नैतिकता है...ख़ैर...इसे छोड़ो। हमें मालूम है कि इसी अमानवीय पौराणिक सभ्यता के वंशजों ने अपने-अपने साम्राज्य का विभाजन कर लिया था। जीयस ने देव सम्राट की पदवी ओढ़ कर आकाश को अपना अधिकार क्षेत्र बनाया था। उसी ने पॉसायडन को जल साम्राज्य सौंपा था और हैडीज़ को पाताल का अधिकारी बनाया था...लेकिन याद करो इन अमानुषों की वह सन्धि, जिसमें तय

हुआ था कि पृथ्वी पर इन सभी तथाकथित देवताओं का समान अधिकार होगा ! उन्हीं देवताओं के आधुनिक वंशज उसी पौराणिक सन्धि का वास्ता देकर आज भी पृथ्वी को अपने अधिकार में रखने का षड़यंत्र चला रहे हैं...

–मैं उसी का हवाला दे रहा था ! हिरोशिमा बोला–आर्यों के यमराज ने जो परिषद आमंत्रित की थी, उसमें तीनों सभ्यताओं के दैवी साम्राज्य के मृत्यु-देवताओं के अलावा पृथ्वी के तानाशाह हिटलर, मुसोलिनी और खुद मेरे देश का तोजो भी शामिल था। इन्हीं के साथ शामिल थे वे भौतिक शास्त्र के परमाणु वैज्ञानिक जो नस्लवाद से खुद त्रस्त थे, पर राष्ट्रवाद या वैज्ञानिक प्रगतिवाद के नाम पर सामूहिक हत्याओं और ध्वंस का नया मृत्यु-दर्शन ईजाद कर रहे थे...इन वैज्ञानिकों का एक कुनबा था। हालाँकि यहूदियों के खिलाफ जर्मनी और इटली में कानूनों के कारण विरोधी माहौल बन चुका था, उन्हें उच्च शिक्षा से वंचित कर दिया गया था, परन्तु वैज्ञानिकों के कुनबे पर इस नस्लवादी भेदभाव का असर नहीं पड़ा था। मानवता की महा-मृत्यु का वैज्ञानिक फार्मूला तलाश करने में सब जुटे हुए थे...हिरोशिमा की बात सुनकर एक जिंदा बच गई बेचैन तितली पंख फड़फड़ाते हुए आई और बोली–

–मानवता के इतिहास का यह घोर अंधकार काल था...दूसरों को मौत देने के लिए अमरीका, जर्मनी, इंग्लैंड और रूस के तमाम वैज्ञानिक मृत्यु के अन्वेषण में जुट गए थे...सारे भौतिक विज्ञानी मृत्यु के आर्य देवता यमराज, ग्रीक देवता पॉसायडन और पाताल पुरुष हेडीज़ के ज़रख़रीद गुलाम बन गए थे...उन्होंने अपनी आत्माएँ गिरवी रख दी थीं। वे तानाशाहों के हाथों में मृत्यु के कारगर औज़ार सौंप कर विज्ञान की प्रगतिवादी अवधारणा का तर्क देते हुए अपनी पदवियाँ और वैयक्तिक सुविधाएँ बटोर रहे थे...

–तितली ने ठीक कहा है...हिरोशिमा ने ताईद की–इस दौर के वैज्ञानिकों, भौतिक शास्त्रियों की पूरी जमात अपनी प्रयोगशालाओं में सिर्फ़ मौत पैदा करने के भयानकतम सिद्धान्तों की सिद्धि प्राप्त करने में लगी थी। इसलिए इन परमाणु विज्ञानियों को क्षमा नहीं किया जा सकता ! विज्ञान के विकास के नाम पर मौत के इन सौदागरों को खुली छूट नहीं दी जा सकती...यमराज, हेडीज़ और पॉसायडन की इस मजलिस में तीनों तानाशाह तो शामिल थे ही, जर्मन भौतिक विज्ञानी वॉन वीजसाकर, वर्नर हाइज़नबर्ग के साथ एडवर्ड टेलर, राबर्ट ओपनहाइमर, रदरफोर्ड, रबी, एनरिको फर्मी, लियोज़िलार्ड, नील्स बोहर, रुडोल्फ पीर्ल्स और आइंस्टीन जैसे प्रकाण्ड वैज्ञानिक भी मौजूद थे....

–मैं बताता हूँ...इनकी वैज्ञानिक कीर्ति को लगभग अंतिम शिखरों तक पहुँचाने वाले अनुसंधानों से जुड़े अद्वितीय और अप्रतिम इतिहास की कहानी ! उस अमानवीय इतिहास की कहानी, जिसने विज्ञान जैसी प्रगतिकामी और पवित्र विधा को जीवन विरोधी बनने के लिए विवश किया ! अज़टेक सभ्यता का मैक्सिकन सम्राट मोंतेज़ुमा सामने आकर अन्धकार युगीन इतिहास के सूत्र सुलझाने लगा–

–यह यश और अपयश का अन्तर्विरोधी इतिहास है! वैज्ञानिकों का कुनबा विराट मानवता के हित में अपने प्रयोगों को अर्पित कर रहा था। वह प्रकृति के रहस्यों को अनावृत करने में लगा था...मानव शुभ की अभीप्सा के साथ। तभी तो मारी क्यूरी ने रेडियम का आविष्कार सम्पन्न किया था। और कैम्ब्रिज के अपने समकालीन भौतिक विज्ञानी रदरफोर्ड के लिए क्यूरी ने कहा था–रदरफोर्ड ऐसे अकेले भौतिक शास्त्री हैं जो अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों से मानव जाति को जीवन के बेमिसाल उपहारों से मालामाल कर सकते हैं!....मारी क्यूरी ने रदरफोर्ड के विलक्षण अन्वेषणों में जीवन और जगत के लिए एक नई आशा देखी थी। रदरफोर्ड ने अपनी प्रयोगशाला में अजस्र ऊर्जा वाले अणु का अनुसंधान कर लिया था...

–इतना ही नहीं...मेरे वैज्ञानिक गुरु रदरफोर्ड ने अणु को भी विखंडित कर लिया था...उन्होंने अणु के केंद्रक-न्यूक्लियस के रहस्य का पता लगा लिया था, जो अणु से बीस हज़ार गुना छोटा और सूक्ष्म था, परन्तु अपनी ऊर्जा-शक्ति में अणु से सहस्र गुना अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली!...एक वैज्ञानिक से लगते व्यक्ति ने बीच में हस्तक्षेप किया।

सभी लोगों ने उसे आश्चर्य से देखा।

–आपका परिचय? हिरोशिमा ने सख़्ती से पूछा।

–मेरा नाम प्योत्र कपित्ज़ा है...मैं रूसी हूँ...मैं अंग्रेज़ विज्ञानी आचार्य अर्नेस्ट रदरफोर्ड का शिष्य हूँ!

–तुम मानव विरोधी अणु-वैज्ञानिकों को हमारी मजलिस में आने की इजाज़त नहीं है! हिरोशिमा ने क्रोध से कहा– बेहतर यही होगा कि आप यहाँ से तत्काल चले जाएँ!

उसे मोंतेज़ुमा ने शान्त किया–

–हिरोशिमा! मैं तुम्हारे जख़्मों की पीड़ा पहचानता हूँ...लेकिन हमें कपित्ज़ा जैसे विज्ञानी का स्वागत करना चाहिए...

मौजूद लोगों ने उसे प्रश्नवाचक निगाहों से देखा।

–मैं ठीक कह रहा हूँ! असीम दुःख और प्रचण्ड यातना के समय भी हमें अपना विवेक नहीं खोना चाहिए...इन्हें पहचानिये...यह वही प्योत्र एल. कपित्ज़ा हैं जो अर्नेस्ट रदरफोर्ड के साथ कैम्ब्रिज में अनुसन्धान करते रहे हैं...यही कुछ वैज्ञानिक थे, जिनके पास आत्मा नाम की चीज़ थी। अणु को विखंडित करने का रहस्य प्राप्त कर लेने के बाद, रदरफोर्ड क्लान्त और उदास हुआ था...उसने अपने फ्रांसीसी मित्र क्यूरी दम्पत्ति से कहा था–हमें इस अनुसंधान के नतीजों को गुप्त रखना चाहिए, यदि यह धूर्तों के हाथों में पड़ गया तो प्रकृति की शक्ति का यह सत्य मानवता के महाविनाश का कारण भी बन सकता है...और तब इन्हीं वैज्ञानिक कपित्ज़ा तथा एडिनबर्ग में कार्यरत मैक्स बोर्न ने अणु के विखंडन और केंद्रक की महाशक्ति का रहस्य राजनीति के सामने समर्पित करने से इनकार कर दिया था...

मोंतेज़ुमा अभी यह कह ही रहा था कि टुकड़ों-टुकड़ों में इतिहास उपस्थित होने लगा...भयग्रस्त महत्वाकांक्षाओं के अन्धड़ यूरोप में चलने लगे...नस्लवाद और राष्ट्रवाद के राक्षस जगह-जगह जाग्रत होने लगे। फ्रांसीसी और रूसी क्रान्तियों के चलते पूँजीवादी व्यवस्थाएँ अपने ज़िराबख्तरों और शिरस्त्राणों की मरम्मत करने लगीं।

पूर्व सैनिक बेनितो मुसोलिनी के 'संघर्ष संघ' के लामबन्द लम्पट स्वयं-सेवक एकाएक राजनीति के क्षेत्र में उतर पड़े। इटली के नगरों महानगरों में उन्होंने मजदूरों और गरीबों के खिलाफ गुंडागर्दी का आतंक बरपा कर दिया। गिरजाघरों के मामूली पुजारियों और पादरियों के वे संरक्षक बन गए। कस्बों की नागरिक संस्थाओं में उन्होंने संघर्ष संघ के तहत अपना वर्चस्व कायम किया। ट्रेड यूनियनों पर कब्ज़ा किया। प्रशासन के बाबुओं और पुलिस तंत्र से मिलकर अपनी दादागीरी कायम की...उस अराजक माहौल में मुसोलिनी तब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रतीक बन कर उभरा और प्रति-सत्ता का अवैध केंद्र बन गया। तब उसने राजकाज और सत्ता की नीतियों में हस्तक्षेप शुरू किया। येन-केन-प्रकारेण मुसोलिनी ने सत्ता हासिल करते ही सबसे पहले चर्च से गठबंधन किया। तब पोप ने कहा–हमने इटली को उसका ईश्वर दे दिया है और ईश्वर को इटली!

और उधर नस्लवादी नफ़रत और अन्ध राष्ट्रीयता ने जर्मनी को हिटलर दे दिया और हिटलर को जर्मनी!

–रुको! इतिहास रुको! मोंतेज़ुमा ने आवाज़ दी।

और इतिहास रुक गया।

–और सुनो...तीन सौ वर्षों से चली आती साहित्य की साझी संस्कृति और सह अनुभव की मानवतावादी धारा तब रुक गई। औपनिवेशिक और औद्योगिक सम्पदा ने मानवतावाद को रोमेंटेसिज़्म में पर्यवसित कर दिया। कला रुचियाँ सामान्यकीकृत अनुभूति के शिखरों से उतर कर विलक्षणता की रोमांटिक घाटियों में विलुप्त होने लगीं। मौलिक कलाकारों-रचनाकारों की जगह विस्थापित कला का आहत दंश न झेल पाने वाले स्खलित रचनाकार-कलाकार एकजुट होने लगे। वे अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए उदार होकर एक दूसरे को जीनियस घोषित करने लगे....अमरीका और यूरोप की आर्थिक मन्दी से पेंटिंग्स की मंडी चौपट हो गई...वीथोवन के अवां-गार्द संगीत की दुनिया कुदरत की आवाज़ों में विलीन हो गई...कला मनुष्य के सौन्दर्य या त्रास को समझने की जगह अपनी विकृति को समझे जाने की अपेक्षा करने लगी...पिकासो का क्यूबिज़्म मानसिक आकृतियों को खंडित करके मनुष्य की कला-चेतना को खंडहरों में जाने के लिए विवश करने लगा...यथार्थ की शुभम् केंद्रित परिकल्पनाओं की जगह भयावह अतियथार्थ की यातना-पीड़ित अमूर्त आकृतियाँ आने लगीं...दादा और डॉली की दुनिया विकृति में अपने समय के सत्य को तलाशने लगी। डॉली की समय चेतना की घड़ी पिघलने लगी, पर वह समय की सुइयों को

नहीं रोक पाया...तानाशाह बेनितो मुसोलिनी की फौजें इथोपिया पर कब्ज़ा करके थोड़ा रुक गईं। हिटलर की फौजें राइनलैंड, आस्ट्रिया और पोलेण्ड को रौंद कर खड़ी हो गईं!

मोंतेज़ुमा ने देखा...सामने फैला था एक यंत्रणा स्थल। ऊबड़-खाबड़। धरती फटी-फटी और दरारों से क्षत-विक्षत। उन्हीं दरारों से जगह-जगह आग की लपटें निकल रही थीं। उन्हीं के साथ साँपों की तरह सीत्कार करती वाष्प की विषैली लहरें...उसी विषैली भाप में मूर्छित होते और दम तोड़ते लोग...

हिटलर के पीछे उसका खूंखार कुत्ता खड़ा था और वह कबूतरों को दाना खिलाते हुए बोल रहा था–काकेशियन आर्यों का सूर्य और साम्राज्य इन अनार्यों के लिए नहीं है...हमारे पास अपना ज्ञान, संज्ञान और विज्ञान है! हमें सामी-यहूदियों के घटिया विज्ञान की ज़रूरत नहीं है!

यंत्रणा स्थलों में फिर विषैला धुआँ सीत्कार करता भरने लगा....लोग फिर मूर्छित होकर दम तोड़ने लगे।

बर्लिन, लीपज़िग, गोटिंजन और म्यूनिख की प्रयोगशालायें सकते में आ गईं। सहमी प्रयोगशालाओं की साँसें अवरुद्ध होने लगीं...

–सुनो हिरोशिमा! मोंतेज़ुमा ने कहा–तुम्हारी यातना भी कहानी यहीं से शुरू होती है! यहीं से अणु के विखण्डित न्यूक्लियस का इतिहास बदलता है...मनीषा, ज्ञान और नए विज्ञान से संपन्न कोई जाति अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकती...पदार्थ के गर्भ में अपनी सम्पूर्ण सत्ता के साथ उपस्थित अणु, और अणु में मौजूद उसका और भी शक्तिशाली केंद्रक-न्यूक्लियस, उसकी नाभि में संचित अजस्र ऊर्जा का स्रोत, विखंडन की शृंखलाबद्धता का रहस्य, जो पृथ्वी को सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश और प्रत्येक भौतिक उपकरण को सदियों सक्रिय रहने की ऊर्जा दे सकता था...जो मृत्यु, जरा, ज्वर, विपत्ति, आपदा, दुःख, यंत्रणा, विपन्नता, भय, मृत्यु और पश्चाताप से इन्सान को मुक्त कर सकता था...अजस्र ऊर्जा के उस स्रोत की दिशा शुभ से अशुभ की ओर बदल गई क्योंकि यहूदी जाति की नाभि में विखंडन शुरू हो गया था। हिरोशिमा! जिस अणु बम की पीड़ा और यातना तुमने और नागासाकी ने सही है, उसका लक्ष्य तो हिटलर, बर्लिन और म्यूनिख था! लगभग सभी अणु वैज्ञानिक तो यहूदी थे....उनकी नाभि विस्थापित कर दी गई थी। उन्हें लगभग अछूत माना गया। इतना विशाल बौद्धिक अपमान और विस्थापन तो संसार के इतिहास में कभी नहीं हुआ था। वह विस्थापन भी था और निर्वासन भी...अपमान, जातिभेद, भय, प्रताड़ना, तिरस्कार और आत्मिक दंशबोध से तब चालित हुआ था–यहूदी मस्तिष्क। उसमें जन्मा था प्रतिशोध का शृंखलाबद्ध विखंडन। और तब प्रमात्रा वाले क्वांटम सिद्धान्त से विकसित सापेक्षतावादी सिद्धान्त मनुष्य की नियति से निरपेक्ष और वीतराग हो गया था। हिटलर ने आर्य-श्रेष्ठता के दंभ में यहूदी वैज्ञानिकों का जो तिरस्कार किया था...उसने महाविनाश का महामार्ग प्रशस्त कर दिया था...देखो इस दृश्य को!

और अंग खंड़ित हिरोशिमा ने देखा–प्रयोगशालाओं में साधना करने वाले ऋषियों की आकृतियाँ बदल रही थीं। वे तंत्रसाधना करने वाले राक्षसों में विरूपित हो रहे थे...

हिरोशिमा ने अपनी भयग्रस्त आँखों को हथेलियों से ढँक लिया....वह अर्धमूर्छित-सा हो गया था।

रुका हुआ इतिहास फिर सक्रिय हुआ।

आर्य हिटलर ने प्रयोगशालाओं का शुद्धिकरण शुरू कर दिया। चुन-चुन कर अनार्य बर्खास्त या सेवामुक्त होने लगे। मनुष्य की अपराजेय मेधा नस्लवादी हिंसा का शिकार हो गई। यहूदी वैज्ञानिकों का पलायन होने लगा। अलबर्ट आइंस्टीन बर्लिन छोड़ कर अमरीका की ओर चल पड़ा। कुछ वैज्ञानिक कोपेनहेगन, पेरिस, ज्यूरिख और कैम्ब्रिज की ओर भाग निकले। मैक्स बोर्न, जेम्स, फ्रैंक और डेविड हिलबर्ट ने जर्मनी छोड़ दिया। अणु बम के प्रमुख निर्माता एनरिको फर्मी को अपनी यहूदी पत्नी के कारण भागना पड़ा। हाइड्रोजन बम 'फैट मैन' का भावी निर्माता एडवर्ड टेलेर भी रुक नहीं पाया...वह जाकर ओपनहाइमर के साथ अमरीका की लोस- अलमोस प्रयोगशाला में शामिल हो गया। दूसरे विश्व-युद्ध के साथ-साथ आर्यों और अनार्यों के बीच भी युद्ध शुरू हो गया। यहूदियों का कुचला अहं प्रतिशोध माँगने लगा और...और...

–और मेरी धरती न्यू मैक्सिको के अलामागोर्दो के रेगिस्तान में...सुबह चार बजे जुलाई 16 सन् 1945 को वह हुआ जो कभी नहीं होना चाहिए था...आहत मोंतेज़ुमा जैसे किसी बहुत गहरी चोट से कराहने लगा–

–अणुबम का पहला परीक्षण! और दूर से अपनी त्रिशूल परियोजना के परीक्षण की सफलता को देखकर ओपनहाइमर पिशाचों की तरह नृत्य करने लगा। संस्कृत का जानकार होने के नाते तब उसे हिन्दू-आर्यों की गीता से एक उद्धरण याद आया–मैं ही मृत्यु हूँ! और मैं ही जीवन...अब मैं मृत्यु-रूप में अवतरित हुआ हूँ...पृथ्वी के विध्वंस के लिए...मैं ही मृत्यु हूँ...

धरती के ऊपर रेडियोधर्मी विषैली छतरी ने आकाश को आच्छादित कर लिया। उस सुबह सूर्य ने उदित होने से इनकार कर दिया। और उस विस्फोट की शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया तत्काल पाताल में हुई। पाताल का जल खौलने लगा। मछलियाँ तड़पने लगीं। पाताल तल में मूंगों-मोतियों से बने, जल पुष्पों से सजे नीर-महल ध्वस्त हो गए। जल कन्याओं के कोमलकांत शरीर फफोलों और बुलबुलों में बदल गए। जीवन की औषधि लाने गया गिलगमेश पाताल के उस खौलते पानी में उबलने लगा...उसका दम घुटने लगा।

–तब मैं पाताल में उतरा था, अपने मित्र गिलगमेश को बचाने के लिए! मोंतेज़ुमा ने कहा–उबलता पानी...जलती कपास की तरह उमड़ता फेन। उसांसे भरती, दम तोड़ती निरीह मछलियों के निर्जीव होते पिंड। सरसों की तरह छितराते मूंगों के महल। झुलसे हुए जल-पुष्प। जलते हुए पानी में तड़पड़ती जलपरियाँ....मैंने गिलगमेश को सँभाला...वह तो

अच्छा हुआ कि अग्नि की नदी के किनारे हमें तुलसी का एक पौधा मिला। उसके श्यामवर्ण पत्तों ने गिलगमेश को छाया दी। अग्निल लहरों से उसे तुलसी की मंजरियों ने बचाया...

तभी ब्रह्मांड के किसी कोने से लौह जंजीरों के खड़कने की तेज़ ध्वनि आई और फिर आई प्रमथ्यु की आवाज़–

–गिलगमेश को सुरक्षित रखना...उसे बताना...तुलसी की दाहिनी दिशा से पाताल के अंतिम तल की ओर एक जलमार्ग जाता है...रास्ते में अग्नि-अरण्य पड़ता है। उसी अग्निवन के एक ओर सूर्य का अस्ताचल है और दूसरी और है स्वप्नों की नगरी...उसी नगरी में छिपा बैठा है–धन्वंतरि शुरुप्पक का जियसुद्दु...जीवन औषधि का एकाधिकारी...वह औषधि ही मृत्यु से मुक्ति दिला सकती है!

•

39

–हुजूरे आलिया ! मौत से मुक्ति के लिए कुछ तो कीजिए ! घबराया हुआ अर्दली अदीब की अदालत में हाज़िर हुआ–

–उधर धन्वंतरि शुरुप्पक का जियसुद्दु जीवनौषधि पर एकाधिकार किए बैठा है, इधर संसार की तमाम प्रयोगशालाओं में भीषणतम और अधिकतम मौत का उत्पादन शुरू करने की होड़ लगी हुई है...सफल परीक्षण के बाद अब युद्ध में रत राजनीतिक सत्ताएँ मौत का थोक उत्पादन करना चाहती हैं...कुछ कीजिए अदीबे आलिया ! नहीं तो ब्रह्मांड से पृथ्वी का नामो-निशान मिट जाएगा !

–क्या कह रहे हो तुम ? अदीब ने चिन्ता से कहा।

–मैं ठीक कह रहा हूँ हुजूर ! मैं अभी मोंतेज़ुमा की मजलिस से जानकारी लेकर आया हूँ...लोस-अलामोस की प्रयोगशाला में अब परमाणु और हाइड्रोजन बमों का निर्माण चल रहा है। ओपनहाइमर, जॉन मैनली, टेलरॅ और फर्मी सृष्टि संहारक बमों के निर्माण में लगे हैं।

–जर्मनी तो अब लगभग हार चुका है...रूसी सेनाओं ने हिटलर के घुटने तोड़ दिए हैं....वह कभी भी समर्पण कर सकता है, तब बम की ज़रूरत क्या है ? अदीब ने पूछा।

–युद्ध का जुनून कुछ भी करवा सकता है और हालाँकि जर्मन वैज्ञानिक वीज़ सॉकर और हाइज़नवर्ग हिटलर से सहमत नहीं हैं, पर वे घोर राष्ट्रवादी हैं इसलिए वे जी जान से जर्मन बम विकसित करने में लगे हुए हैं !

–और सोवियत यूनियन ?

–वहाँ कुर्चातोव को मौत-उत्पादन का काम सौंपा गया है। वे वीज़ सॉकर और हाइज़नवर्ग की प्रगति से डरे हुए हैं, लेकिन प्योत्र कपित्ज़ा ने बम विकसित करने से इनकार कर दिया है। इस जुर्म में उसे स्टालिन ने सात वर्ष की कड़ी सज़ा दी है। उसका पासपोर्ट रद्द कर दिया गया है और वह घर में ही नज़रबंद है।

–ब्रिटेन ?

–ब्रिटेन में अधिकांश विदेशी भौतिक शास्त्री कार्यरत हैं। फ्रिश और पील्र्स तो हैं ही, पर फ्रांस से जोलियट क्यूरी के दो सहयोगी आ गए हैं–आस्ट्रियन वॉन हलबान और रूसी कोवार्सकी। वैसे कपित्ज़ा की तरह ही शरणार्थी भौतिक विज्ञानी मैक्स बोर्न ने अब बम पर काम करने से इनकार कर दिया है...बमों को कपित्ज़ा और बोर्न मानव और जीवन विरोधी मानते हैं !

अदीब ने राहत की साँस ली। कम से कम कोई तो ज़िन्दगी का साथ दे रहा है....और तभी निकट अतीत का लहूलुहान इतिहास लौट आया....

कि एकाएक ज़बरदस्त धमाका हुआ। पृथ्वी काँप उठी। जैसे कोई विशाल उल्का पिंड पृथ्वी से टकराया हो। धूल, धुआँ, हाहाकार। अग्नि की लपटें। जलती हवा। सूर्य के तापमान से स्पर्धा करता तापमान। विषैले विकिरणीय वृत्त में फैलता रेडियो धर्मी पारावार। धरती की फटी धमनियों से निकलती रक्त की नदियां...

सारा संसार सकते में आ गया।

अखबारों के लहूलुहान और झुलसे हुए समाचार चीखने लगे–

–6 अगस्त 1945 ! अमरीका द्वारा हिरोशिमा पर एटमी हमला। पृथ्वी पर प्रलय। पूरा शहर तबाह।

डेढ़ सौ मील दूर खड़ी एक अन्धी लड़की ने कहा–मैंने जलता हुआ सूरज देखा।

एटम बम की तबाही से बेख़बर, घर लौटनेवाले एक नागरिक ने कहा–घर तो कहीं था ही नहीं...हिरोशिमा मेरे पश्चिमी जापान का सबसे बड़ा रेलवे स्टेशन था। न मालूम वह स्टेशन कहाँ अलोप हो गया...उत्तर, पूरब और दक्षिण में हरे भरे जंगल और पहाड़ थे...न मालूम वे कहाँ अदृश्य हो गए...यहाँ तो मेरा शहर है ही नहीं...कहीं मैं घर का रास्ता भूलकर ग़लत जगह तो नहीं आ गया...

–नहीं तुम ग़लत जगह नहीं आए हो ! नागासाकी पर 9 अगस्त 1945 को गिरनेवाले हाइड्रोजन बम ने उसे बताया–अब तुम अपने नागासाकी शहर को भी नहीं पहचान पाओगे !

दहशतज़दा अदीब ने चीख कर अपने कानों में रुई ठोंस ली। आँखें बन्द कर लीं। अर्दली ने भी बदहवासी में अदालत का दरवाज़ा बन्द कर लिया।

तभी दरवाजे पर तेज़ दस्तक हुई। घबराए अर्दली ने अदीब को देखा। अदीब ने आँखें खोलते हुए कहा–

–आने दो...

और अदीब ने देखा–वही क्षत-विक्षत हिरोशिमा फिर सामने खड़ा था !

अदीब ने उसे देखा। रिसते पीव को देखा।

–तुम...तुम फिर लौट आये !

–मुझे लौटना ही था, क्योंकि मैं आपको अपने पुराने जख़्म नहीं दिखा सका था...जो न्याय मैं पाना चाहता था, मुझे नहीं मिल सका था !

–तो अब किया क्या जाए ?

–तबाही बरपा करनेवाले इन बमों को जिन वैज्ञानिकों ने बनाया है, और वे सारे राजनेता जिन्होंने इन्हें चलाया है, वे अभी तक खुले घूम रहे हैं...उनकी कोई सज़ा तो तजवीज़ कीजिए, नहीं तो उन के हौसले बेक़ाबू हो जायेंगे !

और अर्दली उन अपराधियों में से एक-एक को बाइज़्ज़त हाजिर करने लगा।

अमरीकी प्रेसीडेंट रुज़वेल्ट अपना थ्री पीस सूट संभालते हुए आए। ट्रूमैन बड़ी अकड़ के साथ अपनी टाई की गाँठ ठीक करता हुआ दाख़िल हुआ। उसी के साथ मैनहटन प्रोजेक्ट का सर्वेसर्वा नौकरशाह ग्रोव्ज़ अपनी बाहर निकलती तोंद को सँभालता हाज़िर हुआ।

सारे अणु वैज्ञानिक भी हाज़िर थे। ओपनहाइमर था। फर्मी और टेलरॅ था। आर्थर कोम्पटन और कोनेंट के साथ ज़िलार्ड भी था।

उन सब को देखते ही हिरोशिमा चीख उठा–यही हैं वह सब राक्षस ! हत्यारे ! मानवीय सभ्यता और संस्कृति के अक्षम्य दुश्मन...चीखते हुए हिरोशिमा ने अमरीकी प्रेसीडेंट ट्रूमैन का गला पकड़ लिया। अर्दली ने जैसे-तैसे उसे अलग किया।

ट्रूमैन की सारी पोशाक हिरोशिमा के रिसते पीव से लिथड़ गई....

अदालत खचाखच भरी हुई थी। पहले एटमी परीक्षण में मरनेवाली तितलियों के पंख मौजूद थे। दम तोड़ते मूंगे और मोती भी बैठे थे। क्षत-विक्षत जलपुष्प एक ओर खड़े थे और जलकन्याएँ फफोलों से ग्रस्त अपने शरीर पर तुलसी के पत्तों से हवा करती मौजूद थीं।

–यह मामला तो सीधे-सीधे नृशंस मानव-हत्या का है, क्योंकि अमरीकी प्रेसीडेंट ट्रमैन के पास एटमी हमले का कोई कारण और औचित्य नहीं था। ट्रूमैन ! उत्तर दो...भूमध्यसागर में मुसोलिनी ध्वस्त हो चुका था। सोवियत सेनाओं के सामने हिटलर और उसका बर्लिन घुटने टेक चुका था...हिटलर अपनी प्रेमिका इवा ब्राउन के साथ आत्महत्सा की तैयारी कर चुका था और जापान समर्पण के लिए तैयार था....तब तुम्हें इतने मारक और संहारक अणु और हाइड्रोजन बमों द्वारा आक्रमण करने की क्या ज़रूरत थी ?

–यह हमारा सैनिक फ़ैसला था ! ट्रूमैन ने कहा।

–लेकिन तुम्हारे सैनिकतंत्र ने तो आक्रमण के लिए टोक्यो, योकोहामा,ओसाका, कोबे, नगोया, यवाता और क्योतो चुना था...वह क्योतो, जहाँ जापान का सम्राट रहता था !

–वह एक विवादास्पद सवाल था। मैं प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट की मृत्यु के बाद युद्धरत अमरीका का प्रेसीडेंट बना था....

–तब तुम केवल नौ दिन पुराने प्रेसीडेंट थे, जब तुमने जापान पर आणविक आक्रमण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण फ़ैसला लिया था !

–यह सही है।

–अणुबम की ज़रूरत तो तुम्हें जर्मनी के विरुद्ध थी, फिर तुमने इसे जापान पर गिराने का फ़ैसला क्यों लिया ?

–इसके कारण दो थे। पहला तो यह कि हम नहीं चाहते थे कि परास्त जापान पर सोवियत रूस का कब्ज़ा हो...हमने 6 अगस्त को हिरोशिमा पर अणुबम गिराया था...हम पराजित जापान को अपने अधिकार में रखना चाहते थे, लेकिन 8 अगस्त को जापान के

खिलाफ युद्ध घोषणा करके रूस ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया था...रूस को रोकने और जापान की सत्ता पर मौत का खौफ़ तारी करके हम अपने बमों की ध्वंसात्मक तबाही का अन्दाज़ भी लेना चाहते थे!

–इसके लिए तुम यह प्रयोग किसी सागर, मरुथल या पर्वतीय प्रदेश में भी कर सकते थे!

–मैं सैनिक और अर्धसैनिक फ़ैसलों में दख़ल नहीं देना चाहता था। वैसे भी हम पहला परीक्षण न्यू मेक्सिको के मरुथल में कर चुके थे....इसलिए...

–इसलिए?

–इसलिए कि सैनिक तंत्र को बमों की मानव मृत्यु-क्षमता के आँकड़े जमा करने थे! हाइड्रोजन बम के निर्माता वैज्ञानिक एडवर्ड टेलरॅ ने सामने आकर कहा–मैं सिद्धांततः इस कृत्य के पक्ष में नहीं था। मैं नहीं चाहता था कि इन्सान को कीड़े-मकोड़ों की तरह मारा जाए....लेकिन राबर्ट ओपनहाइमर और ग्रोव्ज़ के सामने मेरी एक नहीं चली...मैं खुद अपने आविष्कार की भयावहता और मारक क्षमता के सम्भावित परिणामों को लेकर पछता रहा था।

–तो फिर तुमने यह हाइड्रोजन बम विकसित ही क्यों किया था?

–यह तो विशुद्ध विज्ञान की मौलिक प्रगति का एक चरण था...विज्ञान नैतिक या अनैतिक नहीं है। उसकी नैतिकता या अनैतिकता का सवाल तब उठता है, जब मानव हित या अहित के सन्दर्भ में उसकी उपयोगिता तय की जाती है....कहते हुए टेलरॅ ने अदीब को देखा–अदीबे आलिया! जब मैंने देखा कि बमों का परीक्षण मानव बस्तियों पर करने का फ़ैसला लिया गया है, तब मेरी आत्मा दहल उठी थी...मैंने स्वयं अपने को धिक्कारा था...

–प्रेसीडेंट ट्रूमैन! तुम तो तब सिर्फ़ नौ दिन के सुलतान थे....जब तुम्हें पहली बार इन घातक बर्बर बमों की सूचना दी गई थी...क्या तब तुम्हारी आत्मा पर नैतिकता ने कोई दस्तक नहीं दी थी?

ट्रूमैन ने नजरें बचाते हुए इधर-उधर देखा। उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

–यह अमानुषिक और बर्बर फ़ैसला इन तीन राक्षसों ने लिया था! इसने! इसने! और इसने! अर्दली महमूद अली ने ट्रूमैन के राजनीतिक सलाहकार स्टिमसन, लोस-अलामोस प्रयोगशाला और मैनहटन प्रोजेक्ट के डिक्टेटर ग्रोव्ज़ और भौतिकशास्त्री ओपनहाइमर की ओर उँगली उठा-उठाकर हिकारत से कहा–अदीबे आलिया! यह तीनों हिटलर, मुसोलिनी, तोजो की तरह मात्र युद्ध अपराधी नहीं, ये उससे भी संगीन मानव अपराधी हैं! यही है वह राक्षस स्टिमसन, जिसने राजनीति के लिए विज्ञान की इस विरल खोज की दिशा बदल दी थी और इसी जनरल ग्रोव्ज़ ने कहा था–

–हमारे बम सैनिक सत्ता के प्रतीक हैं। जापान पर इनका प्रयोग जल्द से जल्द किया जाना चाहिए, ताकि हम इन बमों की मारक क्षमता पर आश्वस्त हो सकें। इनका

इस्तेमाल उन घनी आबादी वाली बस्तियों पर होना चाहिए, जहाँ हथियारों के कारखाने और मजदूरों के रिहायशी इलाक़े हैं।

जनरल ग्रोव्ज़ ने आँखें चुराकर ओपनहाइमर को देखा।

–और यह भौतिक शास्त्री राबर्ट ओपनहाइमर! इसने अपने एक मित्र को पत्र में लिखा था–मुझे दो ही चीजें सबसे अधिक पसन्द हैं–भौतिक विज्ञान और रेगिस्तान! मैं हमेशा सोचता था कि इन दोनों का मिलन कभी नहीं हो सकता...परन्तु आज मेरे सामने दोनों एकाकार होकर मौजूद हैं। चमत्कारी भौतिक विज्ञान और सामने फैला हिरोशिमा का रेगिस्तान!

–ये हत्यारे हैं!

–ये मानव जाति के शत्रु हैं!

–इनके कीड़े पड़ें!

–इनका रक्त सड़ाँध देते पीव में बदल जाए....,

–इन रक्तजीवी राक्षसों को इसी अदालत में मृत्युदंड दिया जाए! हिरोशिमा चीखा। उसके पास ही आहत नागासाकी खड़ा था।

–नहीं...धूर्त, दुष्ट, दुर्जन मानव हन्ताओं के लिए मृत्यु तो वरदान बन जाएगी, क्योंकि यमराज का नर्क और हेडीज़ का यंत्रणा स्थल भी इन अधम आत्माओं को स्वीकार नहीं करेगा। सृष्टि के इतिहास में यह जघन्यतम और कल्पनातीत पाप का अकेला उदाहरण है। पापियों के पाप की यह पराकाष्ठा है....यह एटमयुग की पुराणकथा के हिंसक दैत्य के रूप में जाने जाएँगे। इनकी नैतिक आत्माओं का कोई अन्तिम विश्राम स्थल नहीं होगा...हत्या से यह शोकमुक्त नहीं होंगे। आत्महत्या से इन्हें पश्चाताप प्राप्त नहीं होगा। प्रेत भी विक्षिप्त नहीं होते, परन्तु यह तीनों विक्षिप्त प्रेतात्माओं के रूप में सृष्टि के अन्त तक माथा पटकते रहेंगे। इन अधम आत्माओं के माथा पटकने की आवाज़ मनुष्य के विवेक पर हमेशा दस्तक देती रहेगी!...और....और...अभी अदीब कुछ और बोल ही रहा था कि उसके चेहरे पर पसीना छलछला आया। उसे लगा कि उसकी साँस घुट रही है....

अर्दली चौंका। दौड़कर उसके पास आया–

–क्या हुआ हुजूर...

–महमूद अली...दिल की बस्ती में बहुत तेज़ दर्द उठ रहा है...

•

40

दिलों की बची-खुची बस्तियाँ अब सिर्फ़ अस्पतालों में आबाद हैं। अर्दली महमूद अली ने अदीब को एक ऐसी ही बस्ती में दाख़िल करा दिया।

तीन दिन बाद आई.सी.सी.यू.में अदीब को होश आया। उसे लगा कि वह किसी तैरते हुए द्वीप की नरम धरती पर लेटा हुआ है। फिर कुछ और होश आया। सामने दीवार पर एक तस्वीर थी। बड़ी-बड़ी इमारतों की बस्ती। उस तस्वीर में सामने की ज़मीन खाली थी। उस खाली ज़मीन में झोपड़ीनुमा एक कोठरी थी। ऊँची-ऊँची आलीशान इमारतों के बीच वह ऐसी लग रही थी, जैसे श्मशान में कोई अधजली लकड़ी पड़ी हो...फिर उसे थोड़ा और होश आया। उसने देखा, बाईं तरफ एक बोतल उल्टी लटकी है और उसे ड्रिप दिया जा रहा है।

तभी मेट्रन नर्स का ध्यान उसकी तरफ आकर्षित हुआ। वह मुस्कराती हुई मरियम की तरह उसके पास आई और माथे पर प्यार भरा हाथ रखकर बोली–

–सो यू आर नाउ अवेक...दैट्स गुड....

–मैं कहाँ हूँ सिस्टर ?

–आई.सी.सी.यू.में।

–ओह...मैं कब से सो रहा था ?

–पिछले तीन दिनों से...

–इस बोतल में क्या है सिस्टर ?

–आपका ब्लडप्रेशर बहुत लो हो गया था उसी के लिए ड्रिप दे रहे हैं...

–कब से ?

–कल शाम से...

–कल शाम से...ओह...ड्रिप...

–क्यों ?

–इसकी जगह आप ह्विस्की की बोतल लटका देतीं...ब्लड प्रेशर आधे घंटे में नार्मल हो जाता।

सिस्टर बेसाख़्ता हँस पड़ी। आई.सी.सी.यू.में पहली बार इतनी तेज़ हँसी सुनकर नर्सों ने उसे ताज्जुब से देखा और वे भी मुस्कराने लगीं।

–यह पेशेन्ट बहुत जल्दी अच्छा हो जाएगा ! मेट्रन ने साथी नर्सों से कहा–ही इज़ नाट वरिड एबाउट हिज़ हार्ट....

फिर आई.सी.सी.यू.में रहते हुए ही उसके तमाम टेस्ट चलते रहे। उससे मिलने के लिए उसकी पत्नी को सिर्फ़ पन्द्रह मिनट का वक्त दिया जाता था...उसी वक्त में कभी उसकी बिटिया मानू भी आ जाती थी। खाने का तो सवाल ही नहीं था, अस्पताल में बाहर का पानी तक एलाउड नहीं था, लेकिन गायत्री अपने पर्स में जैसे-तैसे एक चिकिन-पैटी छिपा कर लाती थी और उसे खिला जाती थी। अदीब को अनन्त और मिंटी की याद आती थी, तो आलोक नीचे सड़क पर गाड़ी खड़ी करके उसकी छत पर दोनों बच्चों को बैठा देता था...वे अपने नाना को देख तो नहीं पाते थे, पर अपने मासूम और पवित्र हाथ हिला-हिलाकर शुभकामनाएँ देते रहते थे...

वैसे अदीब अभी भी आई.सी.सी.यू.में था और उसे यह अहसास हो गया था कि सामने वाली दीवार किसी तस्वीर की दीवार नहीं बल्कि एक हक़ीकत थी। आलीशान इमारतों के बीच, मैदान में खड़ी वह एक झोपड़ीनुमा कोठरी! एक परिवर्तन उस तस्वीर में ज़रूर हुआ था...शीशे के चौखटे में कभी, जब शायद बाहर हवा चलती थी तो गुलमोहर की एक शाख, सुर्ख फूलों के साथ फ्रेम में आती, हाथ हिलाती और चली जाती थी।

पड़े-पड़े वह सोचने लगा–पहले घर छोटे हुआ करते थे। पेड़ बड़े...घरों पर पेड़ों की छाया हुआ करती थी। अब इमारतें बड़ी और पेड़ बहुत छोटे। अब इमारतों की छाया में पेड़ों ने रहना सीख लिया है...लेकिन वह झोपड़ीनुमा कोठरी अभी भी एक पेड़ की छाया तले थी। वह पेड़ शायद नीम का था।

तभी एक औरत चुरुट की तरह नीम की दातौन मुँह में दबाए सामने से गुज़री। उसके हाथों में तामचीनी के कुछ बर्तन थे।

ब्लडप्रेशर लेती सिस्टर ने कहा–

–यही है वह...

–कौन?

–झोपड़ीवाली....यहाँ सफाई कर्मचारी का काम करती है। आप कल पूछ रहे थे न....कहते हुए सिस्टर ने हार्ट-मॉनीटर पर नज़र डाली।

–आप सबकी धड़कनें वहाँ बैठी-बैठी देखती रहती हैं....अदीब ने कहा।

सिस्टर हल्के से मुस्करा दी। बोली–

–उसे बुलाऊँ....

–किसे?

–कौशल्या को....वही झोपड़ीवाली...जिससे आप मिलना चाहते थे।

कुछ ही देर बाद कौशल्या उसके बैड के पास खड़ी थी।

–अब तो आपकी तबियत बहुत ठीक है बाबू...शायद आज आपको कमरे में शिफ्ट कर देंगे....मैं तो भगवान जी से यही माँगती रहती हूँ....सब ठीक होके अपने-अपने घर जाएँ....

–कब से काम रही हो यहाँ ?

–जब से ननकू फौज में गया।

–ननकू...

–हमारे एक ही बेटा है बाबू...आपने काहे के लिए बुलाया है ?

–ऐसे ही...वह कोठरी तुम्हारी है ?

–हाँ बाबू....कौशल्या कुछ सतर्क हुई–ई आप काहे को पूछ रहे हो ? कहते हुए उसने अदीब को शक से देखा। बोली–मैं बेचूँगी नहीं....आप कितना भी पैसा दे दो....हम बेचेंगे नाहीं।

–कौशल्या, हम बेचने-खरीदने की बात नहीं कर रहे। हम तो ऐसे ही...

–ऐसे ही नहीं बाबू...जो भी हमारी कोठरी देखता है, खरीदने की बात करने लगता है। मुँहमाँगा दाम देने को तैयार हो जाता है....पर हम सबको कह दिया है हमारी कोठरी बिकाऊ नाहीं है। एक बड़की गाड़ी में बहुत बड़ा ठेकेदार आया रहा। अरे...वो ही जौन हमारी खोपड़ी पर ई सब बड़की-बड़की इमारत बनवाया है। उसका लोग फीता लेके पैमाइश करने लगा। हम डाँट दिया। दूसरे दिन उसका गुंडा लोग आया। हमको बेदख़ल करने का धमकी दिया। औ'ले, तीसरे दिन उही ठेकेदार हियां आके लेट गया....चार नंबर में। डाकदर बोला–कुछ नाहीं है...उसका वकील बोला–बड़ा हार्टकै है...डाकदर लोग को मानना पड़ा। बाहर पुलिस...ऊपर पुलिस। अब इधर अइसा लोग बहुत आता है बाबू...

अदीब ने कौशल्या को ताका।

–हम ऊका दलिद्दर भी उठाया बाबू...भगवान जी से उसका भी विनती किया। तो एक दिन चार नम्बर बोला–काहे को यहाँ खटती है....दो कमरे का फ्लैट लेके आराम से रहो....पइसा ऊपर से दे देंगे...निसफिकिर होके जिनगी भर खाओ....

अदीब ने उसे फिर गौर से देखा।

–तो हम कह दिया बाबू...कि पहली बात तो ई है कि आप कुछ भी कहो, पर आपन कोठरी तो बेचेंगे नाहीं...लाभ से ननकू नाहीं आया, ओ दूसर बात है, इतना बरस से फौज ऊको छुट्टी नाहीं दिया, पर ननकू लौटेगा और कोठरी नाहीं देखेगा तो हमको कहाँ तलाशेगा...हम ठीक बोला न बाबू ?

–हाँ कौशल्या...अदीब की आवाज भारी हो आई।

–अब हम हियाँ रहत हैं, पर हमकी जान चौबीसों घंटे उहीं कोठरी में रहत है....

बहुत भारी मन से अदीब ने कौशल्या को देखा। फिर काँच की दीवार के पार उसकी कोठरी को। तभी कौशल्या को सिस्टर ने पुकारा। वह जाने लगी, तो काँच के फ्रेम में आकर गुलमोहर की सुर्ख फूलों वाली शाख फिर झाँकने लगी...और उसके बिस्तर के आस-पास दुष्यन्त की लाइनें तैरने लगीं–

जिएँ तो अपने बग़ीचे में गुलमोहर के तले

मरें तो ग़ैर की गलियों में गुलमोहर के लिए...
शाख ने दुबारा झाँक कर देखा। शायद बाहर फिर हवा चली थी...

•

41

लेकिन इस बार बाहर की हवा बेहद ज़हरीली थी। गुलमोहर के फूल पीले पड़ गये थे। अदीब सदियों के पार देख रहा था...एक बार यही हवा ग्यारहवीं सदी में गज़नी से चली थी, उसने सोमनाथ मंदिर तोड़ा था। इस बार यह हवा सोमनाथ से चली थी, जिसने बाबरी मस्जिद को तोड़ डाला था। इन ज़हरीले चक्रवातों का चलना हक नहीं रहा था।

सन् 1990 में सोमनाथ मन्दिर प्रांगण, प्रभाष-पाटन से फिर जो चक्रवात चला था वह अयोध्या, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्र होता हुआ सन् 1998 पोखरन पहुँच गया था।

बुद्ध पूर्णिमा 11 मई 1998 दोपहर 3 बजकर 45 मिनट। रेगिस्तान की धमनियाँ फट गई थीं। धरती थर्रा गई थी। पोखरन की कोख में नौ सौ फीट नीचे एक के बाद एक तीन धमाके हुए थे। हवा निस्पंद हो गई थी। तापमान दस लाख डिग्री हो कर सूर्य के तापमान तक पहुँच गया था। और रेत के नीचे लाखों-लाख टन की पर्वत शृंखलाएँ फटी...पिघलीं और भाप में बदल गईं और एक मील लम्बा-चौड़ा रेत का मैदान ऊपर उठता हुआ विराट विस्फोटक छतरी की तरह छा गया।

अदीब को फिर दिल का दौरा पड़ा।

फिर बलूचिस्तान चगाई में विस्फोट हुआ।

हवा निस्पंद हुई। पहाड़ों की धमनियाँ फटीं...तापमान दस लाख डिग्री तक पहुँचा और चगाई के पहाड़ सफेद राख के टीलों में तब्दील हो गए।

फिर पोखरन में एक और विस्फोट हुआ।

फिर चगाई में एक और विस्फोट हुआ।

अदीब को इस बार दिल का जबरदस्त दौरा पड़ा।

अर्दली दौड़ा-दौड़ा आया–

–हुजूर...क्या फिर वही हुआ....

–हाँ...महमूद अली...इस बार दर्द तो कम है पर लगता है दिल की बस्ती राख हो गई...

बदहवास सलमा आई, चिल्लाती-पूछती हुई–

–अदीब ! यह तो बताओ, मेरे नाना का क्या हुआ होगा ? लेकिन अदीब की हालत देखकर वह सहम गई।

आखिर फिर उसे आई.सी.सी.यू.में पहुँचा दिया गया। उसे नहीं मालूम कि वह कितने दिन बेहोश रहा। बेहोशी टूटी तो उसकी नींद में एक सपना आया...शापग्रस्त ओपनहाइमर की विक्षिप्त प्रेतात्मा सर पटकती थी, फिर हँसती थी...

उसकी आँखें खुलीं। शरीर पसीने से नहाया हुआ था। सलमा ने सँभाल कर तौलिए से उसका बदन पोंछा। सिस्टर ने आकर दवा की खुराक दी। फिर सलमा ने बहुत धीमे से उसका हाथ थामते हुए कहा–

–एक बात बताऊँ...

अदीब ने उसकी तरफ देखा।

–इन दिनों मैं एक अजीब-सा सपना देखती हूँ....

अदीब ने परेशानी-सी महसूस की, लेकिन आँखों की पलकें झपका कर जैसे हाँ कहा।

–मेरे सपने में बार-बार एक प्रेतात्मा आती है...कुछ देर वह सर पटकती है, फिर हँसती है....

अदीब ने उसे देखा। फिर अटकते हुए कहा–

–सपना तो एक ही है सलमा, लेकिन लगता है अब सपनों की ताबीर बदल गई है....

कि एकाएक अश्रुवैद्य पागलों की तरह आकर खड़ा हो गया।

–अरे तुम...कैसे हो ?

–ठीक हूँ ! अश्रुवैद्य ने कहा–आपको तो याद होगा...मैं आँसुओं की जगह पसीना इकट्ठा करने लगा था...पर अब मैं पसीने की जगह सपने जमा करने लगा हूँ...खंडित...आधे-अधूरे सपने।

–अच्छा...यह ज़रूरी भी है...पर तुम उन्हें रखते कहाँ हो ?

–वहीं...जहाँ प्रमथ्यु ने बताया था। अग्निवन की दूसरी ओर...सूर्य के अस्ताचल के उस ओर....जहाँ स्वप्नों की नगरी है....

–यह तुमने अच्छा किया।

कुछ देर अदीब कुछ सोचता रहा। सिस्टर बी.पी. लेने आई तो उसने पूछा–

–कौशल्या नहीं दिखाई दी।

–वो अपने बेटे की तलाश में ऊधमपुर छावनी गई है।

–उसकी झोपड़ी ?

–वह उस तरफ है...यहाँ से नहीं दिखाई देती। बीपी नोट करके सिस्टर ने बताया–

–हम कुछ देर बाद आपको कमरे में शिफ्ट कर देंगे।

और फिर कमरे में तो सभी मिलने और जल्द से जल्द ठीक होने की शुभकामनाएँ लेकर पहुँचने लगे। गायत्री फिर पर्स में छुपाकर चिकिन-पैटी ले आई थी।

कुछ ही देर में अर्दली महमूद अली प्रमथ्यु को लेकर दाखिल हुआ। अदीब ने प्रमथ्यु को आश्चर्य से देखा। वह लोहे की जंज़ीरों से मुक्त था, लेकिन कन्धे पर बैठा गिद्ध अब भी उसका माँस नोंच-नोंच कर खा रहा था।

–प्रमथ्यु तुम!

–हाँ अदीब, मैं तुम्हें जल्द से ज़ल्द स्वस्थ होने की शुभकामनाएँ देने आया हूँ....

–और वो...तुम्हारी जंजीरें...जिनमें देवता जीयस ने तुम्हें बंदी बनाकर जकड़ रखा था...

–दोस्त! हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु आक्रमण को मैं सह नहीं सका था...मुझे बहुत क्रोध आया...मेरे क्रोध और आक्रोश का तापमान सूर्य के तापमान से दस गुना बढ़ गया था। उसी में वे दैवी लौह-जंजीरें मोम की तरह पिघल गईं। इन देवताओं और दैत्यों को अभी मालूम नहीं कि पृथ्वी के मनुष्य का क्रोध और आक्रोश क्या कुछ कर सकता है...और यह गिद्ध! यह भी माँस नोंचते-नोंचते एक दिन थक जाएगा...इसे मनुष्य जाति के धीरज और सहनशक्ति का पता नहीं...एक दिन यह भी माँस खाते-खाते लस्त होकर गिर पड़ेगा। उस दिन मैं जाकर नील नदी में स्नान करूँगा। फिर डैन्यूब नदी को, हिरोशिमा की ओटा नदी और नागासाकी की खाड़ी में नहा कर उसे पवित्र करूँगा...

अभी प्रमथ्यु खड़ा ही था कि मोंतेज़ुमा ने आते ही अदीब को जल्द से जल्द ठीक होने की शुभकामनाएँ दीं और बताया–

–प्रमथ्यु! तुमने तुलसी के पौधे की दाहिनी दिशा से पाताल के अन्तिम तल तक पहुँचने का जो जलमार्ग बताया था, गिलगमेश उस पर बहुत आगे बढ़ गया है। वह किसी भी समय स्वप्ननगरी पहुँच सकता है। वहाँ पहुँचते ही वह धन्वन्तरि शुरुप्पक के जिउसुद्दु को ज़रूर तलाश लेगा।

हिरोशिमा और नागासाकी भी आ गए थे। वे अदीब से मिलकर वापस जापान जा रहे थे।

–तुम लोग अकेला मत महसूस करना।

–धन्यवाद...और फिर अब तो तुम्हारे अश्रुवैद्य ने हमारी आँखों में कुछ सपने पैबस्त कर दिए हैं...उन्हें यह न जाने कहाँ कहाँ से मृतकों की आँखों में से जीवित बचा के लाया था...

–अच्छा तो मैं अभी चलूँ! मोंतेज़ुमा ने अदीब के पास आकर कहा।

–तो तुम भी चले जाओगे?

–नहीं, जाने का मतलब यह नहीं कि मैं अपने देश लौट जाऊँगा...नहीं...मैं यहीं रहूँगा। यही एक अकेली सभ्यता है जिसने अपने आदिम आदिवासियों को जीवित रखा है...यहाँ मैं जी सकूँगा...

शाम होने लगी तो अर्दली महमूद अली ने एक सिस्टर के साथ आकर बताया–

–एक मोहतरमा आपसे दो मिनट के लिए ख़ासतौर से मिलना चाहती हैं।

–मोहतरमा? उसने आश्चर्य से पूछा।

–जी हाँ...वो भी यहीं, आप ही के साथ पहले आई.सी.सी.यू.में थीं। आज उन्हें छुट्टी दे दी गई है....

–वह भी यहीं आई.सी.सी.यू.में थीं...हलके से मुस्करा के अदीब ने कहा–ताज्जुब की बात है...यानी मेरे और उनके दिल साथ-साथ धड़कते रहे हैं। उनका स्वागत है।

और उन मोहतरमा ने जैसे ही कमरे में कदम रखा तो सब कुछ महक उठा। अदीब भौंचक्का रह गया। विश्वास ही नहीं कर सका!

–जी...आप...

–जी, मैं पाकिस्तान से आई हूँ, मेरा बेटा यहाँ पाकिस्तानी हाई कमीशन में सेक्रेटरी कल्चर एण्ड इन्फॉर्मेशन है। हिन्दुस्तान देखने का बहुत मन था। इस बार वह मुझे भी ले आया....

वह कुछ कहना चाहता था, बहुत कुछ कहना चाहता था, पर न जाने कौन-सा संकोच उसे रोक रहा था।

–जी....यहाँ आई तो एक महीने तो खूब घूमी घामी...

–कहीं आप...आप...अदीब का गला सूखने लगा।

–मैं कानपुर भी गई...स्टेशन बहुत बड़ा हो गया है...बदल भी गया है...

–बड़ा ज़रूर हो गया है...लेकिन बदला तो कुछ भी नहीं है...अदीब ने उनसे इतना कहके खुद अपने से कहा, मेरे लिए एक रूमाल अब भी वहाँ गिरता है!

–कानपुर से लौटी तो दिल का दौरा पड़ गया...बेटे ने यहाँ दाख़िल करा दिया...

अदीब बेसाख़्ता चीख पड़ना चाहता था–

–विद्या! विद्या!! विद्या!!!

लेकिन उसने अपनी उसाँसें रोकते हुए पूछा–

–आपके साहबज़ादे कहाँ हैं।

–जी, वह बिल का पेमेन्ट करने गया है...अभी आएगा तो मिलवाऊँगी....वैसे पाकिस्तानी रिसालों में आपकी कहानियाँ कभी-कभी छपती रहती थीं...मैं पढ़ती थी...तो लगता था शायद आप वही हैं...

–वही...

परी धीरे से मुस्करा दी–

–न जाने आपको मिला या नहीं...शुरू-शुरू में मैंने आपको एक ख़त भी लिखा था...बचपने से भरा ख़त था वह...

–ख़त मुझे मिला था!

–ज़हे नसीब...नहीं तो पते तो इतने कट-फट गए हैं, इस क़दर बदल गए हैं कि पैग़ाम तो छोड़िए सलाम तक नहीं पहुँचता...

उसी समय उसका बेटा आ गया। परी ने मिलवाया–

–परवेज़ ! मेरा बेटा...और परवेज़...आप वही अदीब हैं जिनकी एक कहानी मैंने तुम्हें पढ़वाई थी...

–आदाब !

–आदाब...

परी कुर्सी से उठी तो उसका रूमाल नीचे गिर गया था। अदीब ने देखा, रूमाल फिर गिरा था। उसने इशारा करते हुए कहा–

–आपका रूमाल...

–शुक्रिया...कहते हुए परी ने रूमाल उठाया, ख़ुदा हाफिज कहा और बेटे परवेज़ के साथ बाहर चली गई।

अदीब देखता रह गया। वह कहना और पूछना चाहता था कि पोखरन के बाद हमारे सारे मोर या तो ख़त्म हो गए या देस छोड़ के चले गए...लेकिन क्या चगाई के बाद तुम्हारे खजूर के पेड़ों पर मधुमक्खियाँ अभी भी आती हैं...

•

42

–मधुमक्खियाँ, मोर, कपोत, बुलबुल, गौरय्या, खंजन, नीलकंठ, पपीहा, लाली, तितलियाँ और जुगनू अब हमारे चौबारों और छतों की मुंडेरों पर कभी नहीं आएँगे...अंधा कबीर कह रहा था। फिर उसने अपना इकतारा उठाया और गाने लगा–

–वैषणव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे...

कुछ देर तक वह गाता रहा...फिर उसने सफेद छड़ी उठाई और चल पड़ा। उसके कन्धे से एक भीगा हुआ झोला भी लटका था। उसमें से गन्दले पानी की एकाध बूंद जब-तब टपक पड़ती थी।

अदीब ने उसे ताज्जुब से देखा। कदम बढ़ाकर बराबर में पहुँचा। दरयाफ़्त किया–

–कबीर तुम कहाँ जा रहे हो...बांद्रा मस्जिद या माउंट मेरी ?

–वहाँ नहीं...मैं इस बार लम्बे सफ़र पर जा रहा हूँ...पहले पोखरन जाऊँगा फिर चगाई !

अदीब ने उसे आश्चर्य से देखा। पूछना चाहा–क्यों ?

कबीर ने उसका प्रश्न ताड़ लिया और खुद ही उत्तर दे दिया–कुछ पागल लोग हैं जो पोखरन में शक्तिपीठ की स्थापना करना चाहते हैं। विस्फोट की ज़हरीली राख रज की तरह बाँटना चाहते हैं...तुमने अखबारों में देखा नहीं...यह सब उन्हीं धर्मान्ध पागलों को चेहरे हैं जिन्होंने कई साल पहले सोमनाथ से रथयात्रा निकाली थी...और वहाँ से चलकर बाबरी मस्जिद गिराई थी...

–लेकिन तुम...तो...मेरा मतलब है...

–अन्धा हूँ, यही न...अन्धा होने के कारण ही मैं सब कुछ साफ़-साफ़ देख लेता हूँ...

–लेकिन तुम वहाँ जाकर करोगे क्या ? तुम कर क्या सकते हो ? मेरा मतलब है, वहाँ जाने का मकसद ?

–वहाँ जाकर मैं वृक्ष लगाऊँगा।

–वृक्ष !

–हाँ बोधि वृक्ष...मेरे इस झोले में उसी की पौध है। बोधिवृक्ष की जड़ें नीलकंठ की तरह सारा विष पी लेती हैं...पहला बोधि वृक्ष मैं पोखरन में लगाऊँगा, फिर सरहद पार करके दूसरा वृक्ष मैं चगाई की पहाड़ियों में लगाऊँगा...तो मैं चलूँ...

अदीब ने उसे देखा।

पहले कबीर की सफ़ेद छड़ी ने कदम उठाया फिर उसके पैर चल पड़े।

□ □